विद्वज्जनबोधक ।

[प्रथम खण्ड ।]

संग्रहकर्त्ता—
श्रीमज्जिनवचनप्रकाशक श्रावक ।

प्रकाशक,—
श्रीजैनग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय
हीराबाग बम्बई ।

आषाढ, १९८२ वि० ।

जून, १९२५ ई० ।

पहली बार] [मू० तीन रुपया ।

प्रकाशक—
छगनमल बाकलीवाल,
मालिक—
जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव–बम्बई ।



मुद्रक—
रामकिशोर गुप्त,
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झांसी)
और
मंगेश नारायण कुळकर्णी
कर्नाटक प्रेस, ठाकुरद्वार, बम्बई

निवेदन ।

—••:X:••—

यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है—लगभग सत्ताईस हजार श्लोक परिमाण है । अतएव हमने इसको खण्डशः प्रकाशित करना ही उचित समझा । यदि पाठकोंने इसका यथेष्ट आदर किया, तो आगेके खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया जायगा । लगभग इतने ही बड़े तीन खण्डोंमें ग्रन्थ सम्पूर्ण हो जायगा ।

दिगम्बरजैनसम्प्रदायकी रक्षा और उन्नति करनेवाले तथा उसको सर्वथा नष्ट होनेसे बचानेवाले तेरहपन्थका यह एक प्रधान और माननीय ग्रन्थ है और इसमें उन सब विवादग्रस्त विषयोंकी चर्चा की गई है जिनपर आज भी लोग तरह तरहकी शंकायें और कल्पनायें किया करते हैं । इसमें सैकड़ों ग्रन्थोंके उद्धरण और प्रमाण दिये गये हैं और इस दृष्टिसे यह एक अपूर्व संग्रहग्रन्थ है ।

यद्यपि इस ग्रन्थमें ग्रन्थकर्त्ताने अपना नाम प्रकाशित नहीं किया है—अपनेको केवल ' जिनवचनप्रकाशक श्रावक ' लिखा है; परन्तु यह बिल्कुल निश्चित है कि इसके कर्त्ता स्वर्गीय पं० पन्नालालजी संघी थे जिन्होंने और भी अनेक ग्रन्थोंकी रचनायें की थीं । संघीजीका जीवनचरित सज्जनोत्तम श्रीयुत बाबू पांचूलालजी काठाने जैनहितैषीमें प्रकाशित कराया था, जिसे हम धन्यवादसहित आगे उद्धृत कर देते हैं । इस चरितसे पाठक संघीजीका पूरा पूरा परिचय पा जावेंगे ।

श्रीयुत बाबू राजमलजी बड़जात्याके हम बहुत कृतज्ञ हैं जिनकी विशेष प्रेरणा और उत्साहप्रदानसे हम इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेमें समर्थ हो सके हैं और जिन्होंने इस ग्रन्थकी २५० प्रतियाँ खरीदकर अपनी गुणज्ञताका परिचय दिया है । —प्रकाशक ।

स्व० प० पन्नालालजी संघी दूणीवाले।

जयपुर नगरसे दक्षिणकी ओर लगभग २० कोसपर निवाई नामका एक कस्बा है, जो तहसीलका सदर मुकाम है। वहाँकी इमारतों और मन्दिरोंके देखनेसे मालूम होता है कि, वह किसी समय एक बड़ा भारी नगर था और जनधर्मके उच्च गौरवको प्रकट करता था। हमारे चरित्रनायक संघी पन्नालालजीके पितामह संघी शिवजीराम इसी नगरमें रहते थे। अपनी जन्मभूमि सबको प्यारी होती है, उसे कोई प्रसन्नतासे नहीं छोड़ना चाहता। शिवजीरामजी निवाईको क्यों छोड़ते? परन्तु भाग्यके चक्करमें पड़कर मनुष्य सब कुछ करनेके लिये लाचार होता है। संघीजीको अपना ग्राम छोड़कर अपने कुटुम्बके सहित उदयपुर (मेवाड़) में आकर रहना पड़ा। यहाँ लाभान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे उन्हें व्यापारमें अच्छी प्राप्ति होने लगी और थोड़े ही दिनोंमें वे एक नामी धनवान् हो गये—उनके भाग्यका सितारा चमक उठा।

उन दिनों जयपुरके राजकीय गगनमें एक गृहकलहकी काली घटा उठी थी। महाराज सवाई जयसिंहजीने अपने एक पुत्र ईश्वरीसिंहके होते हुए भी उदयपुरनरेशकी पुत्रीके साथ इस प्रतिज्ञामें बद्ध होकर विवाह कर लिया कि, सीसोदणी महाराणीके गर्भसे जो पुत्र होगा, वही जयपुरके राज्यका अधिकारी होगा। निदान सीसोदणीके कुमार माधवसिंह उत्पन्न हुए और उन्होंने वयःप्राप्त होनेपर गद्दीके हकका दावा किया। परंतु ईश्वरीसिंह ज्येष्ठ पुत्र थे, इसलिये उन्हें ही राज्यका कार्य सौंपा गया। माधवसिंहजी रुष्ट होकर उदयपुर चले गये और वहाँसे उन्होंने लड़ाईका सामान एकत्र करके जयपुरपर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाईमें उदयपुरराज्यके कई सरदार तथा मंत्रीगण भी माधवसिंहजीके साथ आये थे। सरदारोंमें एक त्योंदके ठाकुर प्रेमसिंहजी भी थे, जो बड़े भारी वीर और विश्वस्त पुरुष समझे जाते थे। संघी शिवजीरामजी उक्त ठाकुर साहबके दाहिने हाथ थे। संघीजीकी सम्मतिके बिना वे अपना जरूरीसे भी जरूरी कार्य नहीं करते थे। अतः ठाकुर साहबके साथ इस समय संघीजीका भी जयपुरमें आगमन हुआ था।

कुमार माधवसिंहजीको इस चढ़ाईमें सफलता हुई। अर्थात् जयपुरके राज्यके वे स्वामी हो गये। ठाकुर प्रेमसिंहजी पर उनकी विशेष कृपा रहती थी, इसलिये राज्य प्राप्त करते ही उन्हें उन्होंने दूणीका परगना जागीरमें दे दिया और 'राव' की पदवी देकर अपना मंत्री बनाया। इसी समय संघीजी रावजीके ठिकाणेके कार्याध्यक्ष नियत किये गये।

संघीजीको ३ पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, जिनमेंसे ज्येष्ठ पुत्र रतनचन्दजी अपने पितासे भी अधिक भाग्यशाली हुए। रतनचन्दजी उस समय हुए जिस समय जयपुरमें दीवान मुसाहिब तथा अन्य राजकार्यकर्त्ता प्रायः सभी जैनी ही थे, सारा राज्यकार्य जैनियोंके ही हाथमें था। जैनियोंके इतिहासमें जिनका नाम सोनेके अक्षरोंसे लिखना योग्य है वे सज्जनोत्तम अमरचन्दजी उस समय दीवान थे और संघी झूथारामजी मुसाहिब थे। झूथारामजी और रतनचन्दजीमें बड़ीभारी मित्रता थी; यहाँ तककी झूथारामजी रतनचन्दजीसे प्रायः प्रत्येक राजकार्यमें सम्मति लेते थे।

रतनचन्दजीके पहले कोई पुत्र नहीं हुआ था, इसलिये उन्होंने पहले अपने छोटे भाईके पुत्र हीरालालजीको दत्तक लिया था, परंतु पीछे उतरती अवस्थामें ब्रजलाल और पन्नालाल नामके दो पुत्रोंने उनके गृहसंसारको हराभरा कर दिया। ब्रजलालजीका युवावस्थामें जब कि उनका विवाह हो गया था देहान्त हो गया। संघी रतनचन्दजीको इस पुत्रवियोगसे बड़ा शोक हुआ, पर क्या करते! भवितव्यपर किसका वश चलता है! द्वितीय पुत्र पन्नालालजीको संघीजीने संस्कृतका अध्ययन कराना शुरू किया, परंतु उनकी यह आशा पूर्ण न हो सकी। अपने पुत्रको संस्कृतका पंडित देखनेके पहले ही वे अपनी यात्रा समाप्त कर चुके। पिताकी मृत्युके समय पन्नालालजीकी अवस्था १३-१४ वर्ष की थी और मथुराके जगद्विख्यात सेठ मनीरामजीके भाई फतेहलालजीकी पुत्री मानबाईके साथ उनका विवाह हो चुका था।

पिताके वियोगसे और ससुरालके धनसम्पन्न होनेसे संघी पन्नालालजीका विद्याध्ययन शिथिल हो गया। केवल काव्य, नाटक, चम्पू और अलंकारादिके ग्रन्थोंमें उनका मन लगने लगा। शृंगाररसके आस्वादनमें उन्हें अपने जीवनकी सफलता दिखने लगी। जैनधर्मके तत्त्वोंकी अनभिज्ञतासे और संगतिके प्रभावसे इसी समय इनके हृदयमें मिथ्यात्वने ऐसा डेरा डाला कि ये खुल्लमखुल्ला

गणेशजीके भक्त हो गये और पचेन्द्रियके (योग्य) विषयोंमें आकंठ निमग्न हो गये। इसी लिये धर्मात्माजन कह रहे हैं कि, धर्मशून्य कोरी शिक्षा चाहे वह संस्कृत की हो, चाहे अँगरेजीकी हो, कल्याणकारी नहीं है। विद्यार्थी-अवस्थामें बालकोंको मिथ्यातियोंकी संगतिसे बचाकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिसमें उन्हें कमसे कम धर्मात्माओंसे वचनालाप करनेका मौका तो निरन्तर मिलता रहे।

विक्रम संवत् १९०१ से १९०७ तक संघी पन्नालालजीको ठिकाणे दूणीमें अपने पिताके स्थानपर काम करना पड़ा और संतोषकी बात यह है कि उन्होंने उसे अपने भाई हीरालालजीकी सहायतासे अपने पिताके ही समान प्रवीणताके साथ चलाया। इस बीचमें एक दिन आपको रत्नकरंडश्रावकाचार, अर्थ-प्रकाशिका टीका आदि ग्रन्थोंके कर्त्ता सुप्रसिद्ध पंडित सदासुखजीसे मिलनेका मौका आ पड़ा। उक्त पंडितजीने आपको अनुभवी चतुर तथा विद्यारसिक जानकर ऐसा मार्मिक सदुपदेश दिया कि उसके प्रभावसे आपकी चित्तवृत्ति पलट गई और जैनधर्मके ग्रन्थोंके अवलोकन करनेकी ओर आपकी लालसा प्रबल हो गई। यद्यपि आपको ठिकाणेके कार्यसे अवकाश नहीं मिलता था, तो भी आपने उक्त पंडितजीकी सेवामें नित्य रात्रिके १० बजे पहुँचकर पठन पाठन करनेकी प्रतिज्ञा ले ली। यह प्रतिज्ञा लेते समय सदासुखजीने कहा, "भाई पन्नालालजी, आप बड़े घरके हैं-मुखिया हैं। आपसे इस कठिन प्रणका निर्वाह कैसे होगा?" उत्तरमें पन्नालालजीने मुँहसे तो कुछ नहीं कहा; परंतु जब तक पं० सदासुखजी जीते रहे, तब तक आप उनके यहाँ उसी समय नियमपूर्वक पहुँचते रहे और आपने वहाँ कई सिद्धान्तग्रन्थोंका अवलोकन उनकी सहायतासे कर डाला-तथा मिथ्यात्व मलको धोकर दृढ़ सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया।

पंडित सदासुखजी जैनधर्मके अच्छे नामी विद्वान् थे। आपने अनेक प्राचीनग्रन्थोंकी भाषाटीकाएँ रचकर जैनधर्मका वह उपकार किया है जो सैकड़ों उपदेशकोंसे और वक्ताओंसे नहीं हो सकता है। आज ग्राम ग्राम नगर नगरमें आपके रचे हुए ग्रन्थोंसे लोग जैनधर्मका स्वरूप जानकर अगणित विधर्मियोंके बीचमें रहकर भी अपने धर्माभिमानकी रक्षा कर रहे हैं। यदि आप और आप सरीखे दो चार विद्वान् संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंको भाषामें करनेका प्रयत्न न करते तो शायद ही आज भारतवर्षमें यह सुन पड़ता कि, जैनधर्म भी कोई एक धर्म है। परोपकारी पं० सदासुखजीने अन्त समयमें अपने शिष्य

संघीजीसे कहा कि, "अब मैं इस अस्थायी पर्यायको छोड़कर विदा होता हूँ। मैंने तथा मेरे पूर्ववर्ती पं० टोडरमलजी, मन्नालालजी, जयचन्द्रजी आदि विद्वानोंने असीम परिश्रम करके अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी सुलभ भाषावचनिकाएँ की हैं, और अनेक नवीन ग्रन्थ भी बनाये हैं। परन्तु अभीतक देश देशान्तरोंमें इनका जैसा प्रचार होना चाहिये था, वैसा नहीं हुआ है। और तुम इस कार्यके सर्वथा योग्य हो, तथा जैनधर्मके मर्मको भी अच्छी तरह समझ गये हो, अतएव गुरुदक्षिणामें मैं तुमसे केवल यही सेवा चाहता हूँ कि, जैसे बने तैसे इन ग्रन्थोंके प्रचारका प्रयत्न करो। वर्तमान समयमें इसके समान पुण्यका और धर्मकी प्रभावनाका और कोई दूसरा कार्य नहीं है।" यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि, सदासुखजीके सुयोग्य शिष्यने गुरुदक्षिणा देनेमें जरा भी आनाकानी नहीं की। आपने अनेक सज्जन धर्मात्माओंकी सम्मति लेकर उसी समय अपने घरपर एक सरस्वतीकार्यालयको स्थापना कर दी और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि, उसके द्वारा देशदेशान्तरोंसे जितने ग्रन्थोंकी माँग आती थी, वह सब शुद्धतापूर्वक लिखवा कर और भेजकर पूरी कर दी जाती थी।

थोड़े दिनोंमें निरन्तरके शास्त्राध्ययन तथा मननसे संघीजीके भावोंमें वैराग्य की झलक आई और उसने बढ़ते बढ़ते विक्रम संवत् १९०७ में उन्हें राज्यसेवासे पृथक् कर दिया। राजकीय सेवा छोड़कर कुछ दिनों आपने देश तथा तीर्थपर्यटन किया और पाँच छह वर्षके पश्चात् परिणामोंमें स्थिरता तथा दृढ़ता आनेपर अपने गुरुका अनुकरण करके आप भी प्राचीन ग्रन्थोंकी भाषा टीकाएँ तथा स्वतंत्र नवीन ग्रन्थोंकी रचना करनेमें दत्तचित्त हो गये।

इन दिनों आपका समयविभाग इस प्रकार था:—४ बजे रात्रिसे उठकर प्रातःकाल तक आप सामायिक वा आत्मध्यान करते थे, और फिर शौचस्नानादिसे निवृत्त होकर अपने गृह-चैत्यालयमें पूजन करते थे। यह चैत्यालय आपके घरमें अबतक विद्यमान है। पूजनके पश्चात् ८ बजे भोजनसे निवृत होकर पठनपाठनमें लग जाते थे और रात्रिके दश बजे तक इसी कार्यमें लगे रहते थे। इस बीचमें जो देसी विदेशी विद्यार्थी वा धर्माभिलाषी लोग पढ़नेको आते थे, उन्हें बड़ी प्रसन्नता और रुचिसे पढ़ाते थे। जयपुरके और बाहिरके चार छह पंडित जनोंसे आप निरन्तर ही घिरे रहते थे और धार्मिक चर्चामें मग्न रहते थे। उस समय आपका गृह एक खासा विद्यालय बन रहा था। २६ वर्ष तक

आपकी यह दिनचर्या बराबर इसी रूपमें रही, कभी विस्खलित नहीं हुई। संघीजीकी इस अवस्थाको एक प्रकारसे गृहत्यागकी अवस्था कह सकते हैं, क्योंकि इस समय उन्होंने गृहकार्योंसे अपना हाथ सर्वथा खींच लिया था-अपनी स्त्री और पुत्र पौत्रादिको ही गृहभार सौंपकर संचालित करनेका काम सौंप दिया था।

संघीजीने, **उत्तरपुराण, राजवार्तिक, न्यायदीपिका, लघुरत्नकरंडश्रावकाचार,** पूज्यपादस्वामीकृत **इष्टोपदेश, षडावश्यक, द्रव्यसंग्रह** और **तत्त्वार्थसूत्र** इन मूल ग्रन्थोंकी भाषा वचनिकाएँ या टीकाएँ बनाई हैं, जो बहुत अच्छी और सबके समझने योग्य हैं। एक स्वतंत्र ग्रन्थ भी आपने ढूढारी भाषामें बनाया है, जिसकी श्लोकसंख्या २७ हजार है। इस ग्रन्थमें आपने बड़ी ही स्वतन्त्रतासे जैनधर्मकी भिन्न २ शाखाओंके मन्तव्योंपर विचार किया है और उनके उचितानुचित वाक्योंका उल्लेख करके जैनधर्मके मुख्य मार्गका प्रतिपादन किया है। आपने यह भी सिद्ध किया है कि, जैनधर्ममें प्राचीन बने २ आचार्योंके नामसे बहुतसे ऐसे ग्रन्थोंकी भी रचना हो गई है, जिनमें सैकड़ों बातें वीतराग मार्गसे विरुद्ध हैं। इस ग्रन्थका नाम है **विद्वज्जनबोधक**। यद्यपि इस ग्रन्थके बहुतसे प्रतिपादित विषय विचारणीय हैं और बहुतसे विद्वान् उन्हें पसन्द नहीं करते हैं—उनका विरोध करते हैं, तो भी इसमें सन्देह नहीं है कि संघीजीने इसकी रचना अच्छे परिणामोंसे प्रेरित होकर की है। प्रत्येक विद्वान्‌को इस ग्रन्थका स्वाध्याय करना चाहिये। **समवसरणपूजा, सरस्वतीपूजा** और **पंचकल्याणपूजा** आदि तीन चार छन्दोबद्ध ग्रन्थोंकी भी संघीजीने रचना की है, जिससे जान पड़ता है कि, आप भाषाकी कविता भी कर सकते थे। संस्कृत भाषापर भी आपका अच्छा अधिकार था। **दशावतारनाटक** और **जैनविवाहपद्धति** ये दो ग्रन्थ जो कि संस्कृतमें रचे गये हैं, इस बातके साक्षी हैं। शहर **जयपुर** प्रतिमाओंके लिये सदासे विख्यात है। यहाँपर हजारों शिल्पकलाकुशल कारीगर निवास करते हैं। जब आपने देखा कि, बहुतसे कारीगर मनमानी प्रतिमाएँ बनाकर बेचते हैं और शास्त्रोक्त रचनापर कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, तब आपने अनेक शिल्पशास्त्रोंके आधारसे एक **बिम्बनिर्माणविधि** नामकी पुस्तक बनाकर प्रत्येक कारीगरको दी और कहा कि, तुम्हें इस मापकी प्रतिमाएँ बनाकर बेचनी चाहिये। इस पुस्तकके बनानेके विषयमें स्वर्गीय पंडित भागचन्द्रजीकी विशेष प्रेरणा थी।

पंडित फतेहलालजी नामके एक विद्वान् जो एक भट्टारकजीके शिष्य थे और जैनधर्मके अच्छे जानकार होकर सत्यके भी पक्षपाती थे, संघीजीके परम मित्र थे। संघीजी लिखने पढ़नेका कार्य बहुत समय तक इनके साथ मिलकर करते रहे हैं। संघीजीकी रची हुई विवाहपद्धति आदि कई पुस्तकोंमें जिन पं० फतेहलालजीका नाम है, वे ये ही हैं।

एक बार भट्टारकोंके दो तीन शिष्योंने प्राचीन आचार्योंके नामसे प्रायश्चित्त और दायभाग सम्बन्धी दो ग्रन्थ जयपुरके न्यायालयमें पेश किये और कहा कि, ये ग्रन्थ हमारे पूर्वाचार्योंके बनाये हुए हैं, इसलिये जैनजातिसम्बन्धी सारे मुकद्दमोंका फैसला इनके अनुसार होना चाहिये। राज्यने इस विषयमें स्वयं हस्तक्षेप करना ठीक न समझकर जयपुरकी जैन पंचायतको उक्त दोनों ग्रन्थ सौंपकर उसकी सम्मति माँगी। पंचायतमें उस समय संघीजी अग्रणी थे, इसलिये आपने पहले देशदेशान्तरोंके अनेक विद्वानोंकी सम्मतियाँ मँगाईं और फिर शास्त्रार्थ करके यह सिद्ध किया कि, उक्त दोनों ग्रन्थ जैनाम्नायके विरुद्ध और अप्रामाणिक हैं। फल यह हुआ कि, राज्यने उक्त ग्रन्थ जब्त कर लिये और अब तक वे राजकीय कोषमें रक्षित हैं।

संघीजीके ३ पुत्र और २ पुत्रियाँ इस तरह पांच संतान थीं, जिनमेंसे एक पुत्रका और दोनों पुत्रियोंका युवावस्थामें विवाहादि हो जानेपर वियोग हो गया। पुत्रका समाधिमरण आपने स्वयं बड़ी दृढ़ता और विरक्ततासे कराया था। शेष दो पुत्रोंमेंसे बड़े पुत्र संघी नेमिचन्दजी राज्यका कार्य करते थे और दूसरे पुत्र संघी बख्तावरलालजी यद्यपि विशेष विद्वान् नहीं थे, परन्तु धर्मात्मा और विरक्त पुरुष थे। उन्होंने अपना सारा जीवन धर्मध्यानमें ही व्यतीत किया—अपने उपयोगको अन्य कार्योंमें नहीं लगाया। इनके एक पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। पुत्रका नाम संघी आनन्दीलालजी है, जो इस समय ४८ वर्षकी अवस्थामें विद्यमान हैं। इन्होंने अपने पितामह संघीजीसे ही धर्मशिक्षा पाई है।

संघीजीके शिष्योंमें एक धन्नालालजी कासलीवाल नामके सज्जन थे, जो उस समय जयपुरके सिटी मजिस्ट्रेट थे और 'धन्नालालजी फौजदार' इस नामसे विख्यात थे। अपनी परलोकयात्राके समय संघीजीने इन्हें उपदेश दिया था कि, जयपुरमें एक बृहत्पाठशालाके खोलनेका प्रयत्न करना। तदनुसार फौजदारजीकी प्रेरणा, प्रयत्न और दूसरे धर्मात्माओंकी सहानुभूतिसे जयपुरमें महापाठशाला स्थापित हो गई और वह अब तक निर्विघ्नतया चल रही है।

विपय-सूची ।



सम्यग्दर्शनोद्योतक प्रथम काण्ड ।

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

दशमोल्लास

एकादशोल्लास

पृष्ठ संख्या

॥ श्रीः ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

जयपुरनिवासी दूनीवाले संघी पंडित पन्नालालजी
संगृहीत

विद्वज्जनबोधक।

—— ※ ——

अथ शास्त्रके अवसरमें प्रथम पढ़नेकी पद्धति सार्थक लिखिये है;—

श्लोक।

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥ १॥

अर्थ;—मनोवांछित कामको देनें वारो अर मोक्षको देनें वारो विन्दुसंयुक्त ओंकार जो है ताहि योगीश्वर निरय ध्यावै हैं। ऐसो पंच परमेष्ठी रूप ओंकार जो है ताके अर्थ नमस्कार हो नमस्कार हो। इहां दोय वार नमस्कारके कहनेंतें वारंवार नमस्कार हो ऐसे जनायो है॥ १॥

छंद आर्या।

अविरलशब्दघनौघ-
प्रक्षालितसकलभूतलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था
सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥ २॥

अर्थ;—अविरल संबंधरूप जे शब्द ते ही भये जे मेघ तिनको जो समूह ताकरि प्रक्षालित कीयो है सकल पृथिवीतलको कलंक जानैं, अर मुनीश्वरनि करि उपासना कीयो है तीर्थ जाको, ऐसी सरस्वती जो है सो हमारा दुरितनैं हरो ॥ २ ॥

श्लोक।

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

अर्थ;—जानैं अज्ञानरूप तिमिर करि अंध जे हैं तिनके नेत्र ज्ञानरूप अंजनमयी शलाका करि उद्घाटित किये, वै गुरु जे हैं तिनके अर्थ हमारो नमस्कार हो ॥ ३ ॥

धारा।

परमगुरुभ्यो नमः। परंपराचार्यगुरुभ्यो नमः।

अर्थ;—परमगुरु जे अर्हंत भगवान तिनकै अर्थ नमस्कार हो, अर परम्पराचार्य गुरु जे गणधरादिक निर्ग्रन्थाचार्य तिनकै अर्थ नमस्कार हो ॥

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्मसंबंधकं भव्यजीवप्रतिबोधकारकं पुण्यप्रकाशकं पापप्रणाशकमिदं श्रुतं श्रीविद्वज्जनबोधकनामधेयं।

अर्थ;—समस्त पापको विध्वंस करनैं वारो, अर कल्याणको समस्तपणैं वृद्धि करने वारो, अर धर्मको संबन्धी, अर भव्यजीवनिन प्रतिबोध करनें वारो, अर पुण्यको प्रकाश करने वारो, अर पापको प्रणाश करने वारो यो विद्वज्जनबोधकनाम श्रुत है।

अस्य मूलग्रंथकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवाः तदुत्तर-

ग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसारमासाद्य कर्त्ता श्रीउमास्वाम्यादिना विरचित । तत्र उत्तरोत्तरमांगल्यमालया यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यं वक्तृश्रोतॄणां मंगलं भूयात् ।

अर्थ ;—या ग्रन्थके मूल ग्रन्थकर्त्ता तो श्रीसर्वज्ञदेव है, अर ताके उत्तरकर्त्ता श्रीगणधरदेव है तथा प्रतिगणधरदेव है । बहुरि तिनके वचननिका अनुसारनैं ग्रहण करि कर्त्ता श्रीउमास्वामी आदि जे हैं तिनकरि विरचित है। तहां उत्तरोत्तरमंगलमयी माला जो है ताकरि जो पुण्य उत्पन्न होय सो वक्तानिकै तथा श्रोतानिकै मंगलनिमित्त हो ।

श्लोक ।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमः प्रभुः ।
मंगलं कुंदकुंदाद्या जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥४॥

अर्थ ;—महावीर अंतिम तीर्थंकर भगवान जो है सो मंगलरूप हो, अर अन्तिम गणधर गौतम प्रभु जो है सो मंगलरूप हो, अर कुंदकुंदादि आचार्य जे हैं ते मंगलरूप हो, अर जैनधर्म जो है सो मंगलरूप हो ॥

ऐसें श्रीॐकार पद्धतिनैं पढ़ि जो ग्रन्थ बांचै ता ग्रंथको प्रथम श्लोक पढ़ि व्याख्यान करै ।

इति श्री ॐकारपद्धति संपूर्ण ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ विद्वज्जनबोधक लिख्यते;—

छन्द शार्दूलविक्रीडित ।

श्रीसुत्रामशतार्चितांघ्रिजलजद्वन्द्वाय लोकत्रय—
प्रेष्ठोन्मिष्टगरिष्ठसुष्टुसुवचोजुष्टाय तेऽर्हन्नमः ।
अंतातीतगुणाय निर्जितभवव्राताय बुद्धोल्लस—
द्बुद्धे ! बुद्धिविशुद्धिदायक ! महाविष्णो ! विजि-
ष्णो ! जिन ! ॥ १ ॥

अर्थ;—हे बुद्धोल्लसद्बुद्धे कहिये बुद्ध जे गणधरादिक ज्ञानवान तिनतैं अत्यन्त उल्लसायमान ज्ञानके धारक, अर हे बुद्धिविशुद्धिदायक कहिए बुद्धिकी विशुद्धिताका दातार, अर हे महाविष्णो कहिये अत्यन्तपणैं व्यापनशील, अर हे विजिष्णो कहिये विशेषपणैं जयनशील, अर हे जिन कहिये कर्म शत्रुका जीतनहार, अर हे अर्हन् कहिये इंद्रादिकनिकरि पूजनेयोग्य, अर लक्ष्मीवान देवेंद्रनिके सैंकड़ेनिकरि पूजित है चरण कमलको युगल तिहारो, अर लोकत्रयके जीवनिनैं अत्यन्त इष्ट मिष्ट गंभीर सुन्दर ऐसा समीचीन वचन करि युक्त, अर अनंतानंतगुणवान, अर जीत्यो है संसारको समूह जानै, असो तू है जो ताकै अर्थ नमस्कार होहू ॥ १ ॥

दोहा ।

चउविध विधिगन नाशि जिन, भये ज्ञानमय आप ।
सत इंद्रनि जय जय कह्यो, अगनित धरत प्रताप ॥१॥
ताहि वंदि तद्वदनतैं, उपजी गिरा प्रसिद्ध ।
नमूं नित्य कल्मषहरन, गुरु गुनगन करि इद्ध ॥२॥

बुद्धि शुद्ध निजकरनहित, संशय मिथ्याहार ।
विद्वज्जनबोधक कहूं, सुगम वचनिका सार ॥ ३ ॥
सुनत भव्य उर मधि प्रचुर, प्रकटत हर्ष विवेक ।
दृढ श्रद्धा संशयरहित, उपजत युक्ति अनेक ॥ ४ ॥
शब्द न्याय साहित्यके, ग्रन्थ पठित मम नांहि ।
भक्तियुक्त बुध जननितैं, श्रवन किये हित चांहि ॥५॥

अथानंतर महापुराणसंबंधी शांतिनाथपुराणमें;—

श्लोक ।

वक्तृश्रोतृकथाभेदान् वर्णयित्वा पुरा बुधः ।
पश्चाद्धर्मकथां ब्रूयात् गंभीरार्थो यथार्थदृक् ॥ २ ॥

अर्थ;—यथार्थ पदार्थके स्वरूपकूं जाननवारो ज्ञानी जो हैं सो प्रथमही वक्ता श्रोता अर कथा इन तीननिके भेदनिनैं वरनन करि पीछे गंभीर है अर्थ जाविषैं ऐसी धर्मकथानैं कहै ॥ २ ॥

यातैं प्रथम ही वक्ताके लक्षण कहिये है;—

विद्वत्त्वं सच्चरित्रत्वं दयालुत्वं प्रगल्भता ।
वाक्सौभाग्येंगितज्ञत्वे प्रश्नक्षोभसहिष्णुता ॥३॥

अर्थ—न्याय सिद्धांत व्याकरण छंद अलंकारादि समीचीन विद्यावानपणूं, अर समीचीन चारित्रवानपणूं, अर छहूं कायकी रक्षारूप दयालपणूं, अर स्खलित गद्गद अस्पष्ट आदि दोषरहित वचनको सौभाग्यपणों, अर प्रगल्भपणों, अर श्रोतानिकी चेष्टाका जाननपणांनैं होता संता अनेक प्रश्ननिका क्षोभका सहन पणों ॥ ३ ॥

सौमुख्यं लोकविज्ञानं ख्यातिपूजाद्यवीक्षणम्।
मिताभिधानमित्यादिगुणा धर्मोपदेष्टरि ॥ ४ ॥

अर्थ—अर प्रसन्न निर्विकार चेष्टारूप सुमुखपणौं, अर देश जाति कुल भेदयुक्त लोकव्यवहारको जाननपणूं, अर विख्यातताका तथा पूजालाभादिकका अभिलापरहितपणूं, अर प्रमाणीकवचन इत्यादिक गुण धर्मके उपदेशदाता विषैं होय हैं।४।

तत्त्वज्ञेऽप्यपचारित्रे वक्तर्येतत्कथं स्वयम्।
न चरेदिति सत्प्रोक्तं न गृह्णंति पृथग्जनाः। ५।

अर्थ—अर वक्ताकै विषैं आगमको तत्त्वज्ञानहोतसंतैं भी चारित्ररहितपणूं होवे तौ लौकिक जन कहै कि यो आप कैसैं नहीं आचरण करै है, ऐसैं कहि वा वक्ताको कह्यौ सामान्यजन नहि ग्रहण करै है ॥ ५ ॥

सचारित्रेप्यशास्त्रज्ञे वक्तर्यल्पश्रुतोद्धताः।
सहासमुक्तसन्मार्गे विदधत्यवधीरणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—अर वक्ताकै विषैं शुद्ध चारित्र होत संतैं भी शास्त्रज्ञानरहितपणूं होय तौ अल्पश्रुत ज्ञानकरि उद्धत पुरुष जे हैं ते वा वक्ता के कहे सम्यक मार्गके विषैं हास्य करता संता निरादर करैं है ॥ ६ ॥

विद्वत्वं सचरित्रत्वं मुख्यं वक्तरि लक्षणम्।
अबाधितस्वरूपं वा जीवस्य ज्ञानदर्शने ॥ ७ ॥

अर्थ—तातैं वक्ताकै विषैं शास्त्रज्ञानवानपणूं। अर शुद्धचा-

रित्रवान पणूं ये दोऊ मुख्य लक्षण है। जैसे जीवको ज्ञान दर्शन अबाधित स्वरूप है ॥ ७ ॥

अथ श्रोतालक्षण।

युक्तमेतदयुक्तं वेत्त्युक्तसम्यग्विचारयन्।
स्थाने कुर्वन्नुपालंभं भक्त्या सूक्तं समाददत् ॥ ८ ॥

अर्थ;—अबै श्रोताको लक्षण कहै है। यो उपदेश योग्य है, यो उपदेश अयोग्य है, ऐसैं कह्या अर्थनैं भले प्रकार विचारतो संतो प्रश्न करने योग्य स्थलकै विषै प्रश्न करतो संतो भक्ति करि सम्यक् उपदेश्या अर्थनैं अंगीकार करै है ॥ ८ ॥

असारप्राग्गृहीतार्थविशेषाविहितादरः।
अहसन् स्खलितस्थाने गुरुभक्तः क्षमापरः ॥ ९ ॥

अर्थ;—अर असारभूत पूर्वं ग्रहण कीया जो अर्थविशेष ताकै विषैं नहीं रच्यो है आदर जानैं, अर उपदेशका भूल्यास्थल मैं नहीं हास्य करतो संतो गुरुभक्त क्षमामें तत्पर है ॥ ९ ॥

संसारभीरुराप्तोक्तवाग्धारणपरायणः।
पशुमृद्धंसप्रोक्तगुणः श्रोता निगद्यते ॥ १० ॥

अर्थ—अर संसारतें भयभीत जिनवचनके धारणमें परायण, अर गउ मृत्तिका हंसके कहे जे गुण तिन समान गुणवान श्रोता सराहने योग्य कहिये है ॥ १० ॥

अथ कथालक्षण।

जीवाजीवादितत्त्वार्थो यत्र सम्यग्निरूप्यते।
तनुसंसृतिभोगेषु निर्वेदश्च हितैषिणाम् ॥ ११ ॥

अर्थ;—अवैं धर्मकथाको लक्षण कहै है कि जाविर्षै जीव अजीव आदि तत्त्वार्थ सम्यक् निरूपण करिये, अर आत्महितके इच्छुक पुरुषनिकूं देह संसार भोगनिविर्षै वैराग्य निरूपण करिये ॥ ११ ॥

दानपूजातपःशीलविशेषाश्च विशेषतः ।
बन्धमोक्षौ तयोर्हेतू फले चासुभृतां पृथक्॥१२॥

अर्थ—अर दान पूजा तप शील आदिके भेद विशेषपणें वरनन करिये, अर आत्मप्रदेशनिमें कर्मप्रदेशनिका एकत्व होना जो बंध, अर आत्मप्रदेशनितैं सर्वथा कर्मनिका क्षय होय छूटनां जो मोक्ष, अर बंधके कारण जे आस्रव, अर मोक्षके कारण जे संवर निर्जरा, अर आस्रव अर संवर निर्जराको फल प्राणधारीनिकूं भिन्न भिन्न जान्यूं जाय ॥ १२ ॥

श्लोक ।

यत्रास्ति युक्त्यैव सदसत्त्वादिकल्पना ।
ख्याता प्राणदया यत्र मातेव हितकारिणी ॥ १३ ॥

अर्थ—अर जाविर्षै जीवादिक पदार्थनिकी सत् असत् आदि सप्तभंगरूप कल्पना युक्तिकरिकै हीजानी जाय, अर जाविर्षै सर्व जीवनिकूं हितकारिणी माताकी नाई दया विख्यात होय ॥ १३ ॥

सर्वसंगपरित्यागाद्यत्र यांत्यंगिनः शिवम् ।
तत्त्वधर्मकथा सा स्यात्ततोऽन्या धर्मकथा परा ॥ १४ ॥

अर्थ—अर जहां सर्वसंगका परित्यागतैं देहधारी मोक्षनैं प्राप्त होय सो तत्त्वभूत धर्मकथा है । अर पूर्वै कहे लक्षणनितैं अन्य-

कथा है सो नाममात्र धर्मकथा है ॥ १४ ॥

अथ मोक्षलक्षण। दोहा।

धर्म अर्थ जग काम फुनि, मोक्ष तुर्य पुरुषार्थ।
तिन मधि उत्तम विनय जन, गिनत मोक्ष परमार्थ।६

सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपाय मैं;—

आर्या छन्द।

सर्वविवर्त्तोत्तीर्णं यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति।
भवति तदा कृतकृत्यः सम्यक् पुरुषार्थमापन्नः ॥११॥

अर्थ—सो आत्मा जा समय सर्वपर्यायनितैं रहित ऐसा अचल चैतन्यनैं प्राप्त होय है, ता समय कृतकृत्य हुवो संतो उत्तम पुरुषार्थनैं प्राप्त होत है ॥ ११ ॥

प्रश्न—ऐसा परम पुरुषार्थरूप मोक्षका स्वरूप कहो?

उत्तर—तत्त्वार्थसूत्रमैं। सूत्र—**कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः।**

अर्थ—समस्त कर्मनिका अत्यन्त छूटनां है सो मोक्ष है।

तथा आदिपुराणमैं;—

श्लोक।

निःशेषकर्मनिर्मोक्षो मोक्षोऽनंतसुखात्मकः।
सम्यग्विशेषणज्ञानदृष्टिचारित्रसाधनः ॥ ११७ ॥

अर्थ—समस्त कर्मनितैं छूटनां है सो मोक्ष है, अर अनन्त सुखस्वरूप है सो सम्यक् विशेषणयुक्त ज्ञानदर्शन चारित्र है साधन जाको असो है ॥ ११७ ॥

ऐसा मोक्षभावकूं प्राप्तभया सिद्ध परमेष्ठी जे हैं तिनका स्वरूप गोम्मटसारमैं;—

*अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिचा।
अट्ठगुणा किदकिचा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥६७॥

अर्थ—अष्टविध कर्मरहित, शांतरूप, निरंजन, नित्य, अष्ट गुणधारक, कृतकृत्य, ऐसे लोकके अग्रमैं निवास करने वारे सिद्ध हैं ॥ ६७ ॥

टीका—न केवलमुक्तगुणस्थानवर्त्तिन एव जीवाः संति, सिद्धा अपि स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धिसंपन्नमुक्तजीवा अपि संति। ते कथंभूताः, अष्टविधकर्मविकला अनेकप्रकारोत्तरप्रकृतिगर्भाणां ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिकर्मणां अत्यंतक्षयात् सिद्धिं प्राप्ताः।

उक्तं च;—

गाथा।

मोहो खाइयसम्मं केवलणाणं च केवलालोयं।
हणदि हु आवरणदुगं अणंतविरियं हणेदि विग्घं तु॥
सुहुमं च णामकम्मं हणेदि आऊ हणेदि अवगहणं।

*छाया—अष्टविधकर्मविकलाः शीतीभूता निरंजना नित्याः।
अष्टगुणाः कृतकृत्या लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः॥

अगुरु लहुगं च गोदं अव्वावाहं हणेई वेयणियं ॥२॥

टीका—इति अष्टगुणप्रतिपक्षाणां प्रक्षयेण विकलाः निःप्रतिपक्षा मुक्ता इत्यर्थः। अनेन संसारिजीवस्य मुक्तिर्नास्तीति याज्ञिकमतमपास्तं। सर्वदा सर्वकर्ममलैरस्पृष्टत्वेन सदा मुक्तएव सदैवेश्वर इति सदाशिवमतं चापास्तं। पुनः कथंभूताः। शीतीभूताः सहजशरीरागंतुक-मानसादि-विविधसांसारिक-दुःखवेदनापरितापपरिक्षयेण सुनिर्वृत्ता इत्यर्थः। अनेन मुक्तावात्मनः सुखाभावं वदंत्सांख्यमतमपाकृतं। पुनः कथंभूताः। निरंजनाः अभिनवास्रवरूपकर्ममलरूपांजनान्निष्क्रांता इत्यर्थः। अनेन मुक्तात्मनः कर्मांजनसंसर्गेण संसारोऽस्तीति वदन्मस्करीदर्शनं प्रत्याख्यातं। पुनः कथंभूताः। नित्याः यद्यपि प्रतिसमयवर्त्यर्थपर्यायैः परिणमंतः सिद्धाः उत्पादव्ययौ स्वस्मिन् कुर्वंतोऽपि विशुद्धचैतन्यसामान्यरूप-द्रव्याकारान्वयमाहात्म्यात्सर्वकालाश्रिताव्ययत्वात्ते नित्यतां न जहतीत्यर्थः। अनेन प्रतिक्षणं विनश्वरचित्पर्याया एव एकसंतानवर्त्तिनः परमार्थतो नित्यं द्रव्यं नेति वदंतीति बौद्धाः प्रत्यवस्थाः प्रतिव्यूढाः। पुनः कथंभूताः। अ-

ष्टगुणाः क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसौक्ष्म्याव-गाहागुरुलघुकाव्याबाधत्वनामाष्टगुणयुता इत्युपल-क्षणं । तेन तदनुसार्यनन्तानंतगुणानां तेष्वेवांत-र्भाव इत्यर्थः । अनेन ज्ञानादिगुणानामत्यंतोच्छि-त्तिरात्मनो मुक्तिरिति वदन्नैयायिकवैशेषिकाभिप्रा-यः प्रत्युक्तः । पुनः कथंभूताः । कृतकृत्याः कृतं नि-ष्ठापितं कृत्यं सकलकर्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं यैस्ते कृतकृत्याः । अनेनेश्वरः सदा मुक्तोऽपि जगन्नि-र्माणे कृतादरत्वेनाकृतकृत्य इति यददीश्वरसृष्टि-वादाकूतं निराकृतं । पुनः कथंभूताः । लोकाग्रनि-वासिनः लोक्यंते जीवादयः पदार्था अस्मिन्निति लो-कः, एवंविधलोकत्रयसन्निवेशाग्रे तनुवातप्रांते निवा-सिनः स्थास्नवः । यद्यपि कर्मक्षयक्षेत्रादुपर्येव कर्म-क्षयानंतरं तथा गमनस्वभावात्ते गच्छंति, तथापि लोकाग्रत ऊर्द्ध्वं गमनसहकारिधर्मास्तिकायाभावा-न्न तदुपरि; इतीदं लोकाग्रनिवासित्वमेव युक्तं तेषां, अन्यथा लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते । अने-नात्मनः उर्द्ध्वं गमनस्वाभाव्यान्मुक्तावस्थायां कचि-दपि विश्रामाभावादुपर्युपरि गमनमिति वदन्मं-डलिमतं प्रत्यस्तम् ॥ ६७ ॥

अर्थ;—केवल कहिये गुणस्थानवर्ती ही जीव नहीं हैं, सिद्ध भी हैं। निजस्वभावकी प्राप्तिलक्षण सिद्धि ताकरि संयुक्त भी जीव हैं। ते कैसेक हैं, अष्टविधकर्मरहित हैं। भावार्थ—अनेक प्रकार उत्तर प्रकृतिनिकरि गर्भित ज्ञानावरणादिक अष्टप्रकार मूल प्रकृतिरूप शत्रुके अत्यन्त क्षय करि सिद्धि तातैं प्राप्त भये हैं, ते भी जीव ही हैं। यहां "उक्तं च" गाथा है ताको अर्थ लिखिये हैं कि निश्चय करि क्षायिक सम्यक्तनैं मोह हणैहै, अर केवलज्ञान केवलदर्शननैं ज्ञानावरण दर्शनावरणको युगल हणैहै, अर अनंतवीर्यनैं अंतराय हणैहै, अर सूक्ष्म गुणनैं नाम कर्म हणैहै, अर अवगाह गुणनैं आयु कर्म हणैहै, अर अगुरुलघुगुणनैं गोत्रकर्म हणैहै, अर अव्याबाध गुणनैं वेदनीय कर्म हणैहै। या प्रकार अष्ट गुणके प्रतिपक्षीनिका अत्यंत क्षय करि शरीररहित निःप्रतिपक्षी मुक्त जीव है। या विशेषण करि संसारी जीवकी मुक्ति नहीं है या प्रकार मानने वारा याज्ञिक मतनैं, अर सर्वदा कर्ममलस्पर्श रहितपणांकरि जीव सदा मुक्त ही है, सदा ईश्वर ही है या प्रकार माननें वारा सदाशिवमतनैं दूर कियो। भावार्थ;—इहां अष्टकर्मके नाश करि अष्टगुणयुक्त सिद्ध भए कहे तातैं याज्ञिकमतवाला सिद्धता होनेका सर्वथा निषेध करै है ताका निराकरण कीया, अर सदाशिवमतवाला जीवनैं सर्वथा शुद्ध मानैं है ताका भी निराकरण कीया, क्योंकि शुद्ध तौ कर्मनिके नाशतैं होय है ऐसा कहा है। बहुरि सिद्ध कैसेक हैं, शीतीभूत कहिये सहजशरीरसंबन्धी तथा आगंतुक, मानसिक आदि नाना प्रकारके संसारसम्बन्धी दुःख, वेदना, परिताप आदिका अत्यन्त क्षय करि भले प्रकार सुखरूप रचे हैं। भावार्थ;—सिद्ध भये हैं

संस्कृत।

सदाशिवः सांख्यः मस्करी बौद्धः नैयायिकः च वैशेषिक ईश्वरः मंडलिक दर्शन विदूषणार्थं कृतं इदम् ॥१॥

अर्थ;—सदाशिव, सांख्य, मस्करी, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, ईश्वर, मंडलिक, इनि आठूं मतनिके दूषण दिखावने निमित्त ये सब विशेषण सिद्धपदके दिये हैं॥

अब इनि आठू मतनिका अभिप्रायकूं जनावने वारा श्लोक;

सदाशिवः सदाकर्मा सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितम्।
मस्करी किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतिम्॥ १॥
क्षणिकं निर्गुणं चैव बुद्धो यौगश्च मन्यते।
कृतकृत्यं तमीशानो मंडलीचोर्ध्वगामिनम्॥ २॥

अर्थ;—या सिद्धस्वरूपन सदाशिव तौ सदा कर्मरहित कहै है, अर सांख्य मुक्तजीवनैं सुखरहित कहै है, अर मस्करी निश्चयकरि मुक्तजीवनिकै फेरि संसारमें आगमन मानैं है, अर बौद्ध क्षणिक कहै है, अर यौग निर्गुण मानैं है, अर ईशान कृतकृत्य मानै है, अर मंडली ऊर्द्ध गमन मानैं है॥

तथा अमृतचन्द्रजी कृत तत्वार्थसारमें सिद्धलक्षणको श्लोक;—

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः॥ ४५॥

अर्थ;—सिद्धनिकै संसारके विषयनितैं रहित अविनाशी सुख है, यातैं ही परम ऋषिगण जे हैं ते अव्याबाध परम कहै हैं॥

चौपई ।

त्यागि उपाधि भये गुनइद्ध,
सचित् आनंद घनमय सिद्ध ।
होत कृतारथ आप स्वमेव,
मोक्ष स्वरूप कह्यो इम देव ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकभावकसंगृहीतविद्वज्जन-
बोधके सम्यग्दर्शनोद्योतकनाम्नि प्रथमकांडे
ॐकारपद्धति मंगलाचरण वक्ताश्रोताकथा
लक्षण मोक्षस्वरूपवर्णनो नाम
प्रथमोल्लासः ॥

श्रीरस्तु ।

अथ मोक्षमार्गस्वरूप लिख्यते;—

छन्द दोहा ।

सम्यग्दर्शनज्ञानयुत, चारितको समुदाय ।
कह्यो मार्ग जिन मोक्षको, नमूं ताहि शिरनाय ॥१॥

प्रश्न;—मोक्षको स्वरूप कह्यो सो तौ श्रद्धान कियो, परन्तु वा परम पुरुषार्थरूप मोक्षको मार्ग भी कहौ ।

उत्तररूप पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें श्लोक;—

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम् ।
यत्तस्मादविचलनं स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम् १५

अर्थ;—जो विपरीत श्रद्धानकौं दूरि करि निजतत्त्वमें भले प्रकार निश्चय करि वा निजतत्त्वतें नहीं चलायमान होना सो ही

यो पुरुषार्थसिद्धिको उपाय है ॥ १५ ॥

भावार्थ—परभावमें निज भावरूप मिथ्या श्रद्धान जो है ताहि दूरि करि निजभावनैं पिछाणि वामें थिर रहनां है सो मोक्षका उपायरूप मार्ग है ॥ १५ ॥

तथा;—

अनुसरतां पदमेतत्करंबिताचारनित्यनिरभिमुखा ।
एकांतविरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः॥१६॥

अर्थ;—ये पूर्वोक्त पद जो आत्मतत्त्व, तानैं अनुसरण करता मुनि जे हैं तिनकी पाप पुण्य रूप कर्बुरित कहिए मिल्या हुवा-गृहस्थाचारतैं नित्य परान्मुख अैसी एकांतविरति रूप अलौकिक प्रवृत्ति है ॥ १६॥

तथा,—

बहुशः समस्तविरतिं प्रदर्शितां यो न जातु गृह्णाति ।
तस्यैकदेशविरतिः कथनीयानेन बीजेन ॥ १७ ॥

अर्थ—बाहुल्यतातैं समस्तविरतिरूप चारित्र कहिवायोग्य है, अर जो कदाचित् शिष्य वा समस्तविरतिरूप चारित्रनैं नहीं ग्रहण करै तौ वाकूं एकदेशविरतिरूपचारित्र याही समस्तविरतिरूप बीज करि कहबा योग्य है ॥ १७ ॥

यो यतिधर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्ममल्पमतिः ।
तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्॥ १८ ॥

अर्थ;—जो अल्पबुद्धि मुनि यतिधर्मनैं पूर्वें बिनां कह्यां गृहस्थधर्म नैं उपदेश करै है, ताकूं भगवतका प्रवचनमें दंडको स्थान प्रदिखायो है ॥ १८॥

तथा,—

अक्रमकथनेन यतः प्रोत्सहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।
अपदेऽपि संप्रतृप्तः प्रतारितोऽनेन दुर्मतिना॥ १९॥

अर्थ—यातैं या दुर्बुद्धीगुरुनैं अनुक्रमहीन कथन करि सर्वोत्कृष्ट अति उत्साहमान शिष्यनैं भी हीनस्थानमें ही भले प्रकार अत्यंत तृप्त कियो, सो शिष्य अत्यंत दूर ठिग्यो गयो।

भावार्थ—जा समय शिष्य धर्म ग्रहण करनेंके सन्मुख भयो कि तीव्र वैराग्यरूप परिणामको धारी भयो, वा समय सर्वोत्तम साक्षात् मोक्षको कारण मुनिधर्म तौ सुनायो नहीं, अर परंपराय मोक्षको कारण श्रावक धर्म सुनायो, तदि अज्ञातशिष्य वाहीकूं मुख्य धर्म मानि ग्रहण कियो, तातैं ठिग्यो गयो॥१९॥ या वचनतैं प्रथम सर्वदेश पीछे एकदेश उपदेश देवो योग्य है।

तथा—

एवं सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मको नित्यम्।
तस्यापि मोक्षमार्गो भवति निषेव्यो यथाशक्ति॥२०॥

अर्थ,—या प्रकार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप त्रितयात्मक एक मोक्षमार्ग है, सो गृहस्थनिकूं भी यथाशक्ति निरंतर सेवन करने योग्य है॥ २०॥

या वचनतैं, यथाशक्ति रत्नत्रय ही सेवनीक है, वाही मोक्षमार्गको लक्षण उमास्वामी कहहै—

सूत्र—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

अर्थ—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन

तीननिकी एकतारूप मोक्षमार्ग है ।

तथा पूज्यपादस्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिनामा टीका—

सम्यगित्यव्युत्पन्नः शब्दः व्युत्पन्नो वा। अंचतेः क्वौ समंचतीति सम्यगिति। कोऽस्यार्थःप्रशंसा। सम्प्रत्येकँपरिसमाप्यते; सम्यग्दर्शनं,सम्यग्ज्ञानं,सम्यक्चारित्रमिति। एतेषां स्वरूपं लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्यामः, उद्देशमात्रं त्विदमुच्यते;—भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणं। येन येन प्रकारेण जीवादयःपदार्थाः व्यवस्थितास्तेन तेनावगमःसम्यग्ज्ञानं, मोहसंशयविपर्ययनिवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणं। संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रं, अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणं। पश्यतीति पश्यति दृश्यतेऽनेन दृष्टिमात्रं वा दर्शनं। जानाति ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानमात्रं वा ज्ञानं। चरति चर्यतेऽनेनेति चरणमात्रं वा चारित्रं। नन्वेवं स एव कर्त्ता स एव करणमित्यायातं, तच विरुद्धं। सत्यं ? स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां तथा विधानात्, यथाग्निर्दहति इंधनं दाहकपरिणामेन। उक्तः कर्त्रादिसा-

धनभावः पर्यायपर्यायिणोरेकत्वादनेकत्वं प्रत्यनेकांतोपपत्तौ स्वातंत्र्यपारतंत्र्यविवक्षोपपत्तेरेकस्मिन्नप्यर्थे न विरुद्ध्यते, अग्नौ दहनादिक्रियायाः कर्त्रादिसाधनभाववत्। ज्ञानग्रहणमादौ न्याय्यं दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात्, अल्पाक्षरत्वाच्च। नैतद्युक्तं, युगपदुत्पत्तेः। यदास्य दर्शनमोहस्योपशमात् क्षयात् क्षयोपशमाद्वा आत्मा सम्यग्दर्शनपर्यायेणाविर्भवति, तदैव तस्य मत्यज्ञानश्रुताज्ञाननिवृत्तिपूर्वकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं चाविर्भवति, घनपटलविगमे सवितुः प्रतापप्रकाशाभिव्यक्तिवत्। अल्पाक्षरत्वादभ्यर्हितं पूर्वं निपतति, कथमभ्यर्हितत्वं ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात्। चारित्रात्पूर्वं ज्ञानं प्रयुक्तं तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य। सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः, तत्प्राप्त्युपायो मार्गः। मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तमार्गभावज्ञापनार्थं, तेनव्यस्तमार्गत्वनिवृत्तिःकृता भवति। अतः सम्यग्दर्शनं, सम्यग्ज्ञानं, सम्यक्चारित्रमित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य मार्गो वेदितव्यः।

अर्थ;—इहां सम्यक् असा पद अव्युत्पन्नपदकहिये। शब्दशास्त्र आदि ग्रंथ जाकै स्फुरायमान नहीं है ताकी अपेक्षा तौ रूढि

है। बहुरि व्युत्पन्न पक्ष अपेक्षा "अंच" धातु गति अर्थ तथा पूजन अर्थ विषै प्रवर्ते है ताका रूप है, अर कर्त्ता अर्थ विषै क्विप् प्रत्यय भया है तातैं भले प्रकार प्राप्त होय सो सम्यक्, ऐसा निरुक्तिका अर्थ होय है। प्रश्न—याका अर्थ इहां कहा भया। उत्तर—इहां प्रशंसा अर्थ ग्रहण किया है, अर जो सम्यक् पद तीनां ऊपरि लगायें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ऐसा भया, अर इन तीननिका स्वरूप लक्षणत तथा प्रकारतैं आगैं विस्तार करि कहैंगे, अर इहां नाममात्र कहिये है कि पदार्थनिका यथार्थ ज्ञान है विषय जाका ऐसे श्रद्धानके संग्रहके अर्थि दर्शनकै सम्यक् विशेषण है। बहुरि जिस२ प्रकार करि जीवादिक पदार्थ व्यवस्थित हैं तिस तिस प्रकार करि निश्चय जांननां सो सम्यग्ज्ञान है, याकै सम्यक् विशेषण विमोह, संशय विपर्ययरूप दोषकी निवृत्तिके अर्थि है। बहुरि संसारके कारण जे मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग इनतैं भये जे आश्रव बंध तिनकी निवृत्ति प्रति उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषकै कर्मग्रहणनैं कारणभूत क्रियाका त्याग सो सम्यक् चारित्र है, तथा कर्मनिका आदान कहिये ग्रहण ताके निमित्तरूप क्रियाका त्याग सो सम्यक्चारित्र है। भावार्थ—किंचित् कर्मग्रहणके कारण परिणामविशेषका भी त्याग चौदहां गुणस्थानके अंतसमयवर्ती है सो सम्यक् निवृत्तिरूप चारित्र है ऐसाभी अर्थ है, याकै अज्ञानपूर्वक चारित्रकी निवृत्तिकै अर्थ सम्यक् विशेषण है। तातैं इन तीननिकी निरुक्ति ऐसैं है;— "पश्यति" कहिये श्रद्धान करै सो दर्शन है, इहां तौ कर्तृ साधन है तहां करनेंवारा आत्मा है सो ही दर्शन है। बहुरि "दृश्यते अनेन दर्शनं" कहिये जाकरि श्रद्धान करिये सो दर्शन, इहां करणसाधन

भया, तहां भी श्रद्धानपरिणामरूप आत्मा ही दर्शन है। बहुरि "दृष्टि-मात्रं दर्शनं" कहिये श्रद्धान करनें मात्र है सो दर्शन है, इहां भावसाधन भया, इहां भी दर्शनक्रियारूप आत्माहीकूं दर्शन कह्या। ऐसें ही "जानाति ज्ञानं" कहिये जाणें सो ज्ञान, इहां कर्तृत्व साधन भया, इहां भी जानने वाला आत्मा ही कूं ज्ञान कह्या। बहुरि "ज्ञायते अनेन ज्ञानं" कहिये जाकरि जानिये सो ज्ञान, इहां करणसाधन भया, तहाँ भी जानन परिणाम रूप आत्मा ही है। बहुरि "ज्ञानमात्रं ज्ञानं" कहिये जानने मात्र सो ज्ञान है, यहां भाव साधन भया, यहां भी जानन क्रिया रूप आत्माही कूं ज्ञान कह्या। बहुरि "चरतीति चारित्रं" कहिये आचरण करै सो चारित्र, ऐसें तो कर्तृ साधन भया, जातैं आत्मा ही चारित्र है। बहुरि "चर्यते अनेन इति चारित्रं" कहिये जाकरि आचरण करिये सो चारित्र है, तहां भी आचरण परिणाम रुप आत्मा ही है, ऐसें करण साधन भया। बहुरि "चरण मात्रं चारित्रं" कहिये आचरण मात्र सो चारित्र है, इहां भाव साधन भया, इहां भी आचरनें रूप आत्मा ही कूं चारित्र कह्या। ये कथन अभिन्न कारक अपेक्षा है। इहां सर्वथा एकांती तर्क करे है किया मैं सो ही कर्त्ता सोही करण आया सो विरुद्ध है, ताकूं कहिये है कि तेरे अभिप्रायमैं तैनें कह्या सो सत्य है क्योंकि तेरे सर्वथा एकांत पक्ष है, तातैं विरोध भाष्र्यं है स्याद्वादीनकै निज परिणाम परिणामीकै भेद विवक्षा होतां संता पूर्वोक्त कहनेंतैं विरोध नाहीं है, जैसें अग्नि दाहकपरिणाम करि इंधननैं दग्ध करै है तैसें ही पर्याय पर्यायीकै एकपणांत अनेक पणां प्रति अनेकांतकी उत्पत्ति होतां संतां कर्त्ता आदि साधन भाव कह्या है, अर अग्निकैविषैं दहनादि क्रिया करि कर्त्ता आदि सा-

धन भावकी नांहीं स्वतंत्र परतंत्र पणांका विवक्षा की उत्पत्ति तैं एक ही वस्तु कै विषैं कर्ता पणां आदि अनेक भाव नहीं विरोध कूं प्राप्त होय है। बहुरि यहां कोई कहै कि ज्ञानका ग्रहण आदि विषैं न्याय है क्योंकि श्रद्धानकै ज्ञानपूर्वक पणां है, यातैं जैसें पहिले जानिये है पीछे श्रद्धान करिये है। बहुरि अल्प अक्षर पणां तैं भी ज्ञानका ग्रहण आदि विषैं योग्य है क्योंकि व्याकरणके मततैं द्वन्द्व समासमें जाके अल्प अक्षर होय सो पहली कहना ऐसा न्याय है। ताकूं कहिये है कि यो प्रश्न युक्त नांही क्योंकि दर्शन, ज्ञान की एकै काल उत्पत्ति है, यातैं जा समय दर्शन मोह का उपशमतैं तथा क्षयोपशम तैं तथा क्षयतैं आत्मा सम्यग्दर्शन पर्याय करि प्रकट होय है, ताही समय वाकै मति अज्ञान श्रुत अज्ञानका अभाव पूर्वक मतिज्ञान श्रुतज्ञान प्रकट होय है। जैसें सूर्य के मेघपटलके दूरि होतें प्रताप अर प्रकाश दोऊँ एकै काल प्रकट होय है, तैसें इहां भी जाननां। बहुरि व्याकरणका ऐसा भी न्याय है कि अल्प अक्षरवानतैं भी पूज्य होय सो पहली आवै। प्रश्न—सम्यग्दर्शनके पूज्यपणां कैसें है; उत्तर—ज्ञानके सम्यक् नामका हेतु पणांतैं सम्यग्दर्शनकै पूज्यपणांहै, तातैं पहले सम्यग्दर्शन ही चाहिये। बहुरि चारित्रकैं पूर्व ज्ञानका कहनां अतिशय पणैं योग्य है क्योंकि चारित्र कै ज्ञानपूर्वक पणूं है, यातैं चारित्रकैं पहले ज्ञान कह्या है। बहुरि सर्वकर्मका अत्यंत अभाव है सो मोक्ष है। बहुरि ताकी प्राप्ति का उपाय है सो मार्ग है। ऐसैं मोक्षमार्गशब्दका अर्थ जाननां। इहां मार्गशब्दकै एक वचन कह्या है सो सम्यग्दर्शनादिक तीननिकी एकतारूप भावकै मोक्ष मार्गपणो जनावनैंके अर्थि है, अर एकवचनके कहने करि ही जुदे

जुदेनिके मोक्षमार्गपणांका निषेध किया है। यातैं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र यां तीनांका समूह जो है तानैं साक्षात् मोक्षको मार्ग जाननूं। भावार्थ—जुदे जुदे मोक्षके मार्ग नहीं हैं। इहां साक्षात् पदतैं ऐसा जनावै है कि जो तीनूंनिका एकदेश परंपराय मोक्षका कारण है, अर पूर्णता साक्षात् मोक्षका कारण है॥

बहुरि यह मोक्षमार्गका स्वरूप विशेषरूप असाधारण जाननां। सामान्य पणैं काल क्षेत्रादिक भी मोक्ष प्रति कारण है। तातैं सम्यग्दर्शनादिकही मोक्षमार्ग है यह नियम कहनां, अर ऐसा नियम नहीं कहनां कि ये मोक्षके ही मार्ग है क्योंकि ऐसैं कहेत ये स्वर्गादिक अभ्युदयके मार्ग न ठहरै तातैं पूर्वोक्त ही कहना।

प्रश्न—तप भी मोक्षका मार्ग है सो क्यूं न कह्या?

उत्तर—तप चारित्र स्वरूप है, तातैं चारित्रमैं आय गया।

प्रश्न—सम्यग्दर्शनादिक साक्षात् मोक्षके कारण है तौ केवल ज्ञान उपजतैं ही मोक्ष हुआ चाहिये?

उत्तर—रत्नत्रयकी सहकारिणी आत्मशक्ति जो है सो सर्व कर्मके नाश करनेकूं समर्थ है, तथापि घातियाके नाश होतैं ही केवल ज्ञान तौ प्रकट होजावै है, अर आयु आदि अघातिया बाकी रह जाय है क्योंकि तत्त्वार्थसूत्रमैं ऐसा लिखै है कि सूत्र;—

औपपादिकचरमोत्तमदेहांसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥ ५३॥

अर्थ[1]—औपपादिक तौ देव नारकी अर चरमोत्तमदेहा कहिये

१—भाषाकारके मतमें संस्कृत पाठ यों होना चाहिये?—
"औपपादिकचरमोत्तमदेहाः संख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः"

तद्भवमोक्षगामी उत्तम देहके धारक, इहां उत्तम पद चरम देहका विशेषण जाननां, अर संख्येयवर्षायुष कहिये संख्यात वर्षकी आयुके धारक भोगभूमिया इनकी आयुका अपवर्त्तन नहीं होय है॥५३॥ या वचनतैं चरमशरीरीनिकी आयुका अपवर्त्तन तो होता नाही, अर नामकर्म, गोत्रकर्म, वेदनीकर्मकी स्थिति आयुपर्यंत रहनेंका नियम है, तातैं अवस्थान है ही, अर जिनकै आयुकर्मतैं अधिक नाम कर्म गोत्रकर्म वेदनीकर्मकी स्थिति रहजावै है ते दंड कपाट प्रतर लोकपूरण क्रिया करै है। तातैं केवलीका अवस्थान रहनां योग्यहै।

प्रश्न—तीनूं अघातियाका नाश क्यूं नहीं भया।

उत्तर—चारित्रमैं अंतर्मूत तप है सो कर्मकी निर्जरानैं कारण है क्योंकि "तपसा निर्जरा च" ऐसा हुकम है अर तपमैं मुख्य ध्यान है, अर ध्यानको लक्षण एकाग्र चितानिरोध है सो चित्त निरोधनादिक परिणाम बारमां गुणस्थान पर्यंत है, तातैं आगानैं ध्यान नाहीं अर ध्यान विना कर्मकी निर्जरा नाहीं तातैं अवशेष कर्म आयुकी स्थिति पर्यंत रहै है।

प्रश्न—शुक्लध्यानके दोय चरण केवलीकै कहे हैं सो कैसैं है।

उत्तर—इहां ध्यानका कार्य कर्मक्षय देखि कार्यकै विषैं कारण का उपचार करि कह्या है। सो ही आदिपुराणका इकवीशमांपर्व मैं;—

श्लोक;—

छद्मस्थेषु भवेदेतल्लक्षणं विश्वदर्शिनाम्।
योगाश्रवस्य संरोधे ध्यानत्वमुपचर्यते॥ १०॥

अर्थ—एतल्लक्षणं कहिये पूर्वोक्त लक्षण ध्यान छद्मस्थकै विषैं है, अर समस्तदर्शी भगवानके योगनिका अर आश्रवनिका संरोधन होता संतां ध्यान पणूं उपचारतैं कहिये है॥ १०॥ अर

या सूत्रकी सामर्थ्यतैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र संसारके कारण है ऐसा भी सिद्ध होय है ॥

तथा कुंदकुंदस्वामीकृत समयसारमें गाथा ;—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं ।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥१५७॥

संस्कृतच्छाया।

जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं तेषामधिगमः ज्ञानम् ।
रागादिपरिहरणं चारित्रं एषः तु मोक्षपंथाः ॥

अर्थ—जीवादिक पदार्थनिका श्रद्धान भाव है सो सम्यक्त है, अर तिनि पदार्थनिका जानन भाव है सो ज्ञान है, अर तिनि पदार्थनिमें रागादि विभाव भावनिका परिहार है सो चारित्र है। यो ही त्रितयात्मक एक मोक्ष मार्ग है ॥

या त्रितयात्मक मोक्षमार्गक द्विविधपणों पंचास्तिकायमें ऐसे कह्यो है ;— गाथा।

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि।
साधूहिं इदं भणिदं तहिंदु बंधो व मोक्खो वा ॥७२॥
दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः इति सेवितव्यानि ।
साधुभिः इदं भणितं तैः तु बंधः वा मोक्षः वा ॥७२॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र जेहैं ते मोक्षके मार्ग हैं, तातैं सेवन करणें योग्य हैं, अर ये मार्ग साधुनि करि भाषित है, अर या मार्ग करि बंध भी है तथा मोक्ष भी है ॥

टीका—दर्शनज्ञानचारित्राणां कथं चिद्बंधहेतुत्वोपदर्शनेन जीवस्वभावे नियतचरितस्य

साक्षान्मोक्षहेतुत्वद्योतनमेतत् । अमूनि हि दर्शन-ज्ञानचारित्राणि कियन्मात्रयापि परसमयप्रवृत्त्या संवलितानि कृशानुसंवलितानीव घृतानि कथं-चिद्विरुद्धकारणत्वरूढेर्बंधकारणान्यपि भवंति । यदा तु समस्तपरसमयप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपतया स्वसमय-प्रवृत्त्या संगच्छंते तदा निवृत्तकृशानुसंवलितानीव घृतानि विरुद्धकार्यकारणभावाभावात् साक्षान्मो-क्षकारणान्येव भवंति, ततः स्वसमयप्रवृत्तिनाम्नो जीवस्वभावनियतचरितस्य साक्षान्मोक्षमार्गत्वमु-पपन्नम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—ये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, जे हैं तिनक कथंचित् बंध कारण पणांका देखवा करि जीवस्वभावमें स्थिर असा चारित्र साक्षात् मोक्षकारणपणूं यो गाथामें प्रकट कियो । निश्चय करि ये दर्शन ज्ञान चारित्र कितनांक स्वभावमात्रकरिही परसमयकी प्रवृत्ति करि मिल्या हुवा, अग्निर्तें मिल्या हुवा, घृतकी नांई कथंचित विरुद्ध कारणपणांकी रूढितें बंधका कारण भी है, अर जा समय समस्त परसमयमें प्रवृत्तिकी निवृत्ति रूप स्वसमयमें प्रवृत्ति करि प्रवर्तै, ता समय दूरि भयो है अग्निको मिलाप जाकै असा घृत की नाईं विरुद्ध कार्य कारण पणांका अभावतें साक्षात् मोक्षको कारण ही है, तातैं स्वसमयप्रवृत्तिनामा स्वभावमें स्थित चारित्रकै साक्षात् मोक्षमार्ग पणूं उपजै है ॥ ७२ ॥

तथा,—

अएणाणादो णाणी जदि मणदि सुद्धसंपत्र्योगादो।
हवदित्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो ।७३।
अज्ञानात् ज्ञानी यदि मन्यते शुद्ध-संप्रयोगात्। भव-
ति इति दुःखमोक्षं परसमयरतः भवति जीवः ॥७३॥

टीका; — सूक्ष्मपरसमयस्वरूपाख्यानमेतत्—
अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्ति-
स्वभावानुरंजिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसंप्रयोगः। अथ
खल्वज्ञानलववेशाद्यदि यावद् ज्ञानवानपि ततः
शुद्धसंप्रयोगान्मोक्षो भवतीत्यभिप्रायेण खिद्यमान-
स्तत्र प्रवर्त्तते, तदा तावत्सोपि रागलवसद्भावात्प-
रसमयरत इत्युपगीयते। अथ न किं पुनर्निरंकुश
रागकलिकलंकितांतरंगवृत्तिरितरो जन इति ॥७३॥

अर्थ—या गाथामैं. सूक्ष्म परसमयस्वरूपका व्याख्यानहै। इहाँ सिद्धि ताके साधनीभूत अर्हदादि भगवान् जे हैं तिनकै विषैं भक्ति भाव करि अनुरागित चित्तकी वृत्तिको नाम शुद्धसंप्रयोग है, तातैं निश्चय करि जो जितनैं काल ज्ञानवानभी अज्ञान अंशका प्रवेशतैं शुद्धसंप्रयोगतैं मोक्ष होय है, ऐसा अभिप्राय करि खेद खिन्न हुवो संतो शुद्धसंप्रयोगमैं प्रवर्त्तै तौ तितनैं काल ज्ञानवान भी राग अंशका सद्भावतैं परसमयरतही कहिये है तौ निरंकुश राग रूप कालिमा करि कलंकितहै अंतरंग जाको ऐसो अन्यपुरुष पर-समयरत कैसैं नहीं कहिये ॥ ७३ ॥

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो ।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥७४॥
अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसंपन्नः।
बध्नाति पुण्यं बहुशः नहि सः कर्मक्षयं करोति ॥७४

अर्थ—अरहंत सिद्ध जिनप्रतिमा प्रवचन मुनिसमूह ज्ञान इनकी भक्ति करि संयुक्त पुरुष बहुत पुण्यको बंध कर है, अर वो पुरुष प्रकट कर्मको क्षय नहीं करै है ॥ ७४ ॥

टीका—उक्त शुद्धसंप्रयोगस्य कथंचिद्बंधहेतुत्त्वेन मोक्षमार्गनिरासोऽयं । अर्हदादिभक्ति संपन्नः कथंचिच्छुद्धसंप्रयोगोपि सन् जीवद्रागलवत्वात् शुभोपयोगतामजहन् बहुशः पुण्यं बध्नाति नखलु सकलकर्मक्षयमारभते, ततः सर्वत्र रागकणिकापि परिहरणीया परसमयप्रवृत्तिनिबंधनत्वादिति ॥ ७४ ॥

अर्थ—कह्यौ जो शुद्ध संप्रयोग ताकै कथंचित बंध कारण पणां करि मोक्ष मार्ग को निरास या गाथा में है । अरहंतादिकन की भक्तिसंयुक्त शुद्धसंप्रयोगी हुवो संतो जीव कथंचित विद्यमान रागका अंशपणांतैं शुभोपयोगकों नहीं छांडतो संतो बहुत पुन्य बांधे है, अर निश्चय करि सकल कर्मक्षय नहीं करै है, तातैं सर्व पदार्थनिमैं रागकी कणिका भी परसमयमैं प्रवृत्तिका कारण पणांतै त्यागवे योग्य है ॥ ७४ ॥

तथा भाव पाहुडमैं—

गाथा—अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुड जीवो। जाणइ तं सण्णाणं चरदि हु चारित्त मग्गोत्ति ॥३१॥ आत्मा आत्मनि रतः सम्यग्दृष्टिः भवति स्फुटं जीवः। जानाति तत् सद्ज्ञानं चरति खलु चारित्रं मार्ग इति ॥३१॥

अर्थ—आप आपके विषैं प्रीतिवान होय सो जीव प्रकट सम्यग्दृष्टी है, अर वा सम्यग्दर्शनरूप आत्मानैं जाणैं सो सम्यग्ज्ञान है, अर वाही श्रद्धानज्ञानस्वरूप आत्माके विषैं स्थिर रहै सो सम्यक् चारित्र है, अर तीननि का समुदायरूप एक मोक्ष मार्ग है ॥३१॥

तथा आदिपुराण का चौवीशमां पर्वमें व्यवहार सम्यग्दर्शनका लक्षणरूप श्लोक;—

आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं परया मुदा।
सम्यग्दर्शनमाम्नातं प्रथमं मुक्तिसाधनं ॥११८॥

अर्थ—आप्त आगम पदार्थ जे हैं तिनको परम हर्ष करि श्रद्धान है सो सम्यग्दर्शन है, अर वो सम्यग्दर्शन ही प्रथम मोक्षको साधन मान्यूं है ॥ ११८ ॥

ज्ञानं जीवादिभावानां याथात्म्यस्य प्रकाशकम्।
अज्ञानध्वांतसंतानप्रक्षयानंतरोद्भवम् ॥११९॥

अर्थ—यथावत जीवादिक पदार्थनिको प्रकाश करनेवारो अज्ञान अंधकार संतानका नाशके अनंतर उत्पन्न होय सो ज्ञान है ॥ ११९ ॥

श्लोक—माध्यस्थ्यलक्षणं प्राहुश्चारित्रं वितृषो मुनेः।
मोक्षकामस्य निर्मुक्तचेलस्याहिंसकस्य तत् ॥१२०॥

अर्थ—मोक्षका वांछक, अर त्यागे हैं वस्त्र जानें, अर अहिंसक, अर गई है तृष्णा जाकै ऐसा मुनीश्वरकै इष्ट अनिष्टमैं रागद्वेष का अभावरूप माध्यस्थ्य लक्षण है सो चारित्र कहे है ॥ १२० ॥

अयं समुदितं मुक्तेः साधनं दर्शनादिकम्।
नैकांगविकलत्वेऽपि तत्स्वकार्यकृदिष्यते ॥ १२१ ॥

अर्थ—सो दर्शनादिक तीन रूप एक मुक्तिकौ साधन भलै प्रकार कह्यो है, सो एकांगविकलपणानैं होतां संतां भी निज कार्य को कर्त्ता नहीं इष्ट करिये है ॥ १२१ ॥

सत्येव दर्शने ज्ञानं चारित्रं च फलप्रदं।
ज्ञानं च दृष्टिसद्वृत्तसान्निध्ये मुक्तिकारणम् ॥१२२॥

अर्थ—सम्यग्दर्शननैं होतां संतां ही ज्ञान तथा चारित्र फलदायक होत है, अर ज्ञान भी सम्यग्दर्शन सम्यक् चारित्रकी निकटतानैं होतां संतांही मुक्तिनैं कारणभूत है ॥ १२२ ॥

चारित्रं दर्शनज्ञानविकलं नार्थकृन्मतं।
प्रपातायैव तद्धि स्यादंधस्येव विवल्गनं ॥१२३॥

अर्थ—दर्शन ज्ञानविकल चारित्र भी प्रयोजनको कर्ता नहीं मांन्यू है, वोविकचारित्र निश्चय करि उलटो संसार पतनकै अर्थि ही है, अंधकी नांई दौड़ना है ॥ १२३ ॥ श्लोक

त्रिष्वेकद्व्यविश्लेषाद्व्यूता मार्गे दुर्नयाः।
पोढा भवंति मूढानां तेऽप्यत्र विनिपातिताः॥१२४॥

अर्थ—मूर्खनिकै सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जे हैं तिनिकै विषैं एक दोयका भेदतैं उत्पन्न भया मार्ग जे हैं ते दुर्नय है, ते षट् प्रकार है, ते ही इहां मोक्षमार्गकै विषैं निषेधरूप किये हैं।

भावार्थ—निःकेवलदर्शन, निःकेवलज्ञान, निःकेवलचारित्र, अर दर्शनज्ञान, दर्शनचारित्र, ज्ञानचारित्र ये षट् भेद है, तिनरूप परिणाम मोक्षरूप कार्यके करनेंमें समर्थ नहीं है, मोक्षरूप कार्यके करनें मैं समर्थ तौ तीनांकी एकताही है ॥ १२४ ॥

श्लोक;—इतो नाधिकमस्त्यन्यो नाभून्नैव भविष्यति ।
इत्यासादित्रये दार्ढ्याद्दर्शनस्य विशुद्धिता ॥ १२५ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त दर्शन ज्ञान चारित्रतैं नहीं तौ अधिक है अर, नहीं और हुवा, अर नहीं और होसी, या प्रकार आप्त आगम पदार्थनिकै विषैं दृढपणांतैं दर्शनकै विशुद्धिता होय है ॥ १२५॥ भो भव्यजनहो ! इत्यादिक आचार्यनिके वचननैं रत्नत्रयनैं ही मोक्षमार्ग जांनि सेवन करो॥

चौपई—**रत्नत्रयको करि समुदाय,**
मोक्ष चलनको रूपे उपाय ।
जिनस्वभावमैं थिरता धरो,
जन्म मरण सब दुख परिहरो ॥ १५ ॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधकेसम्यग्दर्शनोद्योतकनाम्नि
प्रथमकांडे मोक्षमार्गनिर्णयो
नाम द्वितीयोल्लासः ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ सम्यग्दर्शनस्वरूप लिख्यते;—दोहा ।

निजस्वभाव श्रद्धानको, दर्शन नाम जिताय ।
कह्यो धर्म जगहित परम, जय जय श्रीजिनराय॥१॥

प्रश्न—मोक्षमार्गको सामान्य लक्षण कह्यो सो तो श्रद्धान किया, परन्तु सम्यग्दर्शनादिकानिके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहो ।

उत्तर—मोक्षशास्त्रमें, सूत्र—"तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं"

अर्थ—तत्वकरि निश्चय किये जे अर्थ तिनको जो श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है ।

टीका,— सर्वार्थसिद्धि—तत्वशब्दो भावसामान्यवाची, कथं ? तदिति सर्वनामपदं, सर्वनाम च सामान्ये वर्त्तते । तस्य भावस्तत्वं, तस्य कस्य, योऽर्थो यथावस्थितस्तस्य भवनमित्यर्थः । अर्यते इत्यर्थो निश्चीयते इत्यर्थः, तत्वेनार्थस्तत्वार्थः । अथवा भावे भाववतोऽभिधानं तदव्यतिरेकत्वात्, तत्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः, तत्त्वार्थस्य श्रद्धानं तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं प्रत्येतव्यं । तत्वार्थश्च वक्ष्यमाणो जीवादिः । दृशेरालोकार्थत्वात् श्रद्धानार्थगतिर्नोपपद्यते, धातूनामनेकार्थत्वाददोषः । प्रसिद्धार्थत्यागः कुतः इति चेन्मोक्षमार्गप्रकरणात्, तत्वार्थश्रद्धानं हि आत्मपरिणामो मोक्षसाधनं युज्य-

ते भव्यजीवविषयत्वात्। आलोकस्तु चक्षुरादिनिमित्तः सर्वसंसारिजीवानां साधारणत्वान्न मोक्षमार्गो युक्तः। अर्थश्रद्धानमिति चेत्सर्वार्थग्रहणप्रसंगः। तत्त्वश्रद्धानमिति चेद्भावमात्रप्रसंगः। सत्ता द्रव्यगुणत्वकर्मत्वादि तत्त्वमिति कैश्चित् कल्प्यते इति। तत्त्वमेकत्वमिति वा सर्वैक्यग्रहणप्रसंगः, पुरुष एवेदमित्यादि कैश्चित्कल्प्यते इति। तस्माद् व्यभिचारार्थमुभयोरुपादानमिति। तत् द्विविधं सरागवीतरागविषयभेदात्। प्रशमसंवेगानुकंपास्तिक्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमं। आत्मविशुद्धिमात्रमितरत्॥

अर्थ—तत्वशब्द भावसामान्यवाचक है, प्रश्न—कैसैं—उत्तर—तत् यो शब्द सर्वनाम पद है कि सर्वपदनिको कहनें वारो है, अर या तत् शब्दकै भाव अर्थमैं त्वप्रत्यय होय है तब तत्व ऐसा शब्द होय है, अर याका अर्थ ऐसा है कि ताको जो भाव सो तत्व कहिये। प्रश्न—ताकौ किसको। उत्तर—जो वस्तु जा भावमैं होवै तैसा ही ताको होनौं जो है ताकूं तत्व कहिये। बहुरि "अर्यते इति अर्थः" कहिये प्रमाण अर नयकरि निश्चय कीजिये सो अर्थ कहिये अर "तत्वेन अर्थः" कहिये यथावस्थितस्वरूप करि निश्चय निर्बाधित होय सो तत्वार्थ कहिये। भावार्थ—अनेकांतस्वरूप प्रमाण नय करि सिद्ध होय ताकूं तत्वार्थ कहिये। अथवा भाव करि भवत्रान का कहनां जो है सो तत्व कहिये, क्योंकि कथंचित् भावकै अर

भाववानकै अभेदहै यातैं तत्व कहिये यथावस्थित वस्तु सो ही अर्थ कहिये निश्चय कीजिये सो तत्वार्थ है, अभेदविवक्षातैं औसा भी अर्थ है। अर तत्वार्थ का श्रद्धान कहिये प्रतीति होय ताकूं तत्वार्थ श्रद्धान कहिये, अर याहीकूं सम्यग्दर्शन मानवो योग्य है, अर तत्वार्थनाम जीवादिक षट् पदार्थनिका है सो व्याख्यान करनें योग्य है। प्रश्न —दृशि धातुकै आलोकार्थ पणांतैं श्रद्धान अर्थ की गति नहीं उपजैहै उत्तर—धातुनिकै अनेक अर्थ पणांतैं दोष नाहीं। प्रश्न—प्रसिद्ध अर्थका त्याग काहेतैं किया। उत्तर—मोक्षमार्गके प्रकरणतैं प्रसिद्ध अर्थका त्याग किया, क्योंकि तत्वार्थश्रद्धानरूप आत्म परिणामही मोक्षको साधन संभवैहै भव्यजीवका विषय पणांतैं। अर चक्षु प्रकाश आदि निमित्तक आलोक जो है सो सर्व संसारी जीवनिकै साधारण पणांतैं समान है तातैं याका मोक्षमार्गमैं कहनां युक्त नांहीं। प्रश्न—अर्थश्रद्धान औसाही क्यूं न कह्या। उत्तर—औसैं कहे सर्व अर्थ निका ग्रहणको प्रसंग आवैहै क्योंकि अर्थनाम धनका भी है, अर्थनाम प्रयोजनका भी है, तथा सामान्य अर्थका भी नाम अर्थ है, तिनका भी श्रद्धान सम्यग्दर्शन ठहरै। तातैं तिनतैं भिन्न दिखावनेंकै अर्थि अर्थका तत्वविशेषण किया है। प्रश्न—तत्व श्रद्धान औसा ही क्यूं नहीं कह्या। उत्तर—औसैं कहें सर्वथा एकांतवादीनि करि कल्पिततत्वका प्रसंग आवै, तथा तत्वशब्द भावमात्री है तातैं भावमात्रका प्रसंग [illegible] कोई वादी सत्ताकूं तथा द्रव्यत्वकूं तथा गुणत्वकूं [illegible] कल्पै है तिनका प्रसंग आवै। [illegible] आवै तथा सर्वपदार्थनिकै [illegible] वस्तु एक पुरुषही है [illegible]

व्यभिचारकै अर्थ तत्व तथा अर्थ दोऊ शब्दनिकाही ग्रहण है। भावार्थ;-सर्वएकांतीनितैं भिन्न अनेकांतात्मक वस्तुका स्वरूप है अैस जनावनेके अर्थ तत्वार्थका ग्रहण किया है अैसा तत्वार्थका श्रद्धान रूप सम्यक्दर्शन है। सो दोय प्रकार है सो सराग वीतराग विषय भेदतैं है, एक सरागसम्यक्त है, दूसरा वीतराग सम्यक्त है। तहाँ प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य आदि भावनि करि प्रकट होय सो तौ सराग सम्यग्दर्शन है, अर प्रशमादिकनि का भिन्न भिन्न लक्षण अैसैं है कि जहां अनंतानुबंधी कषायकी चौकडी संबंधी रागद्वेषादिकका तथा मिथ्यात्व सम्यकमिथ्यात्वका उदय नांही होय ताकूँप्रशम कहिये।बहुरि पंचपरिवर्तनरूप संसारतैं भय उपजनां ताकूं संवेग कहिये। बहुरि त्रस थावर प्राणीनिकै विषै दयाका होनां ताकूं अनुकंपा कहिये। बहुरि जीवादिक तत्वनिविषै युक्ति अर आगम करि जैसा का तैसा अंगीकार करनां ताकूं आस्तिक्य कहिये। ए च्यार चिन्ह सम्यग्दर्शनिकूं जनावै है क्योंकि ये सम्यग्दर्शनके कार्य हैं। तातैं कार्यकरि कारण का अनुमान होय है। तहां आपके तौ स्वसंवेदनतैं जानें जाय है, अर परके काय वचनकी क्रिया विशेषतैं जानें जाय है क्योंकि सम्यग्दर्शन विनां मिथ्यादृष्टी कै अैसे चिन्ह नांही होय है।

प्रश्न—क्रोध का उपशम तौ मिथ्यादृष्टी कै भी होय है, ताकै भी प्रशम आवै है।

उत्तर—मिथ्या दृष्टीनिकै अनंतानुबंधी मान का उदय है, तातैं अपनें मानका निर्वाहके अर्थ क्रोधकौं प्रगट नहीं करै है, सो जैसे द्वीपायन मुनि कै मनें लोक कौं क्रोधादिक का उपशम बहुत काल तक दीखता रह्या, तथापि मानभंग के समयमें क्रोध प्रगट भया ही,

अर सर्वथा एकांत तत्व मिथ्या है, ताविषैं सत्यार्थका अभिमान है सो ही मिथ्यात्व है, यातैंही एकांतीनिकै अनेकांतात्मक तत्वविषैं द्वेष का अवश्य सद्भाव है। बहुरि स्थावर जीवनिका घात निःशंकपणैं करै है तातैं उनके प्रशम भी नांहीं है,अर संवेग अनुकंपा भीनाहीं है।

प्रश्न—स्थावर जीवनि का घात तौ सम्यग्दृष्टीकै भी होय है, तातैं सम्यग्दृष्टीकै भी अनुकंपा कैसैं कहिये।

उत्तर—सम्यग्दृष्टीकै जीवतत्वका ज्ञान है, तातैं अज्ञानतैं सौ घात विषैं प्रवृत्ति नांहीं, परन्तु चारित्र मोह के उदयतैं अविरत प्रमादतैं घात अपने योग्य विषयनि निमित्त होय है, तहां भी अपनां अपराध मानै हैअर अनर्थ दंडरूपनहीं प्रवर्त्तै है,अर ऐसाभी नहीं मानै है कि ये जीव ही नांहीं है तथा जीवनिके घाततैं कहा बिगाड़ है अर जो ऐसा मानैं तो मिथ्यात्व का सद्भाव ही है।

प्रश्न—मिथ्यादृष्टीकै भी अपनैं मानें तत्वविषैं तो आस्तिक्यता है।

उत्तर—मिथ्यादृष्टी तत्वकूं सर्वथा एकांतरूप श्रद्धान करै है सो मिथ्या है, तातैं ताविषैं आस्तिक्यता है सो मिथ्यात्व की ही आस्तिक्यता है, सम्यक्त्व तो कह्या जाय नांहीं, अर प्रत्यक्षादि प्रमाण करि बाधित है कि जैसैं घृत पौष्टिक भी है अर घातक भी है, रोचकभी है अर क्षुधाकूं बंध करनेवाला भी है, याकूं एक गुणयुक्त ही कहै सो प्रत्यक्ष बाधित है। तातैं जे सर्वथा एकांत श्रद्धान करै है ते अरहंत के मत तैं बाह्य है, मिथ्यादृष्टी है, नास्तिक है। बहुरि —

प्रश्न—जे सम्यग्दर्शन के चिन्ह प्रशमादिक कहे तिनकूं आपकै स्वसंवेदन गोचर कहे, तिनतैं सम्यक्त्वका अनुमान करनां कह्या तौ तत्वार्थश्रद्धानही कूँ स्वसंवेदन गोचर क्यूँ नहीं कह्या ?

उत्तर—जो तत्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है सो दर्शनमोहके उपशम क्षयोपशम क्षयतें प्रकट भया आत्म स्वरूप का लाभ है सो यह छद्मस्थके स्वसंवेदन गोचर नांहीं अर प्रशमादिक स्वसंवेदनगोचर है, तातें इनतें सम्यग्दर्शनका अनुमान करनांकह्या है। अर ये प्रशमादिक अभेदविवक्षा तैं सम्यग्दर्शनतें अभिन्न हैं। तथापि भेद विवक्षा तैं भिन्न हैं। जातें ये सम्यक्दर्शन के कार्य हैं तातैं कार्य तैं कारण का अनुमान करणा कह्या है। अर केई वादी सम्यग्ज्ञानही कूं सम्यग्दर्शन कहै हैं, तिनप्रति ज्ञानतें भेद जनावने के अर्थि सम्यग्दर्शनके कार्य प्रशमादिक जुदे कहे हैं तिनकरि सम्यग्दर्शनकूं सम्यग्ज्ञानतैं जुदा जानिये।

इहां कोई कहै है कि प्रशमादिक चिह्न मिथ्यादृष्टी का अर सम्यग्दृष्टी का कार्य आदि व्यवहारमें समान दीखै तहां कैसे निर्णय होय। ताका उत्तर-आप कै जैसें दीखै तैसेपरकै भी परीक्षा करि निर्णय करनां। बहुरि वीतराग सम्यग्दर्शन है सो अपनें आत्मा के विशुद्ध परिणामतैं ही गम्य है। तहां प्रशमादिक का अधिकार नाहीं। ऐसे तत्वार्थ श्रद्धानरूप दर्शन मोह रहित आत्माके परणाम है सो सम्यग्दर्शन है। यातें केई अन्यवादी इच्छादिक कर्म के परिणाम कूँ सम्यग्दर्शन कहै है तिनिका निराकरण भया क्योंकि कर्मका परिणाम कर्मके अभावरूप जो मोक्ष ताका कारण होयनांही यातैं॥

तथा कुंदकुंदस्वामी कृत दर्शनपाहुडमें कहै है;—गाथा।

छद्दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥१९॥
षट् द्रव्याणि नव पदार्थाः पंचास्तिकायाः सप्त तत्वा-

नि निर्दिष्टानि । श्रद्दधाति तेषां रूपं सः सद्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ १९ ॥

अर्थ—षट् द्रव्य, नव पदार्थ, पंच अस्तिकाय, सप्त तत्व कहे हैं तिनका रूपनें श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी है ॥ १९ ॥ तथा—

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहई ।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥२२॥
यत् शक्नोति तत् कुरुते यत् च न शक्नोति तत् न श्रद्दधाति । केवलिजिनैः भणितं श्रद्दधानस्य सम्यक्त्वम् ॥ २२ ॥

अर्थ—जो करनेकूं समर्थ होय सो तौ करै, अर जो करनेकूं नहीं समर्थ होय सो श्रद्धान करै । यातैं श्रद्धान करते जीवकै केवली जिनेंद्रनैं सम्यक्त्व कह्यो है ॥ २२ ॥ तथा—

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छादिट्ठी हवइ एसो ।२४।
सहजोत्पन्नं रूपं दृष्ट्वा यः मन्यते न मत्सरितः।
सः संयमप्रतिपन्नः मिथ्यादृष्टिर्भवति एषः ॥२४॥

अर्थ—स्वाभाविक उत्पन्न भया दिगंबर रूपनैं देखि मत्सरता तैं जो नहीं मानैं है सो यो संयम संयुक्त है तौ हू मिथ्या दृष्टी ही है ॥ २४ ॥ गाथा ।

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं ।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया हुंति ॥ २५ ॥

अमरैः वंदितानां रूपं दृष्ट्वा शीलसहितानां ।
ये गारवं कुर्वंति च सम्यक्त्वविवर्जिता भवंति ॥२५॥

अर्थ—जे पुरुष शीलसहित तथा देवनि करि वंदनीक ऐसा साधुनिका स्वरूपनैं देखि गर्व करै है ते सम्यक्त रहित है ॥ २५ ॥

असंजदं ण वंदे वत्थविहीणो वि सो ण वंदिव्वो।
दुण्णि वि हुंति समाणा एगो विणसंजदो होदि ॥२६॥
असंयतं न वंदे वस्त्रविहीनः अपि सः नवंदितव्यः ।
द्वावपि भवतः समानौ एकोऽपि न संयतः भवति ॥
॥ २६ ॥

अर्थ—असंयमीनैं नहीं वंदिये बहुरि भाव संयम रहित वस्त्र विहीन होय सो भी नहीं वंदवे योग्य है। दोऊ ही समान है, इनि मैं एक भी संयमी नहीं है ॥ भावार्थ—देवनिकै वा गृहस्थनिकै तो असंयत गुणस्थानहै, अर परमहंसादिक वस्त्ररहित है। तातैं कह्याहै कि दोऊ ही समान है क्योंकि वै तौ बाह्य असंयमी है, वै अंतरंग असंयमी है यातैं दोऊ ही वंदवे योग्य नहीं है ॥

तथा चारित्रपाहुड मैं;—गाथा

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराण ।
ते हुंति लल्ल मूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥१२॥
ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयंति दर्शनधरान् ।
ते भवंति पंगवः मूकाः बोधिः पुनर्दुर्लभा तेषाम्॥१२॥

अर्थ—जे आप तौ सम्यग्दर्शनकै विषैं भ्रष्टहै अर सम्यग्दर्शन के धारकनिनैं अपने चरणनिमैं पटकैहै कि नमस्कार करावै है ते

पांगुला गूंगा होय है कि एकेंद्रिय स्थावरमें उत्पन्न होय है, अर तिनकै फेरि रत्नत्रयकी प्राप्ति दुर्लभ होय है ॥१२॥

जे विपडंति च तेसिं जाणंता लज्ज गारव भएण ।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥ १३ ॥
ये अपि पतंति च तेषां जानंतः लज्जागारवभयेन ।
तेषां अपि न अस्ति बोधिः पापं अनुमन्यमानानां ॥ १३ ॥

अर्थ—जे सम्यग्दृष्टी मिथ्यादृष्टीनिकूं जानते संते भी लज्जा करि गारवता करि भयकरि नमस्कार करै है तिनकै भी रत्नत्रयकी प्राप्ति नहीं है, जातैं मिथ्यादृष्टीनिकी अनुमोदना करहै तिनकै पाप कर्मका बंध होय है ॥ १३ ॥

तथा प्रवचनसारका चारित्राधिकारकै आगैं चूलिकावर्णनमें, गाथा;—

परमणुपमाणं वा मुच्छा देहादिगेसु जस्स पुणो ।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरोवि ॥ ८ ॥

परमाणुप्रमाणं वा मूर्च्छा देहादिकेषु यस्य पुनः ।
विद्यते यदि सः सिद्धिं न लभते सर्वागमधरोऽपि ॥ ८ ॥

टीका—बहुरि जा मुनिकै देहादिकनि विर्षे परमाणू मात्र भी मूर्छा है अर सर्वागमका ज्ञाता है तौ हू सिद्धि जो परमपद ताहि नहीं प्राप्त होय है, अर अनंत संसारमें ही वास करै है ॥ ८ ॥

टीका—यदि करतलामलकीकृतसकलागमसारतया भूतं भवद्भावि च स्वोचितपर्यायविशिष्टमशेषद्रव्यजातं जानंतमात्मानं जानन् श्रद्दधानः संयमयँश्चागमज्ञानतत्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येऽपि मनाङ्मोहमलोपलिप्तत्वात् यदा शरीरादिमूर्च्छोपरक्ततया निरुपरागोपयोगपरिणतं कृत्वा ज्ञानात्मानमात्मानं नानुभवति तदा तावन्मात्रमोहमलकलंककीलिकाकीलितैः कर्मभिरविमुच्यमानो न सिद्ध्यति, अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञानतत्वार्थ श्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ॥८॥

अर्थ—जो हस्ततलमैं प्राप्त भया आंवलाके समान किया सकल आगमका सारपणां करि भूत भविष्यत वर्त्तमान जो अपनें योग्य पर्याय तिन करि विशिष्ट ऐसा समस्त द्रव्यनिका समूहनैं जाणतो जो आत्मा ताहि जानतो, अर श्रद्धान करतो, अरु आचरण करतो, ऐसा आगमज्ञान, तत्वार्थ श्रद्धान, चारित्र, जे हैं तिनका एकै काल संयोग होत संतै भी जा समय रंचमात्र मोहरूप मलका लिप्तपणांतैं शरीरादिकमैं मूर्च्छाका रागपणां करि रागोपयोग परिणति रहित ज्ञानस्वरूप आत्मानैं करि नहीं अनुभव करै है ता समय तावन्मात्र मोहमलकलंककी कीलिका करि कीले ऐसे पुरुष कर्मनिकरि नहीं छूटता संन्ता नहीं सिद्ध होय है ,यातैं. आत्मज्ञानशून्य आगमका ज्ञान तत्त्वार्थ का श्रद्धान संयमका आचरणपणांको युगपत् पणोंभी किंचित्कार्यकारी नहीं है ॥ ८ ॥

गुणदोधिगस्स विणयं पडिच्छगो जो विहोदि समणोत्ति। होज्जं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी॥ ३६॥ गुणतोऽधिकस्य विनयंप्रत्येव कोऽपि भवति श्रमण इति। भवन् गुणाधरो यदि सः भवति अनंतसंसारी॥ ३३॥

अर्थ—जो मैं श्रमण हूं गुणनिको आधार हूं ऐसा अभिप्रायतै गुणतैं अधिकको विनय नहीं चाहे है सो अनंत संसारी है॥

टीका—स्वयं जघन्यगुणः सन् श्रमणोऽहमपीत्यवलेपात् परेषां गुणाधिकानां विनयं प्रतीच्छन् श्रामण्यावलेपवशात् कदाचिदनंतसंसार्यपि भवति॥ ३६॥

अर्थ—आप जघन्यगुणवान हुवो सतो मैं हूँ श्रमणहूं ऐसा अभिप्रायतैं गुणाधिक पर जे हैं तिनको विनय नहीं वांछतो संतो श्रामण्यपणां का अभिप्रायतैं कदाचित् अनंत संसारी हो होय है॥ ३६॥ इत्यादि वर्णन या प्रकरणतैं सर्व ही जानवायोग्य है॥

तथा चारित्र पाहुड में;—गाथा

कुच्छियधम्ममि रओ कुच्छियपाखंडिभत्ति संजुत्तो। कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होई॥ ४०॥

कुत्सितधर्मेषु रतः कुत्सितपाषंडिभक्तिसंयुक्तः। कुत्सिततपः कुर्वन् कुत्सितगतिभाजनः भवति।४०।

अर्थ—कुत्सित धर्ममैं प्रीतिवान पुरुष कुत्सित मार्गहीनिकी भक्ति संयुक्त कुत्सित तप करते संते कुत्सित गतिके पात्र होय है ॥४०॥

तथा;—

जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चल सवओ।
सवओ लोय अपुज्जो लोउत्तरियम्मि चलसवओ॥४३॥
जीवविमुक्तः शवः दर्शनमुक्तः च भवति चलशवः।
शवः लोके अपूज्यः लोकोत्तरे चलशवः॥ ४३ ॥

अर्थ—जीवरहित है सो मृतक है, अर दर्शनरहित है सो चाल-तो मृतक है सो लोकमैंअपूज्य है, अर लोकोत्तर जो परमार्थ तामै विषैं चालतांमृतक मिथ्या दृष्टी अपूज्य है ॥ ४३ ॥

तथा मोक्षपाहुड़ मैं,—

गाथा—दंसण सुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं। दंसण विहीण पुरिसो ण लहइ तं मण इच्छियं लाहं ॥ ३८ ॥

दर्शनशुद्धः शुद्धःदर्शनशुद्धः लभते निर्वाणं। दर्शनविहीनपुरुषः न लभते तं मनः ईप्सितं लाभम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन करि शुद्ध है सो शुद्ध है, अर सम्यग्दर्शन शुद्ध पुरुष जो [redacted] सो निर्वाणनैं प्राप्त होय है, अर।सम्यग्दर्शनविहीन पुरुष जो है सो ता मनोवांछित लाभनैं नहीं प्राप्त होय है। भावार्थ—मोक्षनैं नहीं प्राप्त होय है।

तथा आदिपुराण का नवमपर्वमैं;—श्लोक।

आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं परया मुदा ।
सम्यग्दर्शनमाम्नातं तन्मूले ज्ञानचेष्टिते ॥ १२१॥

अर्थ—आप्त तथा आगम तथा पदार्थ जे हैं तिनको परम हर्ष करि श्रद्धान है सो सम्यग्दर्शन मान्यों है, अर सम्यग्दर्शन है मूल जिनका असे ज्ञान अर चारित्र है । भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना ज्ञान चारित्र हैं ते कुज्ञान कुचारित्र नाम पावै है, सम्यग्ज्ञान सम्यक चारित्र नी सम्यग्दर्शन हूवांही होय है ॥ १२१ ॥

तथा——

आत्मादिमुक्तिपर्यन्ततत्त्वश्रद्धानमंजसा ।
त्रिभिर्मूढैरनालीढमष्टांगं विद्धि दर्शनम् ॥ १२२॥

अर्थ—जीवनैं आदि लेय मुक्ति पर्यन्त सप्त तत्वनिका श्रद्धान सो निश्चयकरि तीन मूढतारहित अष्ट अंगयुक्त सम्यग्दर्शन है ॥१२२॥

तथा,——

अपास्य लोकपाषंडिदेवतासु विमूढतां ।
परतीर्थ्यैरनालीढमुज्ज्वलीकुरु दर्शनं ॥ १४१ ॥

अर्थ—लोकके विषैं तथा पाषंडीनिके विषैं तथा देवतानिके विषैं मूढतानैं दूर करिकैं अन्यधर्मकरि दूरवर्ती जैसैं होय तैसैं सम्यग्दर्शननैं शुद्ध करहू । भावार्थ—लोकमूढता देव मूढता गुरुमूढतानैं त्यागि तथा अन्यधर्म नैं त्यागि जिनधर्ममैं श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शननैं शुद्ध करहू ॥

तथा रत्नकरंडमैं;—श्लोक ।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृतां ।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—परमार्थ रूप आप्त तथा आगम तथा तपस्वी जे हैं तिनिकौ श्रद्धान तीन मूढता रहित अष्ट अंगसंयुक्त अष्टमदरहित जो है सो सम्यग्दर्शन है ॥ ४ ॥

तथा:— भयाशास्नेहलोभाश्च कुदेवागमलिंगिनां ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥ ३० ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जे हैं ते भयतैं आशातैं तथा स्नेहतैं तथा लोभतैं अर चकारतैं अन्य प्रयोजनतैं भी कुदेव कुआगम कुलिंगी जे हैं तिनिकौ प्रणाम तथा विनय नहीं करै ॥ ३० ॥

तथा भगवती आराधना मैं; गाथा:—

तत्थोवसमियं सम्मत्त खाइयं खओवसमियं वा ।
आराहंतस्स भवे सम्मत्ताराहणा पढमा ॥ ३१ ॥
तत्रौपशमिकं सम्यक्त्वं क्षायिकं क्षायोपशमिकं वा ।
आराधयतः भवेत् सम्यक्त्वाराधना प्रथमा ॥ ३१ ॥

अर्थ—तहां आराधनाकै विषैं उपशमसम्यक्त्व तथा क्षायिकसम्यक्त्व तथा क्षयोपशम सम्यक्त्व इनि तीनस म्यक्त्वनिमैं एक सम्यक्त्व का आराधन करता पुरुषकै प्रथम सम्यक्त्वको आराधन होय है ।३१।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहइ ।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥३२॥
सम्यग्दृष्टी जीवः उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं अजानमानः गुरुनियोगात् ।३२

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या जिनागमनैं श्रद्धान करै है,

१"गुरुवियोगात्" यह भी पाठ है।

अर आप अज्ञानवान होतसंतैं गुरुनिका नियोगतैं अथवा वियोगैंतै असद्भावनैं भी श्रद्धान करै है ॥

भावार्थ—आप तो अज्ञानी है अर समीचीन गुरुनिका संबंध नांहीं यातैं असद्भावकूं हीं सर्वज्ञका वचन मांनि श्रद्धान करै है ॥३२॥

सुत्तादुसं सम्मं दरसिज्जं तं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवदि मिच्छादिट्ठी जीवो तदो पहुदि ॥३३॥
सूत्रात् उक्तं सम्यक् दृश्यमानं तं यदा न श्रद्दधाति ।
स च एव भवति मिथ्यादृष्टिः जीवः ततः प्रभृति॥३३॥

अर्थ—बहुरि कोई सम्यग्ज्ञानी वाही तत्वनैं सूत्रतैं सत्यार्थरूप दिखावै ताहि जो नहीं श्रद्धान करै तौ जो पूर्वकाल में श्रद्धानी नाम कहावै था सो जीव वाही समयतैं मिथ्यादृष्टी है ॥ ३३ ॥

प्रश्न—सूत्रतैं दिखाया तत्व श्रद्धान करनां कह्या तौ सूत्र का लक्षण भी कहौ।

उत्तररूप गाथा ।

सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धिकहियं च ।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च ॥३४
सूत्रं गणधरकथितं तथैव प्रत्येकबुद्धिकथितं च ।
श्रुतकेवलिना कथितं अभिन्नदशपूर्विकथितं च ॥३४॥

अर्थ—प्रथम तौ गणधरनि करि कहे हैं ते सूत्र है, अरवैसैं हीं प्रत्येकबुद्धिऋद्धिके धारकनि करि कहे हैं ते सूत्र है, तथा श्रुत केवलीनि करि कहे है ते सूत्र हैतथा परिपूर्ण दशपूर्व धारीनकरि कहे हैं तेसूत्र है ॥ ३४ ॥

प्रश्न—ये सूत्र तौ मिलते नांही तातैं इनि सिवाय और-निके वचननिकी कहा व्यवस्था।

उत्तररूप गाथा—

गिहिदत्थो संविग्गो अत्थुवदेसे ण संकणिज्जो हु।
सो चेव मंदधम्मो अत्थुवदेसम्मि भयणिज्जो॥३५॥
गृहीतार्थः संविग्नः अर्थोपदेशे न शंकनीयः स्फुटं।
स च एव मंदधर्मः अर्थोपदेशे भजनीयः ॥३५॥

अर्थ—जो परमागमका अर्थनैं गुरुपरिपाटीकरि तथा प्रमाण नय निक्षेपकरि तथा शब्द ब्रह्मका सेवनकरि तथा स्वानुभवप्रत्यक्ष करि भलप्रकार सत्यार्थ ग्रहण किया होय, तथा संसार देह भोगतै विरक्त होय पापतैं भयभीत होय सो वक्ता शास्त्रका उपदेश मैं नहीं शंका करनें योग्य है, अर सो ही उपदेशदाता मंदधर्मी होय तौ अर्थ का उपदेशमैं भजनीय है। भावार्थ—सम्यक्ज्ञानी वीतरागीका वचन तौ निःशंक ग्रहण करनें योग्यहै, अर सम्यक्ज्ञान वैराग्य रहितका वचन ग्रहण करनें योग्य नांहीहै, अर भजनीयपदतैं कथंचित् वीतरागीनिकी परिपाटीसूं मिलता अर्थ कहै तौ ग्रहण करनें योग्य भी है, अर उनत विरुद्ध कहै सो सर्वथा नहीं ग्रहण करन योग्य है॥ ३५॥

धम्माधम्माकासाणि पोग्गले कालदव्व जीवे य।
आणाय सद्दहंतो सम्मत्ताराहओ भणिओ ॥३६॥
धर्माधर्माकाशानि पुद्गलान् कालद्रव्यं जीवान् च।
आज्ञया श्रद्दधन् समक्त्वाराधको भणितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—धर्म , अधर्म , आकाश , पुद्गल , काल , जीव , ये छह द्रव्य जे हैं तिनन भगवान्की आज्ञाकरि श्रद्धान करतो जीव सम्यग्दर्शनको आराधक कह्यो है ॥३६॥ गाथा—

संसारसमावण्णा य छव्विहा सिद्धिमस्सिदा चेव ।
जीवणिकाया एदे सद्दहिदव्वा हु आणाए ॥ ३७ ॥
संसारसमापन्नाःच षड्विधाःसिद्धिमाश्रिताः च एव।
जीवनिकाया एते श्रद्धातव्या स्फुटं आज्ञया ॥३७॥

अर्थ—पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति रूप है काय जिनके ऐसे पंच थावर अर एक त्रस ऐसैं छह प्रकार के संसारमैं प्राप्त भये , अर अनंत चतुष्टयादि निजगुणरूप सिद्धि तामैं आश्रय किये ऐसैं ए सप्तभेद जीवनिकाय जे हैं ते भगवान सर्वज्ञकी आज्ञा करि श्रद्धान करने योग्यहै ॥३७॥ गाथा—

आसव संवर णिज्जर वंधो मोक्खो य पुण्ण पावं च ।
तह चेव जिणाणाए सद्दहिदव्वा अपरिसेसा ॥३८॥
आस्रवः संवरः निर्जरा वंधः मोक्षः च पुण्यं पापं च ।
तथा चैव जिनाज्ञया श्रद्धातव्या अपरिशेषाः॥३८॥

अर्थ—आश्रव , संवर , निर्जरा , वंध, मोक्ष, पुण्य , पाप अर तैसैं ही और समस्त द्रव्य भेद जे हैं ते जिन आज्ञा करि श्रद्धान करवे योग्यहै ॥३८॥ गाथा—

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं ।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ ३९ ॥

पदं अक्षरं च एकं अपि यः न रोचते सूत्रनिर्दिष्टं।
शेषं रोचमानोऽपि खलु मिथ्यादृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥३९॥

अर्थ—जो पुरुष जिनसूत्रमैं दिखाया एक पदनैं तथा एक अक्षरनैं भी नहीं श्रद्धान करहै सो पुरुष और समस्त आगमका अर्थनैं श्रद्धान करतो संतो भी प्रकट मिथ्यादृष्टी जाननौं ॥३९॥ गाथा,

मोहोदयेण जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं अणुवइट्ठं वा ॥४०॥
मोहोदयेन जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति।
श्रद्दधाति असद्भावं उपदिष्टं अनुपदिष्टं वा ॥४०॥

अर्थ—मोहका उदयकरि जीव उपदेश्या सद्भावरूप प्रवचननैं तो नहीं श्रद्धान करैहै, अर असद्भावरूप उपदेश्या तथा नहीं उपदेश्यानैं श्रद्धान करैहै ॥४०॥ गाथा—

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होई।
णय धम्मं रोचेदि हु महुरक्खुरसं जहा जुरिदो ॥४१॥
मिथ्यात्वं वेदयन् जीवः विपरीतदर्शनः भवति॥
न च धर्मं रोचते खलु मधुरेक्षुरसं यथा ज्वरितः॥४१॥

अर्थ—मिथ्यात्वनैं अनुभव करतो जीव विपरीतश्रद्धानी होयहै, कि जैसैं ज्वरसहित पुरुषकूं प्रकट मधुर इक्षुरस नहीं रुचैहै तैसैं मिथ्यात्वसहित पुरुषकूं धर्म नहीं रुचै है ॥४१॥ गाथा—

सुविहियमिमं पवयणं असद्दहंतेण णेण जीवेण।
बालमरणाणि तीदे मदाणि काले अणंताणि ॥४२॥

सुविहितं इदं प्रवचनं अश्रद्दधता अनेन जीवेन ।
वालमरणानि अतीते मृतानि काले अनंतानि ॥४२॥

अर्थ—भलै प्रकार करि कह्या जो ये प्रवचन ताहि नहीं श्रद्धान करता या जीवनैं अतीतकालमैं अनंते वालमरण मरे । इहां वाल शब्दतैं बाल बाल मरण किये जाननें ॥४२॥ गाथा—

णिग्गंथं पव्वयणं इयमेव अणुत्तरं सुपरिसुद्धं ।
इयमेव मोक्खमग्गो त्ति मदी कायव्विया तम्हा ॥४३॥
निर्ग्रंथं प्रवचनं इदं एव अनुत्तरं सुपरिशुद्धं ।
अयमेव मोक्षमार्गः इति मतिः कर्त्तव्या तस्मात् ॥४३॥

अर्थ—या निर्ग्रंथरूप रत्नत्रयही प्रवचन है , अर यही सर्वोत्तम अत्यंत शुद्धहै, तातैं यो ही मोक्षमार्ग है असी बुद्धि करवो योग्य है । इहां निर्ग्रंथ शब्दकी निरुक्ति असी जाननी "ग्रंथतीति ग्रंथः निर्गतो ग्रंथो यस्मात्स निर्ग्रंथः" याका अर्थ असा है किग्रंथ जो संसार ताकूं रचै सो ग्रंथ , यातैं संसारका रचनेवारा मिथ्यात्व अविरत कषाय योगहै ते ग्रंथ हैं ते जातैं दूर होय सो निर्ग्रंथ है । असो निर्ग्रंथ रत्नत्रयही है, सोही सर्वोत्तम अत्यंत शुद्ध आत्मस्वरूप प्रवचनरूप मोक्षमार्ग है ॥४३॥ गाथा—

सम्मत्तादीचारा संका कंखा तहेव विदिगिंछा ।
परदिट्ठीण पसंसा अणायदणसेवणा चेव ॥ ४४ ॥
सम्यक्त्वातीचाराः शंका कांक्षा तथैव विचिकित्सा ।
परदृष्टीनां प्रशंसा अनायतनसेवना चैव ॥ ४४ ॥

अर्थ—शंका , कांक्षा, विचिकित्सा, परदृष्टीनिकी प्रशंसा,

अनायतनसेवा ये पांच सम्यग्दर्शनके अतीचारहै। इहां शंका नाम संशयका है तातैं जिनवचनमें संशय नहीं करना, अर कांक्षा नाम आगामी सुखकी चाहका है तातैं आगामी विषयनिकी वांछा नहीं करनीं, अर विचिकित्सा नाम ग्लानिका है तातैं धर्ममें तथा धर्मके धारकनिमें ग्लानि नहीं करनीं, अर अन्यदृष्टिप्रशंसानाम मिथ्यादृष्टीनिकी प्रशंसाका है तातैं मिथ्यादृष्टीनिकी प्रशंसा नहीं करनी, अर अनायतनसेवा नाम कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर कुदेव कुगुरु कुशास्त्र के माननेंवारे ऐसैं ये छह आयतन नहीं हैं अनायतन है धर्मके स्थान नाहीं है तातैं इनि छहूनिकी सेवा भक्ति प्रशंसा नहीं करणी क्योंकि ये पांच सम्यक्त्वके अतीचारहै, अर अतीचार नाम मर्यादके उल्लंघनेंका है, अर इनि पांचूं कर्मनितैं सम्यक्त्वका घात होयहै तातैं त्याज्यहै ॥४४॥ गाथा—

उवगूहणं ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा गुणा भणिदा।
सम्मत्तविसोहीए उवगूहणकारया चउरो ॥ ४५ ॥
उपगूहनं स्थितिकरणं वात्सल्यं प्रभावना गुणा भणिताः।
सम्यक्त्वविशुद्ध्यै उपगूहनकारकाः चत्वारः ॥ ४५ ॥

अर्थ—उपगूहन नाम आच्छादन करनेंका है तातैं धर्ममें तथा धर्मात्मामें अज्ञान तातैं तथा अशक्ततातैं कदाचित् कोई दोप लागया होय तौ धर्मतैं प्रीति करि दोपनिका आच्छादन करै सो उपगूहन गुणहै। बहुरि स्थिति नाम चिगतेकूं थांभनेंका है तातैं आप तथा और कोई धर्मात्मा रोगकी पीड़ा करि तथा आहार पान का अभाव करि तथा दुष्टकृत ताडन मारण करि तथा असहायताकरि तथा दुर्भिक्ष आदि उपद्रवनिकरि पीड़ितहुवा धर्मतैं चलायमान होताहोय ताकूं

धर्मका उपदेश देय करि थांभनां कि हे आत्मन् ! तथा हे साधो ! आप जिनेंद्रधर्म धारणकियो है सो कल्याणकारीहै तथापि वर्त्तमान में कछु दुःख प्राचीन कर्मका उदय करि आवैहै, जो अब व्रतसूं चलायमान होहुगे तौ हू कर्म छांडनें का नांहीं , अर दृढ रहौगे तौ हू कर्म छांडनेका नांही , तातै अब धर्मतैं चिगो मति, धर्ममैं दृढ रहैं वर्त्तमानकी वेदना तौ भोगेहीगे परंतु आगामी नवीन कर्मतो बंध नहीं करोगे , अर जो वर्त्तमानकी वेदनां सूं धर्मतैं चिगि जावोगे तौ भी उदय आया कर्म तौ रस दियें विनां छोडनेंका नांहीं क्योंकि कर्म तौ अचेतन है सो ये तुमारा विलापादि रुदन सुननेंका नांही तातैं विषाद करनां उद्यानमैं रुदन करनेंके समान हैं तातैं रुदन विलाप करनां वृथा है, यातैं भो धर्मके धारक ! सचेत होय धर्मधारण करो , अर और विचारो कि जो कायर होय धर्मतैं चलायमान होहुगे तौ धर्मको निंदा होयगी अर मिथ्यादृष्टी कहैंगे कि जिनमतकेधारक असै ही शिथिलाचारीहै जो परीषह आए धर्मतैं चलायमान होय है , अर गुरु कुल लज्जायमान होयगा तातैं स्थिर रहो , अर जो या कहो हो कि हमारे क्षुधातृषा रोग शीत उष्ण आदि वेदनां बहुत है तातैं ठहरयाजाय नांहीं तौ हू तुम ज्ञानी हो विचारो कि तिर्यंचगतिमैं तथा नरकगतिमै असी वेदनां कौनसी है जो तुमनें अनंत वार नहीं भोगी अर इहां वर्त्तमानसमयकी वेदनां कितनांकहै जातैं तुम असे विह्वल होते हो, या नरककी वेदनांतैं असंख्यातवें भागभी नहीं है , या वेदनां अति अधिक होवेगी तौ मरणही होवैगा मरणतैं कछु अधिक नहीं होणां है अर एकवार एक देहमैं मरण अवश्य होहीगा , अर मरणतैं डरि धर्मतैं चिगजावोगे तौ व ही तिर्यंचगतिके तथा नरकगतिके दुःख तथा निगोदमैं अनंतकालपर्यंत एक सा-

सोस्वास (श्वासोच्छ्वास) मैंअष्टादश जामण मरण करोगे , अर जो या समयमैं धर्यधारण आराधनांका शरणतैं मरण भी करोगे तौ आगामी होणहार अनंते जामणमरणतैं छूटि जावोगे तातै आराधनांका शरण ग्रहण करो , ऐसी असी वेदनां अनंतवार भोगीइत्यादि उपदेश देय थिरतेकूं थांभै। इहां काऊ कहै कि वर्त्तमानमैं रोग दरिद्र आदिकी वेदनां जिहि तिहि प्रकार योग्य अयोग्य उपाय करि मेट लेवैं तौ आगामी कालमैं धर्मसेवन निर्विघ्न तातैं होवै । याका उत्तर—सुख दुःखरूप वेदना जो है सो तौ साता असाता वेदनीय कर्मका उदयके आधीनहै , अर औषधि आदि उपायहै सो बाह्य निमित्त कारण है , जासमय प्राणी कै असातावेदनीयका उदय होयहै ता समय प्रत्यक्ष देखियेहै कि नाना प्रकारके वैद्य यंत्र मंत्र तंत्र औषधी अनेक विधानतैं करतें करतें रोग नांही मिटैहै उलटा वाही औषधितैं वधता देखियेहै , अर दरिद्रताके मेटनेंकूं अनंते जीव अनंते उपाय निमित्त देसांतरकूं जायहै अर घर घर प्रति स्वानकी नांई भटकते फिरैहै परंतु प्रवल असाताके उदय होतैं पिताके वचनतै पुत्रके अर पुत्रके वचनतैं पिताकै अर स्त्रीके वचनतैं भर्त्तारकै अर भर्त्तारके वचनतैं स्त्रीकै अंतरायही होयहै लाभ नहीं होयहै । अर प्रतिनारायणके साताके उदय होतैं तौ चक्ररत्न स्वयमेव उपजैहै ताका प्रभाव ऐसाहै कि त्रिखंडको राज्य करावै , अर असाताके उदय होत वोही चक्र वाको उरस्थल भेदै । अर जा नारायणकै तीन खंडको तौ राज्य अर एक कुलके छप्पनकोडि भाई हुते ते असाताके उदय आवत ही सर्व विलाय गये, अर जा समय साताको उदय होयहै ता समय विषभक्षणतैं वा शस्त्रघाततैं वा परवत पतनतैं वा शत्रुकृत अनेक उपद्रव आदि अनिष्ट संबंधतैं भी कछू बिगाड़ नाहीं होयहै । तातैं जा करि असाता आदि अशुभ कर्मको निर्जरा होय

सो मुख्य उपाय करनां अर बाह्य निमित्तकारणरूप योग्य औषधि आदि योग्य उद्यम करनां, अर जा करि सम्यक्त्वका घात होय सो उपाय कदाचित् ही नहीं करनां इत्यादिक उपदेश देय तथा आहार पान देय वैयावृत्त्य करै तथा देहकी सेवा करै कि हस्त पादादिकका मर्दन करनां पूंछनां मलमूत्रकफादिक शरीरके मल उठाय दूरि प्रासुक भूमिमैं क्षेपनां तथा देहका संकोचनां पसारनां कलोट लिवावना उठावनां बैठावनां शयन करावनां मलमूत्रादिककी बाधा मिटावनां निकट रहनां रात्रिमैं जागृत रहनां इत्यादि शरीरकी टहल करि जैसे रोगी आदि दुखियाका मन चलायमान नहीं होय अर धर्ममैं स्थिर होय तैसैं सेवा करनां। बहुरि तैसैं ही व्रती श्रावकनिमैं तथा अव्रत सम्यग्दृष्टीनिमैं कोऊ प्रकार दुःख आवै तौ तिनकूं धर्मोपदेश देय करि तथा शरीरमैं रोगादिक होय तौ शरीरकी सेवा करि तथा वस्त्र देनें करि आहार पान औषध देने करि आजीवका देनें करि धन देनें करि रहनेंको मकान देनें करि धर्ममैं स्थिरकरनां सो स्थिती करण अंग है बहुरि वात्सल्य नाम गौ वत्स समान प्रीति करनेंका है तात दर्शन ज्ञान चारित्र तप जे हैं तिनके विषैं तथा इनिके धारक धर्मात्मा पुरुष जे हैं तिनकै विषै प्रीति करनां सो वात्सल्य अंगहै, अर संसारी जीवनिकी स्त्री पुत्र मित्र कुटुंब धन शरीरादिकमैं अत्यंत प्रीति लगिरहीहै अर इनिके अर्थि धर्म बिगाड़ि हिंसा असत्य परधनहरण कुशील परिग्रहहरण इनिमैं अत्यंत प्रीति करैहै, रात्रि दिन देहकूं धोवनां स्नान पान करावनां इंद्रियनिका विषय सेवनां इत्यादि शरीरका सेवनमैं काल वितीत करैहै, तथा स्त्री पुत्र मित्रादिकनिकै अर्थि धनके उपार्जननिमित्त विदेशमैं धर्मरहितदेशनिमैं गमन करैहै, वन, पर्वत समुद्रनिमैं परिभ्रमण करैहै, संग्राममैं जा-

षै है, दुष्टनिकी सेवा करैहै, अभक्ष्य भक्षण करैहै, धर्मतें द्रोह करैहै, इत्यादिक नरक तिर्यंच गतिके कारणनिमैं वात्सल्य अंग रहित हुवा संता प्रवर्तै है, तातैं धर्म मैं वात्सल्यभाव करनां ही जीवका परमकल्याण है। बहुरि प्रभावना नाम प्रभाव प्रकट करनेका है, तातैं निर्दोष निर्ग्रंथ गुरु दयामयधर्मयुक्त अर्हंतभाषित आगमका श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन तथा यथावत पदार्थका जाननरूप सम्यग्ज्ञान तथा पापाचारका त्यागरूप शीलसहित सम्यक्चारित्र तथा द्वादश प्रकार अंतरंग बाह्य भेदयुक्त तप अंगीकार करै तथा इनका सत्यार्थरूप उपदेश ऐसैं प्रकट करै कि अन्यमती भी अहिंसाव्रत सत्य शील निर्लोभता विनय ज्ञानाभ्यास आदिकी दृढता देखि प्रशंसा करि कहै कि मार्ग तो जैनीनिकोही सत्यार्थ है इत्यादि प्रभावना करन है सो सम्यक्त्वकी शुद्धिताकै अर्थि है। ऐसैं उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्य प्रभावना ए च्यार गुण सम्यक्त्वके वधावनवारे हैं तातैं सम्यग्दृष्टीकै बहुत आदरतैं ग्रहण करनें योग्यहै ॥ ४५॥

गाथा—

अरहंतसिद्धचेइय सुदे य धम्मे य साहुवग्गे य।
आयरियमुवज्झाए सुपवयणे दंसणे चावि॥४६॥
भत्ती पूया वण्णजणणं च णासणमवण्णवादस्स।
आसादणपरिहारो दंसणविणओ समासेण॥ ४७॥
अर्हत्सिद्धचैत्येषु श्रुते च धर्मे च साधुवर्गे च।
आचार्योपाध्याययोः सुप्रवचने दर्शने चापि॥४६॥
भक्तिः पूजा वर्णजननं च नाशनं अवर्णवादस्य।
आसादनपरिहारः दर्शनविनयः समासेन ॥ ४७॥युग्मं

अर्थ—अरहंत सिद्ध तथा चैत्य कहिये इनके प्रतिबिंब तथा श्रुत कहिये जिनागम तथा धर्म कहिये उत्तमक्षमादिक दशलक्षणरूप भाव तथा साधुसमूह तथा आचार्य उपाध्याय तथा प्रवचन कहिये जिनेंद्रकी दिव्यध्वनि तथा सम्यग्दर्शन इनिके विषैं भक्ति कहिये गुणनिमैं अनुराग करि आनंदसहित उपासनां करनां तथा इनकी पूजा करनां, सो पूजा दोय प्रकार है एक द्रव्यपूजा दूसरी भावपूजा। तहां द्रव्यपूजा तौ अरहंतादिके निकट जलगंधाक्षत पुष्पादिक करि अर्घदान करनां है, अर भावपूजा उठि खड़ा होना प्रदक्षिणां करनां अंजुली करनां गुणस्मरण करनां गुणस्तवन करनां इत्यादि करनां है सो भावपूजा है। बहुरि वर्णजननं कहिये वर्ण जो यश ताका प्रकट करनां। बहुरि दुष्टजननि करि किया अवर्णवाद जो अपवाद ताका नाश करनां। बहुरि दर्शन की विराधनां का परिहार करनां इत्यादिक दर्शनविनय जाननां ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ गाथा—

सद्दहया पत्तियया रोचय फासं तहा पवयणस्स ।
सयलस्स जे णरा ते सम्मत्ताराहया होंति ॥ ४८ ॥
श्रद्धया प्रतीत्या रुच्या स्पर्शं तथा प्रवचनस्य ।
सकलस्य ये नराः ते सम्यक्ताराधकाः भवंति ॥ ४८॥

अर्थ—जे पुरुष संपूर्ण प्रवचनकूं श्रद्धान करै प्रतीति करै रुचि करै स्पर्श करै कि अंगीकार करै ते सम्यक्त के आराधक होय है।।४८।।

एवं दंसणमाराहंतो मरणे असंजदो को वि ।
सुविसुद्धतिव्वलेसो परीतसंसारओ होई ॥४६॥
एवं दर्शनं आराधयन् मरणे असंयतः कः अपि ।
सुविशुद्धतीव्रलेश्यः परीतसंसारिकः भवति ॥४६॥

अर्थ—या प्रकार दर्शन आराधना करतो कोई असंयमी भी मरण समय में अत्यंत शुद्ध तीव्र लेश्यावान होय तो अल्पसंसारी होय है। भावार्थ—कल्पवासी देवन में तथा उत्तम मनुष्यनि में अल्प भव धारण करै है॥ ४९॥

तिविहा सम्मत्ताराहणा य उक्कस्समज्झिमजहण्णा।
उक्कस्सा ए सिज्झदि उक्कस्स स सुक्कलेस्साए ॥५०॥
त्रिविधा सम्यक्त्वाराधना च उत्कृष्टमध्यमजघन्या।
उत्कृष्टा यः सिध्यति उत्कृष्टः सःशुक्कलेश्यया ॥५०॥

अर्थ—सम्यक्त आराधना उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि तीन प्रकार है। तिनिमें उत्कृष्ट शुक्लेश्यासहित उत्कृष्ट आराधनाकरि तो तद्भव निर्वाणनैं प्राप्त होय है॥ ५०॥

सेसा हु ति भवा सत्त मज्झमाए य सुक्कलेसाए।
संखेज्जा संखेज्जा भवा हु सेसा जहण्णाए॥५१॥
शेषाः भवंति भवाः सप्त मध्यमया च शुक्कलेश्यया।
संख्येयाऽसंख्येयाः भवाः स्फुटं शेषा जघन्या ॥५१॥

अर्थ—बहुरि शेषा कहिये मध्यम शुक्लेश्यासहित सम्यक्त आराधना करि उत्कृष्ट अपेक्षा सात भव धारण करि सिद्ध होय है। बहुरि शेषा कहिये जघन्य शुक्लेश्यासहित सम्यक्त आराधना का धारक अविरत सम्यग्दृष्टी जे हैं ते संख्यात तथा असंख्यात भवधारी होय है॥ ५१॥

उक्कस्सा केवलिणो मज्झिमया सेससम्मदिट्ठीणं।
अविरदसम्मादिट्ठिस्स संकलिट्ठस्स हु जहण्णा॥५२॥
उत्कृष्टा केवलिनः मध्यमा शेषसम्यग्दृष्टीनां ।
अविरतसम्यग्दृष्टेः संक्लिष्टस्य स्फुटं जघन्या ॥५२॥

अर्थ—उत्कृष्ट सम्यक्त अराधना तौ भगवान केवली कै होय है, अर मध्यम सम्यक्त आराधना अवशेष महाव्रती देशव्रतीनिकै होय है, अर जघन्य संम्यक्तआराधना संक्लेशसहित अविरतसम्यग्दृष्टीकै होय है ॥ ५२॥

वेमाणिय णरलोए सत्तट्ठभवेसु सुक्खमणुभूय ।
सम्मत्तमणुसरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा ॥५३॥
वैमानिकेषु नरलोके सप्ताष्टभवेषु सौख्यमनुभूय ।
सम्यक्त्वं अनुसरंतः कुर्वंति दुःखक्षयं धीराः ॥ ५३ ॥

अथ—धैर्यवान सम्यक्त आराधनान अनुसरन करते जीव वैमानिक देवनिके तथा उत्तम मनुष्यनिके सात आठ भवके विषै सुख अनुभव करि दुःखको क्षय करे है ॥ ५३॥

जे पुण सम्मत्ताओ पब्भट्ठा ते पमाददोसेण ।
भामंति सुभव्वा वि हु संसारमहण्णवे भीमे॥५४॥
ये पुनः सम्यक्त्वात् प्रभ्रष्टाः ते प्रमाददोषेण।
भ्राम्यंति सुभव्याःअपि स्फुटंसंसारमहार्णवे भीमे।५४
अर्थ—बहुरि जे जीव सम्यक्तर्तै भ्रष्ट भयेहै अर भ व्य है

तौ हू ते प्रमाद के दोष करि भयानीक संसाररूप महानसमुद्रमैं भ्रमण कर ही है। भावार्थ—भव्य है तो हू असावधानीतैं सम्यग्दर्शनतैं चिगि जाय तौ बहुरि सम्यक्तका मिलना बहुत कठिन है। जो तीव्रमिथ्यात्व हो जाय तौ अर्ध पुद्गल परिवर्त्तनमात्र काल त्रस स्थावर योनि मैं परिभ्रमण करै है। सो कैसा कहैं अर्द्ध पुद्गलपरिवर्त्तनमामैं काल अनंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी बितीत हो जाय है। तातैं सम्यग्दर्शन पाय प्रमादी होय बिगाड़नां बड़ा ही अनर्थ है ॥५४॥

संखिज्जमसंखिज्जगुणं वा संसारमणुसरित्तूणं।
दुक्खक्खयं करंति हु जे सम्मत्तेण णुसरंति॥ ५५॥
संख्येयगुणमसंख्येयगुणं वा संसारमनुसृत्य।
दुःखक्षयं कुर्वंति स्फुटं ये सम्यक्त्वे न अनुसरंति॥५५॥

अर्थ—जे जीव सम्यग्दर्शनकै विषैं न अनुसरंति कहिये नहीं गमन करहै कि नहीं प्रवर्त्तें हैं ते जीव संख्यात तथा असंख्यात भव संसारमैं परिभ्रमण करि दुःखको क्षय प्रकट शीघ्रही करहै।

भावार्थ—सम्यक्त ग्रहण करि अर याकै विषैं नहीं प्रवर्त्तकि बात चिगिजाय तौ संख्यात तथा असंख्यात भव धारि फेरि सम्यक्त पाय सिद्ध होय है॥ ५५॥

लद्धूण य सम्मत्तं मुहुत्तकालमवि जे परिपडंति।
तेसिमणंताणंतो ण भवदि संसारवासाद्धा॥ ५६॥
लब्ध्वा च सम्यक्त्वं मुहूर्त्तकालमपि ये परिपतंति।
तेषामनंतानंतो न भवति संसारवासाद्धा॥ ५६॥

अर्थ—बहुरि जे पुरुष अंतर्मुहूर्त्तकालमात्र भी सम्यक्त्वकूँ प्राप्त होय बहुरि सम्यक्त्वतें पडते हैं। तिन जीवनिकै भी अनंतानंतसंसारमें बसनें का काल नहीं होता है। भावार्थ—उत्कृष्ट संसार परिभ्रमण करै तौ अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तनकाल मात्र करै, अर जघन्य संसारपरिभ्रमण करै तौ अंतर्मुहूर्त्तकालमात्र करै कि संसारका अभाव करै ॥ ५६ ॥

तथा चारित्रसारमें;—

धारा—तत्र दर्शनिकः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः पंचगुरुचरणभक्तः सम्यग्दर्शनविशुद्धश्च भवति, जिनेन भगवताऽर्हता परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रंथलक्षणे मोक्षमार्गे श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ।

अर्थ—तिनि एकादश भेदनिमें दर्शन प्रतिमाको धारक जो है सो संसार शरीर भोगनितैं उदासीन है अर पंच परमगुरु का चरणको भक्त है सो सम्यग्दर्शन करि विशुद्ध है, क्योंकि जिनेंद्र भगवान अर्हंत परमेष्ठी का उपदेश्या निर्ग्रंथलक्षणमोक्षमार्गके विषैं श्रद्धान है सो सम्यग्दर्शन है ॥

तथा रत्नकरंडश्रावकाचारमें;—

श्लोक—सम्यग्दर्शनसंपन्नमपि मातंगदेहजं ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारांतरौजसं ॥ २८ ॥

अर्थ—चांडालकी देहमें उत्पन्न भया भी सम्यग्दर्शनसंयुक्त जीवनें जिनेंद्रदेव देव कहै है कि जैसें भस्ममें गूढ अंगाराका विषैं तेज है तैसें वाके अंतरंगके विषैं सम्यग्दर्शनरूप तेज जाज्वल्यमान

है । यातैं;—

श्लोक—न सम्यक्त्वसमं किंचित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—शरीरधारीनिकै तीन जगतके विषैं तीनकालमैं सम्यक्त्वसमान और कोई कल्याण नहीं है, अर मिथ्यात्वसमान और अकल्याण नहीं है ॥ ३४ ॥

आर्या छंद ।

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजंति नाप्यव्रतिकाः॥३५

अर्थ—अव्रती भी सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध जे हैं ते नारकपणांनैं तिर्यंचपणांनैं, नपुंसकपणांनैं, स्त्रीपणांनैं, नीचकुलपणांनैं, विडरूपपणांनैं, अल्प आयुपणांनैं, दरिद्रीपणांनैं, नहीं प्राप्त होतहै । अर या श्लोकमैं चकार शब्दतैं जनावैहै कि भवनत्रिकमैं भी नहीं उपजै है, अर कल्पवासीनिमैं भी इंद्र सामानिक, त्रायस्त्रिंशत्, लोकपाल आदि महर्धिकनि मैं ही उपजैहै ऐसा अन्यग्रंथनितैं अर्थ पुष्ट होय है ॥ ३५ ॥

ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः ।
महाकुला महार्था मानवतिलका भवंतिदर्शनपूताः॥३६॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन करि पवित्र जीव जे हैं ते प्रताप, तेज,
विद्या, वीर्य, यश, वृद्धि, विजय, विभव, इनि करि सहित होयहै तथा महानकुलवान होयहै तथा महार्था कहिये महान प्रयोजनवान अथवा महान् है आश्चर्यकारिणी विभव संपदा जिनकै ऐसे मनुष्यनिमैं तिलक समान होय है ॥ ३६ ॥

आर्या—

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः ।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमंते जिनेंद्रभक्ताःस्वर्गे ३७

अर्थ—जिनेंद्रकी है भक्ति जिनकै ऐसे पुरुष जे हैं ते सम्यक्त्वके अष्ट गुणनिकी पुष्टताकरि सतुष्ट अर सम्यग्दर्शनकरि विशेषपणा इष्ट जिनकै अर प्रकृष्ट शोभा जो सम्यग्ज्ञानीनि करि भी सराहने योग्य प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्यादि गुण तिन करि संयुक्त ऐसे स्वर्गके विषै देव होय, देवनिकी सभामें तथा अप्सरानिकी सभामें चिरकाल रमैं है ॥ ३७ ॥

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाःसर्वभूमिपतयश्चक्रं ।
वर्त्तयितुं प्रभवंति च स्पष्टदृशःक्षत्रमौलिशेखरचरणाः।

अर्थ—यथावत् सिद्ध भयो है श्रद्धान जिनकै ऐसे जीव जे हैं ते क्षत्रियनिमें मुकुटसमान राजेंद्र जे हैं तिनके मुकुट के विषैं है चरण जिनके ऐसे होय हैं। भावार्थ—जिनके चरणनिमें राजेंद्र मस्तक नवावै है, बहुरिनवनिधि चतुर्दशरत्ननिके अधिपति ऐसे सर्वषट् खंड पृथ्वी के स्वामीनिका चक्रनैं प्रवर्त्तायवेकू समर्थ चक्रवर्ति होय है ॥३८॥

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादांभोजाः
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवंति लोकशरण्याः

अर्थ—सम्यग्दर्शन करि भले प्रकार निर्णय किये हैं पदार्थ जिननैं ऐसे पुरुष जेहैंते अमरपति कहिये कल्पवासी देवनि के इंद्र अर असुरपति कहिये चमरेंद्र वैरोचन आदि भवनवासीनिके इंद्र अर नरपति कहिये चक्रवर्त्ति जे हैं तिन करि तथा संयमके धारक मुनि

जेहैं तिनके पति गणधर देव जे हैं तिनकरि नमस्कार करने योग्य हैं चरणकमल जिनके असे धर्मचक्रके धारक समस्त लोकनिके शरणाधार योग्य तीर्थंकर आदि केवली भगवान होय हैं॥ ३९॥

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशंकं।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजंति दर्शनशरणाः॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन ही है शरण जिनके असे पुरुष जे हैं ते जरारहित, रोगरहित, नाशरहित, शोकरहित, भयरहित, शंकारहित, अर निर्मल हदनैं प्राप्त भयो है सुख जाविषैं असो मोक्ष जो है ताहि भजै हैं कि भोगे हैं ॥ ४०॥

देवेंद्रचक्रमहिमानममेयमानं,
राजेंद्रचक्रमवनींद्रशिरोर्चनीयं।
धर्मेंद्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं,
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥४१॥

अर्थ—जिनेंद्रकी है भक्ति जाकै असो भव्य जो है सो अप्रमाण है मान जिनविषैं असे देवेंद्रनिके चक्रकी महिमा जो है ताहि प्राप्त होय करि तथा पृथ्वी के इंद्र जे हैं तिनके मस्तकनि करि पूजनीक असो राजेंद्रचक्र जो है ताहि प्राप्त होय करि तथा नम्र कीयो है सर्व लोक जानैं असो धर्मेंद्रचक्र जो है ताहि प्राप्त होय करि मोक्षनैं प्राप्त होत है ॥ ४१॥

तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें—

गाथा—समद्दंसणसुद्धो रहिओ मज्जाइथूलदोसेहिं।
संस्कृत—सम्यग्दर्शनशुद्धः रहितः मद्यादिस्थूलदोषैः

अर्थ—मदिरानैं आदि देय मांस, सहत, ऊमरफल, कठूमर फल, वड़फल, पीपलकाफल, पाकरफल आदिके ग्रहणरूप स्थूल दोषनिंद करि रहित होय सो सम्यग्दर्शन करि शुद्ध है। इहां स्थूल पदतैं ऐसा अभिप्राय आमै है कि जामैं आपका तथा परका घात होय सो सर्वदोष सम्यग्दृष्टी सर्वदा त्यागै॥ तथा, गाथा;—

चउगदि भव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाण पज्जत्तो।
संसारतडे णियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥ ३१२॥
चतुर्गति भव्यः संज्ञी सुविशुद्धः जागरमाणः पर्याप्तः
संसारतटे निकटः ज्ञानी प्राप्नोति सम्यक्त्वम् ॥३१२॥

अर्थ—च्यारू गतिमें भव्य होय सैनी होय अर सुविसुद्ध कहिये जाकै सर्वघाती प्रकृतिनिके उदयका तौ अभाव होय अर देशघाती प्रकृतिनिका मंद उदय होय असैं विशेषपणैं शुद्ध होय, जागृत होय, पर्याप्त होय, संसारके तटकै विषैं निकटवर्ती होय ज्ञानोपयोगयुक्त होय सो जीव सम्यक्तनैं प्राप्त होय है॥३१२॥

सत्तण्हं पयडीणं उवसमदो होदि उवसमं सम्मं।
खयदो य होइ खइयं केवलिमूले मणुस्सस्स ॥३१३॥
सप्तानां प्रकृतीनां उपशमतः भवति उपशमं सम्यक्त्वं
क्षयतः च भवति क्षायिकं केवलिमूले मनुष्यस्य॥३१३॥

अर्थ—च्यारि तौ अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभरूप कषाय अर एक मिथ्यात्व प्रकृति एक सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृति एक सम्यक्प्रकृति ये सात प्रकृति जे हैं तिनके उपशमतैं उपशमसम्यक्त होय है अर क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त जो है सो केवली श्रुतकेवलीनि

के चरणारविंदके निकटमैं पूर्वोक्त सातप्रकृतिनिके क्षयतैं मनुष्य हीकै होय है ॥ ३१३ ॥

अणउदयादो छण्हं सजाइरूवेण उदयमाणाणं ।
सम्मत्तकम्म उदए खयउवसमियं हवे सम्मं ॥३१४॥
अनुदयतः षण्णां स्वजातीयरूपेण उदयमानानां ।
सम्यक्त्वकर्मण उदयात् क्षयोपशमकं भवति सम्यक्त्वं॥

अर्थ—अपनी जातिका स्वरूपकरि उदयमान जे छहूं प्रकृति तिनिका उपशमतैं अर सम्यक्त्व कर्मके उदयतैं होतसंतै क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होय है। भावार्थ—अपनां अपनां स्वरूप करि प्रकट होती ऐसी जे च्यारूं तौ अनंतानुबंधी कषाय अर मिथ्यात्व नामा एक अर सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्वनामा एक ऐसैं छहूं प्रकृतिनिका नहीं उदय होवातैं अर एक सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतैं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होय है ॥ ३१४ ॥ गाथा—

गिण्हदि मुंचदि जीवो वे सम्मत्ते असंखवाराओ ।
पढमकसायविणासं देसवयं कुणइ उक्कस्सं ॥३१५॥
गृह्णाति मुंचति जीवः द्वे सम्यक्त्वे असंख्यवारान् ।
प्रथमकषायविनाशं देशव्रतं करोति उत्कृष्टम् ॥३१५॥

अर्थ—यो जीव उपशम तथा क्षयोपशम ये दोय सम्यक्त्व हैं तिनिनैं असंख्यात वार ग्रहण करै है अर छोड़ै है, अर प्रथम कषाय जो अनंतानुबंधी कषाय ताको विनाश कहिये विसंयोजन जो है ताहि असंख्यात वार करै है। इहां विसंयोजन नाम अनंतानुबंधीरूप कषायनैं अप्रत्याख्यान तथा प्रत्याख्यान तथा संज्वलन रूप

परिणमावनेंका जाननां। अर उत्कृष्टपणें देशव्रतनैं असंख्यात वार ग्रहण करै है अर छोड़े है॥ ३१५॥ गाथा—

जो तच्चमणेयंतं णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं।
लोयाण पण्हवसदो ववहारपवत्तणट्टं च॥ ३१६॥
यः तत्वमनेकांतं नियमात् श्रद्दधाति सप्तभंगैः।
लोकानां प्रश्नवशात् व्यवहारप्रवर्त्तनार्थं च॥ ३१६॥

अर्थ—जो लोकनिके प्रश्नके वशतैंअर व्यवहारके प्रवर्त्तनके अर्थि सप्तभंगनि करि नियमतैं अनेकांतस्वरूप तत्वनें श्रद्धान करै है॥ ३१६॥ गाथा—

जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादिणवविहं अत्थं॥
सुदणाणेण णएहिं य सो सद्दिट्ठो हवे सुद्धो॥ ३१७॥
यः आदरेण मन्यते जीवाजीवादिनवविधं अर्थं।
श्रुतज्ञानेन नयैः च सः सद्दृष्टिः भवेत् शुद्धः॥ ३१७॥

अर्थ—अर जो आदर करि जीव अजीव आदि नव प्रकार पदार्थनिनैं श्रुतज्ञान करि तथा नयन करि मानै है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है॥ ३१७॥ गाथा—

जो ण य कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्वअत्थेसु।
उवसमभावे भावदि अप्पाणंमुणदि तिणमत्तं॥ ३१८॥
यः न च करोति गर्वं पुत्रकलत्रादिसर्वार्थेषु।
उपशमभावे भावयति आत्मानं मनुते तृणमात्रं॥ ३१८॥

अर्थ—अर जो पुरुष पुत्र कलत्र आदि सर्व पदार्थनिकै विषैं गर्व नहीं करै है अर उपशमभावमैं अनुभव करै है अर आपनैं तृण

समान मानै है ॥ ३१८ ॥ गाथा—

विसयासत्तो वि सया सव्वारंभेसु वट्टमाणो वि।
मोहविलासो एसो इदि सव्वं मण्णदे हेयं ॥३१९॥
विषयासक्तः अपि सदा सर्वारंभेषु वर्त्तमानः अपि।
मोहविलासः एषः इति सर्वं मन्यते हेयम् ॥ ३१९॥

अर्थ—अर विषयनिमैं आशक्त है तौ हू तथा सदा काल आरंभमैं प्रवर्त्तै है तौ हू यो मोहको विलास है या प्रकार सर्व विषयनिवै तथा आरंभरूप प्रवृत्तिनैं त्यागिवे योग्य मानैं है ॥ ३१९ ॥

उत्तमगुणगहणरओ उत्तमसाहूण विणयसंजुत्तो।
साहम्मिए अणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥३२०॥
उत्तमगुणग्रहणरतः उत्तमसाधूनां विनयसंयुक्तः।
साधर्मिषु अनुरागी सः सद्दृष्टिः भवेत् परमः ॥३२०॥

अर्थ—अर जो उत्तम गुणनिके ग्रहणमैं प्रीतिवान् है तथा उत्तम साधूनिके विनयसंयुक्त है तथा साधर्मीनिके विषैं अनुरागी है सो परम सम्यग्दृष्टी होय है ॥ ३२० ॥ गाथा—

देहमिलियं पि जीवं णियणाणगुणेण जो मुणदि भिण्णं।
जीवमिलियं पि देहं कंचुइसरिसं वियाणाई॥३२१॥
देहमिलितं अपि जीवं निजज्ञानगुणेन यः मनुते भिन्नं
जीवमिलितं अपि देहं कंचुकिसदृशं विजानाति ३२१

अर्थ—अर जो देह करि मिलि रह्या भी जीवनैं निजज्ञान गुण करि देहतैं भिन्न मानैं है अर जीवकरि मिलि रह्या भी देहनैं कंचुकी समान भिन्न जानैं है ॥ ३२१ ॥ गाथा—

णिज्जियदोसं देवं सव्वजीवाण दयापरं धम्मं।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी।।३२२।
निर्जितदोषं देवं सर्वजीवानां दयापरं धर्मं।
वर्जितग्रंथं च गुरुं यः मन्यते सः खलु सद्दृष्टिः।।३२२।

अर्थ—दूरि भये हैं दोष जाके ऐसा देवनैं तथा सर्वजीवनिकी दया है प्रधान जामैं ऐसा धर्मनैं तथा वर्जित कहिये त्यागे हैं सर्व परिग्रह जानैं ऐसा गुरुनैं जो मानैं है सो प्रकट सम्यग्दृष्टी है।।३२२।

दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी।।३२३।।
दोषसहितं अपि देवं जीवहिंसादिसंयुतं धर्मं।
ग्रंथासक्तं च गुरुं यः मन्यते सः खलु कुदृष्टिः।।३२३।।

अर्थ—दोषनि सहित हू देवनैं, अर जीवहिंसासंयुक्त धर्म नैं अर परिग्रहमैं आसक्त ऐसा गुरुनैं जो मानैं है सो प्रकट कुदृष्टी कहिये मिथ्यादृष्टी है।। ३२३।। गाथा—

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि।। ३२४।
न च कः अपि ददाति लक्ष्मीं न कः अपि जीवस्य करोति उपकारं।
उपकारं अपकारं कर्म अपि शुभाशुभं करोति।।३२४।।

अर्थ—अर या जीवकूं कोई भी लक्ष्मी नहीं देवै है, अर कोई भी या जीवको उपकार नहीं करै है, अर उपकार तथा अपकार

शुभाशुभ कर्म ही करे है ॥ ३२४ ॥ गाथा—

भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी ।
तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतेइ सद्दिट्टी ॥ ३२५॥
भक्त्यापूज्यमानःव्यंतरदेवःअपि ददाति यदि लक्ष्मीं।
ततः किं धर्मः क्रियते एवं चिंतयति सदृष्टिः ॥३२५।

अर्थ—जो भक्ति करि पूज्या थका व्यन्तरदेव ही लक्ष्मी देवै है तो धर्म काहेकूं करिये या प्रकार सम्यग्दृष्टी चितवन करै है ॥३२५॥

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अह व मरणं वा ॥३२६॥
यत् यस्य यस्मिन् देशे येन विधानेन यस्मिन् काले ।
ज्ञातं जिनेन नियतं जन्म वा अथवा मरणं वा ।३२६।
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि ।
को सक्कइ चालेउं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥३२७।
तत्तस्य तस्मिन् देशे तेन विधानेन तस्मिन् काले ।
कःशक्नोति चालयितुं इंद्रः वा अथ जिनेंद्रः वा।३२७।युग्मं

अर्थ—जो जाकै जा देशमैं जा प्रकार करि जा कालमैं जिनेंद्रदेवनैं नियम करि जन्म अथवा मरण जान्या है सो ताकै ता देशमैं तिहि प्रकार करि ता कालमैं होहि है, ताहि चलायमान करनेंकूं इन्द्र अथवा जिनेन्द्र आदि कौन समर्थ है; भावार्थ—कोइ भी समर्थ नहीं है ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ गाथा—

एवं जो णिच्छयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्टी सुद्धो जो संकदि सो हु कुद्दिट्टी ॥३२८॥

एवं यः निश्चयतः जानाति द्रव्याणि सर्वपर्यायान् ।
सःसम्यग्दृष्टिःशुद्धःयःशंकते सः खलु कुदृष्टिः॥३२८॥

अर्थ—या प्रकार निश्चयतैं द्रव्यनिनैं तथा सर्व पर्यायनिनैं जो जानैं है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है अर जो शंका करै है सो प्रकट कुदृष्टी है ॥ ३२८ ॥ गाथा—

जो ण वि जाणइ तच्चं सो जिणवयणे करेइ सद्दहणं
जं जिणवरेहिं भणियं तं सव्वमहं समिच्छामि।३२९।
यः न अपि जानाति तत्त्वं सःजिनवचने करोतिश्रद्धानं
यत् जिनवरैःभणितं तत् सर्वमहं स्पृहयामि॥३२९॥

अर्थ—जो तत्त्वनं नहीं जानैं है सो जिनवचनकै विषै श्रद्धान करै है कि जो जिनेन्द्रनैं कह्या है सो मैं सर्व अंगीकार करूं हूं। अर्थात् तत्त्वनैं नहीं जानैं है तो हू जिनवचनमैं श्रद्धान करै है सो सम्यग्दृष्टी है ॥ ३२९ ॥ गाथा—

रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।
रिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥३३०॥
रत्नानां महारत्नं सर्वयोगानां उत्तमं योगं ।
ऋद्धीनां महाऋद्धिःसम्यक्त्वं सर्वसिद्धिकरं ॥ ३३० ॥

अर्थ—रत्ननिकै विषैं महारत्न है तथा सर्व योगनिकै विषैं उत्तमयोग है तथा ऋद्धिनिकै विषैं महाऋद्धि है, ऐसैं सर्वसिद्धिको कर्ता सम्यग्दर्शन है ॥ ३३० ॥ गाथा—

सम्मत्तगुणपहाणो देविंदणरिंदवंदिओ होदि ।
चत्तवयो वि य पावइ सग्गसुहं उत्तमं विविहं ।३३१।

सम्यक्तगुणप्रधानः देवेंद्रनरेंद्रवंदितः भवति।
त्यक्तव्रतोऽपि च प्राप्नोति स्वर्गसुखं उत्तमंविविधं।३३१

अर्थ—सम्यक्त गुण करि प्रधान पुरुष जो है सो देवेन्द्रनिकरि तथा नरेंद्रनि करि वंदनीक होय है, अर व्रतरहित भी सम्यग्दृष्टी जीव स्वर्गसंबंधी नाना प्रकारके उत्तम सुख पावै है ॥ ३३१ ॥

सम्माइट्ठी जीवो दुग्गइहेदुं ण बंधदे कम्मं।
जं बहुभवेसु बद्धं दुक्कम्मं तं पि णासेदि ॥ ३३२ ॥
सम्यग्दृष्टिः जीवः दुर्गतिहेतु न बध्नाति कर्म।
यत् बहुभवेषु बद्धं दुष्कर्म तदपि नाशयति ॥३३२॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव दुर्गतिको कारणभूत कर्म नहीं बांधै है, अर जो अनेक जन्मनिकै विषैं बांध्यो हुवो कर्म है सो हू नाश करै है ॥ ३३२ ॥ गाथा—

बहुतससमण्णिदं जं मज्जं मंसादि णिंदिदं दव्वं।
जो ण य सेवदि णियमा सो दंसणसावओ होदि।३३३।
बहुत्रससमन्वितं यत् मद्यं मांसादि निंदितं द्रव्यं।
यः न सेवते नियमात् सः दर्शनश्रावकः भवति ॥३३३॥

अर्थ—बहुतत्रस जीवनि करि संयुक्त मदिरा जो है ताहि तथा मांस आदि निंद्य वस्तु जो है ताहि जो नियमतैं नहीं सेवै है सो सम्यग्दर्शन को धारक श्रावक होय है। भावार्थ—सप्त तत्त्वनैं तथा देव गुरु धर्मका स्वरूपनैं श्रद्धान करतो संतो अभक्ष्यको त्याग करै सो सम्यग्दृष्टी है ॥ ३३३ ॥ गाथा—

दिढचित्तो जो कुव्वदि एवं पि वयं णियाणपरिहीणो।
वेरग्गभावियमणो सो वि य दंसणगुणो होदि ॥३३४॥
दृढचित्तः यः करोति एवं अपि व्रतं निदानपरिहीणः।
वैराग्यभावितमनाः सः अपि च दर्शनगुणः भवति ३३४

अर्थ—जो दृढचित्तको धारक निदानरहित वैराग्यभावित मन हुवो संतो व्रत करै सो हू सम्यग्दर्शनका ही गुण है ॥ ३३४॥
तथा गोमटसारमें ;— गाथा—

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं ।
चलमलिणमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदू ॥ २५ ॥
सम्यक्त्वदेशघातिकस्योदयात् वेदकं भवेत् सम्यक्त्वं।
चलं मलिनं अगाढं तत् नित्यं कर्मक्षपणहेतु ॥ २५॥

अर्थ—सम्यक्त्वके एकदेशकूं घात करनेंवारी सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृति जो है ताके उदयतें वेदक सम्यक्त्व होय है सो चल मलिन अगाढ दोष सहित होय है सो भी निरंतर कर्मके खिपावणेंकूं कारणभूत है । इहां चल मलिन अगाढ शब्दका अभिप्राय टीकाकारनें ऐसा लिखा है कि अपनें कराये अरहंत प्रतिमादिकके विषैं अपयेम को बुद्धिकरि कहै कि या प्रतिमा हमारी है, अर अन्यके कराये अरहंतप्रतिमादिकके विषैं परकीयपणांकी बुद्धि करि कहै कि ये प्रतिमा फलाणे को है ऐसैं भेदनें त चल कहिये है । तथा जैसें कीट कालिमादि मलसहित सुवर्ण उत्पन्न होय है तैसें शंकादिक सम्यक्त्वके मल हैं तिनमैं कोई कदाचित् किंचित् सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतें मिलै है तातैं अकलंक माहात्म्य वेदकसम्यक्त्व नाम पावै है तातैं मळसंग

करि मलिन उपजत होय है ऐसा कहा है। तथा सर्व अर्हंतपरमेष्ठी- निकै अनंतशक्तिपणामें समान है तौ भी शांतिकर्मके विषैं शांतिक्रि- याके अर्थि शांतिनाथ देव ही समर्थ है, अर या विघ्नविनाशनादि कर्मके विषैं विघ्नविनाशनादि क्रियाके अर्थि पार्श्वनाथदेव ही समर्थ है इत्यादि प्रकार करि श्रद्धानकी सिथलताका सद्भावतैं जैसैं वृद्धपुरुष- का हाथमैं प्राप्त भई लाठी सिथल संबंध करि अगाढ रहै तैसैं ही वेदकसम्यक्तनैं भी अगाढ रूपही जाननां ॥ २५ ॥

सत्तण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य।
विदियकसायुदयादो असंजदो होदि सम्मो य ॥२६॥
सप्तानां उपशमतः उपशमसम्यक्त्वंक्षयात्तु क्षायिकं च।
द्वितीयकषायोदयात्असंयतः भवति सम्यक्त्वं च।२६।

अर्थ—अनंतानुबंधी क्रोधमानमाया लोभरूप तौ च्यार कषाय अर मिथ्यात्व सम्यक् मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति इन सप्त प्रकृति- निका उपशमतैं औपशम सम्यक्त होयहै, अर उनहीं सप्त प्रकृतिनिके क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त होय है, अर दूसरी कषाय जो अप्रत्याख्या- नावरण क्रोध मान माया लोभ तिनमैं किसी एकका उदयतैं असं- यतसम्यग्दृष्टी श्रावक होय है ॥ २६ ॥ गाथा—

णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे चावि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥२९॥
नो इंद्रियेषु विरतः नो जीवे स्थावरे त्रसे चापि।
यः श्रद्धाति जिनोक्तं सम्यग्दृष्टिः अविरतः सः।२९।

अर्थ—जो पांचूं इंद्रिय अर मन इनि छहूंनिके विषयनितैं

विरक्त नांहीं अर पांच थावर अर त्रस इनि छहूं कायके जीवनिकी हिंसामैं विरक्त नांहीं, अर केवल जिनेंद्रभाषित आगमनैं श्रद्धान करै है सो अविरत सम्यग्दृष्टी श्रावक है ॥ २९ ॥

तथा गोमट्टसारका सम्यक्त्वमार्गणांमैं; गाथा—

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु ।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ॥ ६४५ ॥
दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातः तु ।
मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापकः भवति सर्वत्र ॥६४५॥

अर्थ—दर्शनमोहकी क्षपणाका आरंभक तौ कर्मभूमिका उपज्या मनुष्य ही केवलीकै पादमूलविषैं ही होय है, अर निष्ठापक सर्वत्र च्यारूं गतिनि विषैं ही होय है ॥ ६४५ ॥ गाथा—

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ।
तं खाइय सम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदू ॥ ६४६ ॥
क्षीणे दर्शनमोहे यत् श्रद्धानं सुनिर्मलं भवति ।
तत् क्षायिकं सम्यक्त्वं नित्यं कर्मक्षपणहेतु ॥ ६४६ ॥

अर्थ—दर्शन मोहनीयको क्षय होतैं जो निर्मल श्रद्धान होय सो कर्मक्षय को कारण अविनश्वर क्षायिक सम्यक्त है ॥ ६४६ ॥

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि एक्केव तदिय तुरियभवे ।
णादिकामदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेस सम्मं वा।१।
दर्शनमोहे क्षपिते सिध्यति एकस्मिन् वा तृतीये तुर्ये भवे
नातिक्रामति तुर्यभवं न विनश्यति शेषसम्यक्त्वं इव।१।

अर्थ—दर्शनमोहको क्षय होतसंत तिसही भवमें सिद्ध होय है वा तीसरा भवमें सिद्ध होय है वा चतुर्थ भवमें सिद्ध होय है चतुर्थभवनैं नहीं उल्लंघन करै है अर उपशमसम्यक्त क्षयोपशमसम्यक्तकी नांई उत्पन्न भये पीछे नाशकूं नहीं प्राप्त होय है ॥ १ ॥ तथा—

पद्मनंदिपंचविंशतिकायां उपासकसंस्कारनिरूपणे;—

श्लोक—जीवपोतो भवांभोधौ मिथ्यात्वादिकरंध्रवान्।
आश्रवंति विनाशार्थं कर्मभिः सुचिरं भ्रमात् ॥५३॥

अर्थ—मिथ्यात्व अविरत कषाय योगरूप छिद्रयुक्त जीवस्वरूप जिहाज जो है सो संसारसमुद्रकै विर्षे भ्रमात् कहियें संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप भ्रमतैं सुचिरं कहिये बहुत काल पर्यंत विनाशकै अर्थि कर्मरूप जलनैं आश्रवंति कहिये अंगीकार करै है तातैं मिथ्यात्वादिक सर्वथा त्याज्य है ॥ ५३ ॥

ऐसैं उमास्वामि१ पूज्यपादस्वामि२ कुंदकुंदस्वामि३ जिनसेनाचार्य४ समंतभद्रस्वामि५ शिवायनजी६ स्वामिकार्तिकेयजी७ नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्ती८ पद्मनंदिस्वामि९ अमृतचंद्रस्वामि१० आदि आचार्यनिनैं सर्वग्रंथनिमैं सर्वधर्मको मूल सम्यग्दर्शन कह्यो है ॥

प्रश्न—तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण सम्यक्तकै अर आपा परका श्रद्धान लक्षण सम्यक्तकै एकता कैसैं रहैगी।

उत्तर—इहां नयविवक्षा है और कछु भेद नहीं है, सो ऐसैं है—सप्ततत्त्वनिमैं ज्ञेय, उपादेय, हेय, भेद करि तीन प्रकार है। तिनमैं ज्ञेय रूप तौ सप्त ही तत्त्व हैं अर जीव, संवर, निर्जरा, ये तीन उपादेय हैं अर मोक्ष सर्वथा उपादेय है क्योंकि ये निजरूप है यातैं। अर अजीव, आश्रव, बंध ये तीन हेय हैं क्योंकि पररूप हैं यातैं।

भावार्थ—निजरूप आदेय है पररूप अनादेय है यामैं तत्त्व दोय ही हैं यातैं दोय ही लक्षण एक अभिप्रायके सूचक हैं।

इनिकी तौ विवक्षा जानी परन्तु समयसारकी टीकामैं अमृतचंद्रजी कलशरूप काव्य ऐसा कह्या है। काव्य—

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः,
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यःपृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं।
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसंततिमिमामात्मायमेकोऽस्तुनः॥६॥

अर्थ—शुद्धनयतैं एकत्वमैं निश्चल अर ज्ञानगुणकरि व्याप्त अर अन्य द्रव्यनितैं भिन्न अर पूर्णज्ञानघन ऐसा या आत्माको जो दर्शन है सो ही इहां सम्यग्दर्शन है, अर जो सम्यग्दर्शन है सो ही निश्चयतैं आत्मा है तातैं या नव तत्वनिकी संतति जो है ताहि छोडि हमारै एक यो आत्मा ही है॥ ६॥

प्रश्न—यामैं शुद्धात्मतत्वकी श्रद्धाहीनैं सम्यक्त कह्या अर नव तत्वकी संततिनैं त्यागी या वचनकी एकता कैसैं रहेगी।

उत्तर—इहां भी नयविवक्षानैं भेदकूं अत्यंत गौणकरि अभेदकूं मुख्यकरि कह्या है, सो ऐसैं है—सप्ततत्वमैं जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये च्यारि उपादेय हैसो च्यारूं अभेदकी अपेक्षा एक आत्मा ही है सो ही आत्मा यामैं उपादेय कह्या है तातैं दोऊ लक्षण एक ही अभिप्रायके सूचक हैं॥

प्रश्न—ये भी विवक्षा जानीं परंतु कार्तिकेयस्वामीदेव, गुरु, धर्मका श्रद्धानकूं ही सम्यक्त कह्या सो तत्वश्रद्धानलक्षणतैं कैसैं एकता पावैगा।

उत्तर—सप्त तत्वनिमैं च्यार तौ उपादेय है अर तीन हेय है, अर तत्व नाम स्वभाव का है अर अर्थ नाम पदार्थ का है, अर स्वभाव सहित होय सो तत्वार्थ है अर तत्वार्थ मैं मुख्य मोक्ष है ताका स्वभाव सर्वज्ञवीतरागपणां है, ता स्वभावसहित अरहंत सिद्ध हैं सो ही निर्दोष देव हैं, तातैं जाके मोक्षतत्वकी श्रद्धा है ताहीकै अरहंत सिद्धकी श्रद्धा है अर अरहंत सिद्धकी श्रद्धा है ताकै मोक्षतत्वकी श्रद्धा है, ऐसैं दोऊनिकी एकता है। अर तत्वार्थ मैं प्रथम जीव है ताको स्वभाव रागादिघातरहित शुद्ध चेतन्य प्राणमय है, ता स्वभावसहित अहिंसा धर्म है सो ही धर्मकी श्रद्धा है, तातैं जाकै शुद्ध जीवकी श्रद्धा है ताहीकै अहिंसाधर्मकी श्रद्धा है, अर अहिसा धर्मकी श्रद्धा है ताहीकै शुद्धजीवकी श्रद्धा है क्योंकि "प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा" या वचनतैं रागादिभाव होत तो प्रमाद होय है, अर उस प्रमादतैं शुद्धचेतन्य प्राणका घात कहिये रागादिकका होना है सो ही हिंसा है तातैं अहिंसारूपही जीव तत्व है। अर उपादेयतत्वमैं संवरनिर्जरा है तिनिको स्वभाव रत्नत्रयरूप है, अर तातैं स्वभावसहित आचार्य उपाध्याय साधु हैं सो ही निर्ग्रंथ गुरु हैं तातैं जाकै संवर निर्जराकी श्रद्धा है ताहीकै निर्ग्रंथ गुरुकी श्रद्धा है अर निर्ग्रंथ गुरुकी श्रद्धा है ताहीकै संवर निर्जराकी श्रद्धा है ऐसैं दोऊनिकी एकता है। अर हेयतत्वमैं अजीव, आश्रव, बंध हैं अर तिन सहित कुदेव, कुगुरु, कुधर्म हैं तातैं जाकै अजीव, आश्रव, बंधकी हेयरूप श्रद्धा है ताहीकै कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी हेयरूप श्रद्धा है, अर जाकै कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी हेयरूप श्रद्धा है ताहीकै अजीव, आश्रव, बंधकी हेयरूप श्रद्धा है। ऐसैं इनि तीननिकी एकता है। या प्रकार नयविवक्षातैं सूत्रकार उमास्वा-

मि के वचनके अर कार्तिकेयस्वामीके वचनके एकता ही जाननी।

प्रश्न—ये भी विवक्षा जानी परंतु आपा परकी श्रद्धालक्षणके अर देव, गुरु, धर्मको श्रद्धालक्षणके एकता कैसे है।

उत्तर—निजद्रव्य, निजभाव उपादेय है सोही निजद्रव्य निजभावके धारक अरहंतादिक उपादेय हैं, अर परद्रव्य, परभाव हेय हैं सोही परद्रव्य, परभावके धारक कुगुरु, कुदेव, कुधर्म हेय हैं; तातैं जाके अरहंतादिककी श्रद्धा है ताहीके आपाकी श्रद्धा है अर जाके आपाकी श्रद्धा है ताहीके अरहंतादिकको श्रद्धा है।

सो ही प्रवचनसारमें कहा है; गाथा;—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥
यः जानाति अर्हंतं द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः।
सः जानाति आत्मानं मोहः खलु याति तस्य लयं॥८०

अर्थ—जो पुरुष द्रव्यपणांकरि तथा गुणपणांकरि तथा पर्यायपणांकरि अरहंतनै जाणै है सो आत्मानैं जाणै है, अर आत्मानैं जाणै है ताकै निश्चय करि मोह नाशनैं प्राप्त होय है॥

टीका—यो हि नामार्हंतं द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः परिच्छिनत्ति उभयोरपि निश्चयेनाविशेषात्। अर्हतोऽपि पाककाष्ठागतकार्त्तस्वरस्येव परिस्पष्टमात्मस्वरूपं। ततस्तत्परिच्छेदः सर्वात्मपरिच्छेदः, तत्रान्वयो द्रव्यं अन्वयविशेषणं गुणः अन्वयव्यतिरेकाः पर्यायाः। तत्र भगवत्यर्हति सर्वतो विशुद्धं त्रिभूमिकमपि स्वमनसा

समयमुत्पश्यति, यश्चेतनोऽयमित्यन्वयस्तत् द्रव्यं, यच्चान्वयाश्रितं चैतन्यमिति विशेषणं स गुणः, ये चैकसमयमात्रावधृतकालपरिमाणतया परस्परपरावृत्ता अन्वयव्यतिरेकास्ते पर्यायाश्चिद्विवर्त्तग्रंथय इति यावत्। अथैवमस्य त्रिकालमप्येककालमाकलयतो मुक्ताफलानीव प्रालंबे प्रालंबेचिद्विवर्त्तां श्चेतन एव संक्षिप्यविशेषणविशेष्यत्ववासनांतर्धानाद्धवलिमानमिव प्रालंबे चेतन एव चैतन्यमंतर्हितं विधाय केवलं प्रालंबमिव केवलमात्मानं परिच्छिंदतस्तदुत्तरोत्तरक्षणक्षीयमाणकर्तृकर्मक्रियाविभागतया निःक्रियं चिन्मात्रं भावमधिगतस्य जात्यस्य मणेरिवाकंपप्रवृत्तनिर्मलालोकस्यावश्यमेव निराश्रयतया मोहतमः प्रलीयते। यद्येवं लब्धो मयादौ मोहवाहिनीविजयोपाय इति।

अर्थ—जो पुरुष निश्चय करि अरहंतनै द्रव्यपणा करि तथा गुणपणा करि तथा पर्यायपणा करि जाने है, सो निश्चय करि आत्माने जाने है, क्योंकि निश्चयनय करि दोऊनिके अभेद है यातैं; सो ऐसे है, अरहंत भी सोलहां वानकूं प्राप्त भया कि तावकी हदनैं पहूंच्या सुवर्णके समान अति प्रकट आत्मस्वरूप है। तातैं अरहंतकी पिछानि है, सो सर्व आत्माकी पिछानि है। तहां अन्वय नाम द्रव्यका है। अर अन्वयके विशेषण गुण है अन्वयतैं भिन्न पर्याय है, तहां भं-

गवान अरहंतके विषैं जो सर्व तरफतैं विशुद्ध भूत भविष्यत वर्त्तमानरूप पदार्थ नैं अपना मन करि देखै है सो यो चेतन है, अर यो चेतन है या प्रकार अन्वय है सो द्रव्य है, अर जो अन्वयके आश्रय है सो चैतन्य है या प्रकार विशेषण है सो गुण है। अर जे एक समयमात्र धारण किया कालपरिमाणकरि परस्पर अणमिलते अन्वय व्यतिरेक रूप हैं ते पर्याय हैं, सो चैतन्यकी फैलती ग्रंथि है या प्रकार सिद्ध भई। अथानंतर या प्रकार याकै तीनकालनैं ही एककाल प्रवर्त्तावतो संतो हूंवती मालाके विषैं मुक्ताफलनिके समान चेतनका फैलाव है सो चेतनही है। या प्रकार विशेषण विशेष्यपणाकी वासना अंतर्धाननैं मालाकैविषैं धवलिमानकी नांई चेतनके विषैं ही चैतन्यनैं अंतर्हित करि केवल मालाकी नांई केवल आत्मानै जाणता संता वा समयतैं उत्तरोत्तरमैं क्षीण होता कर्त्ता कर्म क्रियाका विभागपणा करि निःक्रिय चिन्मात्र भावनैं प्राप्त भया। जातिवान मणिकी नांई अकंप प्रवर्त्तता निर्मल आलोककै[अवश्यही निराश्रयपणाकरि मोह अंधकार प्रलयनै प्राप्त होय है। जो ऐसे है तो मैं प्रथम ही मोहसेनाका विजयको उपाय जान्यूं। इति ॥ इत्यादिक वचनभेदतें भेद नहीं जानना। नय प्रमाणके आधीन अनेक प्रकार दीखै है सो सर्व एक ही है। या प्रकरणकूं टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशमें बहुत विशद लिख्या है वहांतें समझना योग्य है ॥

तथा भावपाहुड़में गाथा—

पाखंडी तिण्णि सया तिसट्ठिभेदा उमग्ग मुत्तूणं
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा॥४२॥
पाषंडिनःत्रीणिशतानि त्रिषष्टि भेदान् उन्मार्गान् मुक्त्वा
रुंधि मनः जिनमार्गे असत्प्रलापेन किं बहुना ॥ ४२॥

अर्थ—पाखंडीनिकै तीनसै तरेसठि ३६३ भेदरूप उन्मार्ग जे हैं तिननै छोडि जिनमार्गमैं मननै स्थिर कर, बहुत असत्प्रलापकरि कहा ॥ ४२ ॥

प्रश्न—सामान्यपणैं सम्यग्दर्शनका लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान किया, परंतु सम्यग्दर्शनके अंग कितने हैं तिनका नामसहित लक्षण भी भिन्न भिन्न कहो।

उत्तर—अनुक्रमतैं कहैं हैं सो सुनौ। प्रथम अंग निःशंकित नामा है ताका लक्षण रत्नकरण्डमैं श्लोक—

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकंपायसांभोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥ ११ ॥

अर्थ—भगवान् सर्वज्ञ भाषित यो ही तत्त्व है, अर इसो ही तत्त्व है, नहीं और है, नहीं और तरैं है या प्रकार जिनेंद्रका कह्या समीचीन मार्गकै विषैं लोहजनित खड्गके समान अकंप संशय रहित रुचि कहिये श्रद्धान है सो निःशङ्कित गुण है॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं श्लोक—

चलत्यचलमालेयं शीततां लभतेऽनलः।
दैवाज्ज्ञानादिजं तत्त्वं न च श्रीजिनभाषितं ॥३३॥

अर्थ—दैवयोगतैं या पर्वतनिकी माला तौ चलायमान हो जाय अर अग्नि शीतलताने प्राप्त होजाय परन्तु श्रीजिनभाषित ज्ञानादिकतैं उत्पन्न भयो तत्त्व जो है सो चलायमान नहीं होय॥३३॥

तथा श्लोक—

सूक्ष्मतत्त्वेषु धर्मेषु जिनेषु सन्मुनौ शुभे।
ज्ञाने संत्यज्यते शंका या सा निःशंकिता मता॥३४॥

अर्थ—सूक्ष्मतत्त्वकै विषैं धर्मके विषैं जिनदेवके विषैं समीचीन मुनिके विषैं जो शंका त्यागिये सो निःशंकितता मानिये। भावार्थ—इनिका स्वरूप वीतराग सर्वज्ञ देव कह्या तैसा ही है यामें सन्देह नांही ऐसी दृढबुद्धिका नाम निःशंकित गुण है ॥३४॥

तथा समयसारमैं गाथा—

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३१॥

संस्कृत

यश्चतुरः अपि पादान् छिनत्ति कर्मबंधमोहकरान्।
सः निःशंकश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥२३१॥

अर्थ—जो सर्व पदार्थनिको ज्ञाता द्रष्टा कर्मबंध मोहकाकरता मिथ्यात्वादिक च्यारूं चरण जे हैं तिनने छेदे है सो निःशंकित सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य हैं ॥ २३१ ॥

टीका—यतो हि सम्यग्दृष्टिटंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेनकर्मबंधशंकाकरमिथ्यात्वादिभावाभावान्निःशंकस्ततोऽस्य शंकाकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ॥ २३१ ॥

अर्थ—यतः कहिये पूर्वोक्त कारणनितैं सम्यग्दृष्टि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयीपणा करि कर्मबंधशंकाका कर्त्ता मिथ्यात्व अविरत योग कषाय आदि कुभावका अभावतैं निःशंक है, तातैं या सम्यग्दृष्टीकै शंकाकृत बंध नाहीं है, अर निर्जराही है। भावार्थ—या संसारमैं केई मनुष्य देव, धर्म, गुरुका लक्षण विपरीत कहि संशय उपजावै है कि चक्र, गदा, त्रिशूल आदि शस्त्रकूं धारि स्त्रीनिकै

साथि विहार करता क्रोधी, लोभी, मानी, मायावी अपनी कर्त्तव्यताकूं दिखावनेहारा सृष्टिका करता तथा पालक तथा संहारक आदि अनेक विकारवानकूं देवता बताय अनेक कुतर्क करि सत्यार्थ रूप सर्वज्ञदेवका श्रद्धानमें संशय उपजावै है, अर हिंसामें, कामसेवनमें, मदिरापान आदि कुकर्ममें धर्म बताय सत्यार्थ दयामयी दशलक्षणरूप आत्मस्वभावमयी धर्मका श्रद्धानमें संशय उपजावै है, अर अनेक प्रकारके पाखण्डी, क्रोधी, लोभी, कामी, मायावी, अभिमानी, परिग्रहवान अनेक भेषधारीनिकूं गुरु बताय सत्यार्थ वीतरागी संयमी दिगम्बर गुरुका श्रद्धानमें संशय उपजावै हैं, अर केई एक ब्रह्मरूपही तत्त्व कहै हैं, अर केई प्रकृति पुरुष रूप दोय तत्त्व कहै हैं अर केई प्रकृति पुरुष जीवरूप तीनतत्त्व कहै हैं, अर केई पचीस-तत्त्व कहै हैं। इत्यादि अनेक प्रकार तत्त्व बताय सत्यार्थ जीव, अजीवरूप दोय प्रकार तत्त्वमें संशय उपजावै है। तथा मोक्षमार्गके प्रकर्णमें इनिही दोयके विशेषरूप सात तत्त्व जे हैं तिनके श्रद्धानमें संशय उपजावै है। तातैं परमगुरुके वचनरूप हस्तावलम्बन पाय पापण्डीनिके युक्तिरूप वचनके वेगतैं चलायमान नाहीं होय, अर खोटे देवनिके किये उपद्रवतैं चलायमान नाहीं होय तथा मन्त्र जन्त्र तन्त्रकरि दिखाया कौतुककूं देखि चलायमान नाहीं होय, अर अपना निजस्वभावमैं तथा सत्यार्थ देव, गुरु, धर्मका श्रद्धानमें स्थिर अकम्प खड्गके जलकै समान रहै, सोही भव्य सप्त भय रहित निःशंकित गुणयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है॥

सो ही समयसारमें गाथा—

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका।२३०।

संस्कृत

सम्यग्दृष्टयो जीवा निःशंकाः भवंति निर्भयाः तेन।
सप्तभयविप्रमुक्ताः यस्मात्तस्मात् तु निःशंकाः ।२३०॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव निःशंक हैं, तातैं सप्त भय रहित निर्भय हैं, तातैं जिहि तिहि प्रकार निःशंक हैं ॥ २३० ॥

टीका—येन नित्यमेव सम्यग्दृष्टयः सकलकर्मफलनिरभिलाषाः संतोऽत्यंतं कर्मनिरपेक्षतया वर्त्तंते तेन नूनमेतेऽत्यंतनिःशंकदारुणाध्यवसायाः संतोऽत्यंतनिर्भयाःसंभाव्यंते ॥ २३० ॥

अर्थ—येन कहिये पूर्वोक्त कारण करि सम्यग्दृष्टी नित्यही सकल कर्म फलका अभिलाषरहित हुवो संतो अत्यंत कर्मकी अपेक्षा रहितपणा करि प्रवर्तै है, ता कारण करि निश्चय सम्यग्दृष्टी अत्यंत निःशंक दृढपरिणामी है तातैं अत्यंत निर्भय संभावना करिये है ॥२३० ॥ भावार्थ—किया कर्मके फलकूं नहीं चाहता उदासीन हुवा संता पूर्वकर्मके दिये फलरूप विषयनिकूं भोगता संता अपने जाननभावमैं मग्न हुवा सर्व परभावकृत विकार अपने आत्मातैं भिन्न मानता निजभावनै अखंड अविनाशी एकरूप अनुभव करता सम्यग्दृष्टी सप्तभयरहित है ॥

प्रश्न—सप्त भय कौनसे हैं तिनका नाम कहो ।

उत्तररूप मूलाचारमैं गाथा—

इह परलोय त्ताणं अगुत्तिमरणं च वेदणा कस्स भया

संस्कृत—

इह परलोको अत्राणं अगुप्तिर्मरणं च वेदना अकस्माद्भयानि ॥

अर्थ—या लोकसंबंधी भय, परलोकसंबंधी भय, अनरक्षक भय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, अकस्मात् भय, ए सात भय सम्यग्दृष्टीकै नाहीं है।

प्रश्न—ये भय तौ प्रबल हैं सम्यग्दृष्टीकूं बाधा कैसै नाहीं करै है।

उत्तर—जिनवचनके अनुकूल भावनाके बलतैं बाधा नहीं करै है।

प्रश्न—ये भावना हमारे तांई भी कहौ।

उत्तर—अनुक्रमतैं सातूं ही भय निवारण होनेका उपायरूप सम्यक्ज्ञानीका चिंतवन कहे हैं सो सुनौ। प्रथम तौ इस लोकमैं मिथ्यादृष्टी जिनवचनतैं पराङ्मुख हैं ते पररूप चेतन अचेतन दृष्टिगोचर पुत्र मित्र कलत्र धन धान्य वाहन आसन गृह क्षेत्र स्वामी सेवक आदि पदार्थनिनैं इष्ट मानि तिनिमैं ऐसी बुद्धि दृढ अध्यवसायरूप करै है कि ये मेरे हैं मैं इनका हूं, तिन मिथ्यादृष्टीनिकै पुत्र मित्रादिकके वियोग होनेका आजीविका बिगड़नेका, तथा अन्य पांचूं इंद्रियनिके विषय बिगड़नेका भय रहै है, अर जे सम्यग्दृष्टी जिनवचनके श्रद्धानी हैं ते पुत्र मित्रादिकनिमैं ऐसी पररूप दृढ बुद्धि राखे हैं कि मैं अन्य हूं ये अन्य हैं मेरे इनकै संयोग संबंध है सो ऐसो संबंध या पंचपरिवर्तनरूप संसारमैं भ्रमण करतो मैं जो हूं ताकै अनेक जीवनितैं अनेक बार भयो है, अर जितनै शुद्धात्मतत्त्वमैं स्थिर बुद्धि नहीं होयगी तितनै ऐसा संबंध अनेक जीवनितैं अनेक बार होयहीगा। या संसारमैं जाका संबंध भया है ताका अवश्य वियोग होयहीगा। मैं ज्ञाता द्रष्टा चैतन्यरूपहूं मेरा जाननभाव सोमैं सदा स्थिर है तामैं ही अन्य पदार्थनिका अवलोकन करूं हूं, अर मोहनीयकर्मके जोरतैं इष्ट अनिष्टरूप अनुभव करूं

सो मिथ्या है, मेरा जाननभावके कोऊ पदार्थ इष्ट अनिष्टरूप नांही है, तातैं इनिके बिगड़नेका मेरे कहा भय अर कहा शोक. ये पुत्रादिक अपने अपने पुन्य प्रमाण सुख दुःख भोगै हैं अर अपनी अपनी आयुप्रमाण स्थिर रहैंगे मेरा किया कछु नहीं होयगा, तातैं मेरा हर्ष करना अर विषाद करना वृथा है। ऐसा दृढबुद्धि अपनी देहकाभी अवस्थान केवलीके ज्ञानमैं प्रतिभास्या तितनाही मानै है, तामैं न्यूनाधिक किसी निमित्ततैं होना नहीं मानै है। इत्यादि जिन वचनकी भावनाके बलतैं सम्यग्दृष्टी इस लोकके भयतैं रहित सदा निर्भय रहै है।

सो ही अमृतचंद्रस्वामी समयसारकी टीकामैं इसलोक परलोक भयरहित ज्ञानीका चिंतवन दिखावता संता कलशरूप काव्य कह्या है। काव्य।

लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यं लोकयत्येककः।
लोकोऽयं न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥४६

अर्थ—या भिन्नात्माकै यो शाश्वतो एक सकलजीवनिकै प्रकटज्ञानचेतनारूप आत्मा है सो लोक है, अर यो एक आत्मा स्वयमेव ही या केवलचेतनामय लोकनै अवलोकन करै है, अर आप आपकै सन्मुख होय चिंतवन करै है कि यो चैतन्यमय लोक सो तिहारो है, अर या चैतन्य लोकतैं अन्य लोक है सो परलोक है तिहारो नाहीं है। या प्रकार चिंतवन करता सम्यग्दृष्टीकै इस लोक परलोक संबंधी भय काहेत होय; नांही होय। तातैं सम्यग्दृष्टी ज्ञानी पुरुष है सो निःशंक भया संता निरंतर आपनै

स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप अनुभव करै है। भावार्थ—जगतके जीव-निकूं इस लोकमैं औसा भय रहै है कि कोई मेरा बिगाड़ करैगा तौ बड़ा ही अनर्थ होयगा सो ज्ञानी औसा जानै है कि मेरा धन तौ मेरा ज्ञान है, अर मेरा लोक भी मेरा ज्ञान ही है, अर अन्य लोककूं भी मैं मेरा ज्ञानहीमैं देखूं हूं; क्योंकि जा समय मेरा ज्ञान ज्ञाना-वरणकर्मको उदयरूप तौ अंतरंगकारण अर वात पित्त कफका न्यूनाधिकता पणारूप तथा निद्रारूप बाह्यकारण मिलै तब मंद हो जाय है ता समय अन्य लोक सर्व विद्यमान होता संता भी अभावरूपही प्रतिभासै है, अर प्रतिभास मात्र भी ज्ञानका उदय नाहीं रहै तदि मेरे भावैं सर्व लोकका अभाव ही है तातैं मेरै म्हारा ज्ञानस्वभावकूं स्वच्छ आनंदरूप होतसंतैं किसी अन्य पदार्थके बिगाड़मैं मेरा कछु बिगाड़ नांहीं, मैं अविनाशी अचल ज्ञाता दृष्टा हूं; तातैं मेरै इसलोक संबंधी तथा परलोक संबंधी कछु भय नांहीं है। या प्रकार चिंतवन करता सम्यग्दृष्टी सदाकाल निर्भय है। बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही परलोकसम्बन्धी भय सदा काल औसा रहै है कि न जाणिए मैं किसी गति मैं किसी क्षेत्र मैं जाय प्राप्त हूंगा, त-हां न जाणिये कहा कहा दुःख पाऊंगा, औसा अभिप्रायतैं परलोक-का भययुक्त रहै है। अर सम्यग्दृष्टीकै औसा श्रद्धान दृढ रहै है कि मैं अब तक जिनवचनका सांचा देवका सांचा गुरूका सांचा धर्मका सांचा तत्त्वका श्रद्धान नाहीं किया था तब तक नरक तिर्यंच आदि नीच पर्यायनिमैं भ्रमण करै था, अब मैं शीघ्र ही संसारका अभाव करि शिवलोककूं प्राप्त हूंगा, अर जितनै काललब्धि नहीं आवैगी तितनै स्वर्गलोकके जिनमन्दिरनिमैं पूजन उत्सव करता सुखरूप रहूंगा, तथा मध्यलोकमैं तीर्थंकरनिके कल्याणका उत्सव देखता रहूं-गा, तथा आर्यक्षेत्रकै विषै उत्तमकुलमैं जन्मधारण करि व्रत संयम-का निरंतर पालन करूंगा। मेरै इस देहके वियोग होतैं कहा हानि

है। यो देह विनाशीक है ही मैं अविनाशी चिरंजीव हूं। इत्यादिक भावनाके बलतैं परलोकसंबन्धी भय सम्यग्दृष्टीकूं बाधा नाहीं करे है बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही अनरक्षक भय रहै है, क्योंकि मिथ्यादृष्टीकै आत्मतत्त्वकों तो पिछाणि नाही अर देह आदि अन्य पदार्थ निर्मैं ही आपो मान है, अर इनिका कोऊ रक्षक दीखे नांही तदि आकुलता धारि विलाप करै है। अर सम्यग्दृष्टी आत्मस्वरूपकूं अविनाशी ज्ञानमय द्रव्य मानै है अर नाश किसीतैं नाहीं मानै है, अर जाका नाश नाहीं मानै ताका रक्षक काहेकूं चाहै, अर ऐसैं ही पुत्रमित्रादिकनिका भी आत्माकूं तो चिरंजीव मानै है अर पर्यायसंबन्धी सुख दुःख पुन्यपापके उदयाधीन मानै है। तातैं सम्यग्दृष्टी अनरक्षकभयरहित हुवा संता सदा काल निर्भय है॥

सो ही कलसरूप काव्य—

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः।
अस्यात्राणमतो न किंचन भवे तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति २५

अर्थ—जो पदार्थ सत् स्वरूप है सो नाशनै नाहीं प्राप्त होत है या नियमपूर्वक पदार्थमात्रकी स्थिति प्रकट है, अर यो ज्ञान स्वरूप जीवपदार्थ जो है सो स्वयमेव सत्स्वरूप है, तातैं निश्चय करि याकी अन्य पदार्थनि करि कहा रक्षा करिये; या कारणतैं या ज्ञान स्वरूप आत्माकै अनरक्षक कोऊ नाहीं है तातैं ज्ञानीकै अनरक्षकजनित भय कहा होय तातैं सो ज्ञानी निःशंक हुवा संता निरंतर अपना स्वाभाविक ज्ञाननै अनुभव करैहै। भावार्थ—सत् का विनाश असत् का उत्पाद भूत भविष्यत वर्त्तमानकालमैं तो हुवा अर हो-

वगा ऐसा निश्चय सम्यग्दृष्टीके है। अर सत् स्वरूप ज्ञानमय अपना आत्माने जानै है,अर अपना दर्शन ज्ञान सिवाय अन्यद्रव्यमैं आपा नाहीं मानै है,यातैं सम्यग्दृष्टीकै अनरक्षकभय बाधा नाहीं करै है। बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही अगुप्त भय रहै है क्योंकि मिथ्यादृष्टी ही देहाभिमानी है, तातैं धन धान्यादि राज्यवैभवतैं आपनै वडो मानै है,अर शत्रु आदि चोरनितैं धन धान्यादि राज्यवैभवका विगड़ना मानै है तातैं ही धनधान्यादिककौं छिपाया चाहै है,अरछिपना नाहीं दीखै तदि अपना विगाड़ जानि विषादवान होय विलाप करै है ताकै अगुप्तभय है। अर सम्यग्दृष्टी धन धान्यादि राज्यवैभवकूं अपना निज ज्ञानदर्शनरूप धनतैं भिन्न पुन्य उदयजनित संयोगसंबंध रूप मानै है तातैं परमार्थतैं आप निर्भय है अर व्यवहार अपेक्षा भी धन धान्यादिकका विगड़ना पुन्य अस्त भयेतैं जानै है पुन्यकूं विद्यमान होतैं किसीसैं विगड़ना नाहीं मानै है,अर आप सन्मार्गमैं सदा प्रवर्त्त है तातैं बाह्य द्रव्यरूप धन धान्यादिकके छिपावनेकी इच्छाही नाहीं राखै है। अर आप आपनै सदा अगुप्तरूप ध्यावता संता निर्भय रहै है। सो ही समयसारका कलसरूप

काव्य।

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न यत्
शक्तःकोऽपि परःप्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नु।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकःसततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति।१६

अर्थ—ज्ञानी चितवन करै है कि निश्चय करि जो वस्तुको निजरूप है सो परमगुप्ति है। क्योंकि निजरूपमैं कोई भी परवस्तु प्रवेश करनेकूं समर्थ नाहीं है, अर ज्ञान है सो मेरा निजरूप अकृत्रिम है, अर या-

के अगुप्ति कछू नाहीं है तातैं ज्ञानीकै अगुप्तिजनित भय कहांतैं होय सो ज्ञानी निःशङ्कहुवो संतो निरन्तर स्वाभाविक अपना ज्ञानँ मदाकाल अनुभव करै है। भावार्थ--गुप्तिनाम प्रच्छन्न छिप रहनेके मकान गढ आदिका है जहां प्राणी बसिकरि निर्भय होय सो ऐसी गुप्ति रूप स्थान आपके आपको ज्ञानमात्र है, जामैं किसीको प्रवेश नाहीं किसीको बिगाड्यौ बिगड़े नाहीं। ऐसैं चितवन करतो सम्यग्दृष्टी निर्भय है ॥१६॥

बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही मरणभय रहै है क्योंकि मिथ्यादृष्टी ही देहके वियोगमैं अपना मरण मानै है, तातैं सदाकाल देहकी ही रक्षानिमित्त उद्यमी रहै है। अर सम्यग्दृष्टी देहके वियोगमैं अपना मरण नाहीं मानै है, अपना ज्ञानस्वरूपकूं अखण्ड अविनाशी मानै है, तातैं सदाकाल देहतैं निर्ममत्व रहै है ॥

प्रश्न--देहकी रक्षा तौ सम्यग्दृष्टी भी करै है।

उत्तर--रक्षा तौ करै है, परंतु मिथ्यादृष्टीके अर सम्यग्दृष्टीके करनेमैं बड़ा अंतर है; क्योंकि मिथ्यादृष्टी तौ देहमैं आपा मानता संता योग्य अयोग्यका विचार रहित उपाय करै है। अर सम्यग्दृष्टी देहतैं निर्ममत्व हुवा संता योग्य उपाय करै है, अर उपाय करतां संतां भी मिथ्यादृष्टी तौ या देहतैं भोग वांछै है, अर सम्यग्दृष्टी या देहतैं जप तप संयम ज्ञान वैराग्य वांछैहै,यातैं दोऊनिकैही या देहतैं राग है तातैं दोऊही रक्षातो करै है,परंतु दोऊनिके रागमैं बड़ा अंतर है। ताहि दृष्टांत करि पुरुषार्थसिद्ध्युपायमैं दिखावै है, श्लोक—

हरिततृणांकुरचारिणि मंदा मृगशावके भवति मूर्च्छा।
उंदरनिकरोन्माथिनि मार्जारे सैव जायते तीव्रा॥१२०॥

अर्थ--हरित तृणनिके अंकुरनिकूं भक्षण करनेवारो मृगको ब-

च्चो जो है ताके विषैं तो मूर्च्छा मंद है, अर ऊंदरनिके समूहकूं मारनवारा मार्जारके विषैं वाही मूर्च्छा तीव्र उत्पन्न होय है। भावार्थ—हरिणका बच्चाके हरित अंकुरके भक्षणमें राग है तथापि किसीका किंचित मात्र भी शब्द सुणि लेवै तौ वाही समय हरित तृणकूं छोड़ि भाजि जाय है। अर बिलावके ऊंदराके भक्षणमें राग है ताकै कोई लाठीकी देवै तौ भी ऊंदराने नाहीं छोड़ै है। तातैं वाके रागमें अर याके रागमें बड़ाही अंतर जानना ॥१२०॥

तातैं सम्यग्दृष्टीके मरणभय नाहीं है सो ही कलसरूप काव्य है श्लोक—

प्राणोच्छेदमुदाहरंति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति।२७।

अर्थ—ज्ञानी पुरुष चिंतवन करै है कि लौकिक जन बाह्य प्राणनिका विच्छेदनै मरण कहै है,अर या आत्माके निश्चय ज्ञान प्राण है सो स्वयमेव शास्वता पणा करि कदाचित ही विच्छेदकूं नाहीं प्राप्त होय है,या कारणतैं आत्माकै कछू मरण नाहीं है, यातैं ज्ञानीकै मरणतैं भय कहांतैं होय, तातैं सो ज्ञानी निःशंक हुवा संता निरंतर स्वाभाविक अपना ज्ञान आप सदाकाल अनुभव करैहै।भावार्थ—इंद्रियादिक प्राणनिका विनाशकूं मरण कहै है। सो इंद्रियादिक प्राण परमार्थतैं आत्माकै नांही हैं। आत्माकै तो चैतन्य ज्ञानप्राण है सो अविनाशी है ताका विनाश नाहीं है तातैं आत्माकै मरण नाहीं है। यातैं ज्ञानीकै मरणका भय नाहीं है तातैं ज्ञानी अपना ज्ञानस्वरूपकूं निःशंक भया संता निरन्तर आप अनुभव करै है ॥२७॥

बहुरि मिथ्यादृष्टीके ही वेदनाका भय है क्योंकि वेदनीय कर्मका उदयजनित देहमैं प्राप्त भया जो वात पित्त कफका सम विषम पणा ताकरि अनुभवमैं आया जो सुख दुख ताकूं मोहका महात्म्यतैं आपमैं भया मानै है। तातैं वेदनाका भय मिथ्यादृष्टीकै सदाकाल रहै है, अर सम्यग्दृष्टी वाही सुख दुःखकूं देहके संबंधतैं भया जानता संता देहतैं आपकूं भिन्न अनुभव करै है, क्योंकि वेदना नाम जाननेका है, अर जानन आत्माका निजस्वभाव है, अर निज-स्वभावका अभाव त्रिकालमैं होता नांही असा श्रद्धान सम्यग्दृष्टीकै है तातैं सम्यग्दृष्टी वेदनाजनित भयसैं रहित सदाकाल निर्भय रहैहै॥

सो ही कलसरूप काव्य—

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकवलादेकं सदा नाकुलैः।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति।२४।

अर्थ—जो अनाकुल होय करि अभेदरूप भया जो वेद्य वेदक भाव ताका बलतैं एक अचल ज्ञानकै आप सदा वेदै है कि अनुभव करै है या एक ही वेदना है। इहां वेदना नाम जानने का है। क्योंकि "विद ज्ञाने" धातुका रूप व्याकरणमैं वेदना वणता है तातैं अर अन्यतैं आई वेदना आत्मामैं नाहीं है, तातैं ज्ञानीकै अन्यकृत वेदनाका भय कहांतैं होय सो ज्ञानी निःशंक हुवा संता निरंतर आप स्वाभाविक ज्ञानकै सदाकाल अनुभव करै है। भावार्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुष अपना नित्य सच्चिदानन्द आनन्दघन रूपनैं वेदै है सो वेदना है, अर अन्य परकृत या आत्माकै

नाहीं है तातैं वेदनाका भय रहित सदाकाल सम्यग्दृष्टी रहै है ॥२४॥

बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही अकस्मात् भय जनित दुःखहोनेका भय रहै है, क्योंकि अन्यपदार्थके योगतैं सुख दुःख होना मिथ्यादृष्टी ही मानै है, ताहीतैं रागी,द्वेषी देवनिकूं सुख दुःखका दाता जानि पूजै है तथा अपना इष्टके निमित्त मंत्र जंत्र तंत्रके करनेमैं योग्य अयोग्य करता नाहीं डरै है। अर सम्यग्दृष्टीकै अकस्मात् भय दुःख उत्पन्न होनेका नाहीं रहै है, क्योंकि प्रथमतौ अपना रूपक शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा अचल अनादि अनन्त अखण्ड अलक्ष्य चैतन्य प्रकाशरूप सुखका स्थान मानै है, यामैं अचानचक होना कछू भी नाहीं मानै है। ऐसा दृढभावयुक्त सम्यग्दृष्टी सदा निःशंक रहै है, तथा सम्यग्दृष्टी अपना रूपकूं सत्स्वरूप मानै है। अर उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा सत्का लक्षण मानै है। तातैं द्रव्यार्थिकनयतैं अपना स्वरूपकूं समय समय प्रति अर्थपर्यायरूप परिणमता जानै है, अर व्यञ्जनपर्यायरूप परिणमना कर्मकै आधीन मानै है। अर कर्मका होना पूर्व कर्मके अनुसार मानै है। जैसैं बीजतै अंकुर-अर अंकुरतैं बीज अर बीजतैं फेर अंकुर उत्पन्न होय है तसैं ही पूर्वकर्मकै अनुसार नवीन कर्म बंधै है, अर उत्तरकालमैं वे ही कर्म पूर्वकर्मनाम पाय नवीन कर्म उत्पन्न करै है॥

प्रश्न—ऐसैं है तौ अन्योन्याश्रयपणातैं संसारका अभाव कैसैं होय।

उत्तर—कर्मकै अन्यान्याश्रयपणा है तथापि आत्मा पुरुषार्थ करै तदि सर्वथा कर्मको अभाव करै है सो ऐसैं है कि जा समय प्रबल पुन्य कर्मका उदय होय ता समय तौ स्वर्गमैं देवपर्याय सम्बंधी सुखमैं मगन हूवो सतो कछू भी संयम ग्रहण नाहीं करि सकै है, अर जा समय प्रबल पाप कर्मको उदय होय ता समयनरकमैं नारकपर्या-

कथन आदि सर्वपदार्थनिकै विषैं तथा निंदा प्रशंसारूप वचन भेदनिकै विषैं तथा सर्व अन्यमतीनिकरि प्ररूप्या एकांतरूप व्यवहार धर्मके भेदनिकै विषैं वांछा नाहीं है, तातैं वांछा कृत बंध नाहीं है। अर वर्त्तमानकी पीड़ा नहीं सही जाय है ताके मेटनेका इलाज कीया चाहै सो चारित्रमोहके उदयतैं है वा, चाहरूप परिणाम आपस्वामी नाहींवणै है, अर तिन परिणामनिकूं भी कर्मजनित ही मानै है आप तौ ज्ञाता होरहे है। तातैं सम्यग्दृष्टीज्ञानीकै वांछाकृत बन्ध नहीं है॥

तथा समयसारमैं;—

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तध सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३२॥
यः तु न करोति कांक्षां कर्मफलेषु तथा सर्वधर्मेषु।
सः निष्कांक्षश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥२३२॥

अर्थ—जो जाननवारो कर्मफलकै विषैं तथा सर्व धर्मकै विषैं वांछा नाहीं करै है सो निःकांक्षित सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य है॥२३२॥

टीका;—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि कर्मफलेषुसर्वेषुवस्तुधर्मेषुच कांक्षाभावान्निष्कांक्षस्ततोऽस्य कांक्षाकृतो नास्ति बन्धः किं तु निर्जरैव ॥२३२॥

अर्थ—यातैं ही सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभावमयपणा करि सर्व ही कर्मफलकै विषैं तथा सर्व वस्तुधर्मकै विषैं वांछाके अभावतैं निर्वांछक है, तातैं सम्यग्दृष्टीकै वांछाकृत बन्धनाहीं है तौ

कहा है कि निर्जरा ही है ॥२३२॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें श्लोक;—

सौभाग्ये भोगसारे च स्वर्गे राज्यादिके धने।
इच्छा संत्यज्यते धर्मे या सा निःकांक्षिता भवेत्॥३६॥

अर्थ—सौभाग्यके विषें, भोगनिके सारभूत सुखके विषें, स्वर्गके विषें, राज्य आदि सुखके स्थाननिकै विषें, धनकै विषें, धर्मके विषें जो इच्छा तजै सो निःकांक्षित नामा दूसरा गुण है।

भावार्थ—धर्मका फल इन्द्रियजनित सुख नाहीं चाहै सो निःकांक्षित गुण है ॥ ३६ ॥ तथा श्लोक—

धर्मं कृत्वाऽपि यो मूढ इच्छते भोगमात्मनः।
रत्नं दत्त्वा स गृह्णाति काचं स्वर्मोक्षसाधनं॥३७॥

अर्थ—जो मूर्ख पुरुष स्वर्ग मोक्षको साधनरूपधर्म जो है ताहि करिकैं भी आपकै भोग इच्छा करै है सो रत्न देय काच ग्रहण करै है ॥ ३७॥

प्रश्न—वांछाका अभाव साधुनिकै तथा त्यागीगृहस्थनिकै तो बणै परंतु अविरत सम्यग्दृष्टी तौ भोगनिकी इच्छा तथा वाणिज्यमैं सेवामैं लाभकी इच्छा तथा कुटुंबकी वृद्धि धनकी वृद्धि सदा वांछै है। अर रोग होनेकी शंका तथा कुटुंबके वियोग होनेकी शंका तथा जीविका बिगड़नेकी शंका तथा धन धान्य वस्त्र शस्त्र अश्व गज रथ गृह आदि पदार्थनिके बिगड़नेकी शंका निरंतर रहै है तातैं निर्वांछकपणा तथा निःशंकपणा अविरतसम्यग्दृष्टीकै कैसैं संभवै? अर निर्वांछकपणा तथा निःशङ्कपणा नहीं होय तदि सम्यक्त्व हुवा कैस मान्या जाय?

उत्तर—सम्यक्त्व जो है सो विपरीतश्रद्धानका तथा अनन्ता-

नुबंधीक्रोध मान माया लोभका अभाव भये होय है, यातैं अविरत सम्यग्दृष्टी सत्यार्थ आत्मतत्त्वका अर परतत्त्वका तौ श्रद्धानी है, अर सर्वथा अयोग्यका भी त्यागी है तातैं अपने आत्माकूं तौ अखंड अविनाशी टंकोत्कीर्ण ज्ञानदर्शनस्वभावरूप श्रद्धान करै है। अर इंद्रियजनित भोग चक्रीके तथा इन्द्रके तथा अहमिंद्रनिके भी भोग दाहके उपजावनेवारे श्रद्धानकरै है, अर आत्माधीन निराकुल अविनाशी ज्ञानानन्दमय सास्वता मोक्षसुखकूं ही सुख मानै है, अर अपना देह आदि धनसंपदादिकनिकूं कर्मजनित पराधीन विनाशीक दुःखरूप जानता संता; ये हमारे हैं ऐसा विपरीत झूंठा संकल्पहू कदाचित् नहीं करै है। तातैं ही इसलोक परलोक जनित आदि सप्तभयरहित निःशंक रहै है। अर अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन रूप द्वादश कषाय अर हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेदरूप नव ईषत्कषाय असैं इकवीश कषायके तीव्र उदयतैं उत्पन्न भया रागका प्रभाव करि इंद्रियनिकी आतापका मारचा त्याग करनेकूं असमर्थ है परंतु अनंतानुबंधीकषायके अभावतैं अर मिथ्याश्रद्धानके अभावतैं विषयनिकूं दुःखरूप जाणै है, तथापि वर्त्तमानकालकी वेदना सहनेकूं असमर्थ हुवा संता जैसैं रोगी कडुवीऔषधिकूं पीवैहै तैसैं विषयनिकूं सेवैहै, परंतु जैसैं अन्तरङ्गमें रोगी औषधिका त्यागकी चाह राखैहै तैसें ही सम्यक्त्वी भी विषयनिका त्यागकी चाह राखै है तथापि तिनविना निर्वाह होता नहीं दीखैहै, अपने परिणामनिकी दृढता नाहीं दीखै है, कषायनिकी प्रबलता दीखै है, इंद्रियनिकी चपलता दीखै है, अरसंहनन कमो, कषायनिका उदय करि शक्ति नष्ट होय रही, तातैं जैसैं बंदी गृहमें पड्या पुरुष परवस महादुःख भोगता भी नीसरि नाहीं सकै है अर वाहीकूं धोवै है, सुवारै है, सुधारै है, तथापि बंदीगृहनै बुरा जानैहै, वाव नीसरना भला

जाने है।तैसें ही सम्यग्दृष्टीभी बन्दीगृह समान देहकूं जानता संता क्षुधा तृषा शीत घाम आदि वेदना सहनेकूं असमर्थ होय देहकूं पोखै

जीविका भोजन वस्त्र आदिकूं वांछै है तथा अप्रत्याख्यानावरणी आदि इकवीसकषायके उदयतें अपयश होनेका तिरस्कार होनेका भय करै है,विषयनिकूं वांछै है क्योंकि कषाय परिपूर्ण घटी नाहीं,रागभाव मिट्यो नाहीं, तातें बहुत दुःख उत्पन्न होता दीखै ताकूं निवारण किया चाहै है तथापि राज्यभोग संपदादिकनिकूं आगामी दुखकारी जान वांछा नाहीं करै है।ऐसा निःकांक्षित अंगका लक्षण जानना।

अब निर्विचिकित्सितनामा तीसरा अंगको लक्षण रत्नकरंडमें कह्यो है श्लोक—

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीति र्मता निर्विचिकित्सिता॥१३॥

अर्थ—स्वभावतें ही अपवित्र अर रत्नत्रय करि पवित्र ऐसा व्रती तपस्वीनिका देहकै विषैं ग्लानिका अभाव अर रत्नत्रय रूप गुणनिमें प्रीति है सो निर्विचिकित्सता नामा तीसरो अंग कह्यो है ॥१३॥

भावार्थ—प्रथम तो या देहकी उत्पत्ति ही पिताका वीर्य माताका रुधिरतें है,अर सप्तधातुमय है,अर मलमूत्र करि भरी है,अर नव द्वारनितें मल श्रवै है। तातें स्वभावहीतें अपवित्र है,तथापि तपस्वीनिका देह रत्नत्रय गुण करि पवित्र भया सन्ता पूज्य है तातें तपस्वीनिका देहनै प्रस्वेद रज आदि सम्बन्धयुक्त क्षीण मलिन देखि ग्लानि नाहीं करै, अर रत्नत्रय आदि गुणनिमें प्रीति करै तथा सम्यग्दृष्टी वस्तुका

सत्यार्थ रूपनैं जाणैं है तातैं पुद्गलनिकी परिणति नानारूप होती मानै है कि मल मूत्र रुधिर मांसरूप भी वेही परमाणु परिणमैं हैं, अर वेही परमाणु जल पुष्प तृण अन्नरूप परिणमैं हैं तातैं शुभ अशुभरूप देखि ग्लानि नहीं करै है। तथा दरिद्र रोग आदि युक्त पुरुषनिका तथा तिर्यंचनिका देहकी मलिनता दुर्गंधता देखि करि तथा श्रवण करि ग्लानि नहीं करै है। तथा प्राचीन अशुभ कर्म के उदय करि क्षुधा तृषादिक रोग अर दरिद्र आदि दुःख का होनां तथा पराधीन वंदि गृहादिक मैं पड़नां, नीच कुल मैं उत्पन्न होनां, अमनोज्ञ भोजन वस्त्रका मिलना, अङ्ग-उपांगादिक हीनाधिक होनां आदि इष्टका नाश अनिष्ट का समागम होतसंतैं मनमैं ग्लानि नहीं करै है, तथा अन्यकै देखि करुणा तौ करै है परन्तु ग्लानि नहीं करै है। तथा कषायनिकी प्रबलतातैं निंद्य आचरण करते अन्य पुरुषनिकूं देखि तथा मलिन क्षेत्र ग्राम गृह आदिकूं देखि मन नहीं बिगाड़ै है तथा अंधकार, प्रकाश, वर्षा, ग्रीष्म, शीत, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि कालमैं ग्लानि नहीं करै है। अर जो ग्लानि नहीं करै है ताहीकै दया है वाहीतैं वैयावृत्य होय है, वाही कै वात्सल्य स्थितीकरणादिक गुण प्रकट होय है ॥ १३ ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मैं; श्लोक—

सर्वांगमलसंलिप्ते मुनौ रोगादिपीडिते ।
घृणा न क्रियते या सा ज्ञेया निर्विचिकित्सिता॥३९॥

अर्थ-सर्व अङ्गकै विषैं मल है लिप्त जिनकै, अर रोग आदि करि पीडित ऐसे मुनि जे हैं तिनकै विषैं जो ग्लानि नहीं करिये सो निर्विचिकित्सता जानिये ॥३९॥

जिनमार्गे भवेद्भद्रं सर्वं नो चेत्परीषहाः ।
इति संकल्पसंत्यागे भावपूर्वा मता हि सा ॥ २३३ ॥

अर्थ—जिनमार्गकै विषैं जो परीषह नहीं होय तौ और सब भद्ररूपहै, या प्रकार खोटा संकल्प जो है ताका त्यागनैं होतां संता निश्चयकरि भावपूर्वक निर्विचिकित्सता मानिये है ॥ २३३ ॥

तथा समयसारमें;—

जो ण करेदि दुगंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो॥३६॥
यो न करोति जुगुप्सांचेतयिता सर्वेषामेव धर्माणां ।
सःखलु निर्विचिकित्सः सम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः॥३६॥

अर्थ—जो चेतनावान जीव सर्व ही वस्तु धर्मनिकै विषैं ग्लानि नहीं करै है सो निश्चयकरि निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टी है ॥

टीका—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि वस्तुधर्मेषु जुगुप्साभावान्निर्विचिकित्सस्ततोऽस्य विचिकित्साकृतो नास्ति बंधःकिंतु निर्जरैव ॥

अर्थ—यातैं ही सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणांकरि सर्व ही वस्तुधर्मनिकै विषैं निर्विचिकित्सत है तातैं विचिकित्साकृत बंध नहीं है, तौ कहा है कि निर्जरा ही है ॥ भावार्थ—सम्यग्दृष्टी अनन्त धर्मनिका धारक पदार्थमात्रनैं मानै है तातैं वद-

यागत कर्म जनित क्षुधा तृषा शीत उष्णता आदि भावनिमैं तथा मल मूत्रादिक मलिन द्रव्यनिमैं वस्तु का स्वभाव जानि ग्लानि नहीं करै है, तातैं जुगुप्सानामा कर्मप्रकृतिकूं उदयमैं आवतां संतांभी आप कर्त्ता नहीं बणैं है तातैं जुगुप्साकृत बंध याकै नहीं है, कर्मप्रकृति रस देय आप ही खिरि जाय है तातैं सम्यग्दृष्टीकै निर्जराही है ॥

अबैं अमूढदृष्टिनामा चौथा अंगका लक्षण स्वरूप कहैं;—

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असंपृक्तिरनुत्कीर्त्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—नरक तिर्यंच आदि गतिनिका जो घोर दुःख तिनको जो मार्ग सो ही भयो जो कुमार्ग कहिये मिथ्यामार्ग ताकै विषैं तथा कुमार्ग मैं तिष्ठते जे मिथ्यादृष्टी तिनिकै विषैं "असम्मतिः" कहिये मनकरि प्रशंसा नहीं करणी, अर "अनुत्कीर्त्तिः" कहिये वचन करि प्रशंसा नहीं करणी, अर "असंपृक्तिः" कहिये काय करि प्रशंसा नहीं करणी कि अंगुष्ठका तथा सर्जनी अंगुलीका नख मिलाय सराहनां रूप मुद्रा दिखावना सो तीनूंही प्रकार अमूढदृष्टी नहीं करै ॥ १४ ॥

भावार्थ—मूढदृष्टी नाम मिथ्यादृष्टी का है, अर जाकी मूढदृष्टी नहीं होय सो अमूढदृष्टी कहिए। अर या लोकमैं मिथ्यात्वके प्रभावतैं मिथ्यादृष्टी पुरुष रागी द्वेषी देवनिका पूजन प्रभावना करि, दश प्रकार कुदान करि, अश्वमेधादि यज्ञ करि, तथा मारण मोहन उच्चाटनादि प्रयोगकरि, तथा कूप, वावड़ी, तलाव बनावनैं करि तथा कंदमूल शाक पत्र तृण धान्य आदि के भक्षण करनैं करि तथा पंचाग्नि तपनैं करि, मृगछालादिक ओढनैं करि, भस्म

लगानें करि, ऊर्द्ध बाहु राखनें करि, ठाढ़े रहने करि, शिर नींचा करि, पग ऊंचे बांधि झूलनें करि, जटा राखनें करि, गेरूके रंगे वस्त्र तथा रक्त वस्त्र तथा स्वेत वस्त्रके पहरने करि, तथा तीर्थनिके स्नान करि तथा गयाश्राद्धतैं इकवीशपीढीका उद्धार माननें करि तथा देहली रौडी कूवा आदिके पूजने करि, अपनां भला मान है। अर समुद्रमैं तथा गंगामैं डूबनें करि तथा मैरूझांप के लेने करि तथा कासी करोतके लेने करि, वांछित परलोकमैं पावै है तथा श्राद्धतर्पणके करनें करि माता पिता परलोकमैं सुख पाव है तथा सती होनें करि सत्यलोकमैं पतिकै साथि सुख भोगे है असा श्रद्धान करि आत्महिंसा करै है तथा देवनिके निमित्त बकरा भैंसा आदिको हिंसा करै है। इत्यादिक करनेंवालेनिकी प्रसंसा करै है तथा पुत्र पौत्र धन ऐश्वर्यके होनें की चाहकरि जिनेंद्रतैं भी अैसी प्रार्थना करै है कि मेरै फलानां कार्य हो जायगा तौ आपकै छत्र चमर आदि चढाऊंगा, इत्यादि मिथ्या व्यवहार करनां है सो मूढदृष्टी पणां हैं। अर अमूढदृष्टी जो व्यवहार करै हैं सो देव कुदेवका धर्म अधर्मका, गुरु कुगुरुका, शास्त्र कुशास्त्रका, पाप पुन्यका, भक्ष्य अभक्ष्यका, दान कुदानका, पात्र कुपात्रका, देय अदेयका, हेय उपादेयका, आराध्य अनाराध्यका वाच्य अवाच्यका युक्ति अयुक्तिका, कार्य अकार्यका गम्य अगम्यका, अनेकांतस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागका परमागमतैं निश्चय करि पक्षपात छांडि व्यवहारमैं तथा परमार्थमैं विरोध नहीं आवै ऐसें श्रद्धान करि प्रवर्त्तै है। असा अमूढदृष्टिनामा चौथा अंग जो है ताहि सम्यग्दृष्टी धारै है ॥१४॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं श्लोक.—

धर्मे देवे मुनौ पुण्ये दाने शास्त्रे विचारणं।
दक्षैर्यत क्रियते तद्धि ह्यमूढत्वगुणं भवेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो चतुर पुरुषनिनैं धर्ममैं, देवमैं, मुनीश्वरनिमैं, पुन्यमैं, दानमैं, शास्त्रमैं विचार करिये सो अतिशय करि अमूढ-दृष्टि गुण है ॥ ४२ ॥

तथा समयसारमैं गाथा,—

जो हवइ असंमूढो चेदा समदिट्ठि सव्वभावेसु।
सो खलु अमूढदिट्ठो सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो ॥२३४॥

यो भवत्यसंमूढः चेतयिता सम्यग्दृष्टिः सर्वभावेषु।
सःखलु अमूढदृष्टिः सम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ २३४ ॥

अर्थ—जो चेतनावान सम्यग्दृष्टी सर्व भावनिकै विषैं असंमूढ कहिये मूढ नाहीं है सो निश्चय करि अमूढदृष्टी सम्यग्दृष्टी जानने योग्य है ॥ २३४ ॥

टीका:—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि भावेषु मोहाभावादमूढदृष्टिस्ततोऽस्य मूढदृष्टिकृतो बंधो नास्ति किंतु निर्जरैव ॥ २३४ ॥

अर्थ—यातैं ही सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणां-करि सर्व ही भावनिकै विषैं मोहका अभावतैं अमूढ दृष्टीहै तातैं याकै मूढदृष्टिकृत बंध नहीं है तो कहा है कि निर्जरा ही है ॥ २३४ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी सर्व पदार्थनिका स्वरूप यथार्थ जानैं हैं,

तातैं तिनिविषैं राग द्वेष मोहके अभावतैं अयथार्थ दृष्टि नाहीं धारै है अर चारित्रमोहके उदयतैं पदार्थनिमैं इष्ट अनिष्ट भाव उपजैहै ताकूं कर्मके उदयकी वरजोरीजनित जानि इष्ट अनिष्ट भावनिका करता नहीं बणै है। तातैं मूढदृष्टिकृत बंध सम्यग्दृष्टीकै नाहीं है, कर्म प्रकृति रस देय खिर जाय है सो निर्जराही है ॥२३४॥

अब उपगूहन नामा पांचमा अंगकालक्षणरूप रत्नकरंडमैं;—

श्लोक।

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदंत्युपगूहनं ॥ १५ ॥

अर्थ—जो स्वयमेव शुद्ध ऐसा रत्नत्रयरूप जिनमार्गकै अज्ञानी जनके तथा असमर्थ जनके आश्रय निंद्यता प्रकट भई होय ताहि दूरि करैं सो उपगूहन अंग कहैं है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिनेंद्र भगवाननैं धर्मका लक्षण वस्तुस्वभावरूप तथा दशलक्षणरूप तथा रत्नत्रयरूप तथा जीवदयारूप कह्याहै। सो ये च्यार भेदभी शिष्यके समझायवेमात्र भिन्न जनाये हैं, धर्मतौ एक वस्तुका स्वभाव ही है। तातैं आत्मा जा समय निज तत्वका श्रद्धान करि यथावत गुणपर्याययुक्त जानि निजस्वभाव मैं स्थिर अंतर्मुहूर्त मात्र रहै है ताही समय घातिया कर्मका क्षयकरि केवल ज्ञानकूं पावैं हैं ऐसा उपदेशरूप जिनमार्ग अनादिनिधन है; अर जगतके जीवनिका उपकार करनें वालाहै किसीहीका या मार्गतैं अकल्याण नहीं है, अरया मार्गकूं कोईही बाधा नहीं दे सकै है। यामैं किसी अज्ञानी के चूकनेतैं तथा किसी असमर्थके चूकने तैं धर्मकी निन्दा होती होय ताहि अपनी सामर्थ्य प्रमाण दूरि करैं तथा आच्छादन करै। ऐसा उपगूहन गुण सम्यग्दृष्टीकै स्वय-

मेव प्रकट होय है क्योंकि सम्यग्दृष्टीके धर्मतैं अतिप्रीति है, अर धर्म है सो धर्मात्माके आश्रय है तातैं जैसैं पुत्रके विषै माताकी प्रीति है तातैं पुत्रका खोट अन्याय देखत प्रमाणही जिहितिहि प्रकार आच्छादन करै है तैसैं धर्मात्मा पुरुषके विषै सम्यग्दृष्टीकी प्रीति है, तातैं किसी धर्मात्माकै अज्ञानतातैं तथा असमर्थतातैं तथा प्रवल पूर्वकर्मके जोरतैं शीलमैं व्रतमैं संयममैं दोष आजाय तौ ताकूं आप जानत प्रमाणहीं जीतीं प्रकार आच्छादन करै है, क्योंकि सम्यग्दृष्टीका स्वभावही ऐसाहै जो दोष अववाद तो किसीका प्रकट करैही नाहीं अपनी उच्चता आप कहै ही नाहीं। कदाचित मिथ्यादृष्टीका भी दोष अन्याय व्यभिचार आदि देखि लेवै तौ आप ऐसा चिंतवन करै कि या संसारमैं अनादि कर्मके जोरतैं जीवनके पराधीनताहै, जा समय मोहका तथा मिथ्यात्वका तथा ज्ञानावरण दर्शनावरणका प्रबल उदय आवैहै तासमय दोषमैं प्रवर्त्तनें का व्रतादिकतैं बिगरनेंका कहा आश्चर्यहै, जीवनिकूं निरन्तर काम क्रोध लोभ मोह प्रेरणां करि भ्रष्ट करैहै आपो भुलावैहै, हमहू राग द्वेष मोहकरि कहा२ अनर्थ नहीं किये है, अब कछुयक जिनागमका सेवनतैं गुण दोषकी पिछाणि भई है, तौ कषायके जोरतैं अनेक दोष लागै है तातैं भोले जीवनिको कहावाचो ? जो जाकी क्षेत्र कालके निमित्ततैं जैसी भावी है तैसी प्रवृत्ति है भावीके मेटनेंकूं कौन समर्थ है तथापि हमारे तांई तौ सामर्थ्यप्रमाण जीवमात्रका दोष आच्छादन करनेंकाही अभिप्राय राखनां योग्यहै। तातैं धर्मात्माका तौ दोष अवश्य ही आच्छादन किया चाहिये। कदाचित एक धर्मात्माके असमर्थतातैं भया एक दोष भी प्रकट हो जायगा तौ धर्मकी निंदा होयगी, मिथ्यादृष्टी

कहैंगे कि ये जिनधर्मी ज्ञानी तपस्वी व्रती संयमी जितनें हैं तितनें पापंडी है गरमार्गी है। तातैं धर्मात्मा सम्यग्दृष्टी होय सो प्रथम तौ आप धर्ममैं दोष नहीं लगावै, दूसरा किसी धर्मात्माकै दोष लाग्यो होय तौ वाहि दूरि करै आच्छादन करै॥ १५॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं श्लोक;—

साधर्मिणां मुनीनां च दृष्ट्वा दोषं विवेकिभिः।
छादनं क्रियते यच्च तद्भवेदुपगूहनं॥ ४५॥

अर्थ—ज्ञानवान पुरुषनि करि मुनीश्वरनिका तथा साधर्मीनिका दोष देखि जो आच्छादन करै सो उपगूहन गुण होय है॥ ४५॥

तथा समयसारमैं गाथा;—

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो॥२३५॥

यः सिद्धभक्तियुक्तः उपगूहककस्तु सर्वधर्माणां।
सः उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥ २३५॥

अर्थ— जो सिद्ध भक्तियुक्त होय अर अन्य सर्व वस्तुनिका धर्मनिको उपगूहक होय सो उपगूहन करने वारो सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य है॥

टीका—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टं कोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन समस्तात्मशक्तीनामुपबृंहणादुपबृंहकस्ततो ऽस्य जीवशक्तिदौर्बल्यकृतो नास्ति बन्धः किन्तु निर्जरा

रैघ ॥ २३५ ॥

अर्थ—जातें निश्चय करि सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावमयी पणां करि समस्त आत्मशक्तिके बधावनेंते उपबृंहक होय है, तातें याके जीवशक्तिका दुर्बलपणां करि कीया बंध नहीं है सो कहा है कि निर्जरा ही होय है ॥

भावार्थ— पांचमां गुण का नाम उपगूहन है तथा उपबृंहण है तहां उपगूहन नाम छिपावनेंका है सो अपना उपयोग सिद्धभक्तिमें लगावै तदि अन्य सर्व धर्मनिका उपगूहक होय है क्योंकि छद्मस्थका उपयोग एक ही विषयका ग्राहक है तातें जा समय सिद्ध गुण चिन्तवन करै है ता समय अन्य पदार्थ चिन्तवन में नहीं आवै है ऐसा उपगूहकगुणयुक्त सम्यग्दृष्टीकै नवीन कर्मबंध नहीं होय है प्राचीन कर्म की निर्जरा होय है, तैसें ही उपबृंहण नाम बधावनें का है सो अपनां उपयोग सिद्धभक्तिमें लगावै तदि आत्माके निज गुण दर्शनज्ञानादि जे हैं तिनकी वृद्धि होय तदि आत्मा समर्थ होय अर समर्थ होय तदि दुर्बलता करि बंध होय था सो नहीं होय, निर्जरा ही होय। अर जेतें जितनां अंशां अंतराय का उदय है तेतें तितनां अंशां निर्बलता है परन्तु उपगूहन तथा उपबृंहण गुण युक्त सम्यग्दृष्टी अपने अभिप्रायमें निर्बल नहीं है कर्मके उदयकूं जीतनें प्रति महान् उद्यमी है तातें निर्जरा ही करै है ॥

अब स्थिति करण नामा छट्ठों अङ्गका लक्षणरूप रत्नकरंड में श्लोक;——

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितीकरणमुच्यते ॥१६॥

दर्शनतैं तथा चारित्रतैं चलायमान होतें पुरुष जे हैं तिनकों प्रवीण धर्मात्मा पुरुष जे हैं तिननैं धर्ममें वात्सल्यभाव करि उपदेशादिक देय फेर दर्शन में तथा आचरण में स्थापन करिये सो स्थितीकरण अङ्ग कहिये है ॥ १६ ॥

भावार्थ—कोउ धर्मात्मा अव्रत सम्यग्दृष्टी तथा अणुव्रती तथा महाव्रती का परिणाम पूर्व काल में दृढ़ उत्साह रूप था फिरि कोऊ प्रबल कषायके उदय करि तथा खोटी संगति करि तथा क्षुधा तृषादि रोगकी तीव्र वेदना करि तथा इष्टके वियोग करि तथा अनिष्टके संयोग करि तथा मिथ्यात्वीनिका वैभव देखि लोभकी वृद्धि करि तथा दरिद्र करि तथा मिथ्यात्वीनिका उपदेश करि तथा मिथ्यात्वीनिका मंत्र जंत्र तंत्र का चमित्कार देखि करि तथा मिथ्यादृष्टीनिका स्नान तर्पण आदि क्रियाकांडका आडम्बर देखि करि श्रद्धानतें तथा आचरणतें चलायमान होता होय ताहि देखि प्रवीण पुरुष धर्ममें वात्सल्यताके भावकरि विचार करै कि या संसार में आर्यक्षेत्र संबन्धी मनुष्यजन्म उच्चकुल परिपूर्ण अङ्ग नीरोगतादि पाया तथापि धर्मग्रहण होणां बड़ा दुर्लभ है, सो दैवयोगतें यानें पाया अर अब प्रबल कर्मके उदय करि श्रद्धान ज्ञान आचरणतें चिगै है सो बड़ाही अनर्थ है, छूटें पीछे फिर असंख्यात कालमें मिलनां कठिन है तातें याहि जो तो प्रकार धर्ममें स्थिर करनां ऐसा चिन्तवन करि धर्मोपदेश देय वस्तुका स्वभाव संसारका स्वभाव पुन्यपापकी परिणति दिखाय कषायके मिटावनें करि तथा सत्सङ्गतिमें लगावनें करि तथा आहार पान औषधि आदिके देनें करि तथा समताके बंधावनें करि तथा गृह वस्त्र आभरण आदिके देनें करि तथा सम्यक्त्वके बधावनवारी अनेक

युक्तिके सुनायनें करि तथा तप संयम व्रत आदिके प्रभाव दिखावनें करि तथा स्नानादिक मिथ्या क्रियाकांडमें हिंसादि महापापके दिखावनें करि तथा सामायिकादि शुद्धक्रियाके उपदेश देनें करि तथा शरीरकी टहल करनें करि तथा उपदेश ऐसा देवै कि हे धर्मात्मा ! तुमनें बहुत काल व्रत संयम श्रद्धानका पालन करि वांछित अर्थको दाता कल्पवृक्षसमान जिनधर्म अंगीकार कियौ है, अर अब किंचित् असाताके उदयतें आया दरिद्रकूं तथा रोगकूं तथा इष्टवियोग अनिष्ट संयोगकूं देखि कायर होय धर्मतें चिगौ हौ, तुम तौ सब देश कालके जानने वारे हौ, या दुःखमा नाम पंचम काल बडो कराल है यामैं अल्प आयु अल्पबुद्धि अल्पलाभ बहुत रोग बहुत कषाय बहुत दरिद्र बहुत पराधीनता बहुतविषयनि-की गृद्धता ईर्षाकी बाहुल्यता होय ही है क्योंकि सम्यक्त्वसहित मरण करै सो जीव तौ पंचमकाल मैं इस क्षेत्र मैं जन्मही नहीं लेवै है, तातैं दुःख के निमित्त रोगादिक अनिष्टकी प्राप्ति होत संतैं कायर होय आर्त्त परिणाम करनां योग्य नांही, क्योंकि आर्त्तपरि-णाम किये आगामी अनिष्टकर्मका बंध अधिक होयगा, अर उदयआया कर्म रस दिये विनां छूटने का नांहीं, भोगमैं रोग संयोगमैं वियोग अवश्य भावी है जो अपनां आयु अधिक होयगा तौ अन्य इष्टजीवनिका वियोग क्रमतैं होयगा ही, अर अपना आयु न्यून होयगा तो सर्वका वि-योग एकै काल होयहीगा, जहां अपनी देहका वियोग होहिगा तहां अन्य के वियोगका कहा आश्चर्य है, जाका उत्पाद है ताका विनाश है ही तातैं दुर्गतिका कारण कायरपणां छांडि धैर्य धारण करो । मनुष्यजन्मका फल धैर्य संतोष शीलव्रत धारि धर्मसेवन करि आत्मकल्याण करनां है। इत्यादि उपदेश देय श्रद्धान ज्ञान आचरण में स्थिर करै ।

अर जो रोगी इत्यादि उपदेश देतां संता भी वातपित्त कफकी आधिक्यतातैं ज्ञान चलायमान होत संतैं व्रत भंग करनें लगि जाय अकालमें भोजन पान आचरनें लगि जाय त्यागी हुई वस्तुकूं चाहनें लगि जाय तौ वाकूं मधुर वचन करि वारम्वार उपदेश करै ग्लानि कदाचित् नहीं करै, क्योंकि कर्मके जोरतैं वात पित्त कफके निमित्ततैं छद्मस्थ ज्ञानके विगड़नेंका कहा आश्चर्य है। जा समय याका ज्ञान वणि रह्या था ता समय तौ ए ही अन्य पुरुषनिकूं उपदेश देता था अर धर्मात्मा कहाता था अनेक पुरुष याके निकट रहते थे अब याकै कर्मके जोरतैं ज्ञान सिथल भया परन्तु मेरा ज्ञानवानपणां अर धर्मात्मापणां तौ वणि रह्या है, या समय याका त्याग करूं तौ मेरा ज्ञानवानपणां तथा धर्मात्मापणां कहां रहै? याकी तौ अनौपम्य रत्ननिकी भरी नाव्कि मोक्ष पुर जावती भंवरमैं पड़ी है अर हम याहि त्यागि देवैंतौ हमारा धर्म डूबि जाय तातैं हमारे यणतैं तौ याहि धर्ममैं फिर स्थिर करैं होंगे, ऐसा दृढ़ व्यवसाय धारि यत्न करै है। तथा अपनां आत्मा हू काम क्रोध लोभ मद मोह आदिके वशतैं नीति धर्मकूं छांडि अन्याय विषय धन धान्य जमी जागिकी चाह करै तथा अयोग्य वचन कह्या चाहै तथा अभक्ष्यभक्षण किया चाहै तथा कुटम्बमैं राग वधि जाय, संतोषतैं चिगिजाय, अनेक परिग्रहनिका लालसावान हो जाय तथा रोगतैं, शोकतैं, भयतैं, दरिद्रतैं, कायर होजाय तथा हर्षतैं मोहकी गहलमैं रक्त होजाय तौ द्वादश भावना का स्मरणतैं तथा अध्यात्मशास्त्रका स्वाध्यायतैं आत्मानैं अजर अमर अच्छेद्य अभेद्य अखण्ड अविनाशी ज्ञाता द्रष्टा एकाकी चिरंजीव अखेय अन्य परभावतैं भिन्न चिंतवन करता

संतो ज्ञानावरणादि अष्टकर्मके उदयतैं भिन्न अपना उपयोगरूप स्वभावकूं श्रद्धान ज्ञान आचरणमें स्थित करै सो स्थितिकरण नामा अंग है ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार में श्लोक,—

व्रतचारित्रधर्मादिचलतां धर्मदेशनैः ।
स्थिरत्वं क्रियते यत्र स्थितीकरण मुच्यते ॥४८॥

अर्थ—जहां व्रत चारित्ररूप धर्मतैं चलता पुरुषकै धर्मोपदेश करि स्थिर पणूं करै तहां स्थितीकरण कहिये है ॥ ४८ ॥

तथा समयसार में गाथा;—

उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सट्ठिदि करणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३६॥

संस्कृत—

उन्मार्गं गच्छंतंस्वकमपि मार्गे स्थापयति यःचेतयिता।
सःस्थितिकरणयुक्तःसम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ २३६ ॥

अर्थ—जो चेतयिता उन्मार्गमैं प्राप्त होता अपना आत्मानैं मार्गकै विषैं ही स्थापन करै सो स्थितिकरणयुक्त सम्यग्दृष्टी जानबो योग्य है ॥ २३६ ॥

टीका—

यतो हि सम्यग्दृष्टिः टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन मार्गात्प्रच्युतस्यात्मनो ऽमार्गे एव स्थितिकरणात् स्थितिकारी ततोऽस्य मार्गच्यवनकृतो नास्ति

बंधःकिंतु निर्जरैव ॥२३६ ॥

अर्थ—जातैं निश्चय करि सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणां करि रत्नत्रयरूप मार्गतैं छूटता अपनां आत्मानैं रत्नत्रयरूपमार्गकै विर्षै ही स्थापन करै सो स्थितिकारी है. तातैं या सम्यग्दृष्टीकै मार्गतैं छूटनैं कृत बंध नांहीं है तौ कहाहै कि निर्जरा ही है ॥२३६॥

भावार्थ—जो अपनां आत्मा अपनैं स्वरूपरूप मोक्षमार्गतैं चिगता होय तिसकूं तिसही मार्गकै विर्षै स्थापन करै सो स्थितिकरणगुणयुक्त सम्यग्दृष्टी है तातैं मार्गतैं छूटनैंकृत बंध नांहीं होय है उदय आये कर्म रस देय खिरि जाय है तातैं निर्जरा ही है ॥ २३६ ॥

अब वात्सल्यनामा सातमां अंगको लक्षणरूप रत्नकरंडमें।——

श्लोक—

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥

अर्थ—इहां यूथनाम समूहका है तातैं धर्मात्माकै रत्नत्रयके धारक जे हैं ते स्वयूथ है कि अपनैं वर्गके है, तातैं कहैहै कि अपनैं वर्गके जे हैं तिन प्रति सत्यार्थ भावसहित कपट रहित यथायोग्य प्रतिपत्ति करै सो वात्सल्य अंग कहिये है ॥ १७ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रके धारक मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका जे हैं तिननैं अपनैं वर्गके जानि सांची प्रीति करि कपट रहित होय यथायोग्य प्रतिपत्ति कहिये देखतप्रमाण उठिखड़ा होनां सन्मुख जावनां गुणस्तवनकरनां वंदना तथा इच्छामि करनां पूजा सत्कार करनां अवसरमैं आहार पान वस्तिका उपकरण आदि देनां शरीरका मर्दनादिक करनां मनमैं हर्ष ऐसा माननां कि मानूं

दरिद्रीकूं निधि प्राप्त भई। तथा अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग आदि महाव्रतनिमैं तथा अणुव्रतादिकनिमैं तथा रत्नत्रयमैं तथा दशलक्षणधर्ममैं तथा स्याद्वादरूप जिनागममैं तथा जिनमंदिरमैं तथा जिनबिंबमैं अनुराग स्वर्गादिकका साधक पुन्यबंधका कारण तथा परंपराय मोक्षका कारण जानि करे है। अर विषयनिमैं तथा कषायनिमैं तथा मिथ्याधर्ममैं तथा मिथ्यादृष्टीनिमैं तथा परिग्रहादि पंचपापनिमैं अनुराग नरक निगोदादिकका कारण जानि नहीं करै है, परंतु द्वेष भाव तौ अज्ञानी मिथ्यादृष्टी धर्मके द्रोही पातकी जे हैं तिनमैं हू कदाचित् ही नहीं करै है॥

प्रश्न—और तौ तुमनैं कहा सो सत्य है परंतु धर्मके द्रोही जिनमंदिर जिनागम जिनबिंबके विध्वंस करनें वारे परितौ द्वेषभाव उपजे विनां कैसैं रहै याकूं तौ तीव्र दंड देनेंमैं पुन्य ही होता होयगा, क्योंकि याकूं दंड नहीं होय तौ और भी दुष्टजन धर्मका तथा धर्मात्माका विनाश करता कैसैं रुकै, तातैं दंड असा दिया चाहिये कि ताहि देखि फेर कोई धर्मते द्रोह नहीं करै॥

उत्तर——तुम विचार तौ करो तुमारा धर्मका नाम वीतराग है, सो राग दोय प्रकार है; एक प्रीतिरूप एक वैररूप ताकूं द्वेष कहैहै। से दोऊ ही बंधनैं कारणहै, परंतु प्रीतिके दोय भेद है; एक तौ अरहंत देव निर्ग्रंथ गुरु दया धर्मरूप शास्त्रकरि प्ररूपित व्रत संयम पूजन स्वाध्याय आदि मैं प्रीति है सो तौ पुन्यबंधनैं कारण है तातैं कथंचित् ग्राह्य है। अर स्त्री पुत्र कुटंब धन धान्य ऐश्वर्य आदिमैं प्रीतिहै सो पाप बंधनैं कारणहै तातैं अग्राह्य है, अर द्वेष सर्वथा पाप बंधनैं कारण है तातैं सर्वथा अग्राह्य है।

अर वीतरागधर्मका लक्षण स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामैं असा कह्या है–

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दहविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥४८२॥
धर्मः वस्तुस्वभावः क्षमादिभावः च दशविधः धर्मः।
रत्नत्रयं च धर्मः जीवानां रक्षणं धर्मः ॥४८२॥

अर्थ—वस्तुका स्वभावहै सो धर्म है, तथा दशप्रकार उत्तमक्षमादिक भाव है सो धर्म है, तथा रत्नत्रयहै सो धर्महै, तथा जीवनिका रक्षणहै सो धर्महै ॥ ४८२ ॥

यामैं च्यार लक्षण कहेते सामान्यपणें एक आत्मस्वभावके ह पर्यायनामहै, अर आत्मा का स्वभाव केवलदर्शन ज्ञान स्वरूपहै कि केवल देखनें जाननें रूप है तामें राग द्वेषका नाम नांही। अर राग द्वेषहै सो मोहजनितहै तातैं विभावहै, स्वभाव नांही, अर स्वभाव नांही सो धर्म नांही, तातैं अपनां दर्शन ज्ञान स्वभाव रूप धर्म छांडि द्वेषभाव करनांहै सो अधर्म है, अर विशेषपणें जीवनिका रक्षणकू धर्म कह्या सो जहाँ तीव्रदंड देनां विचारया तहाँ जीवरक्षा नहीं रही अर रक्षा नहीं तदि धर्म कहां रह्या तातैं द्वेषभाव सर्वथा नहीं करनां॥

प्रश्न—ये तो कह्या सो सत्य है परन्तु धर्मद्रोहीकूं दंड नहीं देवें ताके धर्म तैं वात्सल्यता कैसैं कहिये ?

उत्तर—जिनधर्म का लक्षण तौ सामान्यविशेषस्वरूपतैं कह्या सो ही है। जिनमंदिर जिनप्रतिमा जिनागम भी वाही धर्मके जनावनेंवारे हैं तातैं उपचारतैं व्यवहारमैं इनिकूं भी धर्म कहिये है सो ऐसैं है कि जिनमंदिर भी छहूकायके जीवनिकी रक्षाका निमित्त कारण है तातैं धर्म है क्योंकि आरंभमैं हिंसाहै सो आरंभ प्रथम तौ गृहा-

आरंभतैं जिनमंदिरमैं बहुत अल्पहै, अर है तामैं भी समितिरूप प्रवर्त्तनेंका हुकमहै तातैं हिंसा नहीं है रक्षाही है, सो भी ऐसैं जानूं कि एषणा समितिकृत कार्यका अर प्रतिष्ठापनासमितिकृत कार्यका तौ जिनमंदिरमैं प्रयोजन ही नाहीं, अरईर्यासमितिरूप प्रवर्त्तता संता गमनागमनकृत हिंसा नहींहै, अर भाषासमितिरूप प्रवर्त्तता सन्तां वचनालापकृत हिंसा नांही, क्योंकि जिनमंदिरमैं राजकथा चोरकथा भोजनकथा स्त्रीकथारूप च्यारूं तौ विकथा अर चुगली के निंदाके मायाचारीके मर्मच्छेदके कलहके निर्लज्जताके लोभके क्रोधके मोहके मदके मत्सरताके व्यभिचार आदिके वचन का निषेध है अर कोई बोले नहीं है तातैं वचनकृत हिंसा नहीं है, अर आदाननिक्षेपणा समिति रूप प्रवर्त्तता सन्तां उठावनां मेलनां कृत हिंसा नांहीं है, क्योंकि ज उपकरण वगैरे पूजनके द्रव्य उठावै हैमेले है सो दृष्टितैं सोधि यत्नाचारतैं उठावैहै मेलै है तातैं उठावनें मेलनेंकृत हिंसा नहीं है। ऐसैं समितिरूप यत्नाचारतैं प्रवर्त्तता सन्तां जिनमंदिर छहूं कायके जीवनिका हितकारीही है। तथा तामैं तिष्ठते मनुष्यदेव संयमरूप प्रवर्त्तेहैं तातैं परमहितकारी है, क्योंकि जाके देखते ही वीतरागता प्रकट होय है। अर तैसैंही जिनागम भी छहूं कायके जीवनिका हितकारी ही है क्योंकि निरन्तर दया का उपदेश करै है। तातैं ही जिनमन्दिर जिनप्रतिमा जिनागमकूं धर्म कहैहै। तौ ऐसे धर्ममैं किसी जीवमात्रतैं द्वेष मानितीव्र दंड देना कैसे सम्भवै ? तातैं धर्मतैं वात्सल्यता धारन करनें वाले मनुष्यकूं जिनमन्दिर जिनप्रतिमा जिनागम निर्ग्रंथ आदि धर्मके तथा धर्मात्माके रक्षानिमित्त पूर्वकाल मैं ही प्रथम तो जीवमात्रतैं आप वैर नहीं कर है, क्योंकि ऐसा न्याय है कि आप वैर नहीं करै ताके दुष्टकूं अन्य भी नहीं विगाडै।

दूसरा जो बिना कारण ही वैर करने वारे जीव हैं तिनतैं साम्य वचन कहि धर्म का स्वरूप मधुर वचनतैं दिखाय वाकेमनमैं उत्पन्न भया क्रोधकूं शांत करैहै। तीसरा धन धान्य वाके वांछित अपनी शक्तिप्रमाण देवैहै तासिवाय कदाचित् शिक्षानिमित्त पुत्रकूं जैसे अन्तरङ्गमैं प्रीतिधारण करतो पिता भय ताडनां दिखाय मार्गमैं लगावैहै तैसे शिक्षानिमित्त दुष्टजनकूं अन्तरङ्गमैं दया धारण करतो धर्मात्मा भय ताडनां दिखाय मार्गमैं लगावै, इत्यादि दयाकी प्राधान्यता वर्णा रहै तथा अनेक उपाय धर्मकी रक्षानिमित्त पूर्वकालमैंही करतो रहै। ता उपरांतिभी प्रबल दुष्ट दुष्टता करै तहां भावी बलवान जानि आप अनित्य भावनाका बलतैं अपने परिणाममैं साम्यभावही प्रकट करै क्रोधभाव कदाचित् नहीं होवादेवै, अर या दुष्ट पर भी करुणा ही करै कि देखो यो अज्ञानतातैं प्रबल कर्मबन्ध करि नरक निगोद आदि मैं अनेक जन्म पर्यंत दुःख भोगसी इत्यादि भावतो करै परन्तु वाहि तीव्र दंड देवा रूप द्वेषभाव कदाचित् ही नहीं करै। जिनागमका तो जहां तहां यो ही प्रकार अभिप्राय अैसा है॥।

अब प्रभावना नामा आठमा अंगका लक्षणरूप रत्नकरंड कहैं;—

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथा यथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

अर्थ—संसारी जीवनिकै हृदयमैं अज्ञान तिमिरकी व्याप्ति जो है ताहि सत्यार्थ स्वरूप वचनके प्रकाशतैं जैसैं होय तैसैं दूरि करि जिनशासनको माहात्म्य प्रकाश करै, सो प्रभावना नामा आठमा अंग है॥ १८॥

भावार्थ—अनादि कालतैं संसारी जीव जिनधर्मकूं नहीं जानता सन्ता चतुर्गति मैं भ्रमण करै है, अर या नहीं

जाण है कि मैं कौन हूं मेरा कहा स्वरूप है मैं इहां कहांतें आया हूं अर कौन ल्याया है मेरा हित कहा है मेरे कौन आराध्य है देव गुरु धर्म का कहा स्वरूप है मेरे भक्ष्य अभक्ष्य कहा है जन्म मरण कहा है मेरा कौन है मैं कौनका हूं मेरे तांई या पर्याय में क▪ कहा करनां है इहांतें मरि कहां जाऊंगा मेरे इष्ट अनिष्ट कहा है। अैसें नहीं जानता संता मोह कर्म के जोरतें संशय विपर्यय अनध्यवसाय रूप हो रहा है ताहि स्याद्वादरूप परमागमके उपदेशतें जागृत करैं सो प्रभावना है। तथा दान जप तप संयम शील संतोष निर्लोभता विनय प्रियवचन जिनपूजन जिनगुणप्रकाशन करि धर्मका प्रभाव प्रकट करै सो प्रभावना है। तातैं जिनपूजनमैं प्रथम तौ द्रव्य हो अैसा मंगावै कि जैसा नगर मैं राजाके योग्य सर्वोत्तम होय, दूसरा साधनां धोवनां आदि अैसी स्वच्छतातैं करैं कि जामैं दयाका तौ घात नहीं होय अर द्रव्य उज्जल होजावै, तीसरा सन्मुख खड़ा होय विनयपूर्वक निर्भीक हुवा मंता अैसी तरह चढ़ावै कि ताहि देखि मिथ्यादृष्टी भी चकित होय रहै, अर शील संयममैं परिणाम अैसा दृढ़ राखै कि देहका पतन होवै तौ ▪ उनके पालनेमैं उत्साह नहीं घटावै कि ताहि देखि सर्व लोक प्रशंसा करै, अर दान अैसैं देवै कि पात्र मैं तौ भक्ति अर द्रव्य में निर्लोभता प्रकट होती रहै तथा प्राण जातैं ▪ जीवघातका संकल्प असत्य भाषण परधनहरण परस्त्रीसेवन प्रमाण सिवाय परिग्रहग्रहण अभक्ष्यभक्षण अनीतिप्रवर्तन लोभतैं रागतैं भयतैं आशातैं कदाचित् ▪ नहीं करै। तथा ग्रीष्म ऋतुमैं आतापनयोग पर्वतके शिखर परि धरै, अर वर्षाऋतुमैं वृक्षके तलैं ध्यान धरै, शीतऋतुमैं नदी के तीरमैं ध्या-

न धरै, इत्यादिक तीव्रतपके करनें करि जिनधर्मका प्रभाव प्रकट करै सो प्रभावना है। तथा हमारे निमित्ततैं कदाचित् कोई तरह धर्मकी व्रतकी शीलकी कुलकी निंदा अपवाद मति होजावै ऐसा अंतरङ्गमैं भय राखता संता ऐसा प्रवर्तै कि जामैं प्रशंसा उज्वलता दृढता प्रकट होतो रहै सो प्रभावना नामा आठमां अंग है॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

ज्ञानोग्रतपसासक्तैर्दानपूजादिकारकैः।
जिनधर्मस्य माहात्म्यं क्रियते सा प्रभावना॥५४॥

अर्थ—ज्ञानमैं तथा उग्र तपमैं आशक्तता करि तथा दान पूजादिकका करना करि जिनधर्मको माहात्म्य प्रकट करै सो प्रभावना है॥ ५४॥

तथा समयसारमैं;—

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।
सो जिणणाणपभावी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो॥२३८॥

विद्यारथमारूढः मनोरथपथेषु भ्रमति यः चेता।
सः जिनज्ञानप्रभावी सम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः॥२३८॥

अर्थ—जो पुरुष विद्यारूपरथके विषैं चढ्या हुवा मनरूप रथका मार्ग के विषैं भ्रमण करै है सो पुरुष जिनेश्वरका ज्ञानको प्रभाव प्रकट करनें वारो सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य है॥ २३८॥

टीका—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन ज्ञानस्य समस्तशक्तिप्रबोधेन प्रभावजननात्प्रभावनाकरस्ततोऽस्य ज्ञानप्रभावना-

प्रकर्षकृतो नास्ति बंधः किंतु निर्जरैव ॥ २३८॥

अर्थ—यातैं जो पुरुष निश्चय करि सम्यग्दृष्टी है सो टंकोत्कीर्ण एकज्ञायकभावमयीपणांकरि ज्ञानकी सम्यक्तशक्तिका जाग्रत होनें करि प्रभावके प्रकट करनेंत प्रभावना का करता है, तातैं याकै ज्ञानकी प्रभावनाका अप्रकर्ष जो न्यूनपणां ता करि किया बंध नहीं है तो कहा है कि निर्जराही है ॥ २३८ ॥

भावार्थ—प्रभावना नाम प्रभाव प्रकट करनेंका है तातैं अपना ज्ञानका प्रभाव निरन्तर श्रुताभ्यास करि प्रकट करै सो निश्चयप्रभावनानामा आठमा अंग है। अर जा पुरुषकै प्रभावना अंग प्रकट भया ता पुरुषकै अप्रभावनाकृत कर्मबंध पूर्वकालमैं होता था सो नहीं होय है, अर संचित कर्म रस देय देय समय समय प्रति असंख्यातगुणे खिरै है तातैं निर्जराही है। अर विद्यारथविषैं आत्मा कूं थापि मनोरथ का मार्ग विषै भ्रमण कराणा कह्या सो जैसैं व्यवहार प्रभावनामें जिनबिंबकूं रथमैं स्थापन करि मन वांछित स्थानमैं भ्रमण कराइये है तमैं निश्चय प्रभावनामैं आत्माकूं विद्यारूपी रथमैं स्थापन करि मनवांछित निजतत्व निर्णयरूप स्थानमैं भ्रमण कराना कह्या है ॥ २३८ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीके ये निःशंकितादिक अष्ट गुण निर्जरा के कारण कहे तैसैं ही और भी सम्यक्तके गुण निर्जराके कारण जानने। इहां इतना और विशेष जाननां कि निश्चय नय तौ अपनां चेतना स्वरूप तैं नहीं चिगै संदेहवान नहीं होय ताकै निःशंकित गुण कहे है, अर व्यवहारनय देव गुरु धर्मका स्वरूपतैं तथा सप्ततत्त्व नव पदार्थ का स्वरूपतैं नहीं चिगै संदेहवान नहीं होय ताकै निःशंकित गुण कहे हैं। बहुरि निश्चय नय तौ कर्मफलकी

वांछा नहीं करै तथा अन्य वस्तुके धर्मकी वांछा नहीं करै ताकैं निःकांक्षित गुण कहे है, अर व्यवहारनय संसार संबंधी सुखकी वांछा नहीं करै ताकै निःकांक्षित गुणहै । बहुरि निश्चय नय तौ वस्तुनिके धर्मनिके विषैं ग्लानि नहीं करैं ताके निर्विचिकित्सत गुण कहे है, अर व्यवहारनय देव गुरु धर्मके स्वरूपमैं ग्लानि नहीं करै ताकै निर्विचिकित्सत गुण कहे है । बहुरि निश्चय नय तौ निजस्वरूपमैं मूढ नहीं होय ताके अमूढदृष्टि गुण कहैहै अर व्यवहार नय देव गुरु धर्मका तथा तत्वार्थश्रद्धानमैं मूढ नहीं होय ताकै अमूढदृष्टि गुण कहैहैं । बहुरि निश्चय नय तौ विभावभावकूं छिपाय निजशक्तिकूं वधावै ताकै उपगूहन तथा उपवृंहण गुण कहैहै, अर व्यवहार नय शुद्धमार्गके बालकके तथा अशक्तके संबंधतै निंदता प्रकट होती होय ताहि छिपाय शुद्धता प्रकट करै ताके उपगूहन तथा उपवृंहण गुण कहेहै । बहुरि निश्चय नय तौ आपकू तथा परकूं निजस्वरूपतैं चिगतानैं फेर थाहांमैं स्थापन करै ताके स्थितीकरण गुण कहैहै, अर व्यवहारनय दर्शनज्ञान चारित्रतैं तथा देव गुरु धर्मका स्वरूपतैं चिगतानैं फेर वाहीमैं स्थापन करै ताके स्थितीकरण गुण कहैहै । बहुरि निश्चय नय तौ अपना स्वरूपमैं अनुराग होय ताकै वात्सल्य गुण कहैहैं, अर व्यवहार नय सत्यार्थधर्मके धारकनिमैं अनुराग होय ताकै वात्सल्य गुण कहैहै । बहुरि निश्चय नय तौ आत्मगुणका प्रभाव प्रकट करै ताके प्रभावना गुण कहैहै, अर व्यवहार नय अज्ञान अंधकारका फैलावनैं दूरि करि जिनशासनका माहात्म्य प्रकट करै ताकै प्रभावना गुण कहैहै । अरगुणनिके प्रतिपक्षी शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवत्सलता, अप्रभावना, ये आठ दोष जे हैं

तिनकरि बंध होय था सो आठ गुण प्रकट भये पीछैं नहीं होय है, अर पूर्व संचित बंधका नाश होय है।

प्रश्न—इन आठूं गुणनिकूं होत संतैं भी चारित्रमोहके उदयतैं शङ्कादिक दोष प्रवर्त्ते हैं तिन कृत बन्ध होनां सिद्धांतग्रन्थनिमैं कह्याहै, अर समयसार आदि अध्यात्मग्रन्थनिमैं सम्यक्तीकै बन्ध नहीं निर्जरा ही है ऐसैं कह्या सो कैसैं है।

उत्तर—बन्ध होने के निमित्तकारणनिमैं प्रधान कारण मिथ्यात्वहै क्योंकि मिथ्यात्वकृत बन्धकै ही अनन्तपणां कह्या है अर वाहीमैं अनुरागको आधिक्यता है, अर मिथ्यात्वरहितकै भी चारित्रमोहजनित बन्ध होय है सो अल्पस्थिति अल्प अनुभाग सहित होय है तातैं अबन्ध कह्या है। याका अभिप्राय ऐसाहै कि पूर्वकालमैं जैसा बन्ध मिथ्यात्वतैं होयथा तैसाही बन्ध चारित्रमोहतैं होयहै तथापि वाकी स्थिति छीण होयगी ता पहिली ही याकी स्थिति छीण होय जायगी, तातैं बन्ध भया भी अबन्धकै समान है। अर यामैं अनुभाग भी बहुत घाटि है तातैं जैसा फल वै देवै था तैसा ये फल भी नहीं देवैगा तातैं भी नहीं भयाकै ही समान है। ताका दृष्टांत असाहै कि एक पुरुष साठि वरष जीवैगा ताकै बीस वरषकी ऊमरिमैं पुत्र भया ताकी जन्मपत्री देखि ज्योतिषीन कहाकि ये पुत्र बीस वरष जीवैगा ऐसा वचन सुनि सर्वही कहते भये कि याकी चालीस वरषकी ऊमरिमैं ही पुत्रका वियोग होयगा तातैं याकै पुत्र भया भी नहीं भयाकै ही समान है, क्योंकि पुत्र होनेका आनन्द तौ वृद्ध अवस्थामैं चाकरी करनें की आस निमित्त था, तथा अपनां पिछला कुटम्बकी पालनां निमित्त था सो दोऊही मनोरथ निष्फल है तातैं भया जैसा ही

नहीं भया। तैसैं ही चारित्रमोहजनित बन्ध होय है तौ हू नहीं भये कै ही समान है। तथा दृष्टांत ऐसा भी है कि जा वृक्ष की जड़ कटि गई ता वृक्ष के रहनें की कहा आसा रही, किंचित् काल पत्र हरे दीपै है तौ हू हरित नहीं रहैंगे। तैसैंही संसारकी जडरूप मिथ्यात्व था ताके अभावमैं नवीन बन्ध चारित्रमोहजनित होय है तौ हू अबन्ध ही है। तथा दृष्टांत ऐसा भी है कि एक लीक दश अंगुल लम्बी थी वाके निकट च्यार अंगुल लम्बी दूसरी लकीर खींची पीछैं बड़ी लीकके मुजाननेंके यत्नमैं ही छोटी लीक भी मुजणि गई वाके निमित्त दूसरा यत्न नहीं करनां पड्या तैसैं ही दीर्घस्थितिवान मिथ्यात्वजनित कर्मके नाश होनेंके सङ्ग ही अल्पस्थितिवान चारित्रमोहजनित कर्म भी नाशनैं प्राप्त होय है अर अध्यात्मशास्त्रकै विषैं सामान्यपणैं सम्यग्ज्ञानी मिथ्याज्ञानी होनेंकी प्रधानता लिये कथन है सो सम्यग्ज्ञानी भयें पीछ अवशेष कर्म रहैहै ते अल्प प्रयासतैं ही मिटि जायगें तातैं अबन्ध कह्या है। ताका दृष्टांत ऐसा जाननां कि जा राजकुमारकूं युवराज पद हो गया सो अवश्य राजा होयगा तातैं राजकुमारकू भी राजा कहियेहै, तैसें ही जा जीवकै सम्यक्त्व होगया सो अवश्य केवलज्ञानी होयगा, तातैं सम्यक्तीकूं भी ज्ञानी कहियेहै। भावार्थ— सम्यक्त्व भयें पीछ अनन्त संसारी नहीं रह्या तातैं अबन्ध कह्या है॥

अब सम्यग्दृष्टीका लक्षणस्वरूप कलसमयसारमैं;—

छन्द मन्दाक्रांता।

रुंधन्बंधं नवमिति निजैः संगतोऽष्टाभिरंगैः
प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन् निर्जरोज्जृम्भणेन।

सम्यग्दृष्टिःस्वयमतिरसादादिमध्यांतमुक्तं
ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरंगं विगाह्य॥५६॥

अर्थ—इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार अपनें स्वभावरूप अष्ट अङ्ग जे हैं तिन करि मिल्यो हुवो अर नवीन कर्म बन्धनैं रोकतो सन्तो अर निर्जराका फैलाव करि पूर्व बद्ध कर्म जे हैं तिननैं क्षयनैं प्राप्त करतो सन्तो सम्यग्दृष्टी आप अपनां अति आनन्दका रसतैं आदि मध्य अन्त रहित ज्ञानस्वरूप होय करि आकाशका मध्यरूप रङ्ग भूमिनैं अवगाहन करि नृत्य करे है ॥५६॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी शङ्कादिकृत बन्ध नहीं करता निःशङ्कितादि गुण कृत निर्जराके होतें अपनां ज्ञानानन्दमय हुवा सन्ता यावत् काललब्धि नहीं आवे है तावत्काल आकाश के मध्यमें ऊर्द्ध मध्य लोकरूप नृत्यके अखाडेमें उत्तम जन्मरूप नृत्य करे है ॥ ५६ ॥

प्रश्न—अष्ट अंगनिमें कोई अंगहीनभी सम्यक्त कार्यकारी है कि नहीं है।

उत्तर रूप रत्नकरंडमें श्लोक;—

नांगहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसंततिं।
न हि मंत्रोऽक्षरन्यूनो निहंति विषवेदनां ॥२१॥

अर्थ—अङ्गहीन सम्यक्त जो है सो विषवेदनानें नहीं हणे है।

भावार्थ—अष्ट अंग सयुक्तही सम्यक्त वांछितकार्यकारी होय है अंगहीणतैं वांछित कार्य वर्णं नांहीं ॥ २१ ॥

प्रश्न—सम्यग्दर्शन का लक्षण अष्ट अंगनिसंयुक्त कह्या सो तौ श्रद्धानरूप किया परन्तु सम्यक्तके अतीचार तथा पंचविंश-

ति मलदूषण जे हैं तिनका भी लक्षण कहो।

उत्तर—अनुक्रमतें कहिये है सो सुनें। प्रथम तौ सम्यक्त्वके पंच अतीचारका लक्षणरूप तत्वार्थ सूत्रमैं;——शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥ अर्थ—शंका कहिये संशय, कांक्षा, कहिये वांछा, विचिकित्सा कहिये ग्लानि, अन्यदृष्टिप्रशंसा कहिये मिथ्यादृष्टीनिका मन करि सराहना, अन्यदृष्टिसंस्तव कहिये मिथ्यादृष्टीनका वचन करि सराहना, ए पांच सम्यग्दृष्टीका अतीचार है।

प्रश्न—प्रशंसाकै विषैं अर संस्तवके विषैं कहा विशेष है।

उत्तररूप राजवार्तिक—वाङ्मनसविषयभेदात् प्रशंसासंस्तवयोर्भेदः ॥ १ ॥ अर्थ—वचनके अर मनके विषयभेदतें प्रशंसाकै अर संस्तवकै भेदहै ॥ १ ॥ टीका—

मनसा मिथ्यादृष्टिज्ञानचारित्रगुणोद्भावनं प्रशंसा, भूताभूतगुणोद्भावनवचनं संस्तव इत्यनयोर्भेदः॥ १ ॥

अर्थ—मन करि मिथ्यादृष्टी का ज्ञान चारित्र गुणनिका प्रकट करनांहै सो प्रशंसा है, अर छते अणछते गुणनिकों प्रकट करने वारो वचन है सो संस्तवहै या प्रकार इन दोऊनिके विषैं भेदहै ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;——

शंका कांक्षा भवेत्पापा विचिकित्सा तथा परा।
अन्यदृष्टिप्रशंसा च संस्तवोऽस्तु कुलिंगिनां ॥६८॥

अर्थ—शंका, कांक्षा, विचिकित्सारूप पाप, अर तैसैं ही और

अन्यदृष्टीनिकी प्रशंसा, अर कुलिंगीनिका संस्तव ए पांच सम्यग्दृष्टीके अतीचार है ॥ ९८ ॥

तीर्थेशे सद्गुरौ शास्त्रे सप्ततत्त्वे वृषे च यः।
शंकां करोति मूढात्मा शंकादोषं लभेत सः ॥९९॥

अर्थ—तीर्थकरकै विषैं समीचीन गुरकै विषैं शास्त्रकै विष सप्ततत्त्वकै विषैं दशलक्षण आदि चतुर्विध धर्मकै विषैं जो मूढात्मा शंका करै है सो शंकानामा दोषनैं प्राप्त होय है ॥ ९९ ॥

चरणादिवृषं कृत्वा भोगान्वांछति योऽशुभान्।
इहामुत्र भवान्सोऽधीराकांक्षादोषभाग्भवेत् ॥१००॥

अर्थ—जो पुरुष त्रयोदश प्रकार चारित्र आदि धर्मनैं पालन करि या लोकमें तथा परलोकमें उत्पन्न भया अशुभ भोगनिनैं वांछै है सो निर्बुद्धी आकांक्षानामा दोषको भागी होय है ॥ १०० ॥

दृष्ट्वा मुनीश्वरांगं यो मललिप्तं रुजान्वितं।
घृणां धत्ते भजेत्सोऽपि मलं विचिकित्साभिधं ॥१०१॥

अर्थ—जो रोग संयुक्त तथा मलकरि लिप्त मुनीश्वरनिका अंगनैं देखि ग्लानि धरै है सो ही विचिकित्सा नामा दोषनैं भजै है कि पावै है ॥ १०१ ॥

कुदृष्टेः कुतपोज्ञानवृत्तजां यो करोति ना।
प्रशंसां जायते तस्य सम्यक्त्वस्य मलोऽशुभः १०२

अर्थ—जोपुरुष कुदृष्टीका कुत्सिततपतैं तथाकुत्सितज्ञानतैं उत्पन्न भई प्रशंसानैं करै है ताकै अशुभरूप सम्यक्त्वको कुदृष्टि प्रशंसा नामा दोष उपजै है ॥ १०२ ॥

करोति संस्तवं योऽधीः कुज्ञानकुव्रतादिजं ।
पार्षंडिनामतीचारं लभेत्सद्दर्शनस्य सः॥ १०३ ॥

अर्थ—जो निर्बुद्धी पाषंडीनिका कुज्ञान कुव्रततैं उत्पन्न भया संस्तवनं करै है सो सम्यग्दर्शनका संस्तवनामा अतीचारकैं प्राप्त होय है ॥ १०३ ॥

प्रश्न—अतीचार शब्दका अक्षरार्थभी कहौ।

उत्तररूप वार्तिक—दर्शनमोहोदयादतिचरणमतीचारः ॥३॥

अर्थ—दर्शनमोहके उदयतैं अतिचरण कहिये मर्यादका उल्लंघन होय सो अतीचार है॥३॥

टीका—दर्शनमोहोदयात्तत्वार्थश्रद्धानादतिचरणमतीचारः अतिक्रमः इत्यनर्थांतरं। एते शंकादयः पंच सम्यग्दर्शनस्यातीचाराः ॥ ३॥

अर्थ—दर्शनमोहके उदयतैं तत्वार्थश्रद्धानतैं चिगना है सो अतीचार है, अतीचार है सो ही अतिक्रम कहिये मर्यादका उल्लंघना है, ये दोऊ शब्द एक ही अर्थके कहनेवारे हैं, अर्थांतरवाची नहीं है। ऐसैं ए शंकादिक पांच सम्यग्दर्शनके अतीचार हैं।

प्रश्न—अतीचार का लक्षण भी श्रद्धान किया परंतु अनाचारके भी लक्षण कहो,

उत्तर—अबैं पचीस दोषनिके नाम प्रश्नोत्तरश्रावकाचारसैं कहै है।

श्लोक—

मूढत्रयं मवेचाष्टौ मदा जात्यादिजा बुधैः।
षडनायतनान्यष्टौ दोषाः शंकादयो मताः॥६॥

अर्थ—तीन मूढता, अर आठ जात्यादि मद, अर षट्अनायतन, अर आठ शंकादिक दोष ये पचीस सम्यक्त्वके मलदोष बुधजननिनैं कहे हैं।

प्रश्न—इनिके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहो।

उत्तर—प्रथम तो तीन मूढताके लक्षण कहेहै, तिनिमें भी प्रथम देवमूढता का लक्षणरूपश्लोकरक है—

श्लोक—

वरोपलिप्सयाऽऽशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—जो पुरुष वर की वांछा करि आशावान हुवो संता रागद्वेष करि मलिन देवता जे हैं तिनकीं उपासना करै, सो पुरुष देवतामूढ कहिये है॥ २३ ॥

भावार्थ—संसारी जीव अपनें इष्टरूप पिता पुत्र मित्र कलत्र धन धान्य आभरण वस्त्र शस्त्र वाहन राज्य ऐश्वर्य आदिकूं चाहता संता तथा इनि के वियोग होनेंका भयवान हुवा संता तथा दरिद्र रोग कुपुत्र कुमित्र कुभार्या आदि आदि अनिष्ट सम्बन्धकूं नहीं चाहता संता अनादि मिथ्यात्वके वशतैं एसैं नहीं जानैं है कि इष्टकी प्राप्ति दानांतराय लाभांतराय भोगांतराय वीर्यांतरायके दूरि भये होयगी, अर मोहके उदयतैं कुदेवमें तथा अदेवमें भक्ति पूर्वक अनुराग करै है सो देवमूढ है।

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें; श्लोक—

वीतरागोऽस्ति निर्दोषः कृष्णब्रह्मादिकोऽथ वा।
सदोषः पूज्यते मूढैः पशुवो गतबुद्धिभिः ॥८॥

अर्थ—ज्ञानवाननि करि अति निर्दोष वीतराग जो है सो पूजिये है, अर कृष्ण ब्रह्मादिक सदोष है वे पशू समान निर्बुद्धी पुरुषनि करि पूजिये है। भावार्थ—निर्दोष वीतराग सर्वज्ञदेव अर सदोष हरिहर ब्रह्मादिक देव मूढबुद्धीनिके ज्ञानमें समान प्रतिभासै है ते देवमूढ हैं ॥ ८ ॥

यत्परीक्षां परित्यज्य मूढभावेन पूज्यते ।
पुण्यहेतोर्बुधैस्तत्र देवमूढत्वमुच्यते ॥ ९ ॥

अर्थ—जो पुरुष परीक्षानैं त्यागि करि मूढभाव करि सदोषनैं पुन्यके निमित्त पूजै है तिनमें बुधजननिनैं देवमूढपणूं कह्यो है ॥९॥

भावार्थ—रागद्वेषसहितपणातैं वस्त्र शस्त्र आभरण स्त्री वाहन आदिके धारक मनोज्ञ अमनोज्ञरूप वणाय देवमानि पूजै सो तौ कुदेवपूजक देवमूढ कहिये। अर गौ अश्वगज आदि तौ पशू अर वड पीपळ छाला खेजड़ा आदि वृक्ष अर मूसल कुखल देहली रौंडी आदि जड द्रव्यनिनै देव मानि पूजै सो अदेवपूजक देवमूढ कहिये क्योंकि मूढ नाम मूर्ख अज्ञानी का है तातैं कुदेव मैं तथा अदेव मैं देवबुद्धि जाकी होय सो देवमूढ कहिये है ॥ ९ ॥

बहुरि लोकमूढपणांका लक्षण रत्नकरंडमें कहै है;—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनां ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

अर्थ—गंगादिक नदीनिमें स्नान, समुद्रमें स्नान, बालू के पुञ्ज, पाषाणके पुञ्ज, पर्वतत पतन, अग्निमें पतन इत्यादि करणां

है सो लोकमूढ कहिये है ॥ २२ ॥

भावार्थ—अन्यमतीनिकी संगतितैं तथा उपदेशतैं गङ्गादिक नदीनिमें स्नान करनेंतैं, समुद्र का लहर लेनें में वालू रेतके पिंड करनें तें, माता पिताके दाहक्षेत्र में पाषाणके पुंज करनेंतैं, भरू मांप आदि पर्वतके शिखरतैं पडनें तें, पति के साथि अग्निमें बैठि सती कहानेंतें धर्म मानें है। तैसे ही सांझ स्नान करनेंतैं आपका पवित्र होनां मानें है। तथा ग्रहणके आदि अन्तमें स्नान करनेंतैं पुन्य मानें है। तैसें ही संक्रांतिमें तथा नक्षत्रतिथिके योग मैं दान देनेंतैं, तथा अपनें माता पिता का नाना नानीका पुत्र पौत्रादिकका तर्पण करनेंतैं तथा उनके निमित्त शय्या आदि के दान देनेंतैं पुन्य मानैं है तथा कूंवा परिहंडा देहला रोडी छींक छाजला मूसल ऊंखल पालिकी घोडा हाथी रथ तरवारि धनुष बाण बरछी नगीना रुपया महोर बड पीपल खेजड़ा तुलसी आदिके पूजनतैं मङ्गल होनां मानैं है सो लोक मूढता है।

प्रश्न—भावार्थ में गङ्गादिकमेंस्नान आदि का नाम लिखे सो मूल श्लोकतैं सिवाय कहातैं लिखे।

उत्तर—मूल श्लोक में आपगासागर स्नान आदि शब्द है सो उपलक्षण शब्द है तातैं लिखे हैं।

उत्तर—ऐसा उपलक्षण अर्थकी प्रतीत तुमारे कैसें हुई।

उत्तर—प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, षट्कर्मोपदेशरत्नमाला आदि ग्रंथकार जहां तहां इनिका निषेध करें है ताकूं देखि हमनें लिख्या है। अर इहां येक येकके निषेधका श्लोक ग्रन्थवधनें के भयतैं नहीं लिखे । क्योंकि ये ग्रन्थ स्वमतनिर्णय को है अर स्वमतवाले सर्वही इनिकूं त्याज्य मानैंहै तातैं संक्षेप नाम मात्र लिखे हैं।

प्रश्न—तुमनैं हाथी घोडा तरवार आदिक पूजनैं मैं लोक मूढता बताई तौ हाथी घोडा तरवारि कलम आदिका सुधारणां तथा नाई व्यास जंवाई भाई सेवक स्वामी आदिका सत्कार करनां तिलक करनां अक्षत चढाना तांबूल श्रीफल वस्त्र आदि देना भी योग्य है कि नांहीं।

उत्तर— हाथी तरवार आदि का सुधारनां, अर नाई व्यास आदिका सत्कार करनां तौ लोकव्यवहार है क्योंकि अदेवमैं देवबुद्धि करि पूजनां है सो लोकमूढता है ताका निषेध है। तथा अतिशयरूप जिनप्रतिमां के नामतैं तथा जिनस्तोत्र के नामतैं जडूला चोटी राखै है। तथा अपनैं इष्टकै उपद्रवकी शांतिकै अर्थि बोलारी बोलै है अर या निमित्त पूजन करावैं है तथा सजातीनिकूं जिमावै है सो सर्व लोकमूढता ही है, क्योंकि असैं करनेका आगम का हुकम नांहीं, अर हुकम बिना करै सो सर्व धर्मपद्धतिमैं लोकमूढता नाम पावै है॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मैं—

अहिंसालक्षणोयेनो जिनोक्तो धर्म एव सः ।
स्नानादिजश्च श्राद्धादिलोकाचारेण चागतः ॥ १२ ॥

अर्थ—अहिंसालक्षणसंयुक्त जिनेंद्र भाषित है सोही धर्म है अर स्नानादिकतैं उत्पन्न भया तथा श्राद्धतर्पण आदि है सो लोकाचार करि आयो व्यवहार है। भावार्थ—स्नान श्राद्धतर्पण आदिमैं धर्म माननां है सो लोकमूढता है॥

आचर्यते शठैर्लोकैःपरित्यक्ता (क्त्य) विचारणं ।
प्ररूपितं जिनैस्तद्धि लोकमूढत्वमेव भो॥१३॥

अर्थ—भो भव्य जन हो! जो मूर्ख लोकनि करि विचारनैं छोडि आचरण करिये है सो जिनेंद्रदेवनैं निश्चयकरि लोकमूढपणूं ही कह्यो है ॥ १३ ॥

परीक्षालोचनैस्त्वं सज्जैनं धर्मं परीक्ष्य च।
मिथ्यात्वं च समादाय त्यज मूढत्रयं सुहृत् ॥१४॥

अर्थ—हे मित्र! तू परिक्षारूप नेत्रनिकरि परीक्षा करि, समीचीन जिनेंद्रभाषित धर्मनैं ग्रहण करिकै मिथ्यात्वरूप मूढत्रयनैं त्यागि करि ॥ १४ ॥

मूढभावेन यो मूढो धर्मं गृह्णाति लोकजं।
पुण्याय स विषं भुक्ते सुखाय प्राणनाशनं ॥ १५ ॥

अर्थ—जो मूर्खपुरुष मूढभावकरि लौकिकधर्मनैं पुण्य कै अर्थि ग्रहण करै है सो प्राणनिका नाशकरणे वारा विषनैं सुखकै अर्थि भक्षणकरैहै ॥ १५ ॥ भावार्थ—जिनधर्म सिवाय अन्य सर्व लौकिक धर्महै ते संसारमैं वारंवार जामण मरण करावनवारे हैं तातैं विषसमान जानि त्यागवो योग्य है ॥ १५ ॥

बहुरि गुरुमूढताका लक्षण रत्नकरंडमैं,श्लोक—

सग्रंथारंभहिंसानां संसारावर्त्तवर्तिनां।
पाषंडिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषंडिमोहनं ॥२४॥

अर्थ—परिग्रहसहित तथा आरम्भ सहित तथा हिंसासहित अर संसाररूप भ्रमणमैं भ्रमण करावने वारे ऐसे पाषण्डी जेहैं तिनको जो पुरस्कार कहिये आज्ञाप्रमाण प्रवर्त्तन करनौं सो पाषण्डिमोहन है, याहीकूं गुरुमूढता कहैहैं ॥ २४ ॥

भावार्थ —मुनि साधु आचार्य महन्त सन्त आदि पूज्य नाम कहाय गुरुपणांका अभिमानकरि लोकनितैं नमस्कार करावैहै अर आप हाथी पालिकी चमर मोरछल आदि राजचिह्न राखैहै, तथा कडा कुण्डलादि आभरण राखैहै, तथा म्हौर रुपया राखैहै, वौरगति करैहै, बाग लगावैहै, खेती करावैहै, केई जटा राखैहै, केई मूंड मुंडावैहै, केई लोच करैहै, केई गेरूके रंगे वस्त्रधारै है, केई काथिया वस्त्र धारैहै, केई पीला वस्त्र धारैहै, केई लाल वस्त्र धारैहै, केई स्वेत वस्त्र धारैहै, केई नग्न रहैहै, केई कोपीन राखैहै, केई भस्म लगावैहै। तिनमैं केई तौ अन्यधर्म धारैहै, केई जैनधर्म धारै है, अर केई सवारी पर चढैहै, केई पयादे फिरैहै इत्यादि अनेक भेष धारि अपनां विषय पोषैहै ते सर्व पाषण्डी जाननें। अर पाषण्डीनिका सत्कार करनां, नमस्कार करनां, विनय करनां, गुरु मानि नवधाभक्तिकरि आहारपान देनां, द्रव्य देनां, वस्त्र देनां आदि भक्ति करनां है सो सर्व गुरुमूढपणां है ॥२४॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं लोकमूढताके एवजमैं समयमूढता लिखे है,—

जैनसिद्धांत सूत्रेय उक्तो धर्मो जिनेश्वरैः।
पंचमिथ्यात्व संलग्नै र्मूढैर्वेदादिके च यः ॥१०॥
सद्विचारं परित्यज्य क्रियते स शठैर्जनैः।
कथ्यते तद्बुधैर्लोके मूढत्वं समयोद्भवं ॥११॥

अर्थ—जो जिनेश्वरदेवनैं जैन सिद्धांतसूत्रकैविषैं धर्म कह्यो है सो ही नाममात्र धर्म पञ्चप्रकारका मिथ्यात्वकरि सिक्त ऐसे मूर्ख मनुष्यनि करि वेदस्मृति पौराणकै विषैं कह्यो है ॥१०॥

सो धर्म मूर्ख जन समीचीन विचारने लागि अर ग्रहण करै है सो लोकमें विषै बुधजननि करि समयाद्भव मूढपणूं कहिये है ॥ २४ ॥

भावार्थ—समय नाम सिद्धांतका है सो सर्वही धर्मवाले अपनें अपनें सिद्धांतके अनुकूल धर्म मानि ग्रहण करै है, तातें कहै है कि धर्मके लक्षणनिकी परीक्षा करि जामें सत्यार्थ धर्म दीखै सो सिद्धांत ग्रहण करै सो तौ ज्ञानवान कहिये, अर विचार बिनांही नाममात्र धर्म सुनि सिद्धांतमें ग्रहण करै सो समयमूढ कहिये है। इहां सिद्धांतमें मूढता कही वहां सिद्धान्त के करता गुरु जे हैं तिनिमें मूढता कहा तातें दोऊनिका एकही अभिप्राय जाननां ॥

अब अष्टमदके नाम ग्रन्थकरणहमैं कहै हैं;—

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपोवपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥

अर्थ—गयो है मद जिनके ऐसे जिनेश्वर जेहैं ते ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, मनोग्यशरीर, ए अष्ट जे हैं तिनमें पाय जो मानीपणूं होय ताहि मद कहै है ॥ २५ ॥

भावार्थ — ये आठ मद सम्यग्दृष्टीके नहीं होय है, क्योंकि सम्यग्दृष्टी ऐसा चितवन करता रहै है कि हे आत्मन्! तुमारे या अवसरमें कछुयक पुन्य के उदयतें अंगोपांग नाम कर्म के लाभतें सैनी पंचेन्द्रियपणों भयो है अर ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमतें इंद्रियजनित ज्ञान कछुयक प्रकट भयो है, ताकी थिरता कछू भी मति समझो, क्योंकि प्रथमतो यो ज्ञान इंद्रिय जनित है सो इनिमें विकार होनेतें वात पित्त कफके घटनें बधनेतें अति, हर्ष

क्रोध लोभ मोह मद शोक विषाद कलह भय मच्छरता के उपजनेंतें नष्ट होजाय है वा विपरीति होजाय है सम्यक्तता प्राप्त होजाय है, अर कदाचित् आजन्मपर्यंत थिर रह जायगा तौ पर्याय छूटनें के अवसर मैं तौ रहनां बड़ा मुसकिल है क्योंकि वा समय की वेदनाकूं सर्वज्ञ वीतराग केवली जानें है अर प्रबल वेदना के होतें उपयोग की थिरता उत्तम संहनन वारेंहीके रहै है। तातें सर्वज्ञकी आज्ञाप्रमाण दृढव्यवसायतें साम्यभावकूं ही जैसें बणें तैसें ऐसा दृढ करो कि परलोकपर्यंत साथि रहै। अर या किंचित् ज्ञानका कहा मद करौहो, तुमनें या/ अनन्तसंसारमें परिभ्रमण करता एक सम्यक्त सहित साम्यभाव बिना केई बार अनेक कला चतुराई काव्य कोश व्याकरण न्याय छन्द अलंकार साहित्य नायिका भेद सकुन ज्योतिष्क वैद्यक मंत्र जंत्र तंत्र शिल्पि सिद्धांत आदि के ग्रंथ पढ़े हैं सुनें हैं बनाये हैं। फिर ज्ञानावरण कर्म के उदय होतें ऐसे भये हो कि एक अक्षर के अनन्तवें भाग प्रमाण तुमारा ज्ञान केवली भगवान के ही गम्य रह्या। अर पृथ्वी अपतेज वायु वनस्पतीरूप होय जड़जीव नाम कहाये। अर अब जैन धर्मकूं पाय करिभी मिथ्याज्ञान मदनें ही धारण करोहो तौ फिर वे ही पर्याय पावौगे जामैं अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान रह जायगा। अर वर्त्तमानमैं भी तुमारा ज्ञान कितनां कहै तीर्थंकर तौ च्यार ज्ञानकूं धारण करने भी मुनिपदवी मैं छद्मस्थता मानि मौन ग्रहीं ही रहै है। अर गणधर भी केई सूक्ष्म संदेह दूरि करनेकूं भगवान केवलीनैं प्रश्न करि निर्णय करै है। और अंगधारीन आदि लेय आचार्य उपाध्याय साधु जे हैं ते उत्तरोत्तर गुरु शिष्यपणनैं धारै हैं, अर निरंतर शिक्षा दीक्षा करते रहैं हैं वा प्रायश्चित्त देते लेते रहैं हैं। अर और विचारो कि वर्त्तमानमैं भी तुमतैं अधिक अधिक समस्त

भद्रजी जिनसेनजी कुंदकुंदजी आदि ऋषीश्वर भये हैं तिनिके ग्रंथनि कूं देखो कि अपनी लघुताई कैसीक लिखे है अर मदकूं कैसाक बुरा लिखें है अर साम्यभावकूं कैसाक भला लिखें है। तातैं किंचित् शास्त्रका ज्ञान भया तो याकूं साम्यभाव में लगावो, अर याका मद मति करो। ये ज्ञानका मद सर्व मदतैं भी भौत बुरा है क्योंकि और मद तौ ज्ञानतैं मिटै अर ज्ञानका मद काहेतैं मिटै। तातैं शास्त्रज्ञानका मद कदाचित् ही मति करो। अर जैनधर्मकूं पाय व्यवहारज्ञानका भी मद मति करो, क्योंकि ये भी तुमारैं मिथ्यात्वका ही सद्भाव प्रकट करै है। अर केई पुरुष जैनधर्मकूं धारता संता भी प्रबल मिथ्यात्वके जोरतैं मायाचार करि अपनें वचनवत्त पुष्ट करनें कूं भोलेजीवनिनैं सूत्रविरुद्ध मार्गमैं प्रवर्त्तन कराय आपकूं कृतार्थ मानैं है। अर केई पुरुष मिथ्यामतके स्थापन वारे हैं, तिनिमैं केई तौ जीवका सर्वथा अभाव स्थापन करै है, अर केई एक ब्रह्मरूपजीवहूं स्थापन करै है, केई क्षणस्थाई कहै है, केई पंचभूत जनित कहै है केई जगतकूं ब्रह्मरूप कहै है, केई जगतकूं स्वप्नरूप मिथ्या कहै है, इत्यादि मिथ्या श्रद्धानी जे हैं तिनकी संगति मति करो। अर केई पुरुष जलचर थलचर नभचर जीवनिके पकड़नें बांधनें मारनें के जंत्र पींजरा जाल फांसी आदि बनाने में तथा खड्ग बंदूक तोप बाण बरछी आदि अनेक तरह तरह की पांण बनाने में प्रवीण है। अर केई पुरुष पराये धन पराई स्त्री हरनें में तथा कूटलेख करने में प्रवीण होय सांचेकूं झूंटे अर झूंटेको सांचे करते हैं। अर केई पुरुष मारण मोहन उच्चाटन वशीकरण आकर्षण करनेंमैं प्रवीणता मानैं है। अर केई पुरुष शृंगारहास्यके ग्रंथ बनाय बनाय लोकनिकूं मोह उपजावनेंमैं प्रवीण है। इत्यादि संसारके बधावनें वारे कर्ममैं ज्ञान

लगाय लगाय, आप नष्ट होय है अर अन्य जीवनिनैं नष्ट करै है तिनकी संगति मति करो, क्योंकि इनिकी संगतितैं सांचो ज्ञान आचरण तौ नष्ट होजाय लो अर कुमति कुश्रुत ज्ञान वृद्धि कूं पाय मदोन्मत्त करि देलो तो बड़ोही अनर्थ होयलो, क्योंकि यो आर्यक्षेत्रमैं मनुष्य जन्म जिनधर्मसंयुक्त पायवो बड़ो दुर्लभ है। याकूं पाय मार्दव आर्जव भाव धारि मोक्षमार्ग ग्रहण करो। अर या पर्यायमैं किंचित् शास्त्रज्ञान पाय मद कहा करो हो, तुमारा स्वभाव तौ केवलज्ञानरूप है; यावत निजस्वरूप नहीं पावो तावत् तौ ज्ञानदरिद्रीही हो, परमावधि सर्वावधि ज्ञानयुक्त ऋद्धिधारी मुनीश्वर हैं ते भी आत्मतत्वकूं परोक्षपणैं ही जाणैं है, अर अन्य तत्वकूं भी सर्वांगपणैं नहीं जाणैं है, जिनवचनका श्रद्धानपूर्वक ही अनुभव करते रहे है। तातैं यथावत् वस्तुका स्वरूप अनन्त धर्मात्मक जानना संज्ञा सम्यग्दृष्टी जो है सो किंचित् इंद्रियजनित पराधीन ज्ञान पाय मद नहीं करे है॥

सोही प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मैं;—

किंचित् ज्ञानं परिज्ञाय मदो न क्रियते बुधैः।
अपेक्षया हि पूर्वस्य यतो न ज्ञायते लवः॥२२॥

अर्थ—ज्ञानवान पुरुष जे हैं ते किंचित् ज्ञानैं जाणि करि मद नहीं करै है क्योंकि पूर्वकालमैं ज्ञानवान भये तिनकी अपेक्षा करि लवमात्र भी नहीं जानैं है यातैं—॥ २२॥

बहुरि पूज्यपणांका मद भी सम्यग्दृष्टीकै नहीं होय है, क्योंकि सम्यग्दृष्टी ऐसा मानैं है कि जगत्के भोले जीव धनके लोभी वस्तुके स्वरूपकूं नहीं जानते सन्ते धनसंपदावानपणां तथा राज्यमान्य

पणां आदि देखि मोहि बड़ा मानि पूज्य कहै है सो ये पूज्यपणां आत्माका स्वरूप नांहीं। अर जो या पूज्यपणांकूं अपना मानै है, सो मिथ्यात्वी है, क्योंकि ये सम्पदा कर्मके आधीन है, विनाशीक है, महा उपाधिरूप है, आत्माकूं क्लेशित करै है. निजस्वरूपकूं भुलावै है तातैं दुर्गतिका कारण है। अर मेरा पूज्यपणांतो निजस्वभाव प्रकट भये होय गा। अर या ऐश्वर्यपणूं भी धर्मात्मा सज्जन पुरुषनिका सन्मान करनेंतैं दुखित पुरुषनिका उपकार करनेंतैं दान शील संयम धारनेंतैं सफल है याका मद कहा करूं, मदतौ महामिथ्यात्वका बधावनवारा है, मैं तो ज्ञाता द्रष्टा हूं, ऐसा दृढश्रद्धान सम्यक्त्वी कै है तातैं पूज्यपणांका ऐश्वर्यवान पणांका मद सम्यक्त्वी नहीं करै है॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

धनधान्यादिकं गेहं सर्वं राज्यादिकं बुध!।
अग्न्यादिभिश्चलं मत्वा चैश्वर्योत्थंमदं त्यज॥२०।

अर्थ—भो बुधजन हो! धन धान्य आदि गृहनैं, अर सर्व राज्य आदि ऐश्वर्यनैं अग्निजल पवन आदि करि विनाशीक मानि ऐश्वर्यसंबंधी मदनैं तजो॥ २०॥

बहुरि कुलका भी मद सम्यक्त्वी नहीं करै है, क्योंकि जगतमैं पिताका वंशका नाम कुल है सो प्रथम तो सम्यक्त्वीकै निजरूपकी पिछानि है तातैं पर्यायमैं आपो नहीं मानै है, अर जामैं आपो नहीं मानै ताको मद काहेकूं होय। दूसरा ऐसी भी जानैं है कि मैं अनादि संसार मैं परिभ्रमण करतो संतो अनंतवार उच्चकुल मैं, अनन्तवार नीचकुलमैं, अनन्तवार निगोदमैं, जन्म धारण किये है। अर या पर्यायमैं कितनांक काल रहना है मेरा स्वभाव तो चैतन्य

है सो स्वयं सिद्ध है ताका उपजावनवारा कोऊ नांही। अर ये पिता का वंशरूप कुल है सो कर्मकृत पराधीन है याका गर्व करनां बड़ी अज्ञानता है। अर उच्चकुल पावनें का फल तो ये है कि मोक्षमार्ग-में प्रवर्त्तन करै अर असा विचार कर कि नींच कुलके मनुष्य जैसें अभक्ष्यभक्षण विसंवाद मारण ताड़ण गाली भंडवचन द्यूतक्रीडन वेश्यासेवन परधनहरण करै है तैसा मैं करूंगा तो अर चुगलीके मर्मछेदके अयोग्य हास्यके छलकपटके असत्यताके वचन बोलै है तैसा बोलूंगा तो मेरा उच्चकुल लज्जित होयगा अर मैं धिक्कार पाऊंगा, दुर्गतिका पात्र हूंगा, असा विचार करता सम्यग्दृष्टी अधम आचरणका तो त्याग करै है अर उच्चकुलका मद नहीं करै है॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें—

पितृपक्षसमुद्भूतं चलं दर्भाग्र बिंदुवत्।
ज्ञात्वा स्वं स्वजनं दक्षः कुलनाममदं त्यजेत्॥१९॥

अर्थ—चतुर पुरुष जो हैं सो आपने अर पितृपक्षतैं उत्पन्न भये स्वजन जो है तानैं डाभकी अणीपर पड़ी ओसकी बूंदकै समान चल जानि कुलनामा मदनैं तजै॥ १९॥

बहुरि तैसे ही माताका कुल को नाम जातिहै सो सम्यग्दृष्टी जातितैं भी आपनै भिन्न जाणै है, अर असें मानै है कि मैं तिर्यंचनीके उदरमें तथा म्लेच्छनी भीलनी दरिद्रिनी के उदरमें अनन्तानन्त जन्म धरे है तातैं नीच जातिके भी मेरे ही सजातीय हैं। अर वर्त्तमानका जन्म कोऊ पुन्यके उदयतैं उच्चजातिमें भया है परन्तु याका मद करनां तो अनन्तसंसारका कारण है क्योंकि मिथ्यात्वरूप है यातैं। अर उच्चजाति में जन्म भया सो शील संयम क्षमा परोपकार आदि शुभा-

चरणतैं सफल होयगा। ऐसें चिंतवन करता, सम्यग्दृष्टीकै जातिका भी मद नहीं उपजै है॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

सन्मातृपक्षसंजातं कुटुंबादिकदंबकं।
विनश्वरं परिज्ञाय जात्याख्यं त्वं मदं त्यज ॥१७॥

अर्थ—उत्तम माताकी पक्षतैं उत्पन्न भया कुटुंब आदि का समूहनैं विनाशीक जानि जाति नामा मदनैं तू तजि ॥ १७॥

सदं बानां त्वया मित्र पीतं दुग्धं भवार्णवे।
भिन्नभिन्नविजातीनां साधिकं सागरांबुभिः॥ १८॥

अर्थ—भो मित्र! संसार समुद्रकै विषैं तू जो है सो भिन्न भिन्न विजाती उत्तम मातानिको दुग्ध सागरका जलतैं अधिक पान कियो है॥ १८॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी देहके बलका भी मद नहीं करै है, क्योंकि सम्यक्‌ती ऐसा विचार करै है कि मैं अनन्तबलका धारक हूं, मेरी शक्तिकूं कर्म वैरीनैं अत्यन्त नष्ट करि एकेंद्रियादिकनिमैं पटकि ऐसा निर्बल किया कि फिर कछू भी करनैं समर्थ नहीं रह्या। अब कोऊ पुन्य के उदयतैं वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशमतैं मनुष्यदेहमैं आहार पानके आश्रय किंचित् बल प्रकट भया है, सो भी वात पित्त कफके तथा आयु कायकै आधीन है याका मद तौ मिथ्यात्वी करै है क्योंकि ये मद निजस्वभावतैं वहिर्भूत है। अर या बलके लाभमैं व्रत उपवास शील संयम स्वाध्याय कायोत्सर्ग आदि तपश्चरण करि तथा परकृत उपसर्ग, रोग दरिद्र आदिकूं सहि कायरता त्यागि निजस्वभावतैं पलायमान नहीं होय कर्मनिका नाश

करूं। तथा दीन दरिद्री असमर्थनिका दुर्वचन श्रवण करि क्षमा करूं तौ मेरा बल पावनां सफल होय। अर जो याका मद करि निर्बल जीवनिका घात करूंगा अथवा असमर्थनिकी धरती स्त्री धन आदिका हरण करि अपमान करूंगा तौ सिंह व्याघ्रादि दुष्ट तिर्यंचनिके दुःख भोगि निगोद में परिभ्रमण करूंगा। तातैं बलका मद मेरे नांही मैं तो ज्ञाता द्रष्टा हूं। ऐसैं चिंतवन करता सम्यग्दृष्टीकै बलका मद नहीं होय है॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

जनैर्मदो (मदं) न कर्त्तव्यं बलादिकसमुद्भवं।
चिच्चित्रं दर्शनायैव त्वया वत्साशुभप्रदं॥ २४॥

अर्थ—हे वत्स! सज्जन पुरुष जे हैं तिन करि बल आदितैं उत्पन्न भयो नाना प्रकारको अशुभका दाता मद जो है सो सम्यग्दर्शन की प्राप्तिके अर्थि भी नहीं करवो योग्य है॥

संप्राप्य सबलं देहं गर्वं त्याज्यं विवेकिभिः।
पुष्टमन्नादिभिस्तद्धि यतो याति क्षयं क्षणात्॥

अर्थ— ज्ञानवान पुरुष जे हैं तिनर्नैं अन्नादिक करि पुष्ट भई ऐसी बलसहित देहकूं पाय गर्व त्यागवे योग्य है, क्योंकि याही बलसहित देह क्षणमात्रमैं नाशनं प्राप्त होय यातैं॥

बहुरि ऋद्धि जो धन सपदा ताका मद भी सम्यक्त्वी नहीं करै है, क्योंकि सम्यक्त्वी तो देह आदि सर्व परद्रव्यनिकूं हेय श्रद्धान करै है। अर ऐसा उत्कण्ठा रखै है कि वै शुभदिन कब होयगा कि जादिन समस्त परिग्रहकूं छांडि एकाकी वन मैं आत्मीक धन सिद्धि होनें की सामग्री रूप द्वादश भावनां आदिका संग्रह करूंगा। अर या लौकिक धन

संपदाकूं रागद्वेष भय शोक संताप क्लेश वैर हानि वृद्धि आरंभ आदिका उपजावनवारा दुर्गति का बीज जानूं हूं परन्तु कर्ममें पड़ी मक्षिका तथा कर्दममें पड़या अशक्त हस्ती आप निकस्या चाहै है तथापि निकसि नहीं सकै है तैसें मैं भी इस धन संपदा के फंदतैं निकस्या चाहूं हूं तथापि अशक्तताते रागादिकका का प्रबल उदयतैं अप्रत्याख्यानावरण कषायके विद्यमान होनेतैं निर्वाहकी कठिनताके भयतैं अपमान भय आदिका स्थान पराधीन विनाशीक धनसंपदारूप गर्तमैं नहीं निकसि सकूं हूं याकी मेरै बड़ी लज्जा है। अर ये निश्चय जानूं हूं कि याकूं त्यागें बिना स्वाधीन अविनाशीक अनन्तचतुष्टयरूपलक्ष्मीकूं नहीं प्राप्त हूंगा। इत्यादिक चिंतवन करता सम्यग्दृष्टीके लाकसमान इस लक्ष्मी का मद नहीं उपजै है। इहां समन्त भद्रस्वामी तौ लक्ष्मीका मद कह्या अर प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं शिल्पिमद कह्या है॥

शिल्पिगर्वं न कर्त्तव्यं लेखादिकसमुद्भवं।
विचित्रं दर्शनार्थं च त्वया वत्साशुभप्रदं ॥२५॥

अर्थ—हे वत्स ! सम्यग्दर्शनकी शुद्धताके अर्थि ही लेखन आदितैं उत्पन्न भयो अशुभ को दाता नानाप्रकारको मद जो है सो तू जो है तातैं नहीं करबो योग्य है ॥ २५ ॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी तपका भी मद नहीं करै है क्योंकि सम्यग्दृष्टी ऐसा चिंतवन करता रहै है कि तप तौ द्वादशभेदरूप जिनेंद्रनैं कह्यो है ताकी सिद्धिता भयें तौ निजरूपकूं प्राप्त होय है वहां तौ मदका कहा प्रयोजन है, वै तौ आनन्ददशा है। अर हाल वर्त्तमान मैं काम क्रोध लोभ मोह निद्रा आलस्य प्रमाद लालपा भय आदि साम्यभावकूं यावत् प्रकट नहीं होने देय तावत तप कहा है। अर

मिथ्याही मद करनां तो यत्किंचित् पुन्यसंचय संयमजनित होय है ताका भी नष्ट करने वाला है अर वे पुरुष धन्य है जे समस्त कषायनिकूं जीति शुद्धात्मदशामें लीन भये हैं। ऐसें चिंतवन करता सम्यग्दृष्टीकै तपका मद नहीं होय है ॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें;—

तपसा संभवो दक्षैर्मदो न क्रियते मनाक् ।
इतश्चापेक्षया पूर्वं मुनेः कर्त्तुं न शक्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—चतुर पुरुष जे हैं ते तपतैं उपजा भया मद किंचित् मात्रभी नहीं करै है, क्योंकि पूर्वकालके मुनीश्वरनिकी अपेक्षा वर्तमानकालमें किंचित् भी करनेकूं नहीं समर्थ है ॥२३॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी शरीरके रूपका भी मद नहीं करै है, क्योंकि सम्यग्दृष्टीकै, सांचास्वरूपका श्रद्धान है तातैं प्रथम तो देहतैं भिन्न अपनां ज्ञानानन्दमय रूप जानैं है तामें सव लोक अलोक अनन्तानन्त पर्याय संयुक्त झलकि रह्या है, अर दूसरां यो देह बहुत रूपवान है सो भी निज रूपतैं तो भिन्नहै अर क्षण क्षणप्रति विनाशवान है अर नव द्वारनितैं निरन्तर मल श्रवै है तथा चन्दनादिक सुगंधद्रव्य तथा पुष्पमाला वस्त्र आभूषण आदि उत्तम वस्तु भी याके स्पर्शतैं मलिन होजाय है तीसरां जा समय रोग करि व्याप्त हो जाय ता समय ऐसा पराधीन हो जाय जो कछु कार्यकारी ही नहीं रहैहै अर घिणावणां भी इसाही हो जायहै जो दूसरेकूं देखतैं स्पर्शतैं भी ग्लानि आवै, चौथे प्रबल कर्मका जोर आजाय तो एक क्षणमें नेत्र भुजा चरण आदि अङ्ग उपाङ्ग हीण हो जायहै, पांचवां अनन्तवार तिर्यंचनिका तथा मनुष्यनिका ऐसा २ घिणावणां विद्रूप भयंकर देह पाया

है तिनका वरनन सहस्र जिह्वातैं इंद्र धरणेंद्रभी नहीं करि सकै हैं अर दरिद्रके होतैंभी या देहकी असी दशा हो जाय कि कोऊ निकटही नहीं बैठनें देवे अर वृद्धपणाके होतै आपकी ही आपनें ग्लानि आवा लागिजाय मरण चाहवा लागि जाय, असा देहका रूपकूं देखता सन्तां मद नहीं करे है अर सर्वांगशुद्ध यौवनवान बलवान देहकूं पाय शील संयम आदि तपश्चरणकूं दिन दिन बधावे है अर रोगीदरिद्री अंगहीणकूं देखि करुणा करै है तथा अन्न वस्त्र औषधि दान देवे है असा सम्यग्दृष्टीकै देहसम्बन्धी रूपका मद नहीं उपजैहै या प्रकार चिंतवन करता सम्यग्दृष्टीकै ज्ञानजनित तथा पूजाजनित तथा कुलजनित तथा जातिजनित तथा बलजनित तथा ऋद्धिसंपदाजनित तथा तपजनित तथा शरीरकी सुन्दरताजनित तथा शिल्पकर्मजनित मद नहीं उपजै है !

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

सन्मार्दवं समादाय दुःखदुर्गतिकारकम् ।
मदाष्टकं त्यजेद्धीमान् दर्शनज्ञानप्राप्तये ॥२६॥

अर्थ— बुद्धिमान पुरुष जो है सो समीचीन मार्दव भावनैं ग्रहण करि दुःखके अर दुर्गतिके करनवारे अष्टमद जे हैं तिनैं सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञानकी प्राप्तिकै अर्थि तजैहै ॥ २६ ॥

अहंकारं हि यः कुर्यादष्टभेदं कुदुःखदम् ।
विनाश्य दर्शनं सोऽपिनीचो नीचगतिं व्रजेत् ॥२७॥

अर्थ—जो नीच पुरुष खोटा दुःखांका दाता अष्टप्रकार अहंकारनैं करै है सो भी सम्यग्दर्शननैं विनाशि नीचगतिनैं प्राप्त होय है ॥ २७ ॥

प्रश्न—अष्टमदका स्वरूप तौ कहा सो श्रद्धान किया परंतु अब षट् अनायतनकानिका स्वरूप कहो।

उत्तर—प्रश्नोत्तरश्रावकाचार में——

मिथ्यादर्शनकुज्ञानकुचारित्रत्रयात्मकः।
त्रयुक्तपुरुषाश्चैव षडनायतनं भवेत् ॥२८॥

अर्थ—आयतन नाम स्थान का है अर स्थान नहीं होय सो अनायतन कहिये, इहां धर्मका प्रकरण है तातैं धर्मका स्थान नहीं होय सो अनायतन कहिये सो मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र अर इनि तीनूंनिकरि युक्त पुरुष जे हैं ते तीन, ऐसैं छह अनायतन होय है॥ २८॥

प्रश्न—इनिके भिन्न २ स्वरूप कहो।

उत्तररूप श्लोक;——

कुदेवे कुगुरौ मूढैः कुधर्मे पापदुःखदे।
निश्चयःक्रियते योऽत्र तन्मिथ्यादर्शनं मतम्॥२९॥

अर्थ—जो मूर्ख पुरुष पापका अर दुःखका दाता खोटा देवकैविषैं खोटागुरुकैविषैं खोटा धर्मकैविषैं श्रद्धान करै सो मिथ्यादर्शन मानिये है॥ २९॥

प्रणीतं वेदशास्त्रादौ स्मृत्यादौ वा कुदृष्टिभिः।
श्रुतं पापाकरं दक्षैस्तन्मिथ्याज्ञानमुच्यते॥३०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टीनिकरि वेदशास्त्र विषैं वा स्मृति पुराणके विषैं पापको करनवारो श्रुत कह्यो है सो चतुर पुरुषनिनैं मिथ्याज्ञानकह्यो है॥३०॥

पंचाग्निसाधने योऽपि कायक्लेशो विधीयते ।
कुत्सितं तपसा मूढैस्तन्मिथ्याचरणं भवेत् ॥३१॥

अर्थ—मूर्ख पुरुषनि करि पंचाग्नि साधनकैविषैं भी तप करि जो कुत्सित कायक्लेश करिये सो मिथ्याचारित्र है ॥३१॥

मिथ्यासम्यक्त्वयुक्तो यो न सम्यक्त्वविचारकः।
जैनधर्मबहिर्भूतो मिथ्यादृष्टिर्बुधैर्मतः ॥३२॥

अर्थ—जो पुरुष मिथ्याश्रद्धानयुक्त अर सम्यक विचार करनवारो नहीं है अर जिनधर्मतैं बहिर्भूत है सो ज्ञानवाननिनैं मिथ्यादृष्टी कह्यो है ॥ ३२ ॥

जनो वेदादियुक्तो यः कुशास्त्रादिसमन्वितः।
त्यक्तसिद्धांतसारश्च मिथ्याज्ञानी स कीर्त्तितः ॥३३॥

अर्थ—जो पुरुष वेदस्मृति करि युक्त अर कुशास्त्र आदि लौकिक शक्तिकरि संयुक्त अर सिद्धांतका सारभूत ज्ञानरहित होय सो मिथ्याज्ञानी कह्यो है ॥ ३३ ॥

पंचाग्निसाधको मिथ्यातपसाऽतिकृतोद्यमः ।
यः शठः सोऽत्र संप्रोक्तः कुतपस्वी मुनीश्वरैः॥३४॥

अर्थ—जो मूर्ख पुरुष पंचाग्निको साधक मिथ्यातपकरि अत्यन्त कियो है उद्यम जानैं सो यहां मुनिश्वरनिनैं कुतपस्वी कह्यो है॥ ३४ ॥

षडनायतनं ज्ञेयं श्वभ्रतिर्यग्गतिप्रदम् ।
अघाकरं बुधैर्नित्यं दर्शनस्य विनाशकम् ॥३५॥

अर्थ—नरक तिर्यंचगति को दाता अर पापनिकी खांनि अर

सम्यग्दर्शन को विनाश करनेवारो अर ज्ञानी पुरुषनिकरि निंदनीक षट् अनायतन जानवे योग्य है ॥ ३५ ॥

ऐसै अष्ट अंग संयुक्त पचीश मल दूषण करि रहित सम्यग्दर्शनने शुद्ध करो।

चौपई—अष्ट अङ्गयुत दर्शन धारि
मलपचीश तजि शुद्ध निहारि ॥
मोक्षसदनको प्रथम सिवान ।
कह्यो जिनेश्वर वचन प्रमान ॥

उत्तर पुराण सम्बन्धी महावीर पुराणमें रत्नत्रयकी…को श्लोक;—

मतिःश्रुतं तपः शांतिःसमाधिस्तत्त्ववीक्षणम् ।
सर्वं सम्यक्त्वशून्यस्य मरीचेरिव निष्फलम् ॥८४॥

अर्थ—सम्यक्त्व करि शून्य पुरुष जो है ताकै मतिज्ञान श्रुतज्ञान अर बाह्य तथा अन्तरङ्ग तप अर कषायकी मन्दतारूप शांति अर चित्तकी एकाग्रतारूप समाधि अर तत्वनिका विशेषपर्णैं ईक्षण कहिये देखना ये सर्व मृगतृष्णाके समान निष्फल है ॥ ८४ ॥

तथा जिनदत्तचरित्र गुणभद्रजीकृतका चतुर्थसर्गमें; श्लोक—

अदेवे देवताबुद्धिरगुरौ गुरुसम्मतिः ।
अतत्त्वेतत्वसंस्था च तथाऽवादि जिनेश्वरैः ॥ ८२ ॥

अर्थ—देवपणां करि रहित रागद्वेष करि सहित अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जे हैं तिनकै विषैं देवपणां की बुद्धि अर मिथ्यादृष्टी इन्द्रियनिके विषयनिकूं चाहनेवारे परिग्रहवान पाषंडी अव्रती आरंभी मुनिपणांका तथा गृहस्थपणांका भेषरहित स्वच्छाचारी उन्मार्गी

गुरुपणांका लक्षणनिकरि रहित अगुरु जे हैं तिनकै विषैं गुरुपणांकी प्रतीति अर एक तथा दोय तीन तथा पचीश अतत्व जे हैं तिनकै विषैं तत्व पणांकी आस्था जो है सो जिनेश्वरनि करि तैसैं ही कह्यो है कि मिथ्यात्वही कह्यो है ॥ ८२ ॥

निः शेषदोषनिर्मुक्तो मुक्तिकांतास्वयंवरः ।
लोकालोकोत्तमज्ञानो देवोऽस्तीह जिनेश्वरः ।८५।

अर्थ—समस्तक्षुधा तृषा आदि दोष जे हैं तिनकरि रहित अर मुक्तिकांताको स्वयंवर अर लोकालोकको उत्तमज्ञान असो जिनेश्वर इहां देव है ॥ ८५ ॥

अन्ये ततो विशालाक्षि ! रागद्वेषादिकल्मषैः।
दूषिता न भवंत्याप्ता कृतकृत्या विरागिणः ।८६।

अर्थ—१ हे विशालनेत्रनिकूं धारनेवाली ! या जिनेंद्रतैं अन्य रागद्वेष आदि पाप जेहैं तिनकरि दूषित अकृतकृत्य विरोध रागवान जे हैं ते आप्त नहीं होय हैं ॥ ८६ ॥

अतस्त्रिधा प्रतीहि त्वं देवानामधिदैवतम् ।
चराचरजगज्जंतुकारुण्यं स्वामिनं जिनम्।८७।

अर्थ—यातैं तू मन वचन कायकरि देवनको अधिदेव अर चराचर जगतके जीवनिकी करुणाको धारक स्वामी जिनेंद्र जो है ताहि प्रतीति करि ॥ ८७ ॥

धर्मस्तद्वदनांभोजनिर्गतः सुगतिप्रदः ।

१—इसका इस प्रकार अर्थ हो तो ठीक है—हे विशालनेत्रनिकं धारनेवाली! या जिनेंद्रतैं अन्य रागद्वेष आदि पाप जे हैं तिनकरि दूषित ऐसे, कृतकृत्य अर बीतरागी आप्त नहीं होय हैं

यस्य मूलं ¹समस्तार्थसाधिका करुणा मता ॥८८॥

अर्थ--अर वा जिनेंद्रका मुखकमलतैं निकस्यो अर सुन्दर गति को दातार जो है सो धर्म है, अर वा धर्मको मूल समस्त पदार्थनितैं अधिक करुणा मान्यूंहै ॥ ८८ ॥

कृतं किमपि ²पूर्णेन्दुवचने ! दयया समम्।

विद्धं रसेन वा ताम्रं सर्वकल्याणकारकम् ॥८९॥

अर्थ-- कछुक दान पूजा व्रत तप आदि भी दयाकरि सहित किया संता पूर्णमासीके चन्द्रमा समान जिनवानीके विषैं सर्वकल्याणका करनवारा पारदकरि वेध्या तामके समान कह्यो है ॥ ८९ ॥

भवभोगशरीराणामसारत्वं विबुध्यये ।

संत्यज्य तृणवल्लक्ष्मीं नैर्ग्रंथव्रतमाश्रिताः ॥९६॥

अर्थ-संसार भोग शरीरके विषैं असार पणौ जो है ताहि विचारकरि तृणसमान लक्ष्मीनैं त्यागन करि निर्ग्रंथपणांनैं त्यां आश्रय किया ॥ ९६ ॥

---

(१) "समस्तार्थसाधिका" इस पद का अर्थ "समस्तपदार्थनितैं अधिक" ऐसा लिखा है सो सुन्दर प्रतीत नहीं होता क्योंकि इस शब्दका ऐसा अर्थ है "समस्तअर्थनिको साधने वाली" (२) "पूर्णेंदु वचने" इसके स्थानमें "पूर्णेंदुवदने" ऐसा पाठ होना चाहिये औ जिनदत्त चरित्रकी प्रतिमें "पूर्णेंदुवदने" ऐसा ही पाठ है इसका अर्थ ऐसा होना चाहिये यह सम्बोधन पद है "हेपूर्णमासे के चन्द्रमा समान मुखवाली" ।

भुंजते पाणिपात्रे ण शेरते भुवि वाऽऽसते ।
वनादौ विधिवद्ध्वंसध्यानेनाध्ययनेन च ॥ १००॥

अर्थ-अर पाणिपात्र करि भोजन करै है अर पृथ्वीके विषै सोवै है अर वन आदिके विषै अर ध्यान करि तथा अध्ययन करि कर्मको विध्वंस करै है सो गुरु है, ऐसो सम्बंध है ॥ १०० ॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकांडे मलांङ्गशुद्धसम्यग्दर्शननिर्णयो-नाम तृतीयोल्लासः ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

अथ सम्यग्दर्शनके विषयभूत देव गुरु शास्त्रको स्वरूप लिख्यते;—

दोहा—

देव परम अरहन्त है गुरु परम निर्ग्रंथ ।
शास्त्र परम जिनवरकथित नमं हरन भवग्रंथि ॥१॥

प्रश्न-अष्ट अङ्ग संयुक्त सम्यग्दर्शनका लक्षण कहि तीन मूढता अष्ट शङ्कादिक दोष अष्ट मद षट अनायतन ऐसैं,

(१)"वनादौ विधिवद्ध्वंसध्यानेनाध्ययनेन च" ऐसा पाठ होना चाहिये तथा जिनदत्त चरित्रकी प्रतिमें ऐसा ही पाठ है जिससे ध्वंसध्यानेन" इसकी जगह "हंसध्यानेन" ऐसा होना चहिये और इसका यह अर्थ है कि "हंस की भांति निश्चल ध्यान करि" ध्वंसध्यानेन पाठकी जो टीका लिखी है सो सुन्दर नहीं है और व्याकरणसे यह पाठ अशुद्ध व व्यर्थ है ।

पचीस सम्यक्त्वके मलदूषण कहे सो, ती श्रद्धान किये, परंतु सम्यग्दर्शनके विषयभूत देव गुरु शास्त्र कहे तिनका भी लक्षण संक्षेपमात्र कहो।

उत्तर—अनुक्रमतैं कहैहैं सो सुनो;——

प्रथम ही देवका लक्षण रत्नकरंडमें;—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥५॥

अर्थ- उच्छिन्नदोषेण कहिये दूरि भयेहैं दोष जातैं अर सर्वज्ञेन कहिये सर्वको जाननवारो अर आगमेशिना कहिये द्वादशांगादि समस्त विद्यान को स्वामी अर आप्तेन कहिये सत्य अर्थ को वक्ता जो है तातैं नियोगकरि आप्तपणौं होने योग्यहै अर निश्चय करि और तरैं आप्तता नहीं होय है॥ भावार्थ—धर्मको मूल भगवान आप्त है तातैं धर्मके ग्राहक पुरुषनिकूं प्रथम ही आप्तको लक्षण समझ्यो चाहिये, सो परम उपकारी समन्तभद्रस्वामी आप्तके निश्चयकरावनेकूं तीन विशेषणयुक्त आप्तको लक्षण कह्यो है। तिनिमें प्रथम निर्दोष कह्यो सो क्षुधा तृषा आदि अष्टादश दोष जे हैं तिनकरि रहित होय सो आप्त है, क्योंकि जो आप दोष सहित होय सो अन्यकूं निर्दोष नहीं करै ऐसा न्याय है सो ऐसे है कि जाकै क्षुधा तृषा जरा रोग विद्यमान है सो आप महादुखी है ताकै ईश्वरपणां कैसैं संभवै अर जाकै ईश्वरपणां नहीं होय सो परायेका कहा उपकार करै, अर जाकै भय द्वेष चिंता खेद स्वेद आदि निरन्तर प्रवर्त्तै सो सुखी कैसैं कहिये अर सुखी नहीं होय सो पेलानैं सुखी कैसैं करै, अर काम तथा राग जाकै विद्यमान है ताकै स्वाधीनता

नांहीं अर जो स्वाधीन नांहीं सो निराकुल कैसैं करै, अर जो मदकै तथा निद्राकै वशीभूत होय सो यथार्थ कैसैं जानैं अर जो यथार्थ नहीं जानैं सो सत्यार्थ कैसैं कहै, अर जाकै जन्म मरण विद्यमानहै ताकै संसारका अभाव नांहीं अर जो संसारी होय सो अन्यकै संसारका अभावकैसैं करै; तातैं निर्दोष होय सो सत्यार्थ वक्ता आप्त है, अर रागद्वेष आदि दोष के विद्यमान होतैं सत्यार्थवक्तापणां कदाचित् नहीं संभवैहै क्योंकि रागी द्वेषी तौ अपना अभिप्राय पुष्ट करनेंका उपदेश करै अर अभिप्राय पुष्ट करै ताकै सत्यार्थवक्तापणां नहीं बणै, तातैं सत्यार्थ वक्ता तो वीतराग निर्दोष ही होय है। बहुरि सर्वज्ञ होय सो ही आप्त नाम कहावै, क्योंकि सर्वज्ञ नहीं होय सो कालांतरमैं भये जे राम रावणादिक तिनिका व्याख्यान कैसैं करै तथा क्षेत्रांतरमैं वर्त्तते मेर, कुलाचल आदिका स्वरूप कैसैं कहै तथा सूक्ष्म परमाणू आदिका स्वरूप कैसैं कहै क्योंकि इन्द्रिय जनित ज्ञान तौ विद्यमान सन्मुख तिष्ठवा स्थूलपर्यायनैंही अनुक्रमतैं स्थूलपणैं जाणैंहै अर क्षेत्रांतरमैं तिष्ठते अनंते जीव-पुद्गल आदि द्रव्य अनंत गुणवान जे हैं ते एकै काल अपनीं अपनीं भिन्न २ परिणतिरूप परिणमैं है तिनकी एक समयवर्त्ती भिन्न भिन्न अनंती सूक्ष्म स्थूल पर्याय होय हैं तिनिनैं एकै काल कैसैं जानैं, तातैं अतींद्रियज्ञानवान सर्वज्ञकै ही आप्तपणां संभवैहै। बहुरि आगमका स्वामीकै ही आप्तपणूं बणै है क्योंकि सत्यार्थवक्ता होय सोही आप्त कहिये है अर सत्यार्थ वक्ता होय सो ही आगमको स्वामी कहियेहै, इनि दोऊ गुणनिकै अन्योन्याश्रय पणूंहै। यातैं निर्दोष सर्वज्ञ आगमका स्वामी जो है सो ही

आप्त है अर आप्त है सो ही देव है, क्योंकि आत्मगुणके घातक कर्म जे हैं तिनके अभाव होयतैं देहकी कांति वो देवेंद्रनितैं अधिक भई अर अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य प्रकट भये अर देवनकरि पूजित भये, तातैं केवली भगवान ही देव है।

प्रश्न—आप्तके तीन विशेषण क्यूं कहे, एक निर्दोष विशेषणही आप्तपणां प्रकट कर देता।

उत्तर—निर्दोषतो धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य भी हैं परंतु सर्वज्ञ नांहीं तातैं आप्त नांहीं।

प्रश्न—ऐसैं हैं तौ निर्दोष सर्वज्ञ ए दोय विशेषणही कहे होते तीसरा विशेषण क्यूं कह्या।

उत्तर—निर्दोष सर्वज्ञ तो सिद्ध भी है तथापि वक्ता नांही तातैं आप्त नांही, तातैं निर्दोषसर्वज्ञवक्ता होय सोही आप्त है अर आप्त है सो ही देवहै।

प्रश्न—अष्टादशदोषरहित लक्षण आप्तका कह्या तौ अष्टादश दोषनिका नाम भी कहो।

उत्तर—रत्नकरंडमैं;—

क्षुत्पिपासाजराऽऽतंकजन्मांतकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—क्षुधा, तृषा, जरा, रोग, जन्म, मरण, भय, मद,राग, द्वेष, मोह, अर चकारतैं स्वेद, खेद, शोक, आर्ति, चिंता, निद्रा, विस्मय, ये अष्टादश दोष जाकै नहीं होय सो आप्त कहिये सत्यार्थ वक्ता देव है ॥ ६ ॥

प्रश्न—रागद्वेषरहितकै वक्तापणं कैसैं संभवै ?

उत्तर—रत्नकरंडमैं;—

अनात्मार्थं विनारागैःशास्ताशास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजःकिमपेक्षते॥ ८॥

अर्थ—नहीं है अपनूं प्रयोजन जाके ऐसो विना राग शास्ता कहिये शिक्षा को दाता आप्त जो है सो सत्पुरुषनिका हितनैं शिक्षा करै है, या अर्थ कूं दृष्टांतकरि दृढ करैहै कि शिल्पी जो मृदंग के बजावनेवारो ताके करके स्पर्शतैं शब्दकरतो मृदंग जो है सो कहा अपेक्षा करैहै? कछू भी अपेक्षा नहीं करैहै। भावार्थ—जैसैं मृदङ्ग के कछू अपनां भी प्रयोजन नांहीं अर श्रोतानितैं राग भी नांहीं तथापि मृदंग्याका हाथका स्पर्शतैं मृदङ्ग शब्द करैहै तैसें आप्तके कछू अपनां भी प्रयोजन नांहीं अर श्रोतानितैं राग भी नांहीं तथापि श्रोतानिके प्रश्नरूप शब्दपरमाणूके स्पर्शतैं आप्तके मुखतैं विना प्रयास ही शब्द निकसैहै॥ ८॥

प्रश्न—श्रोतानिका प्रश्ननै निमित्त कह्यो सो तौ श्रद्धान कियो परन्तु च्यार समय नित्य दिव्यध्वनि होयहै सो भी प्रश्न होतैं ही होयहै कि विना होतैं भी होयहै।

उत्तर—च्यार समय को तौ नियोग है सो भी गणधरनैं होतसन्तैं होय है, अर च्यार समय सिवाय इन्द्रचक्रवर्ति गणधरका प्रश्न होतैं भी होय है ऐसा भी नियोग सिद्धांत में लिखें है।

प्रश्न—दिव्यध्वनिकूं केई तौ साक्षर कहै है केई निरक्षर कहै हैं सो कैसें है।

उत्तर—आदि पुराणका तेईसमां पर्व मैं;—

दिव्यमहाध्वनिरस्य मुखाज्जान्मेघरवानुकृतिर्निरगच्छत्

भव्यमनोगतमोहतमो घ्नन्नयमेष यथैव तमोरिः॥१६६

अर्थ—या भगवानका मुखकमलतैं निकसती मेघका शब्दकी समानता करती भव्यजीवोंका मनमैं प्राप्त भया मोहरूप अन्धकार मैं विध्वंस करती या दिव्यमहाध्वनि उदय होत है सो रात्रिसंबंधी अन्धकारनैं विध्वंस करता सूर्यके समान उदय होत है ।

भावार्थ—मेघशब्दके समान कहनेतैं निरक्षरहै ॥१६९॥

तथा श्लोक—

देवकृतो ध्वनिरित्यसदेतद्देवगुणस्य तथा विहतिःस्यात्।
साक्षर एव च वर्णसमूहान्नैव विनार्थगतिर्जगति स्यात्॥

अर्थ—या देवनिकी करी दिव्यध्वनि है या प्रकार कहनां है सो असत्य है क्योंकि देवकृत होतां संतां अरहन्तदेवका गुणको घात होय है। भावार्थ-छियालीस गुणांमैं देवकृत चौदह अतिशयमैं सर्व अर्थकूं कहनवारी अर्द्धमागधी भाषा लिखै है सो दिव्यध्वनितैं भिन्न है, क्योंकि दिव्यध्वनितौ अष्टप्रातिहार्यमैं है अर अर्द्धमागधी भाषा चौदह देवकृत अतिशयमैं है, याही अर्थकूं स्पष्ट दिखावने निमित्त जिनसेनजीनैं पूर्वोक्त अर्थरूप स्तुति करी है। अर या दिव्यध्वनि साक्षरही है क्योंकि वर्णसमूहबिना जगत के विषैं अर्थ की गति नहीं होय है। भावार्थ—जगत के जीव साक्षरशब्द बिना अर्थकूं कैसें धारण करैं, तातैं साक्षरही है॥ ७३॥

प्रश्न—प्रथम श्लोकमैं निरक्षर कही अर इहां साक्षर कही तातैं पूर्वापरविरुद्ध दीखै है सो कैसैं हैं ?

उत्तर—दोऊ ही वचन सत्य है परन्तु विवक्षाभेद है, सो ऐसैं जाननां कि—गोमट्टसारमैं योगमार्गणाका अधिकारमैं सत्य अनुभयमनवचनयोगनिका कारण निरूपणकी गाथा—

'मणवयणाणोणिमूलखिमित्तं' इत्यादिगाथाकी टीकामें—

धारा— केवलिनि सत्यानुभययोगव्यवहारः सर्वावरणक्षयजनित इति ज्ञातव्यः, अयोगकेवलिनि शरीरनाम कर्मोदयाभावेन योगाभावात्सत्यानुभयव्यवहारोऽपि नास्तीति सुव्यक्तं । सयोगकेवलिदिव्यध्वनेः कथं सत्यानुभयवाग्योगत्वमिति चेत् । तन्न, तदुत्पत्तावनक्षरात्मकत्वेनश्रोतृश्रोत्रप्रदेशप्राप्तिसमयपर्यंतमनुभयभावत्वसिद्धेःतदनंतरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकत्वेन सत्यवाग्योगत्वसिद्धेश्च तस्यापि तदुभयत्वघटनात्, इति ।

अर्थ—केवलीकै विषै सत्ययोग तथा अनुभययोगका व्यवहार है सो सर्वआवरणक्षयजनित है ऐसैं जाननां अर अयोगकेवली के शरीरनामकर्मके उदयका अभावकरि योगनिका अभावतैं सत्यका तथा अनुभयका व्यवहारभी नहीं है या प्रकार स्पष्टपणै प्रकट है। इहां प्रश्न उपजै है कि केवलीकी दिव्यध्वनि के सत्यवचनपणां अर अनुभयवचनपणां कैसैं सिद्ध होय है। ताका उत्तर—केवलीकी दिव्यध्वनिके उत्पत्तिकालमें अनक्षरात्मकपणां करि सुननेवालेके कर्णप्रदेशमें यावत् प्राप्त नहीं होय तावत्

काल पर्यंत अनुभयभाषापणांकी सिद्धि है क्योंकि अनक्षरात्मक शब्दकै सत्य असत्य कहनां बनै नांहीं अर तापीछे सुनने वाले के अभिप्रायरूप अर्थके विर्षे संशयादिक निराकरण करि सम्यग्ज्ञानका उपजावनपणांकरि सत्यवचनयोगपणांकी सिद्धि है। ऐसैं या दिव्यध्वनिके ही अनुभयवचनपणांकी अर सत्यवचनपणां की सिद्धि है यातैं भावार्थ—उत्पत्तिकाल मैं तौ दिव्यध्वनि निरक्षर है अर श्रोतानिके कर्ण मैं प्राप्त होने के काल मैं साक्षर होय परिणमैं है, यो महात्म्य केवली भगवान को है। या ही अभिप्रायतैं भगवत जिनसेनजी दिव्यध्वनिनैं निरक्षर भी वर्णन करी है अर साक्षर भी वर्नन करी है।

इहां प्रश्न—जो एक दिव्यध्वनि सर्वमनुष्यदेव तिर्यंचनिकी भाषारूप अनेक अभिप्रायकू सूचती कैसैं परिणमैं है ?

उत्तररूप श्लोक—आदिपुराणकी संधिमैं; —

एकतयाऽपिच सर्वनृभाषाःसोतरनेष्टबहूश्चकुभाषाः।
अप्रतिपत्तिमपास्यचतत्त्वंबोधयतिस्मजिनस्य महिम्ना॥

अर्थ— सो दिव्यध्वनि एक है तौ भी सर्व मनुष्यनिकी भाषानैं अर बहु कुभाषा कहिये सर्व तिर्यंचनिकी भाषानैं अपनें मध्यवर्ती अज्ञाननैं दूरि करि तत्वनैं जनावै है, सो जिनेंद्रकी महिमा है ॥७०॥

एकतयापियथैव जलौघश्चित्ररसो भवति द्रुमभेदात्।
पात्रविशेषवशाच्च तथायं सर्वविदो ध्वनिरापबहुत्वम्॥

अर्थ—जैसैं एक ही जलको समूह नानाप्रकार रसरूप वृक्षभेदतैं होय ही है तैसैं यो सर्वज्ञ को दिव्यध्वनि पात्रविशेषक

वशतैं बहुतपणांनैं प्राप्त होय है ॥७१॥

एकतयापि तथास्फटिकाश्मा यद्यदुपाहितमस्य विभासम्
स्वच्छतया स्वयमप्यनुधत्ते विश्वबुधोऽपि तथा ध्वनिरुच्चैः

अर्थ—जैसैं एक ही स्फटिक पाषाण जा जा रङ्गका डांक निकट प्राप्त होय ता ता डांक की क्रांति कौं अपनां स्वच्छपणां करि ही आप धारण करैहै तैसैं सर्वज्ञ की ध्वनि भी स्वच्छपणांकरि श्रोताका अभिप्रायनैं भले प्रकार धारण करैहै ॥ ७२ ॥

प्रश्न—देवका स्वरूप कह्या सो तो श्रद्धान किया, अब गुरां को भी स्वरूप कहो।

उत्तर—सामान्यपणैं गुरांका लक्षणको रत्नकरंडमैं;—

विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः ।
ज्ञान ध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सःप्रशस्यते ॥ १० ॥

अर्थ— विषयनिकी आशाका वशतैं रहित अर आरंभ करि रहित अर परिग्रहकरि रहित अर ज्ञानके विषैं ध्यानके विषैं तपके विषैं आसक्तहै सो तपस्वी सराहिये है ॥ १० ॥

प्रश्न—सामान्य लक्षण कह्या सो तो श्रद्धान किया परन्तु विशेष लक्षणभी कहौ ।

उत्तररूप तत्वार्थ सूत्रमैं; —सूत्र—पुलाकवकुशकुशील निर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥

अर्थ —पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रंथ, स्नातक, ए पांचू ही निर्ग्रंथ हैं ॥ ४६ ॥

तथा परमात्माप्रकाश मैं;——

जे जिणलिंगु धरेवि मुणि इट्ठपरिग्गह लिंति ।
छद्दि करेविणु ते जि जिय सा पुण छद्दि गिलंति ।१।
ये जिनलिंग धृत्वा मुनयः इष्टपरिग्रहान् लांति ।
छर्दिं कृत्वा ते एव हि जीव ! तां पुनः छर्दिं गिलंति ॥

अर्थ—हेजीव ! जे मुनीश्वर जिनलिंगनैं धारणकरि इष्ट परिग्रहनैं ग्रहण करैहैं ते मुनीश्वर छर्दिकरि फेर वाही छर्दिनैं भक्षण करैहै ॥ १ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं;—

दुर्ध्यानार्थमवद्यकारणमहो निर्ग्रंथताहानये,
शय्याहेतुतृणाद्यपि प्रशमिनां लज्जाकरं स्वीकृतम्।
यत्तत्किं न गृहस्थयोग्यमपरं स्वर्णादिकं सांप्रतं,
निर्ग्रंथेष्वपि चेत्तदस्ति नितरां प्रायः प्रविष्टःकलिः ।

अर्थ—जो प्रशमभावके धारी संयमीनिकै शय्याकै हेतु अंगीकार किया तृण भी दुर्ध्यानकै अर्थिहै पापको कारणहै लज्जाको कारण है तातैं गृहस्थनिकै योग्य और स्वर्णादिक द्रव्य अंगीकार कियो लज्जाकै अर्थि कहा नहीं है, अर जो सुवर्णादिक प्रत्यक्ष बाहुल्यतातैं निर्ग्रंथनिकै विषैं भी है तौ जानिये है कि अत्यंत कलिकाल प्रवेश कियो ॥ ५३ ॥

इत्यादि वचननैं पांचूंही भेदनिमैं कोई ही सग्रंथ नहींहै, तथा इनि पांचूंही भेदनिके भिन्न२लक्षण जनावनेकूं पूज्यपादस्वामी सर्वार्थसिद्धिनाम टीकामैं ऐसैं लिखैहै;—

टीका—उत्तरगुणभावनायेतमनसः व्रतेष्वपि क्वचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवंतः अविशुद्धपुलाकसादृश्यात् पुलाका इत्युच्यंते अप्रक्षालिततंदुलवत् इति। नैर्ग्रंथ्यं प्रतिस्थिताः अखंडितव्रताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्त्तिनः अभिव्यक्तपरिवारानुमोदच्छेदशवलयुक्ता वकुशाः शवलपर्यायवाची वकुशशब्द इति। कुशीला द्विविधाः प्रतिसेवनाकुशीलाः कषायकुशीलाः अभिव्यक्तपरिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथंचिदुत्तरगुणविराधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः वशीकृतान्यकषायोदयाः संज्वलनमात्रतंत्राः कषायकुशीला इति। उदकदंडराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माणः ऊर्द्ध्वं मुहूर्त्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजो निर्ग्रंथा इति। प्रक्षीणघातिकर्माणः केवलिनः द्विविधाः स्नातका इति। ते एते पंचापि निर्ग्रंथाः। चारित्रपरिणामस्य प्रकर्षापकर्षभेदे सत्यपि नैगमसंग्रहादिनयापेक्षया सर्वेऽपि ते निर्ग्रंथा इति उच्यंते।

अर्थ—उत्तरगुणकी भावनारहित है मन जिनका अर व्रतनिहै विषैं हूं कोई क्षेत्रकालकै विषैं कदाचित् परिपूर्णतानैं नहीं पावते संते अविशुद्ध तंदुलका समानपणातैं पुलाक ऐसा नाम कहिये है, तातैं विना धुप्या तंदुलसमान पुलाक है। अब वकुशका लक्षण कहै है;—कि "नैर्ग्रंथ्यं प्रति स्थिताः" कहिये

निर्ग्रंथपणां जो सर्वथा बाह्य अभ्यंतर परिग्रहका अभावपणांरूप चतुर्थभेद ता प्रति उद्यमी है, अर "अखंडितव्रताः" कहिये अखंडित है पंच महाव्रत जिनके, अर "शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनः" कहिये शरीर अर उपकरण इनिको जो विभूषा कहिये सुंदरता ताका अनुकरण करनेवारे हैं। भावार्थ—विषयानुरागनिमित्त शरीर संस्कार आदि विभूषाका तौ संयमग्रहणसमयमें ही त्याग भया सो ही "अखंडितव्रताः" इस विशेषणतैं पुष्ट किया, परंतु इनकै वर्त्तमान अवस्थामें सरागसंयम है तातैं असा भाव प्रवर्त्तै है कि हमारे संयमादिकका संस्कारतैं शरीरसंयमरूप शोभा करि असा होवै कि जाके देखतैं ही देवनिकै तौ सम्यक्त प्रकट होय अर मनुष्यनिकै संयममें रुचि प्रकट होय, असी शरीरकी विभूषा धर्मकी प्रभावनानिमित्त चाहै है, अर संयमका उपकारी होय सो उपकरण कहिये है सो उपकरणकी भी विभूषा, असो चाहै है कि जाके देखतैं ही वीतरागता प्रकट होवै, ताहीतैं ज्ञानका उपकरण जो पुस्तक सो तौ ताडपत्र आदिका राखै है अर शौचका उपकरण जो कमंडलु सो काष्ठका राखै है अर दयाका उपकरण जो पींछी सो मयूर पुच्छको राखै है, असैं तीनूं ही उपकरण रागी पुरुषनिकै अयोग्य वीतरागीनिकै योग्य राखै है ताके देखतैं ही वीतरागता प्रकट होय, असी तीनूं ही उपकरणकी विभूषा चाहै है अर इन सिवाय अन्य उपकरण इनके है ही नहीं; "अभिव्यक्तपरिवारानुमोदच्छेदशबलयुक्ताः" कहिये प्रकट भयो जो परिवारको अनुमोद सोई भयो जो छेद तातैं शबलयुक्ताः कहिये चित्रवर्ण युक्त हैं। भावार्थ—गृहस्थीनिकै पिता पुत्र आदि परवार है तैसें मुनीश्वरनिकै गुरुशिष्य आदि संघ है सो परिवार है ताम इनकै

अनुराग है तातैं चित्रवर्णयुक्त कहे है, क्योंकि परमनिर्ग्रंथ अपेक्षा वीतरागता भी है अर संघमें रागभाव भी है तातैं चित्रवर्ण कहे हैं, ऐसें बकुश है, इहां शबलशब्दका पर्यायवाची बकुशशब्द जाननां। अब कुशीलका लक्षण कहे हैं;—कि कुशील दोय प्रकार है, एक प्रतिसेवनाकुशील, दूसरा कषायकुशील; तिनिमैं प्रकट है परिग्रह कहिये शिष्यशाखा जिनकै, अर "परिपूर्णोभयाः" कहिये परिपूर्ण है मूलगुण, उत्तरगुण जिनकै, अर "कथंचित् उत्तरगुणविरोधिनः" कहिये कथंचित् उत्तरगुणकी विराधना करणवारेहैं सो प्रतिसेवना कुशील हैं अर "वशीकृतान्यकषायोदयाः सञ्ज्वलनमात्रतन्त्राः" कहिये वसि कियेहैं अन्य कषायका उदय जिनिनें अर संज्वलन कषायमात्रकै ही जे अधीन हैं ते कषायकुशील हैं। अर निर्ग्रंथ हैं ते "उदकदंडराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माणः" कहिये जलमैं दंडकी लीक समान नहीं प्रकट है कर्मको उदयजिनकै, भावार्थ—इहां मोहनी कर्मका तो अभाव भया अर ज्ञानावरण दर्शनावरण अर अन्तराय विद्यमान है तथापि मोहकी सहायता विना निर्मूल समान है तातैं उपयोगका मंद मंद चलन होय है ताकूं जलमें दंडकी लीक समान नहीं प्रकट होता कह्या है, अर "ऊर्द्ध मुहूर्त्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजः" कहिये अंतर्मुहूर्तकै उपरांत उदय होता केवलज्ञान केवलदर्शनका भजनेवालाहै सो निर्ग्रंथ है। अर क्षीण भये हैं घातिया कर्म जिनकै ऐसे सयोगकेवली अयोगकेवली भेदकरि स्नातक दोय प्रकार है। या प्रकार कहे ते पंचूं ही निर्ग्रंथ हैं, अर इनिकै चारित्रपरिणामका अधिकन्यून भेदनैं होता संता भी नैगम संग्रह आदि नयकी अपेक्षा करि सर्व ही ये निर्ग्रंथ हैं, ऐसैं कहिये है, इति।

सो ही अकलंकदेव राजवार्तिकमें कह्या है—

वार्तिक—अपरिपूर्णव्रता उत्तरगुणहीनाः पुलाकाः।१

अर्थ—नहीं परिपूर्ण भये हैं पंच महाव्रत जिनके अर उत्तर गुणकरि हीन जे हैं ते पुलाक हैं ॥ १ ॥

टीका—उत्तर गुणेष्वनपेतमनसः व्रतेष्वपि क्वचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवंतः अविशुद्धपुलाकसादृश्यात्पुलाकव्यपदेशमर्हंति ॥ १ ॥

अर्थ—उत्तर गुणनिकै विषैं नहीं गुरु भयो है मन जिनको अर पंच महाव्रतनिकै विषैं कोऊ क्षेत्रमें कदाचित् परिपूर्णतानैं नहीं प्राप्त हुवा ऐसा मुनीश्वर बिना घुण्या तंदुलकी समानतातैं पुलाक नाम पावै है। भावार्थ—जिनको मन उत्तरगुणनिमैं तौ लग्यो नहीं अर कदाचित् कोई क्षेत्रकालमैं पंच महाव्रतनिमैं भी जिनकै यत्किंचित् दूषण लागै है, ऐसे मुनीश्वर विना घुण्या तंदुलकै समान किंचित् कदाचित् मलयुक्त हैं ते पुलाक नाम पावै हैं।

वार्तिक—अखंडितव्रताः शरीरसंस्कारर्द्धिसुखयशोविभूतिप्रवणा बकुशाः, नैर्ग्रंथ्यं[१] प्रस्थिताः।२।

अर्थ—अखंडित हैं पंच महाव्रत जिनकै अर शरीरका संस्कार ऋद्धि सुख यश विभूतिमैं है प्रवीणता जिनकै अर "नैर्ग्रंथ्यं प्रस्थिताः" कहिये निर्ग्रंथपणां जो चतुर्थभेद ताप्रति है उद्यम जिनकैं ऐसे बकुशजातिके मुनीश्वर हैं॥ २॥

१"नैर्ग्रंथ्यं प्रस्थिताः" यह पाठ वार्तिककी टीकामें है यहां वार्तिकमें ही यह पाठ लिखा है सो ठीक नहीं प्रतीत होता. और चाहिये भी वार्तिकमें ही ।

टीका—अखंडितव्रताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्त्तिनः ऋद्धिसुखयशस्कामाः शातगौरवाश्रिताः अविविक्तपरिवाराः छेदशबलयुक्ता बकुशाः, शबलपर्यायवाची बकुशशब्द इति ॥ २ ॥

अर्थ—अखंडित हैं पंच महाव्रत जिनके अर शरीरकी तथा उपकरणकी विभूषाके चाहवांन अर ऋद्धि सुख यशका वांछक अर शातगौरव को है आश्रय जिनके अर प्रकट है शिष्यशाखारूप परिवार जिनके अर छेदरूप चित्रला चरणयुक्त हैं ते बकुश जातिके मुनीश्वर हैं, इहां शबलनाम चित्रवर्ण का है अर शबलका पर्यायवाची बकुशशब्द है। भावार्थ—पंच महाव्रत तौ अखंड पाले हैं अर शरीर की अर उपकरणकी शोभा ऐसी चाहै हैं कि जाकूं देखते ही परिणामनिकी वीतरागतारूप विशुद्धता प्रकट होय, अर ऋद्धि जो आत्मशक्ति अर सुख निराकुलतारूप स्वाधीन अर पापक्रियारहित आचार्यनिके मान्य प्रवृत्तिरूप यश इनिकी है कामना जिनिकै, अथवा यश ऐसा चाहै है कि हमारे निमित्ततैं या दिगंबररूप की प्रशंसा रहै, अर साताको गौरव ऐसो आश्रय कर है कि कोई असाताकर्म हमारै ऐसो उदय नहीं आवै कि जाकरि या दिगंबरपणामें विच्छेद होय, अर प्रकट है परिवार जिनकै ऐसे कहनेतें ऐसा जनावै है कि गुरु शिष्यके संयोगमें रहै है एका बिहारी नहीं रहै है, अर छेदरूप चित्रला चरणयुक्तकहनेतें वीतरागता अर पठनपाठनमें तथा धर्मोपदेशमें तथा वीर्याचारादिकनिमैं सरागता दोऊ मिले हुये है, ऐसा भाव प्रकट करै है॥ २ ॥

वार्त्तिक—कुशीला द्विविधाः, प्रतिसेवनाकषायोदयभेदात् ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रतिसेवना अर कषायका उदयरूप भेदतैं कुशील दोय प्रकार हैं॥ ३॥

टीका—कुशीला द्विविधा भवंति, कुतः? प्रतिसेवनाकषायोदयभेदात्। अविविक्तपरिगृहाः परिपूर्णोभयाः कथंचिदुत्तरगुणविराधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः, ग्रीष्मे जंघाप्रक्षालनादिसेवनात्, वशीकृतान्यकषायोदयाः संज्वलनमात्रतंत्रत्त्वात्कषायकुशीला इति॥ ३॥

अर्थ—कुशील दोय प्रकार हैं। प्रश्न—काहेतें हैं। उत्तर—प्रतिसेवनाका अर कषायका उदयरूप भेदतैं हैं। तिनिमैं "अविविक्तपरिग्रहाः" कहिये प्रकट है शिष्य शास्त्ररूप परिग्रह जिनिकै अर "परिपूर्णोभयाः" कहिये परिपूर्ण है मूलगुण उत्तरगुण जिनकै अर "कथंचिदुत्तरगुणविराधिनः" कहिये कदाचित् उत्तरगुणकी है विराधना जिनकै, इनि तीनि विशेषणनिकरि युक्त हैं ते प्रतिसेवना कुशील हैं, क्योंकि "ग्रीष्मे जंघाप्रक्षालनादिसेवनात्" कहिये गीष्मकालमैंगोड़ा पर्यंत जंघाप्रक्षालनादिका सेवन है यातैं। अर "वशीकृतान्यकषायोदयाः" कहिये वशि कीयो है अन्य कषायको उदय जिननैं ऐसैं संज्वलनकषायमात्रका आधीन पणांतैं कषायकुशील है॥३॥

प्रश्न—इहां "अविविक्तपरिग्रहाः" विशेषण जो है सो इनिकै प्रच्छन्न धनधान्यादिपरिग्रहवानपणां जनावैहै, अर तुम निर्ग्रंथ ही कहो हो सो कैसैं है।

उत्तर—"परिपूर्णोभयाः" विशेषण जो है सो निर्ग्रंथपणां प्रकट करै है, क्योंकि जिनिकै मूलगुण उत्तरगुण परिपूर्ण होय तिनिकै गुरुशिष्य सिवाय अन्यपरिग्रहवानपणां कैसें संभवै, तातैं निर्ग्रंथ ही हैं।

वार्तिक—उदके दंडराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माणोऽन्तर्मुहूर्ते केवलदर्शनप्रापिणो निर्ग्रंथाः॥४॥

अर्थ—जलके विषैं दंडकी लीकसमान भलै प्रकार निरस्त भये हैं कर्म जिनिकै अर अंतर्मुहूर्त्तमैं केवलज्ञान केवलदर्शन कूं प्राप्त होहिंगे ते निर्ग्रंथ हैं॥ ४॥

टीका—उदके दंडराजिर्यथा आश्वेव विलयमुपयाति तथाऽनभिव्यक्तोदयकर्माणः ऊर्ध्वं मुहूर्त्तादुद्भिद्यमानदर्शनकेवलज्ञानभाजो निर्ग्रंथाः॥४॥

अर्थ—जैसैं जलकै विषैं दंडकी लीक शीघ्र ही विलयन प्राप्त होय है तैसैं नहीं प्रकट होय है कर्मको उदय जिनिकै अर अंतरमुहूर्त्तकै उपरांति उदय होतो जो केवलदर्शन केवलज्ञान तिनिका भजनेवाले हैं ते निर्ग्रंथ हैं॥ ४॥

वार्त्तिक—प्रक्षीणघातिकर्माणः केवलिनः स्नातकाः॥ ५॥

अर्थ—अत्यंतपणैं क्षीण भये हैं घातियाकर्म जिनिकै ऐसे केवली भगवान स्नातक हैं॥ ५॥

टीका—ज्ञानावरणादिघातिकर्मक्षयादाविर्भूतकेवलज्ञानाद्यतिशयविभूतयः सयोगशैलेशिनो लब्धास्पदाः केवलिनः स्नातकाः। "स्नात वेदसमा-

ता" विति स्वार्थिके के निष्पन्नः शब्दः। त एते पंच निर्ग्रंथाः।

अर्थ—ज्ञानावरणादि घातिया कर्मके क्षयतैं प्रगट भई है केवलज्ञान आदि अतिशयकारी विभूति जिनिकै अर सयोगरूप शैलका स्वामी अर पायो है निजस्थान जिननैं ऐसे केवली भगवान स्नातक हैं। इहां स्नातक शब्द जो है सो "स्नात वेद समाप्तौ" धातुका ज्ञानकी परिपूर्णताका वाचक है ताकै स्वार्थकै विषैं "क" प्रत्यय होतसंतैं स्नातकशब्द निष्पन्न भया है। अर ये पूर्वै कहे ते पांचूंही भेद निर्ग्रंथ हैं ॥ ५ ॥

प्रश्नरूप वार्त्तिक—कश्चिदाह;—प्रकृष्टाप्रकृष्टमध्यानां निर्ग्रंथाभावश्चारित्रभेदात् गृहस्थवत्॥६॥

अर्थ—उत्तम जघन्य मध्यम जे हैं तिनिकै चारित्रभेदतैं गृहस्थकी नांई निर्ग्रंथपणाको अभाव है ॥

टीका—यथा गृहस्थश्चारित्रभेदात् निर्ग्रंथव्यपदेशभाग् न भवति तथा पुलाकादीनामपि प्रकृष्टाप्रकृष्टमध्यमचारित्रभेदात् निर्ग्रंथत्वं नोपपद्यते ॥६॥

अर्थ—जैसैं गृहस्थ चारित्रभेदतैं निर्ग्रंथनामको भजनवालो नहीं होय है तैसैं पुलाकादिकनिकै भी उत्कृष्ट जघन्य मध्यमचारित्रभेदतैं निर्ग्रंथपणो नहीं उपजै है ॥ ६ ॥

उत्तररूप वार्त्तिक—न वा दृष्टत्वाद्ब्राह्मणशब्दवत् ॥ ७ ॥

अर्थ—तुमनैं कहा सो दोष नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणशब्दकी नाईं प्रत्यक्ष देखिये है यातैं ।

टीका—नैवेष दोषः, कुतो। दृष्टत्वात् ब्राह्मण शब्दवत्, यथा जात्याचाराध्ययनादिभेदेन भिन्नेषु ब्राह्मणशब्दो वर्त्तते तथा निर्ग्रंथशब्दोऽपीति॥ ७॥

अर्थ—जो तुमनैं कह्यो सो दोष नहीं है। प्रश्न-काहेतैं। उत्तर—ब्राह्मणशब्दवत्। देखवापणातैं, जैसें जाति आचार अध्ययन आदि भेदकरि भिन्न जे हैं तिनिकै विषैं ब्राह्मणशब्द प्रवर्तै है तैसैं उत्कृष्ट जघन्य मध्यम चारित्रयुक्त पुलाकादि मुनि जे हैं तिनिकै विषैं भी निर्ग्रंथ शब्द ही प्रवर्तै है॥ ७॥

वार्तिक—किं च, संग्रहव्यवहारापेक्षत्वात्॥८॥

अर्थ—और सुनो कि, संग्रह व्यवहारनयकी अपेक्षापणांतैं निर्ग्रंथपणों पांचूंही भेदनिमैं संभवै है॥ ८॥

टीका—यद्यपि निश्चयनयापेक्षया गुणहीनेषु न प्रवर्त्तते, तथापि संग्रहव्यवहारनयविवक्षावशात् सकलविशेषसंग्रहो भवति॥ ८॥

अर्थ—जो निश्चयनयकी अपेक्षाकरि गुणहीननिकै विषैं निर्ग्रंथशब्द नहीं प्रवर्तै है तौ भी संग्रह व्यवहारनयकी विवक्षाका वशतैं सकलभेद जे हैं तिनिको निर्ग्रंथशब्दकै विषै संग्रह होय है। भावार्थ—सर्वथा परभाव परद्रव्यका अभावको वाचक निर्ग्रंथ शब्द तौ निश्चयनयतैं बारमां गुणस्थानमैं क्षीणमोह होय संतैं संभवै है तथापि संग्रह व्यवहारनयतैं षष्ठगुणस्थानतैं ही निर्ग्रंथ कहिये है॥ ८॥

वार्त्तिक—रूपसामान्यात्॥ ९॥

अर्थ—पुलाकादिक—सम्यग्दर्शन अर निर्ग्रंथरूपको सा-

मान्यपणों है यातैं ॥ ९ ॥

टीका— सम्यग्दर्शनं निर्ग्रंथरूपं च भूषावेषायुधविरहितं तत्सामान्ययोगात् सर्वेषु हि पुलाकादिषु निर्ग्रंथशब्दो युक्तः ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन अर निर्ग्रंथरूप अर वस्त्र आभूषण आयुधरहित यो सामान्ययोगहै यातैं निश्चयकरि सर्व ही पुलाकादिक जे हैं तिनिकै विषैं निर्ग्रंथशब्द युक्त है ॥ ९ ॥

प्रश्नोत्तररूप वार्तिक—भग्नव्रते वृत्तावतिप्रसंग इति चेन्न रूपाभावात् ॥ १० ॥

अर्थ— प्रश्न—ऐसैं है तौ भग्नव्रतकै विषैं भी निर्ग्रंथशब्दकी प्रवृत्ति होतसंतैं अतिप्रसङ्गनामा दोष होय है। उत्तर—ऐसैं नहीं है, क्योंकि रूपाभावात् कहिये निर्ग्रंथरूपको अभावहै यातैं ॥ १० ॥

टीका—यदि भग्नव्रतेऽपिनिर्ग्रंथशब्दो वर्त्तते श्रावकेऽपिस्यादिति अतिप्रसंगः। नैष दोषः। कुतः? रूपाभावान्निर्ग्रंथरूपमत्र नः प्रमाणं, न च श्रावके तदस्तीति नाति प्रसंगः॥ १० ॥

अर्थ—जो भग्नव्रतकै विषैं भी निर्ग्रंथशब्द प्रवर्त्तै तौ श्रावकनिकै विषैं भी निर्ग्रंथशब्द प्रवर्त्तै तदि अति प्रसंगनामा दोष होय। उत्तर—यो दोष नहीं है। प्रश्न—काहेतैं। उत्तर—"रूपाभावात्" कहिये निर्ग्रंथरूपका अभावतैं, क्योंकि हमारै इह

निर्ग्रंथरूप प्रमाण है सो निर्ग्रंथरूप श्रावकनिमैं नहीं है, तातैं अतिप्रसंग दोष नहीं है ॥ १० ॥

प्रश्नोत्तररूप वार्तिक—अन्यस्मिन्स्वरूपेऽतिप्रसंग इति चेन्न दृष्ट्यभावात् ॥ ११ ॥

अर्थ—प्रश्न—अन्य परमहंस आदि भेषीनिमैं निर्ग्रंथरूप होतां अतिप्रसंगदूषण आवैगा कि वै भी निर्ग्रंथ नाम पावैंगे। उत्तर—सो नहीं है, क्योंकि परमहंसादिकनिमैं "दृष्ट्यभावात्" कहिये सम्यग्दर्शनको अभाव है यातैं ॥ ११ ॥

टीका—स्यादेतद्यदि रूपं प्रमाणमन्यस्मिन्नपि स्वरूपे निर्ग्रंथव्यपदेशः प्राप्नोतीति। तन्न। किं कारणं? दृष्ट्यभावात् दृष्ट्या सह यत्र रूपं तत्र निर्ग्रन्थव्यपदेशः न रूपमात्र इति ॥ ११ ॥

अर्थ—नग्नरूप प्रमाण है जो ऐसैं ठहरै तौ परमहंसादिकनिका भी स्वरूपकै विर्षै निर्ग्रंथनाम प्राप्त होय। उत्तर—सो नहीं है। प्रश्न—कहा कारण। उत्तर—दृष्ट्यभावात् कहिये सम्यग्दर्शनका अभावतैं। क्योंकि जहां सम्यग्दर्शनकै साथि जो अतिशयरूप दिगंबररूपहै ताकै विर्षै निर्ग्रंथ नामकी प्रवृत्ति है, "न रूपमात्रः" कहिये नग्नरूपमात्रमैं ही निर्ग्रंथ नाम नहीं है ॥ ११ ॥

प्रश्नोत्तररूप वार्तिक—अथ किमर्थः[१] पुलाकाद्-

१ राजवार्तिककी प्रतिमें यह वार्तिक अलग नहीं है, किंतु "अन्यस्मिन्स्वरूपेऽतिप्रसंग इति चेन्न दृष्ट्यभावात्" इस वार्तिककी टीकाहीमें पाठ है।

पदेशः, चारित्रगुणस्योत्तरप्रकर्षवृत्तिविशेषख्याप नार्थः पुलाकाद्युपदेशः क्रियते ।

अर्थ—प्रश्न—पुलाक आदि नाम भेदरूप उपदेश कहा निमित्त करिये है । उत्तर—चारित्रगुणकी उत्तरोत्तर प्रकर्षताके विषैं प्रवृत्तिविशेषके जनावनें निमित्त पुलाकआदि नामभेदरूप उपदेश करिये है ।

या प्रकारके प्रश्नोत्तर सुननेंतैं पांचूंही मुनीश्वरनिकै विषयानुरागता अर परिग्रहवानता कदाचित् ही नहीं सम्भवैहै ।

प्रश्न—पुलाक आदि भेदनिके जाननेंका उपाय येही है कि और भी है ।

उत्तर—तेषां पुलाकादीनां भूयो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते।

अर्थ—तिनि पुलाकादिकनिका बाहुल्यताकरि विशेष जणायवे अर्थि उमास्वामी यो सूत्र कहे हैं;—

सूत्र—संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

अर्थ—संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद, स्थान इनि आठ अनुयोगनितैं पुलाक आदि भेद जे हैं ते साधनें योग्य हैं ॥ ४७ ॥

या सूत्रकी व्याख्यामें शब्दसिद्धि करनें निमित्त शब्दशास्त्रकै अनुकूल च्यारि वार्तिक कीये हैं सो या वचनिकारूपग्रन्थमैं निष्प्रयोजन जानि नहीं लिख्या है। अर आगैं धारारूप टीका ऐसैं लिखैं हैं;—

टीका—एते पुलाकादयः पंचनिर्ग्रंथविशेषाः

संयमादिभिरष्टाभिरनुयोगैः साध्या व्याख्येया इत्यर्थः।

अर्थ—ये पुलाकादि पंच भेद कहे ते निर्ग्रंथनिके विशेष हैं ते संयमादिक आठ अनुयोग हैं तिनकरि साधने योग्य हैं कि व्याख्यान करिबे योग्य है ऐसा सूत्रका अर्थ है।

"तद्यथा" कहिये सोही दिखाइये है।

प्रश्नोत्तररूप टीका—कः कस्मिन्संयमे भवति।

अर्थ—पुलाकादिक कौन कौनसे संयममें है।

टीका—पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीलाः द्वयोः संयमयोः सामायिकछेदोपस्थापनयोर्भवंति। कषायकुशीलाः द्वयोः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययोः पूर्वयोश्च। निर्ग्रंथस्नातका एकस्मिन्नेव यथाख्यातसंयमे।

अर्थ—पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील, ये तीनूं ऋषीश्वर सामायिकसंयम अर छेदोपस्थापना संयम ये दोय संयम जे हैं तिनिकै विर्षे है। अर कषायकुशील ऋषीश्वर जे हैं ते परिहारविशुद्धिसंयम अर सूक्ष्म सांपराय संयम ये दोय संयम जे हैं तिनिकै विर्षेहै, अर पूर्व कहे जे सामायिकसंयम अर छेदोपस्थापनासंयम तिनिकै विर्षे भी है। अर निर्ग्रंथ अर स्नातक मुनीश्वर जे हैं ते एक ही यथाख्यातसंयमके विर्षे है। ऐसे तौ संयम अपेक्षा पुलाकादिकनिमें विशेष जानना, बहुरि श्रुत अपेक्षा कहिये है;

टीका—पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीलाः उ-

त्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराः । कषायकुशीला निर्ग्रन्था श्चतुर्दशपूर्वधराः । जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु। बकुशकुशीलनिर्ग्रंथानां श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः । स्नातकाः अपगतश्रुताः केवलिनः।

अर्थ—पुलाक बकुश प्रतिसेवनाकुशील ये तीनूं ऋषीश्वर उत्कृष्टता करि अभिन्नाक्षर दशपूर्वके धारी हैं। अर कषायकुशील अर निर्ग्रन्थ ये दोय ऋषीश्वर उत्कृष्टताकरि चतुर्दशपूर्वके धारी हैं। अर जघन्यकरि पुलाककै आचारांगमैं आचारवस्तुका ज्ञान होय है। अर बकुश कुशील निर्ग्रन्थकै अष्ट प्रवचन मातृका-का ज्ञान होय है।।स्नातक ऋषीश्वर केवली जे हैं ते श्रुतज्ञान-करि रहित हैं।

बहुरि प्रतिसेवनाअपेक्षा कहिये है।—

टीका-प्रतिसेवना,—पंचानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति । बकुशो द्विविधः, उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति; तत्र उपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः बहुविशेषयुक्तोपकरणकांक्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति, शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः। प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणानविराधयन्नुत्तरगणेषु कांचिद्विराधनां प्रतिसेवते। कषायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकानां प्रतिसेवना नास्ति।

अर्थ—इहां प्रतिसेवना नाम विराधनाका है अर इनिके पंच महाव्रतनिका तथा मूलगुणनिके पालनेका अर रात्रिभोजनवर्जनका नियम है तथापि पराए वशतैं जोरीतैं इन पापनिमैं कोई एकका यत्किंचित् सेवनवारा पुलाक है। वकुश दोय प्रकार हैं, एक उपकरणवकुश दूसरा शरीरवकुश; तिनिमैं उपकरणके विषैं है आशक्तचित्त जिनको अर विविध कहिये नाना प्रकारको मुनि गृहस्थ आदि अर विचित्र कहिये केई तौ अध्यात्मविद्याके ग्राहक केई आचारांगके ग्राहक केई ज्योतिष्क मंत्र गणित आदि विद्याके ग्राहक ऐसैं विविधविचित्र शिष्यनिकी मंडलीरूप परिग्रहयुक्त अर बहुविशेषयुक्त कहिये अनेकभेदयुक्त उपकरण जे हैं तिनिके वांछक अर तिन उपकरणनिका संस्कार कहिये बिगडेकूं सुधारनां अर प्रतीकार कहिये आगामी कालमैं नहीं बिगड़ै ऐसा इलाजका करणवारा भिक्षु जो है सो उपकरणवकुश है, अर शरीरका संस्कार जो रज प्रस्वेदका दूर करना तथा अंगमर्दनादिकका कराना इत्यादि करनवारा भिक्षुक जो है सो शरीरवकुश है।

प्रश्न—"विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः" पदका अर्थ प्रकट नाना प्रकारका वस्त्र वाहन धन धान्यादि परिग्रहवानपणां भासै है अर तुम अनेक शिष्यमंडली संयुक्तही कहो हो सो कैसैं है।

उत्तर—शब्द तौ कल्पवृक्षरूप है कि नाना अर्थकूं प्रकाशै है तथापि पूर्वापरविरुद्ध अनेक आगमके सम्मत अर्थ होय सो प्रमाणभूत मानिये है, अर याही राजवार्त्तिकमैं वकुशका लक्षण "अखंडितव्रताः" कह्या है तातैं पंच महाव्रतनिकूं विद्यमान होत संतैं वस्त्र वाहन धन धान्यादि परिग्रह तौ वकुशकै सर्वथा ही होजे नाहीं तातैं गुरुशिष्य पुस्तक आदि उपकरण मात्र ही परिग्रह

मानना योग्य है।

प्रतिसेवनाकुशील जो है सो मूलगुणनिनैं नहीं विराधना करतो संतो उत्तरगुणनिके विषै कोई गुणकी विराधनाकूं सेवै है। कषायकुशील अर निर्ग्रंथ अर स्नातक जे हैं तिनकै प्रतिसेवना नहीं है ॥

बहुरि तीर्थअपेक्षा कहिये है—

टीका—तीर्थमिति;—सर्वेषां तीर्थंकराणां तीर्थेषु भवंति।

अर्थ—सर्व ही तीर्थंकरनिके समयके विषैं पुलाक आदि पांचूं ही भेद प्रवर्त्तै हैं।

बहुरि लिंग अपेक्षा कहिये है,—

टीका—लिंगं त्रिविधं, द्रव्यलिंगं भावलिंगं च। भावलिंगं प्रतीत्य सर्वे पंचनिर्ग्रंथा लिंगिनो भवंतीति द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः।

अर्थ—लिंग दोय प्रकार है, तिनिमैं एक द्रव्यलिंग है दूसरा भावलिंग है। तिनिमैं भावलिंगनैं प्रतीति करि विचारिये तौ सर्व ही पुलाकादि पांचू ही भेद निर्ग्रंथलिंगी हैं, अर द्रव्यलिंगनैं प्रतीतिकरि विचारिये तौ पांचूं ही भेद भाज्य हैं कि भेद

१—राजवार्तिकमें "तीर्थंकराणां" इसके स्थानमें "तीर्थंकरणात्" ऐसा पाठ है।

करने योग्य हैं। भावार्थ—सम्यग्दर्शनसहित संयम पालनेमें तो सबहीमें महान् उत्तमा हैं तातें भावलिंग तौ, पांचोंके समान कह्या है, अर द्रव्यलिंग अपेक्षा काऊ नित्य आहार करै है, कोऊ एकांतर कोऊ बेलांत। कोऊ पक्षोपवास कोऊ मासोपवास कोऊ षटमासोपवास करै है। कोऊ उपदेश करै है, कोऊ श्रवण करै है। काऊ अध्ययन करावे है, काऊ अध्ययन करै है। कोऊ तीर्थविहार करैहै, काऊ प्रायश्चित्त लेवे है। कोऊ आचार्य है, कोऊ उपाध्याय है, कोऊ प्रवर्तक है, काऊ निर्यापक है, कोऊ वैयावृत्य करै है। कोऊ ध्यानकरि श्रेणी चढ़ै है, काऊ केवलज्ञान उपजावे है, इत्यादि भेदकरि प्रवृत्तिमें भेद है तातैं द्रव्यलिंग अपेक्षा भेद कह्या है, अर नग्न दिगम्बरपणामें भेद नहीं है।

अब लेश्या अपेक्षा कहैं हैं;—

टीका—लेश्या;—पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो लेश्या भवंति। बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः षडपि। कषायकुशीलस्य परिहारविशुद्धेश्चतस्र उत्तराः। सूक्ष्मसांपरायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला भवति। अयोगशैले प्रतिपन्ना अलेश्याः।

अर्थ—पुलाकके पीत पद्म शुक्ल ए उत्तरकी तीन लेश्या हैं, अर बकुशकै अर प्रतिसेवनाकुशीलकै छहूं ही लेश्या हैं, अर कषायकुशीलकै अर परिहारविशुद्धिसंयमीकै कापोत पीत पद्म शुक्ल ए च्यार उत्तरकी लेश्या हैं, अर सूक्ष्मसांपरायिककै अर निर्ग्रंथस्नातककै एक केवल शुक्ल लेश्या ही है, अर अयोगरूप पर्वतकै विषैं प्राप्त भये जे अयोग केवली ते लेश्यारहित हैं।

प्रश्न—मुनीश्वरनिकै कृष्ण आदि अशुभलेश्या कैसैं हैं।

उत्तर—चारित्रसारमैं धारा;—

तयोरुपकरणासक्तिसंभवात् आर्त्तध्यानं कदाचित्कं संभवति, आर्त्तध्यानेन कृष्णलेश्यादित्रयं भवतीति।

अर्थ—तयोः कहिये बकुशकै अर प्रतिसेवनाकुशीलकै उपकरणमैं आसक्तता संभवै है तातैं कदाचित् आर्त्तध्यान संभवै है, अर आर्त्तध्यानकरि कृष्ण आदि तीनूं लेश्या संभवै हैं, यातैं छहूं लेश्या कही हैं। अब उपपाद अपेक्षा कहैं हैं;—

टीका—उपपादः—पुलाकस्योत्कृष्ट उपपादः उत्कृष्टस्थितिषु देवेषु सहस्रारे। बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिष्वारणाच्युतकल्पयोः। कषायकुशीलनिर्ग्रंथयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिषु सर्वार्थसिद्धौ। सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु। स्नातकस्य निर्वाणमिति।

अर्थ—उत्कृष्ट अपेक्षा पुलाकको उपपाद सहस्रारनामा बारमां स्वर्गपर्यन्त उत्कृष्टस्थितिके धारक देवनिमैं है, अर बकुशका तथा प्रतिसेवनाकुशीलको उपपाद आरण अच्युत नामा सोलमां स्वर्गमैं बाईससागरोपम स्थितिवान देवनिमैं है, अर कषायकुशील तथा निर्ग्रन्थको उपपाद सर्वार्थसिद्धिकै विषैं तेतीससागरोपम स्थितिमान देवनिमैं है, अर सब कोही जघन्य अपेक्षा सौधर्म

ईशान स्वर्गके विषैं दोय सागरोपमस्थितिमान देवनिमैं है, अर स्नातकको निर्वाण ही है।

अब स्थान अपेक्षा कहिये है,—

टीका—स्थानं;—असंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवंति, तत्र सर्वत्र जघन्यानि लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशीलयोः तौ युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतस्ततः पुलाको व्युच्छिद्यते, कषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलबकुशाः युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छंति ततो बकुशो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते, अत ऊर्ध्वं अकषायस्थानानि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते, सोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते, अत ऊर्ध्वमेकं स्थानं गत्वा स्नातकोनिर्वाणं प्राप्नोत्येषां संयमलब्धिरनंतगुणा भवतीति।

अर्थ—कषायनिको क्षयोपशम है निमित्त जिनकूं ऐसे संयमके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं तिनि असंख्यातलोक प्रमाण संयमस्थाननिविषैं सर्वत्र जघन्य संयमलब्धिस्थान पुलाकके अर कषायकुशीलके होय है ते दोऊ ही युगपत् असंख्यात संयम-

लब्धिस्थाननिकूं प्राप्त होय हैं ता पीछैं पुलाक विच्छित्तिकूं प्राप्त होय है, अर कषायकुशील तथा प्रतिसेवनाकुशील अर बकुश ये तीन जे हैं ते युगपत् असंख्यातलोकप्रमाण स्थाननिकूं प्राप्त होय हैं तापीछैं बकुश व्युच्छित्तिकौं प्राप्त होय है, ता पीछैं भी असंख्यात लोकप्रमाण स्थाननिकूं जाय कषाय कुशील व्युच्छित्तिकूं प्राप्त होय है, या उपरांति अकषायस्थाननिनैं निर्ग्रन्थ प्राप्त होय है सो भी असंख्यात स्थाननिनैं प्राप्त होय व्युच्छित्ति पावै है, या उपरांति एक स्थानकैं प्राप्त होय स्नातक निर्वाणनैं प्राप्त होय है। ऐसैं इन पांचूं भेदरूप मुनीश्वरनिकै संयमकी लब्धि उत्तरोत्तर अनन्तगुणी है।

ऐसैं पुलाक बकुश कुशील निर्ग्रन्थ स्नातक भेदरूप पंच प्रकारके मुनीश्वरनिके लक्षणतत्त्वार्थ सूत्रमैं तथा टीकासर्वार्थसिद्धिमैंतथा राजवार्तिकमैं किये है, यातैं संग्रह व्यवहारनय अपेक्षा तौ पांचूं ही निर्ग्रन्थ हैं अर निश्चयनयअपेक्षा बारहैं गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ हैं ते अर तेरवां चौदवां गुणस्थानवर्ती स्नातक जे हैं ते निर्ग्रन्थ हैं। अर केई मंदज्ञानी मिथ्यात्वी पक्षपातीनिकै कहनेतैं मुनीश्वरनिकै धन धान्य वस्त्र आदि परिग्रह बताय सग्रन्थकूं भी पूज्य मानैंहैं ते मिथ्यात्वी हैं।

प्रश्न—इनि पंचभेदनिका लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान कीया परंतु केई पुरुष कहैहैं कि उत्सर्ग अर अपवाद भेदरूप दोय लिंग हैं तिनिमैं अपवादलिंगीनिकै वस्त्र धन धान्य आदि परिग्रह है सो कैसैं है।

उत्तर—अन्य परिग्रहका ग्रहण तौ दूरि ही रहौ मोक्षकी चाहि मात्रका ही निषेध पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं लिखै हैं,—

मोक्षेऽपि मोहादभिलापदोषो विशेषतो मोक्षनिषेधकारी
यतस्ततोऽध्यात्मरतोमुमुक्षुर्भवेत्किमन्येद्रकाभिलाषः ॥

अर्थ—जातैं मोहका उदयतैं मोक्षकै विषइ अभिलाषरूप दोष जो है सो विशेषपणातैं मोक्षको निषेध करणवारो है, तातै मोक्षको इच्छुक आत्मध्यान विषैं लीन हुवो संतो साधु-और परिग्रहकै विषैं अभिलाषावान कैसैं होय। भावार्थ—मुनीश्वर तौ अन्य पदार्थऔ अभिलाषवान कदाचित् ही नहीं होय ॥५५॥

तथा प्रवचनसारमें चरणानुयोगचूलिकाकैं विषैं,—

किध तम्हि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि ॥२०॥
कथं तस्मिन् नास्तिमूर्च्छा आरंभो वा असंयमस्तस्य
तथा परद्रव्यरतः कथमात्मानं प्रसाधयति ॥ २० ॥

अर्थ—वा मुनीश्वरकै तिस परिग्रहकै होतसंतैं मूर्च्छा अर आरंभ अर असंयम कैसैं नहीं होय तथा परिद्रव्यमें रागी हुवो संतो आत्मानैं कैसैं साधै कि कदाचित् ही नहीं साधै ॥ २० ॥

टीका—उपधिसद्भावे हि ममत्वपरिणामलक्षणायाः मूर्च्छायास्तद्विषयकर्मप्रक्रमपरिणामलक्षणस्यारंभस्य शुद्धात्मरूपहिंसनपरिणामलक्षणस्यासंयमस्य चावश्यं भावित्वात्तथोपधिद्वितीयस्य परद्रव्यरतत्वेन शुद्धात्मद्रव्यप्रसाधकत्वाभावाच्च, ऐकांतिकांतरंगछेदत्वमुपधेरवधार्यत एव। इदमत्र तात्प-

येनेवंविधस्त्वमुपधेरवधाय सर्वथा संन्यस्तव्यः॥२०॥

अर्थ—उपधि जो परिग्रह ताको सद्भाव होत संतैं ही ममत्वपरिणाम है लक्षण जाको ऐसो मूर्च्छाको अवश्यंभावीपणो है, अर मूर्च्छाकूं होत संतं मूर्च्छाका विषयरूप कर्मका प्रक्रमरूपपरिणाम है लक्षण जाको ऐसा आरंभको अवश्यंभावीपणो है, अर आरंभकै शुद्धात्मस्वरूपका हिंसनपरिणाम लक्षणअसंयमको अवश्यंभावीपणों है यातैं; तथा उपधिद्वितीयस्य कहिए बाह्य अभ्यंतर परिग्रहवानकै परद्रव्यमैं रागीपणाकरि शुद्धात्मद्रव्यका प्रसाधकपणांको अभाव है यातैं; परिग्रहकै एकांततांकरि अंतरंगको छेदरूपणों अवधारिये है कि निश्चय करिये है। इहां यो तात्पर्य है कि परिग्रहकै सर्वदोषनिको आधारभूतपणों निश्चय करिये है सो परिग्रह सर्वथा त्यागवो योग्य है। भावार्थ—जाकैपरिग्रह होय ताकै अवश्य ममत्वभाव होय, अर जामैं ममत्वभाव होय ताकै निमित्त आरंभ भी होय, अर ममत्वभाव अर आरंभ दोऊ होय तहां शुद्धोपयोगरूप आत्मीकपरिणामनिकी तथा परजीवनिकी हिंसा होय, तहां अवश्य असंयम होय, तहां मुनिपणांको अभाव होय। क्योंकि परद्रव्यमैं रक्ता होत संतैं शुद्धात्मतत्त्वको साधन कदाचित् ही नहीं वर्णै है अर मुनिपणों धारण करनेको मुख्य प्रयोजन शुद्धात्मतत्त्वको सिद्ध करनों है। तातैं जाकै परिग्रह है ताकै मुनिपणूं नहीं है। यातैं इस कथनका तात्पर्य ये है कि शुद्धात्मतत्त्वका साधनभूत मुनिपणां चाहै सो परिग्रहको सर्वथा परिहार; करै ॥२०॥

अब अपवादमार्गकूं कहै है कि;—

धारा—अथ कस्यचित क्वचित् कदाचित्कथं-

चित् कश्चिदुपधिरप्रतिषिद्धोऽप्यस्तीत्यपवादमुपदिशति ।

अर्थ—या उपरांति कोईकै कोई क्षेत्रमैं, कोई कालमैं कदाचित् कैसैं हूं कोई परिग्रह जो है सो नहीं निषेधरूप भी है या कारण अपवादनैं उपदेश करै हैं । गाथा—

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥२१॥
छेदो येन न विद्यते ग्रहणविसर्गेषु सेवमानस्य ।
श्रमणस्तेनेह वर्ततां कालं क्षेत्रं विज्ञाय ॥ २१ ॥

अर्थ—जा परिग्रहका सेवनद्वारा मुनीश्वरकै जापरिग्रहका ग्रहण त्यागनैं होतां संतां जाकरि मुनिपणांको छेद नहीं होय ताकरि या वर्त्तमानकालमैं कालक्षेत्रनैं जाणि प्रवर्त्तन करौ ॥ २१ ॥

टीका—अथ आत्मद्रव्यस्य द्वितीयपुद्गलद्रव्याभावात्सर्व एवोपधिः प्रतिषिद्ध इत्युत्सर्गः । अयंतु विशिष्टकालक्षेत्रवशात्कश्चिदप्रतिषिद्ध इत्यपवादः । यदा हि श्रमणः सर्वोपधिप्रतिषेधमास्थाय परममुपेक्षासंयमं प्रतिपत्तुकामोऽपि विशिष्टकालक्षेत्रवशावसन्नशक्तिर्न प्रतिपत्तुं क्षमते, तदापकृष्य संयमं प्रतिपद्यमानस्तद्बहिरंगसाधनमात्रमुपधिमातिष्ठते, सतु तथाऽऽस्थीयमानो न खलूप-

धित्वाच्छेदः, प्रत्युतः छेदप्रतिषेध एव, यः किला-शुद्धोपयोगाविनाभावी स छेदः, अयं तु श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुभूताऽऽहारनिहारादिग्रहणविसर्जनविषयछेदप्रतिषेधार्थमुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाविनाभूतत्वाच्छेदप्रतिषेध एव स्यात् ॥ २१ ॥

अर्थ—अथानंतर आत्मद्रव्यकै दूसरा पुद्गलद्रव्यका अभावतैं सर्वही परिग्रह निषेधरूप है या प्रकार तौ उत्सर्ग मार्ग है, अर यो विशेष काल क्षेत्रका वशतैं कदाचित् नहीं निषेधरूप अपवादमार्ग है, अर निश्चयकरि जा समय सर्व परिग्रहका निषेधनैं अंगीकार करि परम वीतराग संयमनैं प्राप्त होवाको इच्छुक भी विशेष काल क्षेत्रका वशतैं नहीं प्रकट भई है शक्ति जाकी ऐसो हुवो संतो परम वीतराग संयमनैं प्राप्त होनेकूं नहीं समर्थ होय है ता समय वीतराग संयमके इच्छुक परिणामनिकूं संकोच करि सरागसंयमनैं प्राप्त होतो संतो वा सरागसंयमको बाह्यसाधन मात्र परिग्रह जो है ताहि "आतिष्ठते" कहिए अंगीकार करै है सो मुनीश्वर अपवादमार्गमैं तिष्ठैहै, अर निश्चयकरि वा संयमका साधनमात्र परिग्रहवानपणांनैं मुनिपणांको छेद नहीं है, उलटो छेदको निषेध ही है, अर निश्चयकरि जो अशुद्धोपयोगतैं अविनाभावी सो छेद है, अर यो अपवादरूप परिग्रह वो मुनिपर्यायको सहकारी कारण जो शरीर ताकी प्रवृत्तिका हेतुभूत जो आहार निहार कमंडल पिच्छिकादिक तिनका ग्रहणत्याग विषयस्वरूप परिग्रह है सो छेदका प्रतिषेधके अर्थि ग्रहण कियो संतो सर्वथा

शुद्धोपयोगतैं अविनाभावी पणातैं छेदका निषेधक ही है ॥ १२ ॥ भावार्थ—सर्वथा सर्व परिग्रहका त्यागरूप तौ उत्सर्गमार्ग है क्योंकि आत्माके निज भाव सिवाय परद्रव्यरूप पुद्गलद्रव्य आदि काऊ भी भाव अपना नहीं है तातैं उत्सर्गमार्ग तौ सर्वथा परिग्रहरहित है। अर कदाचित् विशेषरूप काल क्षेत्रके वशतैं कोई परिग्रहका ग्रहणरूप अपवादमार्ग है क्योंकि जो मुनीश्वर जा समय सर्व परिग्रहकूं त्यागि परम वीतराग संयमनैं प्राप्त हुवो चाहै है सो ही मुनीश्वर विशेषरूप कालक्षेत्रके वशतैं हीनशक्ति हुवो संतो तिस वीतराग संयमनैं नहीं धारण करि सकै है ता समय सरागसंयमनैं धारण करै हैं सो परिग्रह तिस मुनिपणांका बाधक नहीं है उल्टा साधक है क्योंकि मुनिपणांका बाधक तौ अशुद्धोपयोग है अर ये परिग्रह अशुद्धोपयोगके बाधक है तातैं मुनिपणांके साधक है, सो ऐसैं है कि मुनिपणांको सहकारी कारण शरीर है अर शरीरकी प्रवृत्तिका कारण आहार नीहारको ग्रहण त्याग है तातैं अंगीकार करिये है सो अशुद्धोपयोगरूप नहीं है, क्योंकि आहार नीहार कमंडल पिच्छिका पुस्तक गुरु शिष्य संघ आदि मुनिपणांका सहकारी कारणरूप परिग्रहकूं नहीं ग्रहण करै तौ आयुपर्यन्त मुनिपणो निभै नाहीं, तातैं जा परिग्रहतैं मुनिपणं नहीं बिगड़ै सो अपवादमार्गमैं ग्रहण करनूं कह्यो है क्योंकि मुनिपणांको साधक है यातैं ॥ २१ ॥

धारा—अथाप्रतिषिद्धोपधिस्वरूपमुपदिशति ।

अर्थ—अथानंतर नहीं निषेधरूप परिग्रह जो है ताका स्वरूपनैं उपदेश करै है; गाथा—

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अप्पत्थणिज्जं असंजदजणेहिं ।
मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो यदि वि अप्पं।२२

अप्रतिकुष्टमुपधिमप्रार्थनीयमसंयतजनैः ।
मूर्च्छादिजननरहितं गृह्णातु श्रमणो यद्यप्यल्पम् ।२२।

अर्थ—जो असंयमी मनुष्यनि करि नहीं प्रार्थनी करिवे योग्य अर मूर्च्छा जो ममता आरंभ हिंसादिक भाव तिनिका उपजावनरहित ऐसा नहीं निषेधरूप अल्प ही परिग्रहनैं अपवादलिंगी मुनीश्वर ग्रहण करो ॥ २२ ॥

टीका—यः किलोपधिः सः सर्वथा बंधासाधकत्वादप्रतिकुष्टः संयमादन्यत्रानुचितत्वादसंयतजनाप्रार्थनीयो रागादिपरिणाममंतरेण धार्यमाणत्वान्मूर्च्छादिजननरहितश्च भवति स खल्वप्रतिपिद्धः । अतो यथोदितस्वरूप एवोपधिरुपादेयो न पुनरल्पोऽपि यथोदितविपर्यस्तस्वरूपः ॥ २२ ॥

अर्थ—जो निश्चयकरि सर्वथा बंधका नहीं साधकपणातैं नहीं निषेधरूप अर संयमतैं अन्यप्रसंगमैं अनुचितपणातैं असंयमी मनुष्यनिकै नहीं प्रार्थना करिवे योग्य अर रागादिपरिणामविना धारण करनातैं ममता आरंभ हिंसा आदिभावका उपजावनरहित है सो निश्चयमैंही नहीं निषेधरूप परिग्रह है, यातैं पूर्वोक्त स्वरूप हीपरिग्रह ग्रहण करने योग्य है; अर पूर्वोक्ततैं विपरीत स्व-

रूप अल्प भी परिग्रह नहीं ग्रहण करने योग्य है ॥ २२ ॥ भावार्थ— असंयमी मनुष्यनिकरि नहीं प्रार्थना करनें योग्य परिग्रहका विशेषण कहनेंतैं सर्वथा गृहस्थनिकै अयोग्यपणां जनाया है अर मूर्च्छादिकका उपजावनरहित विशेषण कहनेंतैं जा द्रव्यके ग्रहण किये ममता आरंभ हिंसा आदि दोष उत्पन्न होय सो धन धान्य आदि सर्व ही द्रव्य नहीं ग्रहण करनें योग्य जनाया है, अर कमंडलपिच्छिका शास्त्र गुरु शिष्य आहार निहार विहार आदि मुनियोग्य द्रव्यके ग्रहण त्याग करनेतैं मुनिपदवीका तौ निर्वाह होय है अर आरंभहिंसादिक नहीं होय है तातैं बंधका कारण नहीं है यातैं अपवादमार्गमें ये निषेधरूप नहीं है ॥ २२ ॥

उत्थानिका—अथोत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न पुनरपवाद इत्युपदिशति ।

अर्थ—अथानंतर उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है अर अपवाद वस्तुधर्म नाहीं है या प्रकार उपदेश करै हैं—

किं किंचणत्ति तक्कं अपुणब्भवकामिणोघ देहे वि ।
संगत्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा॥२३॥

किं किंचनमिति तर्कः अपुनर्भवकामिनोऽथ देहेऽपि ।
संग इति जिनवरेन्द्रा अप्रतिकर्मत्वमदिष्टवंतः॥२३॥

अर्थ—इहां तर्क करै हैं कि मुनीश्वरकै कछु है कहा, याका उत्तर ग्रंथकार कहै हैं कि अथानंतर अपुनर्भवकी है कामना

जाकै ऐसा मुनीश्वरकै देह होतसंतें देह परिग्रह है या प्रकार जिनवरेंद्र सर्वज्ञ वीतराग देव जे हैं ते अप्रतिकर्मत्वपणू जो ममत्वभावसहित शरीरसंस्कारको त्याग सो उपदेश करत भये ॥ २३ ॥

टीका—यत्र श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमानेत्यंतमुपात्तदेहेऽपि परद्रव्यत्वात्परिग्रहोऽयं न नामानुग्रहार्हः किं तूपेक्ष्य एवेत्यप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवंतो भगवंतोऽर्हद्देवाः । अथ तत्र शुद्धात्मतत्त्वोपलंभसंभावनरसिकपुंसः शेषोऽन्योऽनुपात्तः परिग्रहो वराकः किं नाम स्यादिति व्यक्त एव हि तेषामाकूतः, अतोऽवधार्यते उत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न पुनरपवादः । इदमत्र तात्पर्यं वस्तुधर्मत्वात्परमनैर्ग्रन्थ्यमेवावलंब्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ—जहां मुनिपर्यायका सहकारी कारणपणा करि नहीं निषेधमान देहनैं अत्यन्तपणे ग्रहणरूप होतसंतें भी परद्रव्यपणातैं परिग्रहहै तातैं यो शरीरनाममात्र भी अनुग्रहकै योग्य नांहीहै उलटो उपेक्षायोग्य है कि त्यागवे योग्य है। या प्रकार अप्रतिकर्मपणानैं भगवान अर्हंतदेव उपदेश करते भये। इहां अप्रतिकर्मनाम परम वीतरागताका जानना, अर मुनिपणामैं शुद्धात्मतत्वकी जो प्राप्ति ताकी संभावनाका रसिक मुनीश्वर जे हैं तिनकै शुद्धात्मतत्व सिवाय कछू भी अन्य नहीं ग्रहण करनें योग्य है तौ धन धान्य आदि अनंत संसारका कारण वराक परिग्रह कहा नाम है, या प्रकार

भगवान अरहंतको निश्चयकरि प्रकट की हुकम है यातैं निश्चय करिये है कि उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है अर अपवाद वस्तुधर्म नहीं है। इहां यो तात्पर्य है कि वस्तुधर्मपणातैं परम निर्ग्रंथपणूं ही धारण करबो योग्य है ॥ २३ ॥

उत्थानिका—अथकेऽपवादविशेषा इत्युपदिशति।

अर्थ—इहां शिष्य प्रश्न करै है कि अपवादके भेद कौनसे हैं, याका उत्तररूप उपदेश करै हैं;—

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जह जादरूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ सुत्तज्झयणं च पण्णत्तं ॥ २४ ॥

उपकरणं जिनमार्गे लिंगं यथाजातरूपमिति भणितम्
गुरुवचनमपि च विनयः सूत्राध्ययनं च प्रज्ञप्तम् २४॥

अर्थ—सर्वज्ञ जिनभाषित निर्ग्रंथ मोक्षमार्गके विषैं यथाजातरूप लिंग जो है ताहि उपकरण कह्यो है अर गुरुवचननैं तथा विनयनैं तथा सूत्रका अध्ययननैं भी उपकरण कह्यो है ॥ २४ ॥

टीका—यो हि नामाप्रतिषिद्धोऽस्मिन्नुपधिरपवादः स खलु निखिलोऽपि श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनोपकारकारकत्वादुपकरणभूत एव न पुनरन्यः, तस्य तु विशेषाः सर्वाहार्यवर्जितसहजरूपापेक्षितयथाजातरूपत्वेन बहिरंगलिंगभूताः कायपुद्गलाः, श्रूयमाणतत्कालबोधकगुरुगीर्यमाणात्मतत्त्वद्योत-

कसिद्धोपदेशवचनपुद्गलास्तथाऽधीयमाननित्यबोधकानादिनिधनशुद्धात्मतत्त्वोद्योतनसमर्थश्रुतज्ञानसाधनीभूतशब्दात्मकसूत्रपुद्गलाश्च शुद्धात्मतत्त्वव्यंजकदर्शनादिपर्यायतत्परिणतपुरुषविनीतताभिप्रायवर्त्तकचित्तपुद्गलाश्च भवंति । इदमत्र तात्पर्यं,—कायवद्वचनमनसी अपि न वस्तुधर्मः ॥ २५ ॥

अर्थ—जो या मुनिपर्यायकै विषैं नहीं निषेधरूप परिग्रह है सो अपवाद है सो निश्चयकरि सर्वही मुनिपर्यायका सहकारी कारणपणांकरि उपकारकपणांतैं उपकरणस्वरूप ही है अर और जो मुनिपर्यायका सहकारी नहीं है सो उपकरणस्वरूप नहीं है । अर था अपवादरूप परिग्रहके भेद ये हैं कि संपूर्ण आभूषणवर्जित स्वाभाविकरूप अपेक्षित यथाजातरूपपणां करि बाह्यलिंगभूत कायपुद्गल है सो भी परद्रव्यपणांतैं परिग्रह है, अर श्रवण करत प्रमाण तत्काल ज्ञानका उपजावनवारा गुरूका कह्या आत्मतत्त्वका द्योतक सिद्ध उपदेशरूप वचनपुद्गल है सो भी परद्रव्यपणांतै परिग्रह है, तैसैं ही अध्ययन किया संता नित्यज्ञानका उपजावनवारा अनादिनिधन शुद्धात्मतत्त्वका उद्योतनमैं समर्थ श्रुतज्ञानका साधनीभूत शब्दात्मक सूत्र पुद्गल है सो भी परद्रव्यपणांतैं परिग्रह है, अर शुद्धात्मतत्त्वका व्यंजक जो सम्यग्दर्शनादिपर्याय ता स्वरूप परिणम्यां पुरुषका विनयपणांका अभिप्रायरूप प्रवर्त्तनवारा चित्त पुद्गल है सो भी परद्रव्यपणांतैं परिग्रह है । यहां यो तात्पर्य है कि कायकी नांई वचन अर मन भी वस्तुधर्म नहीं है । भावार्थ—जीवका स्वभाव काय वचन मन भी नहीं है अर स्वभाव नहीं है सो सर्व परिग्रह है

अर परिग्रहका मुनीश्वरकै निषेध है, तथापि जो मुनिपणांका सहकारी परिग्रह है सो उपकरण नाम पावै है तातैं अपवादमार्गमैं उपकरण ग्राह्य है निषेधरूप नहीं है। अर सहकारी परिग्रहके भेद ये हैं कि प्रथम तो यथाजात दिगंबर देहरूप पुद्गल, दूसरा गुरुवचनरूप पुद्गल, तीसरा सूत्रको अध्ययनरूपो पुद्गल, चौथा विनयरूप चित्त-पुद्गल, इनि सिवाय अन्य परिग्रह मुनिपणांका सहकारी नहीं है। इहां ऐसा कहा है। और उपकरणसंज्ञा कमंडल पीछी है सो शौचका अर संयमका उपकार करै है तातैं ग्राह्य है अर नहीं निषेधरूप शरीरमात्र परिग्रह जो है ताका पालनको उपाय योग्य आहार नीहार विहार है ताको विधान पंचसमितिका उपदेशमैं मूलाचार आदि सर्व ग्रंथनिमैं लिखे है तहांतैं जाननां। अर य ग्य आहार विहार है सो अनाहार कहिये नहीं आहार करने समान ही है अर अविहार कहिये नहीं विहार करणे समान ही है ऐसा हुकम प्रवचनसारमैं याही प्रकरणमैं लिखै है तहांतैं जाननां। तथा उत्सर्ग मार्गके अर अपवादमार्गके मैत्रीभाव है॥

उत्थानिका—अथोत्सर्गापवादमैत्री सौस्थित्य-माचरणस्योपदिशति।

अर्थ—अथानंतर उत्सर्गके अर अपवादमार्गके मैत्री-भाव है सो आचरणकै सुस्थितपणं उपदेश करै है—

बालो वा वुड्ढो वा समभिद्ददो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरउ सजोग्गं मूलच्छेदं जधा ण हवदि॥३६॥

बालो वा वृद्धो वा श्रमाभिहतो वा पुनर्ग्लानो वा।
चर्यां चरतु स्वयोग्यां मूलच्छेदो यथा न भवति॥३६॥

अर्थ—बालक तथा वृद्ध तथा तपस्याकरि खेदखिन्न तथा रोगकरि पीड़ित होय सो अपने योग्य चर्यानैं आचरण, करो परन्तु जैसें मूल संयमका घात नहीं होय तैसें शक्तिमाफिक आचरण करो ॥ ३९ ॥

टीका—बालवृद्धश्रांतग्लानेनापि संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमेवाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गः, बालवृद्धश्रांतग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रांतग्लानस्य मृद्वेवाचरणमाचरणीयमित्यपवादः । बालवृद्धश्रांतग्लानेन संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमाचरणमाचरता शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रांतग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वप्याचरणमाचरणीयमित्यपवादसापेक्ष उत्सर्गः, बालवृद्धश्रांतग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रांतग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वाचरणमाचरता संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन

मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमप्याचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गसापेक्षोऽपवादः अतः सर्वथोत्सर्गापवादमैत्र्या सौस्थित्यमाचरणस्य विधेयम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—बालक तथा वृद्ध तथा तपकरि खेदखिन्न तथा रोगकरि पीड़ित जो है ताकरि शुद्धात्मतत्त्वका साधनपणांकरि मूलभूत संयम जो है ताकौ जैसैं छेद नहीं होय तैसैं संयमी आपकै योग्य अतिकर्कश हो आचरण आचरण करवे योग्य है या प्रकार उत्सर्ग मार्ग है, बहुरि बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगयुक्त जो है ताकरि शुद्धात्मतत्त्वका साधनभूत संयम जो है ताकों साधनपणांकरि मूलभूत शरीर जो है ताकों जैसैं छेद नहीं होय तैसैं बालवृद्ध खेदखिन्न रोगयुक्त आपकै योग्य कोमल हो आचरण आचरणनैं योग्य है या प्रकार अपवादमार्ग है। बहुरि बालक वृद्ध खेदखिन्न रोगपीड़ित जे हैं तिनकरि शुद्धात्मतत्त्वका साधनपणांकरि मूलभूत संयम जो है ताका छेद जैसैं नहीं होय तैसैं संयमी अपनें योग्य अतिकर्कश आचरण जो है ताहि आचरता शुद्धात्मतत्त्वका साधनभूत संयमका साधनपणांकरि मूलभूत शरीरको छेद जैसैं नहीं होय तैसैं बालक वृद्ध खेदखिन्न रोगपीड़ित जो है ताकूं अपनें योग्य कोमल आचरण आचरण करवे योग्य है, या प्रकार अपवादसापेक्ष उत्सर्गमार्ग है। बहुरि बालक वृद्ध खेदखिन्न रोगपीड़ित जे हैं तिनिकरि शुद्धात्मतत्त्वका साधनभूत संयमका साधनपणांकरि मूलभूत शरीरको छेद जैसैं नहीं होय तैसैं बालक वृद्ध खेदखिन्न रोगपीड़ित जे हैं तिनि-करि अपनें योग्य कोमल आचरण आचरता शुद्धात्मतत्त्वका साधन-

पणां करि मूलभूत संयमको छेद जैसें नहीं होय तैसें संयमीकूं अपनें योग्य अतिकर्कश भी आचरण आचरण करने योग्य है या प्रकार उत्सर्गसापेक्ष अपवादमार्ग है। यातें सर्वथा उत्सर्ग अर अपवाद के मित्रताकरि आचरणके सुस्थितपणों करिवेयोग्य है। भावार्थ-- उत्सर्ग अर अपवाद ये दोऊ ही मार्ग शुद्धात्मतत्त्वका साधन है, तथापि इतना भेद है कि साक्षात् कारण तौ उत्सर्ग है अर उत्सर्गका निर्वाहका कारण अपवाद है तातें दोऊनिकै मैत्रीभाव है, अर संयमीके काहू कालमें तौ शक्तिकी आधिक्यता होतसंतें उत्सर्गसापेक्ष अपवाद होय है अर काहू कालमें शक्तिकी हीनता होतसंतें अपवादसापेक्ष उत्सर्ग होय है। इहां तात्पर्य ये है कि शुद्धात्मतत्त्वको साधनभूत संयम अर संयमको साधनभूत शरीर ये दोऊ जैसें नहीं बिगड़ै तैसें उत्सर्ग तथ अपवादनैं आचरण करो।

उत्थानिका—अथोत्सर्गापवादविरोधःदौःस्थ्यमाचरणस्योपदिशति।

अर्थ—अथानंतर उत्सर्गकै अर अपवादकै विरोध है सा आचरणकै दुस्थितपणांनैं उपदेश करै हैं;—

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ॥३०॥
आहारे वा विहारे देशं कालं श्रमं क्षमामुपधिं।
ज्ञात्वा तान् श्रमणो वर्त्तते यदि अल्पलेपी सः ॥३०॥

अर्थ—सो अपवादमार्गी अथवा उत्सर्गमार्गी मुनीश्वर जो अल्पकर्मलेपवान होय कि जा कार्यमें कर्मलेप तौ अल्प होय

अर संयमकी हाणि नहीं होय तो वा देशनैं कालनैं खेद नैंश्रमानैं उपधिनैं जाणि आहारकै विषैं तथा विहारकै विषैं प्रवर्त्तै ॥ ३० ॥

टीका—अत्र क्षमाग्लानत्वहेतुरुपवासः बालवृद्धत्वाधिष्ठानं शरीरमुपधिः ततो बालवृद्धश्रांतग्लाना एवान्वाकृष्यंते। अथ देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रांतग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्त्तमानस्य मृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्पो लेपो भवत्येव तद्वरमुत्सर्गः, देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रांतग्लानत्वानुरोधेनाऽऽहारविहारयोःप्रवर्त्तमानस्यमृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्प एव लेपो भवति तद्वरमपवादः, देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपभयेनाप्रवर्त्तमानस्यातिकर्कशाचरणीभूयाक्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वांतसमस्तसंयमामृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाऽशक्यप्रतीकारो महान् लेपो भवति तन्न श्रेयानपवादनिरपेक्षःउत्सर्गः, देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रांतग्लानत्वानुरोधेनाऽऽहारविहारयोरल्पलेपत्वंविगणय्ययथेष्टं प्रवर्त्तमानस्यमृद्वाचरणीभूय संयमं विराध्यासंयतजनसमानीभूतस्य तदात्वे तपसोऽनवकाशतयाऽशक्यप्रतीकारो महान् लेपो भवति तन्न

श्रेयानुत्सर्गनिरपेक्षोऽपवादः। अतः सर्वथोत्सर्गापवादविरोधदौःस्थित्यमाचरणस्य प्रतिषेध्यं तदर्थमेव सर्वथानुगम्यश्च परस्परसापेक्षोत्सर्गापवादविजृंभितवृत्तिः स्याद्वादः॥ ३०॥

अर्थ—या प्रकरणमैं क्षमापणांको अर ग्लानिपणांको कारण उपवास है अर बालकपणांको तथा वृद्धपणांको आधार शरीर है सो उपाधि है, तातैं बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडित ही "अन्वाक्रम्यंते" कहिये अंगीकार करिये हैं। अथानंतर देशकालको ज्ञाता अर बालवृद्ध खेदखिन्न रोगपीडितपणांका अनुरोधकरि आहार विहारकै विषैं प्रवर्त्तमान जो है ताकै भी कोमल आचरणरूप प्रवृत्तिपणांतैं अल्पलेप है ही, सो उत्कृष्ट उत्सर्गमार्ग है। बहुरि देशकालका ज्ञाता अर बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडितपणांका अनुरोधकरि आहार विहारकैविषैं प्रवर्त्तमान जो है ताकै भी कोमल आचरणपणांतैं अल्प ही लेप है सो उत्कृष्ट अपवादमार्ग है। बहुरि देशकालको ज्ञाता अर बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडितपणांका अवरोधकरि आहार विहारकै विषैं अल्पलेपका भयकरि नहीं प्रवर्त्ततो संतो अतिकर्कश आचरणको धारी होय अक्रमकरि शरीरनैं पटकि सुरलोकनैं प्राप्त होय वम्यूं है समस्तसंयमरूप अमृतको भार जानैं ऐसो जो है ताकै भी तपका अनवकाशकरि नाइलाज महान् कर्मलेप होय है सो अपवादनिरपेक्ष उत्सर्गमार्ग कल्याणकारी नहीं है। बहुरि देशकालको ज्ञाता अर बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडितपणांका अनुरोधकरि आहार विहारकै विषैं अल्पलेपपणांनैं नहीं गिणि यथेष्ट प्रवर्त्ततो संतो कोमल आचर॰

को धारी होय संयमनैं विराधि असंयमी जनके समान जो है ताकै भी वाही समयमैं तपका अनवकाश करि नाइलाज महान लेप है सो उत्सर्गनिरपेक्ष अपवादमार्ग कल्याणकारी नहीं है। यातैं आचरणके सर्वथा उत्सर्गको अर अपवादको दुस्थितपणूं जो है सो निषेध करिबो योग्य है या प्रयोजन निमित्त ही सर्वथा उत्सर्गनैं अर अपवादनैं जाणि परस्परसापेक्ष उत्सर्ग तथा अपवादकरि फैलतो प्रवृत्ति जो है सो स्याद्वाद है। भावार्थ—जा उत्सर्गकै अपवादतैं विरोध होय सो अकल्याणरूप है अर जा अपवादकै उत्सर्गतैं विरोध होय सो अपवाद अकल्याणरूप है। इहां तात्पर्य ऐसा जानना कि जा उत्सर्गतैं शुद्धात्मतत्त्वको साधन संयम जो है ताको सहकारी कारण शरीर जो है सो नाशनैं प्राप्त होय सो उत्सर्ग अकल्याणरूप है क्योंकि जातैं शरीरको नाश भयो तब संयमको भी नाश भयो अर संयमको नाश भयो तब शुद्धात्मतत्त्वको लाभ कहां रह्यो अर शुद्धात्मतत्त्वको लाभ नहीं रह्यो तब सर्व परिश्रम निष्फल भयो तातैं अपवादनिरपेक्ष उत्सर्ग भी अकल्याणरूप है। अर जा अपवादतैं संयमको नाश होय सो अपवाद अकल्याणरूप है क्योंकि जातैं शुद्धात्मतत्त्वको साधन संयम जो है ताको ही नाश भयो तब शुद्धात्मतत्त्वको लाभ कहां रह्यो अर शुद्धात्मतत्त्वको लाभ नहीं रह्यो तब सर्व परिश्रम निष्फल भयो तातैं उत्सर्ग निरपेक्ष अपवाद भी अकल्याणरूप ही है। तातैं दोऊ सापेक्ष ही स्याद्वादरूप कल्याणकारी हैं ॥ ३० ॥

अब या प्रकरणको कलशारूप काव्य कहै हैं; काव्य—

इत्येवं चरणं पुराणपुरुषैः जुष्टं विशिष्टादरैः—

त्सर्गादपवादतश्च विचरद्बह्वीः पृथग्भूमिकाः।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्तिमतुलां कृत्वा यतिः सर्वत–
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिं॥

अर्थ—पूर्वोक्त या प्रकार तीर्थकरादि पुराण पुरुषनिन विशिष्ट आदर करि अंगीकार कियो ऐसो आचरण जो है ताहि यतीश्वर उत्सर्गतें तथा अपवादतें धारतो महान् जगततें भिन्न ऐसी वीतराग दशानें अंगीकार करि अनुक्रमतें अतुलनिवृत्तिनें धारणकरि सर्व तरें चैतन्य सामान्यविशेषरूप निजद्रव्यके विषैं स्थिति करो॥

इत्यादि लक्षण उत्सर्गमार्गका तथा अपवादमार्गका श्रद्धान करि मुनीश्वरनिमैं कोऊ भेदकै ही धन धान्य वस्त्र शस्त्र आभरण आदि परिग्रहवानपणां नहीं श्रद्धान करणां योग्य है।

आत्मानुशासनमैं, छंद शिखरिणी;—

कलौ दंडो नीतिः स च नृपास्तिभिस्ते नृपतयो
नयंत्यर्थार्थं तं न च धनमदोऽस्त्याश्रमवताम्।
नतानामाचार्या न हि नतिरताः साधुचरिता-
स्तपःस्थेषु श्रीमन्मणय इव जाताः प्रविरलाः॥१५१॥

अर्थ—कलिकालविषैं नीति सो दंड है दंड दीयें न्यायमार्ग चालैं, बहुरि सो दंड राजानिकरि हो है राजाविना और दंड देनेकौं समर्थ नांही, बहुरि ते राजा धनकै अर्थि न्याय करै हैं जामैं धन आवनेका प्रयोजन न सधै ऐसा न्याय राजा करते नाहीं बहुरि यह धन है सो आश्रमी जे मुनि तिनिकै पाइए नांहीं तिनिका भेष ही धनादिक

रहित है; ऐसें तौ भ्रष्ट भए मुनिकौं राजा न्यायमार्गवि चलावते नांहीं। बहुरि आचार्य हैं ते आपकूं विनय नमस्कारादिक करावनेके लोभी भए ते नम्रीभूत भए जे मुनि तिनिकौं नांही न्यायविषैं प्रवर्तावे हैं, ऐसें इस कालविषैं तपस्वी जे मुनि तिनिविषैं मुनिआचरन जिनिकै पाइए ऐसे मुनि ते जैसें सोभायमान उत्कृष्टरत्न थोरे पाइए तैसें थोरे विरले पाइए है। भावार्थ—इस पंचमकालविषैं जीव जड वक्र उपजै हैं ते दंडका भय विनां न्यायविषैं प्रवर्त्तें नांहीं, बहुरि दंड देनेवाले लोकपद्धतिविषैं तौ राजा हैं अर धर्मपद्धतिविषैं आचार्य हैं, तहां राजा तौ धनका जहां प्रयोजन सधै तहां न्याय करें मुनिकै धन नांहीं तातैं राजा मुनिनकौं न्यायविषैं चलावैं नांहीं जैसें प्रवर्तें तैसे प्रवर्त्तो। बहुरि आचार्य हैं ते विनयके लोभी सो दंड दें नांहीं। ऐसें भय विना मुनि स्वच्छंद भए हैं कोई विरले मुनि यथार्थधर्मके साधनहारे रहे हैं॥

आगैं जे मुनि आचार्यनिकौं नांहीं नमैं हैं उनको आज्ञामैं नांहीं रहें हैं अर स्वच्छंद प्रवर्ते हैं तिनसहित संगति करनीं योग्य नांहीं असा कहें हैं;—

शार्दूलविक्रीडित छंद

एते ते मुनिमानिनः कवलिताः कांताकटाक्षेक्षण-
रंगालग्नशरावसन्नहरिणप्रख्या भ्रमंत्याकुलाः ।
संधर्तुं विपयाटवीस्थलतले स्वान् क्वाप्यहो न क्षमा
मा व्राजीन्मरुदाहताभ्रचपलैःसंसर्गमेभिर्भवान्॥१५२

अर्थ—ते ए प्रत्यक्ष मुनि नांहीं अर आपकौं मुनि मानैं ते स्त्रीनिके जो कटाक्ष लीएं अवलोकन तिनि करि सो ग्रस्तभूत भए कि उनकरि ग्रहे हुये अंगविर्षै लागे हुवे बाणनिकरि पीडित जे हरिण तिनकै सदृश व्याकुल होत संते भ्रमण करैं हैं सो बड़ो आश्चर्य है कि विषयरूपी वनका जो स्थल भाग ता विर्षै कहीं भी आपनिकौं स्थिर राखनेकौं समर्थ न हो है, सो पवनकरि खण्डित कीए बादले जैसैं चंपल होइ तैसैं चंचल जे ए भ्रष्ट मुनि तिनि सहित हेभव्य तू संगतिकौं भी मति प्राप्त होहु। भावार्थ—जैसैं हिरणकै अंगविर्षै बाण लागा होइ उसकी पीडातैं व्याकुल हुवा कूदता फिरै कहीं वनभूमिका विर्षै स्थिर रहनेंकौं समर्थ न होइ तैसैं ए भ्रष्ट मुनि वृथा आपकौं मुनि मानैं तिनिकै अंतरंगविर्षै स्त्रीनिका कटाक्षरूप अवलोकन सोई कामका बाण लागा है सो ए उसकी पीड़ातैं व्याकुल हुए भ्रमरूप होइ रहे हैं कहीं विषयनिविर्षै मन लगावनेंकौं समर्थ न हो हैं कामकी तीव्रता करि धर्मसाधन तौ दूर ही रहौ परंतु देखनां सूंघनां सुननां इत्यादि विषयनिविर्षै भी मनकौं स्थिर नांही करि सकै हैं सो जैसैं पवन करि विघटाए हुए बादले चंचल होहैं तैसैं विकारभाव करि भ्रष्ट कीए हुए ए भ्रष्ट मुनि चंचल ही हैं सो उनका तौ होणहार औसा ही है परंतु हे भव्य ! तेरै किछू धर्मबुद्धि है तातैं तोकौं शिक्षा देवै हैं औसे भ्रष्टनिकी संगति तू मति करै। जो संगति करैगा तौ तू भी उनका साथी होइ दुर्गतिकौं प्राप्त होगा। इहां भाव यहु जो भ्रष्ट मुनि संगति योग्य भी नांही है।

आगैं इनि सहित संगतिकौं न प्राप्त होता जो तू सो औसी सामग्री पाइ याचनारहित हूवा तिष्ठि, औसी सीख देता सता

सूत्र कहै है, आत्मानुशासनमें; वसंततिलका छंद ।

गेहं गुहा परिदधासि दिशो विहायः,
संयानमिष्टमशनं तपसोऽभिवृद्धिः ।
प्राप्तागमार्थ ! तव संति गुणाः कलत्र-
मप्रार्थ्यवृत्तिरसि यासि वृथैव याञ्चाम् ॥१५३॥

अर्थ—पाया है आगमका अर्थ जिहि औसे जीवकों संबोधै है, हे प्राप्तागमार्थ ! तेरै गुफा सो मंदिर है, अर दिशानिकों तू पहरै है, आकाश असवारी है, तपकी वधवारी सो इष्ट भोजन है, गुण हैं ते स्त्री है, औसें नांहीं पाइए है काहू पासि जाचनें योग्य वृत्ति जाकी औसा तू भया है अब तू वृथा ही याचनांकों प्राप्त हो है तोकों दीन होना योग्य नांहीं। भावार्थ—लोकविषैं इतनी वस्तुकी चाहि भएं याचनां करिए हैं;—प्रथम तौ धनकों याचै सो तैं आगमका अर्थ सोई अटूट सर्व मनोरथका साधनहारा धन पाया, बहुरि मंदिरकों जाचै सो गुफा आदि स्वयमेव बनि रहे तेरै मंदिर पाइए है, बहुरि वस्त्रकों जाचै सो तू दिशारूपी वस्त्रकों पहरै है दिगंबर भया है, बहुरि असवारी जाचै सो आकाशरूपी असवारी तेरै पाइए है जहां इच्छा होय तहां गमन करि , बहुरि भोजनकों जाचै सो तपका वधनां सोई तेरै तृप्तिका उपजावनहारा इष्ट भोजन है, बहुरि स्त्रीकों जाचै सो क्षमा आदि गुण तेई तोकों रमावनहारी स्त्री हैं । औसी तेरे सामग्री पाइए है सो अब तोकों कहा चाहिए जो तू याचना करैं तेरै तौ दीनतारहित सर्वोत्कृष्टवृत्ति भई है, यातैं तू याचना रहित तिष्ठि, औसी शिक्षा तांकों दई है ।

प्रश्न—देवका अर गुरुका लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान कीया परंतु शास्त्रका भी लक्षण कहौ।

उत्तररूप रत्नकरंडमैं;—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥

अर्थ—"आप्तोपज्ञं" कहिये सर्वज्ञ वीतराग केवली जो आप्त ताकरि कह्यो होय अर "अनुल्लंघ्यं" कहिये वादी प्रतिवादीनिकरि अबाधित होय अर "अदृष्टेष्टविरोधकं" कहिये नहीं प्रत्यक्षप्रमाणतैं अर अनुमानप्रमाणतैं विरोध जा विषैं अर "तत्त्वोपदेशकृत्" कहिये सारभूतउपदेशको करता होय अर "सार्वं" कहिये सर्व प्राणीनिको हितकारी होय अर "कापथघट्टनं" कहिये अन्यमतीनिकरि कल्पित कुत्सितमार्गको खंडन करनेंवारो होय सो शास्त्र है॥

तथा उत्तरपुराणसंबंधी शीतलनाथपुराणमैं;—

पूर्वापरविरोधादिदूरं हिंसादिनाशनम्।
प्रमाणद्वयसंवादि शास्त्रं सर्वज्ञभाषितम्॥ ६८॥

अर्थ—पूर्वापरविरोध आदि दूषणनिकरि दूरवर्त्ती होय अर हिंसादिक पंच पापनिको नाश करता होय अर प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण द्वयको कहनें वारो होय अर सर्वज्ञभाषित होय सो शास्त्र है॥ ६८॥

प्रश्न—जैनीनिकै तौ सर्वही शास्त्र सर्वज्ञभाषित हैं कि नांहीं।

उत्तर—बाहुल्यता करि तौ जो वचन हैं सो सर्वज्ञकी आज्ञा-प्रमाण ही हैं अर या पंचमकालके प्रभावतैं केई तौ मंदज्ञानी कविपणांका अभिमानतैं ग्रंथ रचे हैं तिनिमैं ज्ञानकी मंदतातैं

कहूं २ स्खलित भये हैं अर केई रागद्वेषके वशतैं अपनें अभिप्राय-के पोपनेकूं शिथिलाचाररूप उपदेश किया है तथा केई जैनाभास श्वेतांबर पीतांबर रक्तांबर टाटांबर आदि भये हैं तिननें केई स्थलमें विपरीत उपदेश किया है सो इहां लिखनेतैं ग्रंथ बधि जावै। तातैं वर्त्तमान देशकालमें आर्ष ग्रंथ मिलै हैं तिनके नाम लिखिये है। तिनके वचनतैं जो वचन मिलै सो तौ सर्वहीको कह्यो श्रद्धान करवे योग्य है अर इन ग्रंथनिमें जाको निषेध होय सो किसीहीको कह्यो श्रद्धान करवे योग्य नाहीं है तैसें ही इनि ग्रंथनिमें जाकी विधि होय सो किसीहीके कहनेतैं निषेधरूप श्रद्धान करवो योग्य नाहीं है अर इनि ग्रंथनिमें जाको निषेध भी नहीं होय अर विधि भी नहीं होय सो वचन युक्तितै अबाधित होय अर अनुभवमें योग्य भासै तौ अन्य ग्रंथनिको भी वचन श्रद्धान करो परंतु वाको निषेधरूप आर्ष वचन नहीं सुनूं तावत तौ श्रद्धान करो अर निषेधवचन सुनूं वाही समय वा श्रद्धानको परिहार करो अर आर्षवचन सुनें पीछें भी जो नहीं परिहार करोगे तो मिथ्यात्वी नाम पावोगे।

सो गोमट्टसारको वचन; गाथा—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहई।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुवएसा ॥१॥
सुत्तादुत्तं सम्मं दरसिज्जं तं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥२॥
सम्यग्दृष्टिः जीवः उपदिष्टं प्रवचनंतुश्रद्दधाति।
श्रद्दधाति असद्भावं अजानमानः(अज्ञायमानः)
गुरूपदेशात् ॥ १ ॥

सूत्रोक्तं सम्यक् दर्शितं तं यदा न श्रद्दधाति।
स:च एव भवति मिथ्यादृष्टि:जीव:तत:प्रभृति॥२॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश कीया प्रवचननैं श्रद्धान करैहै अर आप अज्ञाणमान हुवो संतो गुरुका उपदेशतैं असत्यार्थनैं भी श्रद्धान करै है ॥ १ ॥ बहुरि जो सूत्रोक्त सम्यक् दिखाया तत्त्वनै नहीं श्रद्धान करै तौ वोही सम्यग्दृष्टी जीव वाही समयतैं मिथ्यादृष्टी है ॥ २ ॥

याहींतैं आर्ष ग्रंथनिके नाम लिखिए हैं;—

उमास्वामीकृत एक तत्त्वार्थसूत्र है। कुंदकुंदस्वामीकृत तेरा हैं;—पंचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड, नियमसार, रयणसार। नेमिचंद्र सिद्धांतीकृत पांच हैं;— त्रिलोकसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, क्षपणासार, द्रव्यसंग्रह। वट्टकेरिस्वामीकृत एक मूलाचार है। समंतभद्रस्वामीकृत च्यार हैं;—देवागम, रत्नकरंड, स्वयंभू, युक्त्यनुशासन। पूज्यपादस्वामीकृत च्यार हैं;—थोसामित्यादि-स्तोत्र, सर्वार्थसिद्धि, जैनेंद्रव्याकरण, समाधिशतक। कार्त्तिकेयस्वामीकृत एक अनुप्रेक्षा है। अकलंकदेवकृत आठ हैं;—बृहत्त्रयी, लघुत्रयी, अष्टशती, राजवार्त्तिक। माणिक्यनंदिकृत एक परीक्षामुख सूत्रहै। प्रभाचंद्रकृत दोय हैं;— प्रमेयकमलमार्त्तंड, न्यायकुमुदचन्द्रोदय। जिनसेनाचार्यकृत एक बृहत् आदिपुराणहै। गुणभद्राचार्यकृत तीन हैं; उत्तरपुराण, आत्मानुशासन, जिनदत्तचरित्र। योगींद्रदेवकृत दोय हैं;—परमात्माप्रकाश, योगसार। वीरनंदिकृत दोय हैं;—आचारसार, चंद्रप्रभकाव्य। शुभचंद्रकृत एक ज्ञानार्णव है। पद्मनंदिकृत एक पंचविंशतिका है। शिवायनकृत एक भगवती

आराधना है। विद्यानंदिकृत पांच हैं;—अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, श्लोकवार्तिक। अमृतचंद्रकृत पांच हैं;—पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, तत्त्वार्थसार, नाटकत्रयकी टीका। अनंतवीर्यकृत एक प्रमेयचंद्रिका है। माघनंदिकृत एक "वंदेतादि" जयमाल है। वादिराजकृत एक एकीभाव है। मानतुङ्गकृत एक भक्तामर है। कुमुदचंद्रकृत कल्याणमंदिर है। अभयनंदिकृत दोय हैं;—गोमटसारकी टीका, बृहज्जैनेंद्रव्याकरण। केशववर्णीकृत गोमटसारकी एक लघुटीका है। चामुंडरायकृत एक चारित्रसार है। धर्मभूषणकृत एक न्यायदीपिका है। ऐसैं अट्ठाईस तौ ऋषि दिगंबर आचार्य अर इनके किये सर्वके मान्य ग्रंथ सत्तर हैं, इनि सिवाय और ग्रन्थ इनि आचार्यनिके किये बतावै तो इनि ग्रंथनितैं कथनीका भाव मिलाय श्रद्धान करनौं योग्य है भावार्थ—नाममात्र सुनिकरि ही श्रद्धान करनो योग्य नहीं है क्यों कि नाम तौ अनेकमैं प्रवर्तै है॥

चौपई।

दोषरहित जिन कहे सुदेव।
वीतराग गुरु परम कहेव॥
जिनवरभाषित शास्त्र पुनीत।
देहु सुमति मम हरहु कुनीत॥ ११॥



इति श्रीसज्जनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनद्योतनाम्नि प्रथमकांडे सम्यग्दर्शनविषयभूत देवगुरुशास्त्रस्वरूपनिर्णयो नाम चतुर्थोल्लासः।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ सम्यग्दृष्टिके करनें योग्य कार्यनिके नाम तथा पूज्य अपूज्यका निर्णय लिख्यते:—

दोहा—

आदि दिगंबर आदि गुरु, आदि धर्मकरतार ।
ऋषभ नाम आदीश जिन देहु सुमति भरतार ॥१॥

प्रश्न—सम्यक्तीकूं देवगुरु शास्त्रका श्रद्धान ही कर्त्तव्य है कि और भी कर्त्तव्य है।

उत्तररूप पद्मनंदि पंचविंशतिकामें,—

देवपूजागुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने ॥१॥

अर्थ—अरहंत देवकी पूजा, गुरांकी उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ये षट् कर्म गृहस्थनिके निति प्रति करवे योग्य है ॥१॥

प्रश्न—या श्लोकमें सामान्य देव पद है तुम अरहंतका ही पूजन कैसें कहो हो।

उत्तर—देवशब्दका निर्णयमें पूजने योग्य वीतरागदेव अरहंत ही हैं ऐसें सम्यक्तके प्रकरणमें स्थापन किया है ताहि अनुभव करि श्रद्धान करो ।

तथा श्लोक—

समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥१२॥

अर्थ—सर्व जीवनिकै विषैं साम्यभाव अर संयमकें विषैं शुभभावना अर आर्तध्यान अर रौद्रध्यानको परित्याग जो है सो

निश्चय करि सामायिक व्रत है ॥ १२ ॥

सामायिकं न जायेत व्यसन म्लानचेतसः।
श्रावकेन ततः साक्षात्त्याज्यं व्यसनसप्तकम्॥१३॥

अर्थ—व्यसन करि मलिन है चित्त जिनको असे पुरुषनिकैं सामायिक नहीं उपजे है तातैं श्रावकनि करि व्यसनसप्तक साक्षात् त्याज्य है ॥ १३ ॥

द्वादशापि सदा चिंत्या अनुप्रेक्षा महात्मभिः ।
तद्भावना भवत्येव कर्मणः क्षयकारणम्॥४४॥

अर्थ—महान पुरुषनि करि द्वादश अनुप्रेक्षा भी सदाकाल चिन्तवन करनें योग्य है क्योंकि वा द्वादश अनुप्रेक्षाकी भावना कर्मनिका क्षयनैं कारण ही है ॥ ४४ ॥

आद्योत्तमक्षमा यत्र यो धर्मो दशभेदभाक् ।
श्रावकैरपि सेव्योऽसौ यथाशक्ति यथागमम्॥५८॥

अर्थ—उत्तमक्षमा है आदि विषैं जाकै अैसो दशभेदनिको धारन करनेंवारो धर्म जो है सो यो श्रावकनि करि भी यथाशक्ति जैसैं आगममैं कह्यो है तैसैं सेवन करवो योग्य है ॥ ५८ ॥

अंतस्तत्त्वं विशुद्धात्मा बहिस्तत्त्वं दयांगिषु ।
द्वयोः सम्मेलने मोक्षस्तस्माद्द्वितयमाश्रयेत् ॥५९॥

अर्थ—अंतरंग तत्त्व तौ विशुद्ध आत्मतत्त्व है अर बाह्यतत्त्व प्राणीनिकै विषैं दया है तातैं दोऊनिकूं भलै प्रकार मिलतें सतैं मोक्ष है तातैं दोऊ ही अंगीकार करै ॥ ५९ ॥

कर्मभ्यः कर्मकार्येभ्यः पृथग्भूत चिदात्मकम्।
आत्मानं भावयेन्नित्यं नित्यानंदपदप्रदम् ॥

अर्थ—कर्मनितैं अर कर्मके कार्यरूप फलतैं पृथग्भूत निरंतर आनंदपदको दाता चैतन्यात्मक आत्मा जो है तानैं नित्य चिंतवन करै।

इतनैं कार्य सम्यग्दर्शनके धारक पुरुषनिकरि करबो योग्यहै, तातैं इनका स्वरूप भिन्न भिन्न अनुक्रमतैं लिखै हैं। तिनिमैं प्रथम देवपूजन वरननका अवसर है तातैं श्रीजिनदेवपूजनका विधान लिखेंगे।

प्रश्न—देवपूजन सामान्यपणैं कह्या है तुम श्रीजिनदेवका ही पूजन कहो हो सो कैसे है।

उत्तर—मोक्षमार्गकी पद्धतिमैं अन्य रागी द्वेषी देवनिके पूजनेका निषेध है तातैं श्रीजिनदेवका ही पूजन योग्य है।

प्रश्न—जिनप्रतिष्ठादिक पूजनमैं जो शांतिनिमित्त तथा लौकिक कार्यमैं हानिवृद्धिनिमित्त जिनशासन क्षेत्रपाल दिक्पाल यक्ष ग्रह आदि तौ देव अर चक्रेश्वरी पद्मावती सरस्वती लक्ष्मी जया विजया आदि देवी जे हैं तिनका भी स्थापन नमस्कार पूजन करना योग्य है कि नाहीं।

उत्तर—आह्वानन स्थापन तौ इनके योग्य कार्यमैं करनां अर इनको नियोग सभाय विसर्जन करनां इतना तौ योग्य है अर पूजन नमस्कार करना योग्य नाहीं, क्योंकि त्रिलोकसारमैं इनकी स्थापना तो ऐसैं लिखी हैं, गाथा—

सिरिदेवी सुददेवी सव्वण्ह सणक्कुमारजक्खाणं।
रूवाणि य जिनपासे अट्ठविहामंगला हुंति॥ ९८४॥
श्रीदेवी श्रुतदेवी सर्वाह्लसनत्कुमारयक्षाणां।

रूपाणि च जिनपार्श्वे। मंगलंअष्टविधं अपि भवति ९८४

अर्थ—जिनप्रतिमाके पार्श्वमें श्रीदेवी श्रुतदेवी अर सर्वाह्णसनत्कुमार यक्षनिके रूप हैंअर अष्टविध मंगलद्रव्य भी हैं ॥ ९८४ ॥

तथा राजवार्त्तिकके विषें तृतीय अध्यायमें सुमेरसंबंधी चैत्यालयनिके वरननमें,—

धारा—प्रगृहीतसितविमलवरचामराग्रहस्तोभयपार्श्वस्थयिविधमणिकनकविकृतभरणालंकृतयक्षनागमिथुनाः ।

अर्थ—जा चैत्यालयकै विषै भलै प्रकार ग्रहण कियेहैं श्वेत निर्मल उत्कृष्ट चामर हस्तके अग्रविषै जिननैं अर जिनप्रतिमाके दोऊ पार्श्वमैं तिष्ठते अर नाना प्रकारकी मणि अर सुवर्णकरि रचित जे आभरण तिनिकरि अलंकृत ऐसे यक्षनिके अर नागकुमारनिके युगलहैं ।

तथा आदिपुराणका चौवीसमां पर्वमैं;—

त्वामी चामरव्रातः यक्षैरुत्क्षिप्य वीजिताः ।
निर्धुनंतीव निर्व्याजमागोगोमक्षिका नृणाम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! तिहारे यक्षनिकरि उठाये अर हलाये ऐसे चमरनिके समूह जे हैं ते मनुष्यनिकै पापरूप मक्षिकानैं निष्कपट जैसें होय तैसें उड़ावैहीहैं कहा मानूं ॥ ४७ ॥

तथा बाईसमा पर्वमें,—

---

१ "अष्टविधानि मंगलानि भवंति" इस प्रकार संस्कृतच्छाया होनी चाहिये ।

तां पीठिकामलंचक्रुरष्टमंगलसंपदः।
धर्मचक्राणि चोढानि प्रांशुभिर्यक्षमूर्द्धभिः॥ २९१॥

अर्थ—या प्रथम पीठिकानैं उन्नत यक्षनिके मस्तककरि धारण किये ऐसे धर्मचक्र जे हैं ते अर अष्टमंगलद्रव्यनिकी संपदा जे हैं ते सोभायमान करै हैं॥ २९१॥

प्रश्न—ये यक्षजाति व्यंतरनिमैं लिखेहैं सोही हैं कि और हैं।

उत्तर—यहाँ तथा अन्यस्थलमें ऐसा निर्णयभेदरूप वचन कहूं देख्या नहीं तथापि अनुमानतें जानियेहै कि ये व्यंतरजाति नहीं हैं यक्ष नाम कुबेरका है सो है, क्योंकि आदिपुराणका बाईसमा पर्वमें;—

गदादिपाणयस्तेपु गोपरेष्वभवन् सुराः।
क्रमाद्धालत्रये द्वाःस्था भौमभावनकल्पजाः॥ २७४॥

अर्थ—तीनूं कोटनिके दरवाजेनिकै विषैं अनुक्रमतैं व्यंतर भवनवासी कल्पवासी देव गदादिक शस्त्र हैं हाथविषैं जिनकै ऐसे द्वारपाल होत भये॥ २७४॥

इत्यादि वचननितैं जानियेहै कि व्यंतरनिका अधिकार द्वारपालनिमैं भी बाह्यकोटिमैं है तौ यहां अतिनिकट कैसें संभवै तातैं व्यंतर नहीं हैं कुवेर ही हैं। अर जिनमंदिरमें तथा प्रतिष्ठामें यथास्थान देवनिका प्रतिबिंब स्थापन करना तौ योग्य है परंतु जैसा क्षेत्रपालका रूप विलक्षण बनातेहैं जाकै सिंदूर तेलका तौ लेपन अर स्वानका वाहन अर रुंडमाला गलेमें इत्यादि विपरीतरूपयुक्त स्थापन करना तौ मिथ्यात्व ही है क्योंकि सिद्धांतमें क्षेत्रपालका रूप ऐसा नहीं कह्या है, अर नमस्कारादि करना सर्वथा योग्य नाहीं अर इननैं शांति आदि वरकी वांछा भी करना योग्य नाहीं।

प्रश्न—उन देवनिके बिंब तौ जिनबिंबनिके पार्श्वमैं अर साक्षात समवशरणमैं तिष्ठवे लिखे तिनकौं नमस्कारादि कैसैं योग्य नाहीं।

उत्तर—योग्यता अर अयोग्यता आगमके अनुकूल है सो स्थापनको तौ विधि देखी सो विधि कही अर नमस्कारादिकका निषेध देख्या सो निषेध कह्या, ता सिवाय और विचारनेकी वार्त्ता है कि उन देवनिका वरनन किया सो देव भवनत्रिकमैं हैं अर पूजकनिमैं प्रधान सौधर्मेंद्रादिक देव हैं ते भवनत्रिकतैं पदस्थमैं ज्ञानमैं वैभवमैं शक्तिमैं प्रतापमैं तेजमैं विक्रियामैं अत्यन्त अधिक हैं तातैं जैसैं उच्चकुलमैं उत्पन्न भया अर उच्च ही पदमैं तिष्ठता पुरुष जो है सो नीचकुलमैं उत्पन्न भया अर नीचा ही पदमैं तिष्ठता पुरुषनैं नमस्कारादि नहीं करै, तथा कल्पवासी दिक्पाल कुवेरादि जे हैं तिननैं भी नमस्कारादि नहीं करै क्योंकि इनिके भी इंद्र सेवनीय है, अर तैसैं ही मनुष्य भी प्रतिष्ठादिक पूजनके समयमैं प्रतिमानैं साक्षात् अर्हंत मानैं है अर आप इंद्र होय पूजै है यातैं जहां जहां जिस जिस देवका नियोग है तहां तहां तिस तिस देवका आह्वानन करि वाको नियोग सवाय विसर्जन करै है अर नमस्कारादि नहीं करै है।

प्रश्न—प्रथम तौ सामान्य मनुष्य भी आपनैं इंद्र मानै ऐसा अभिमानरूप अभिप्राय करना बुरी बात है, दूसरां आह्वानन करना अर नमस्कारादि नहीं करना बहुत ही बुरी बात है।

उत्तर—पूजकनिमैं मुख्यता सौधर्मेंद्रको है यातैं प्रतिष्ठामैं प्रथमही पूजकका इंद्र प्रतिष्ठा विधान करते हैं तातैं अभिमान नहीं है वा समयके योग्य संभावना है तातैं नमस्कारादि नहीं करै है।

प्रश्न—पूजक तौ इंद्रही बन्या परन्तु प्रतिष्ठा करावनेवारा तौ सर्व ही देव प्रतिष्ठामें आवैंगे तिनकूं नमस्कारादि करैगा।

उत्तर—प्रतिष्ठा करावंनेवाराकूं भगवानका पितापणाकी संज्ञा है तातैं वे भी नमस्कार नहीं करैगा उनकू तौ सौधर्मेंद्र आप नमस्कार करै है। सो ही आदिपुराणका द्वादशमा पर्वमें—

ज्ञात्वा तदा स्वचिह्नेन सर्वेऽप्यागुः सुरेश्वराः।
पुरीं प्रदक्षिणीकृत्य तद्गुरूं च ववंदिरे ॥ १६६ ॥

अर्थ—तदा कहिये गर्भावतार समयमें सब ही सुरेश्वर अपने चिह्ननिकरि भगवानको गर्भकल्याण जानि आवत भये अर पुरीनैं प्रदक्षिणा देय भगवानके माता पिता जे हैं तिननैं वंदत भये।

तथा चतुर्दशम पर्वमें;—

ततस्तौ जगतां पूज्यौ पूजयामास वासवः।
विचित्रैर्भूषणैः स्रग्भिरंशुकैश्च महार्घकैः ॥ १ ॥

अर्थ—तदनंतर जगतमें पूज्य ऐसे भगवानके माता पिता जे हैं तिननै सौधर्मेंद्र विचित्र आभूषणनिकरि मालानिकरि वस्त्रनिकरि महान अर्घनिकरि पूजत भयो ॥ १ ॥

प्रश्न—माता पिता भी नमस्कारादि नहीं करैं तौ उनके कुटुंबके तथा अन्य राजादिक तौ करैंगे।

उत्तर—पांचं ही कल्याणकमें सौधर्मेंद्रादिकनिका आवना अर अपना अपना नियोग करना तौ लिख्या परन्तु किसी ही मनुष्यकरि देवनिकूं नमस्कारादि किया नहीं लिख्या। समवशरणमें भरतचक्री आया तदि समस्त जिनबिंबनिकूं पूजता पूजता स्वयंभूके निकट गया वहां धर्मचक्रन तथा ध्वजानैं तौ पूजना लिख्या अर यक्षनिकूं

तथा द्वादशसभामें तिष्ठते सौधर्मेंद्रादिकनिकूं नमस्कारादि करना नहीं लिख्या। तथा यावत् भगवान् दीक्षा नहीं ग्रहण करी तावत् सौधर्मेंद्र नितिप्रति भोगसामग्री लेय पिताके गृहमें आया तहांहू किसी मनुष्यकरि नमस्कारादि करना नहीं लिख्या। तथा पुर नगर ग्राम देश आदिका विभाग किया अर पुरंदर नाम पाया तहां हू किसी मनुष्यकरि नमस्कारादि करना नहीं लिख्या। तातैं नमस्कारादिक तौ सम्यग्दृष्टी होय सो वीतराग देव सिवाय अन्य देवादिकनिनैं नहीं करै।

प्रश्न—देवनिका आह्वानन तौ करोगे अर नमस्कारादि नहीं करोगे तौ वे शाप देंगे।

उत्तर—किंचित् हृदयके कपाट खोलिकरि तौ देखो कि कौन तौ आह्वानन करै है अर कौनका करै है अर कहां करै है अर किस वास्तै करै है। इहां आह्वानन करनेवारा तौ सौधर्मेंद्र है अर जिनका करै है सो सर्व याकी आज्ञाप्रमाण करनेवारे हैं अर जहां करै है सो त्रिलोकनाथकी प्रतिष्ठा है अर जिस वास्तै करै है सो इनिका नियोग है तातैं शाप देनेका अवकाश कहां है, इहां तौ जो आवैंगे सो अपनूं नियोग साधि प्रसन्न होय पंचाश्चर्य करैंगे। ऐसा श्रद्धान राखि निःशंकगुणयुक्त सम्यक्तनै दृढ राखो। अर सम्यक्तीकै माहा अयाह्यदेवका स्वरूपरूप हुकम जिनसेनजी अड़तीसमां पर्वमें लिखै है—

तत्रावतारसंज्ञा स्यादाद्या दीक्षान्वयक्रिया।
मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥ ७॥

अर्थ—मिथ्यात्वकरि दूषित ऐसो भव्य जो है सो ही समीचीनमार्गका ग्रहण करवाकै सन्मुख भया ताकै अर्थि दीक्षा-

न्वयक्रिया है अर तिन क्रियानिकै मध्य प्रथम अवतारनामा क्रिया है। भावार्थ—जा जीवकै होणहार माता पिता ज्ञानवान होय ता जीवकै तौ गर्भान्वयक्रिया होय है अर जो जीव आप ही धर्मश्रवण करि व्रत ग्रहण कियो चाहै ताकै दीक्षान्वयक्रिया होय है, तिन क्रियानिकै मध्य प्रथम क्रियाका नाम अवतार क्रिया है ॥ ७ ॥

तामैं सम्यक्त ग्रहण करावनेंकूं आप्तका अर आगमका लक्षण कहि करि कह्या है कि वेद पुराण स्मृति चारित्र क्रियाविधि मंत्र देवता लिंग आहारपानशुद्धि ये दश पदार्थ जहां ऋषीश्वरनिकरि कहे हैं सो धर्म है अर सो ही सन्मार्ग है अर अन्यथा कहे हैं सो तदाभास हैं। भावार्थ—धर्मका नाममात्र है धर्म नहीं है। ऐसैं कहि अनुक्रमतैं वेद आदिका स्वरूप निश्चय कराय देवका स्वरूप निश्चय करावनें निमित्त कह्या है सो सुनूं (नो)—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांतिहेतवः।
क्रूरास्तु देवता हेया यासांस्याद्वृत्तिरामिषैः ॥२७॥

अर्थ—विश्वेश्वर तो अरहंत अर आदि शब्दतैं सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये पांच देव शांतिके कारण हैं अर जिनकी आमिष करि वृत्ति है ते क्रूरदेव त्याज्य हैं ॥२७॥ या वचनतैं दिक्पाल क्षेत्रपाल आदि रागी द्वेषी देवनिकूं नमस्कारादि मति करो ॥

प्रश्न—या श्लोकका अर्थ तुमनें किया सो वै नाहीं करै हैं वै अर्थ ऐसा करै हैं कि विश्वेश्वरानामा देवीनैं आदि लेय जिनशासनदेवी शांतिके निमित्त हैं अर जिन देवीनिकी वृत्ति मांस करि है ते क्रूरदेवी त्याज्य हैं, या वचनतैं जिनशासनदेव

सब ही शांतिनिमित्त नमस्कारादि करनें योग्य हैं।

उत्तर—ऐसा विपरीत अर्थ संभवै नाहीं क्योंकि जिनागममें पूर्वापरविरुद्धता तथा परस्परविरुद्धता नहीं है, तुम देखो कि नवमपर्वमें सम्यक्त्व ग्रहण करानेकूं कैसा लिखै हैं—

आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं परया मुदा ।
सम्यग्दर्शनमाम्नातं तन्मूले ज्ञानचेष्टिते ॥१२२॥
तत्त्वं जैनेश्वरी माज्ञामस्मद्वाक्यात्प्रमाणयन् ।
अनन्यशरणो भूत्वा प्रतिपद्य स्वदर्शनम् ॥ १३९ ॥

अर्थ—आप्तका तथा आगमका तथा पदार्थनिका जो परम रुप करि श्रद्धान करना है सो सम्यग्दर्शन है अर सम्यग्दर्शन है मूल जिनको ऐसे ज्ञान अर चारित्र हैं । भावार्थ—आप्त सो अरहंत ही है अर आगम आप्तप्रणीत ही है अर पदार्थ नव ही हैं ऐसा श्रद्धान करै सो सम्यग्दर्शन है अर ज्ञान चारित्रके सम्यक्पणों सम्यग्दर्शन भये होय है ॥ १२२ ॥ ऐसें तत्त्वरूप जिनेश्वरकी आज्ञा हमारे वचनतें प्रमाण करता संता अनन्यशरण होय वा सम्यग्दर्शननैं तू प्राप्त होहु । भावार्थ—जिनेंद्रसिवाय अन्य देवका शरणा मिथ्यादृष्टी चाहै है तातैं कह्या है कि अन्य देवका शरणा त्यागि जिनेंद्रदेवकाही शरणा ग्रहण कियें सम्यग्दर्शन होयगा अर जा पुरुषनैं शांतिनिमित्त क्षेत्रपाल आदि रागी द्वेषी देवनिकूं नमस्कारादि किया ताकै अनन्यशरणपणां कहां रह्या, क्योंकि वानैं तौ सहायता उनतैं चाही तातैं मिथ्यादृष्टी ही है सम्यग्दृष्टी नहीं है ॥ १३९ ॥ सो प्रथम तौ ऐसा लिखै अर पीछैं विश्वेश्वरादिक देवीनिकूं शांतिनिमित्त कहै तौ पूर्वापरविरुद्धता पावै सो आर्षग्रंथनिमैं होवै नाहीं, तातैं विश्वेश्वर तौ अरहंत ही हैं अर आदि-

शब्द तैं सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु हैं, अर इनहीक पूजनादिकरूप क्रिया है सो सम्यक्तक्रिया है। जैसें राजवार्तिकमैं षष्ठ अध्यायके विषैं पच्चीस क्रियाका वरननमैं धारारूप लिख्या है;—

धारा—तत्र चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्द्धिनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया, अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका प्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया ॥

अर्थ—तत्र कहिये तिनि क्रियानिमैं जिनप्रतिमा निर्ग्रंथगुरु जिनागम इनिकी पूजा स्तवन वंदना है लक्षण जाको असी सम्यक्तकी बधावनेवारी क्रिया है सो सम्यक्तक्रिया है, अर चैत्य गुरु जिनागम सिवाय और देवताका स्तवन पूजन वंदनारूप मिथ्यात्वकी कारणभूत प्रवृत्ति जो है सो मिथ्यात्वक्रिया है। या वचनमैं अरहंतदेव निर्ग्रंथगुरु जिनवचन सिवाय अन्यदेवका पूजना नमस्कार करना योग्य नाहीं।

प्रश्न—यामैं अन्य देवका निषेध है अर अन्य देव वै है कि जिनकै मांस मदिरा चढ़ै है, जिनशासनदेवनिका निषेध नहीं है।

उत्तर—यामैं तौ जिनप्रतिमा निर्ग्रंथगुरु जिनवचन सिवाय और देवमात्रका निषेध है मध्यमैं जिनशासनदेवनिका वाचक कोऊ शब्द है नहीं। तुम स्थापन किया चाहो तौ और वचन बतावो।

प्रश्न—याही श्लोकमैं असा कह्या है कि आमिषकरि वृत्ति है ते क्रूरदेव त्याज्य हैं तातैं जिनकै मांसग्रहण है ते देव त्याज्य हैं, जिनशासनदेव त्याज्य नहीं हैं।

उत्तर—प्रथम तो तुम वारंवार जिनशासनदेव कहो हो तो फलाणे फलाणे तो जिनशासन हैं अर फलाणे फलाणे विष्णुशासन हैं कि शिवशासन हैं कि बुद्धशासन हैं ऐसा नियम कहूं जिनआगममें लिख्या होय सो बतावो, हमारे ज्ञानमें तो जिनागम अपेक्षा चतुरनिकायके सर्व ही देव जिनशासन हैं। अलबत्त ऐसा तो है कि च्यारूं ही निकायमें केईनिकै तो सम्यक्त होय है अर केई मिथ्याती ही रहै हैं, अर ऐसा भी भेद होय सो बतावो कि फलाणें फलाणें तो मांसग्राही हैं अर फलाणें फलाणें मांसत्यागी हैं। हमारे ज्ञानमें तो जिनागम अपेक्षा सर्व ही मांसत्यागी हैं। जिनागममें तो देवनिकै मांसग्रहण बताना देवनिका अवर्णवाद करना है, ऐसें राजवार्तिकमें लिखें हैं;—

वार्त्तिक—सुरामांसोपसेवाद्याघोषणं देवावर्णवादः॥१२॥

अर्थ—मदिरा मांसका सेवन आदि देवनिकै कहना है सो देवनिका अवर्णवाद है अर देवनिका अवर्णवाद दर्शनमोहनैं कारण है। सो तत्त्वार्थसूत्रमें कह्या है;—

सूत्र—केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य॥१३॥

अर्थ—केवली श्रुत संघ धर्म देव इनिका अवर्णवाद है सो दर्शन मोहनैं कारण है तातैं जिनागम अपेक्षा तो देवनिकै मांसवृत्ति कहना ही नहीं बनैं, परंतु स्मार्त्तनिके मतमें सर्व ही देव यज्ञमें हवन किया पशूका मांस भक्षण करै हैं ऐसा कहैं हैं तिनकी अपेक्षा कह्या है तातैं अरहंत देव सिवाय सर्व ही देव नमस्कारादि करने योग्य नहीं ऐसा दृढ करावनें निमित्त आमिषवृत्ति विशेषण दिखाया है सो जैसें मंगलका नाम भौम है क्षितिज है सो

भी परमत अपेक्षा है तथापि जिनागममें भी भौम क्षितिज कहैं है। अर दूसरा विशेषण क्रूर कहि जिताया है कि राग-द्वेषसहित हैं ते देव त्याज्य हैं क्योंकि क्रूर शब्द द्वेषशब्दका पर्याय नाम है अर ऐसा ही अर्थ आर्ष ग्रंथनितैं मिलै है।

प्रश्न—या श्लोक में देवताशब्द है सो स्त्रीलिंग है तातैं स्त्रीरूप देवीनिका ही वाचक है अरहंत आदिकनिका वाचक नाहीं है, तातैं शांतिके अर्थि विश्वेश्वरादिक देवी ही पूज्य हैं।

उत्तर—देवता शब्दकूं स्त्रीलिंग बताय देवाधिदेव अरहंत देवका वाचकपणाको निषेध कियो सो योग्य नाहीं क्योंकि कोशमें देवताशब्द देवनिके नाममें पर्यायशब्द लिख्यो है तातैं देवनिको ही वाचक है देवीनिको वाचक नहीं है।

प्रश्न—ऐसैं है तो देवताशब्दकूं स्त्रीलिंगमें कैसैं लिखैं हैं।

उत्तर—देवशब्दके स्वार्थमें "तल्" प्रत्यय होय है तथा समूह अर्थमें "त" प्रत्यय होय है अर "त" प्रत्यय होय तहां "आप्" प्रत्यय स्त्रीलिंगमें होय है तातैं स्त्रीलिंग लिखै है। जैसैं "जनता" शब्द भी स्त्रीलिंग है सो जन जे मनुष्य तिनका समूहको वाचक है स्त्रीनिको वाचक नहीं है। तथा जैसैं "व्योमयान" शब्द तौ नपुंसकलिंग है अर "विमान" शब्द स्त्रीलिंगरहित है तौ हू दोऊ नाम एक विमानका वाचक है। तथा जैसैं "द्यो" शब्द अर "दिवस्" शब्द तौ नित्य स्त्रीलिंग है, अर "आकाश" शब्द अर "विहायस्" शब्द नपुंसकलिंग भी है अर पुंलिंग भी है दोऊ विकल्परूप है, अर अभ्र व्योम पुष्कर अंबर नभ अंतरिक्ष गगन अनंत सुरवर्त्म ख वियत् विष्णुपद ये द्वादशशब्द नपुंसकलिंग हैं तथापि ये षोडश ही शब्द एक आकाशके वाचक हैं। तथा देव शब्द जो है सो "दिवु क्रीडाविजीगीषाव्युतिमोदमदस्वप्नकांतिगतिषु"

या धातुका रूप है तातैं अष्ट अर्थनि विषैं प्रवर्तै है, तिनमैं क्रीड़ा विजिगीषा द्युति कांति गति ये पांच शब्द तो स्त्रीलिंग हैं अर मोद मद स्वप्न ये तीन शब्द पुंलिग हैं, तातैं लिंगनिर्देशके समान ही वाच्यपदार्थके लिंगको नियम नहीं जानना। अर देव शब्दके आठ अर्थ कहे ते परमार्थतैं पंच परमेष्ठीके ही वाचक हैं अन्यके वाचक नहीं हैं, सो ऐसैं हैं;—जो स्वाधीन निराकुल अविनाशी सुखके विषैं क्रीडा करै सो देव है ऐसे अरहंत सिद्धही हैं, अन्य नहीं हैं; अर जो कर्मशत्रुका जीतवाको इच्छुक होय सो देव है ऐसे आचार्य उपाध्याय साधुही हैं और नहीं हैं; अर जो द्युतिमान होय सो देव है ऐसे कोटिसूर्यतैं अधिक देहकी द्युतिकरि मंडित अरहंत ही है और नहीं है, अर जो मोद कहिये परम आनन्द करि युक्त होय सो देव हैं ऐसे भी अरहंत सिद्ध ही है और नहीं हैं; अर जो मद कहिये परमहर्ष करि युक्त होय सो देव है ऐसे पांचूंही परमेष्ठी हैं और नहीं हैं; अर जो स्वप्न कहिये सोवै सो देव है ऐसे पांचूंही परमेष्ठी हैं और है नहीं क्योंकि लोकव्यवहारसम्बन्धी समस्त कार्यनिमैं सूते हैं, याहीतैं परमात्मप्रकाशमैं लिख्या है—

जा णिसि सयलहं देहियहं जोगिउ तहं जग्गेहि।
जहिंपुणजग्गहि सयलजगु सा णिसि भणिविसुएइ१७३
या निशा सकलानांदेहिनां योगी तस्यां जागर्त्ति।
यत्र पुनः जागर्ति सकलं जगत्तां निशांभणित्वास्वपिति

अर्थ—जो समस्त प्राणीनिकै रात्रि है ता विषैं तो योगीश्वर जाग्रत हैं बहुरि जहां समस्त जगत जाग्रत है ताहि रात्रि कहि योगीश्वर सोवै है। भावार्थ—जा व्यवहारमैं संसारी जीव जाग्रत हैं

ता व्यवहारमें योगीश्वर सदा सोवै है अर जा परमार्थमें जगत सोवै है ता परमार्थमें योगीश्वर सदा जाग्रत है॥ १७३॥

अर जो कांति कहिये मनोऽभिलषितकरि परिपूर्ण होय सो देव है क्योंकि कांतिशब्द "कमु कांतौ" धातुका रूप है अर याकी निरुक्ति ऐसी है कि "काम्यते स्म इति कांतिः" याका अर्थ ऐसा है कि वांछितकरि परिपूर्ण होय भयो, ऐसे भी अरहंत सिद्ध ही हैं और नहीं हैं; अर गति कहिये समस्त लोकालोकवर्ती छहूं द्रव्यनिके भूतभविष्यतवर्त्तमानकालसम्बन्धी गुणपर्यायनिनैं एकै काल जानै सो देव है क्योंकि गति शब्द "गम्लृ गतौ" धातु का रूप है अर जे जे धातु गति अर्थ में हैं ते ते धातु ज्ञान अर्थमें हैं तातैं ऐसे सबके ज्ञाता अरहंत सिद्ध ही देव हैं और नहीं हैं। इत्यादि वचननितैं नमस्कारादि करने योग्य तो पंच परमेष्ठी ही हैं अर और देवपर्यायके धारक देव जे हैं ते नमस्कारादि करने योग्य नहीं है, क्योंकि रागद्वेषयुक्त हैं यातैं।

प्रश्न—परमार्थतैं तो पंच परमेष्ठी ही नमस्कारयोग्य हैं तथापि गृहस्थनिकै शांतिनिमित्त भवनत्रिक जिनशासन भी मान्य हैं।

उत्तर—सिद्धांतसारमें, विदेहक्षेत्रके वरननमें—

विवाहजातकर्मादौ मंगलेष्वखिलेषु च।
परमेष्ठिन एवाहो न क्षेत्रपालकादयः॥ १॥

अर्थ—"अहो इति आश्चर्य" कहिये जा क्षेत्रमें बड़ो आश्चर्यकारी धर्मको श्रद्धान है कि विवाह जातकर्म आदि समस्त मंगलके विषैं परमेष्ठी ही मान्य हैं और क्षेत्रपाल आदि रागीद्वेषी देव मान्य नहीं हैं।

प्रश्न—ये वरनन तो विदेहक्षेत्रका है वहांकी कथनी इहां कहने योग्य नहीं।

उत्तर—धर्मका लक्षण तो भिन्न नहीं है। ता सिवाय उत्तरपुराणसम्बन्धी महावीरपुराणमें अयोध्याका वरननमें सुनो—

वर्त्तते जिनपूजायां दिनं प्रति गृहे गृहे।
सर्वमंगलकार्याणां तत्पूर्वत्वाद्गृहेशिनाम् ॥ ३६॥

अर्थ—जा अयोध्याके विषैं गृहस्थनिकै सर्वमंगलकार्यनिके विषैं जिनपूजनपूर्वकपणों है यातैं घर घरकै विषैं जिनपूजनमैं ही दिन प्रतिदिन वितीत होय है ॥ ३६॥

प्रश्न—जाके क्षेत्रमें रहौगे अर ताकूं नमस्कारादि नहीं करोगे तौ वै रक्षा नहीं करैगा क्रोधित होय शाप देवैगा।

उत्तर—जैसें पंचमकालमें राजके अधिकारी रिसपतके देनेवारेकी रक्षा करैं अर नहीं देनेवारेकी रक्षा नहीं करैं तैसें अनादिसिद्ध व्यवहारमें नहीं जानना, क्योंकि वहां व्यवहार सत्यरूप है जाको जो नियोग है सो अवश्य [illegible] अवश्य करै है अर अयोग्य कार्य करनेवारेकूं दंड देवैहै यो [illegible] क्षेत्रपालनिको नियोग है तातैं अपने कल्याणके वांछक पुरुषनिकूं कुदेवादिकनि प्रति नमस्कारादि करनेका आगममें निषेध सुनि कदाचित नहीं करवो योग्य है।

सोही बोधपाहुडमें कुंदकुंदस्वामी देवको स्वरूप कह्या है,—

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।
सो देइ जस्स अत्थि तु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा ॥२४॥
धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।

देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं ॥२५॥
सः देवः यः अर्थं धर्मं कामं सुददाति ज्ञानं च।
सः ददाति यस्य अस्ति तु धर्मः अर्थः च प्रव्रज्या॥२४॥
धर्मः दयाविशुद्धः प्रव्रज्या सर्वसंगपरित्यक्ता।
देवः व्यपगतमोहः उदयकरः भव्यजीवानाम् ॥२५॥

अर्थ—जो धर्म अर्थ काम अर ज्ञान कहिये मोक्ष ये च्यारूं पुरुषार्थ देवै सो देव है अर जाकै धर्म अर्थ प्रव्रज्या कहिये दीक्षा अर चकारतैं ज्ञान कहिये मोक्ष होय सो देव है। भावार्थ—च्यारूं पुरुषार्थ देवै सो देव अर जाकै होवै सो देवै ऐसे अरहंत सिद्ध ही देव हैं ॥२४॥ अर दयाकरिविशुद्ध तौ धर्म अर सर्व संग का त्यागरूप प्रव्रज्या अर गयो है मोह जाको ऐसो देव सो भव्यजीवनिको उदय करनवारो है ॥२५॥

या वचनतैं मोहरहित तेरम गुणस्थानवर्ती अरहंत है सो ही देव है अर सो ही धर्म अर्थ काम मोक्षरूप च्यारूं पुरुषार्थ देवै है; अर भव्यजीवनको उदय करै है ऐसो श्रद्धान करवो योग्य है। तथा मोक्षपाहुड़में—

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणे हवइ सम्मत्तं ॥८६॥
हिंसारहिते धर्मे अष्टादशदोषवर्जिते देवे।
निर्ग्रंथे प्रवचने श्रद्धाने भवति सम्यक्त्वम् ॥८६॥

अर्थ—हिंसारहित धर्ममैं अर अष्टादश दोषरहित देवमैं अर निर्ग्रंथ गुरुमैं अर जिनप्रणीत आगममैं श्रद्धा होतां संता

सम्यक्त होय है ॥८९॥

या वचनतैं अष्टादशदोषरहित देवमैं ही श्रद्धा करबो योग्य है। तथा;—

स परावेक्खं लिंगं राईदेवं असंजदं वंदं ।
मण्णइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्ती ॥६२॥
स्वपरापेक्षं लिंगं रागिनं देवं असंयतं वंद्यं ।
मन्यते मिथ्यादृष्टिर्न खलु मन्यते शुद्धसम्यक्त्वी॥६२॥

अर्थ—स्वपरकी अपेक्षा सहित लिंगनैं अर रागी देवनैं अर असंयमीनैं वंद्य मानै सो मिथ्यादृष्टी है, अर प्रकट शुद्धसम्यक्ती है सो वंद्य नहीं मानै है ॥ ९२ ॥

या वचनतैं रागद्वेषसहित देव जे हैं ते वंदये मानये योग्य नहीं हैं। तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामैं—

णिज्जियदोसं देवं सव्वे जीवे दयावरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णइ सोहु सद्दिट्ठी ॥३२२॥
दोससहियं पि देवं जीवे हिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णइ सोहु कुदिट्ठी ॥३२३॥
निर्जितदोषं देवं सर्वजीवानां दयापरं धर्मम् ।
वर्जितग्रंथं च गुरुं यः मन्यते सः स्फुटं सद्दृष्टिः॥३२२॥
दोषसहितं अपि देवं जीवहिंसादिसंयुक्तं धर्मं ।
ग्रंथासक्तं च गुरुं यः मन्यते सः स्फुटं कुदृष्टिः ॥३२३॥

अर्थ—दूरि भये हैं दोष जाके ऐसो तो देव अर सर्व जीवनिकी दयामैं तत्पर ऐसो धर्म अर वर्जित है ग्रंथ कहिये परिग्रह

आके ऐसो गुरु जो मानैं है सो प्रकट सम्यग्दृष्टी है ॥ ३२२ ॥ अर दोषसहित तौ देव अर जीवहिंसादिसहित धर्म अर परिग्रहसहित गुरु जो मानैं है सो प्रकट कुदृष्टी है ॥ ३२३ ॥

या वचनतैं रागद्वेष आदि दोषनिसहित देव जे हैं ते मानवे योग्य नाहीं हैं। तथा दूसरा पद्मनंदिजी भी श्रावकाचारमैं लिखे है;—

जिनदेवो भवेद्देवस्तत्त्वं तेनोक्तमेव च।
यस्येति निश्चयः सः स्यान्निःशंकितशिरोमणिः॥३३॥

अर्थ—जिनदेव ही देव है अर जिनभाषित ही तत्त्व है या प्रकार जाकै निश्चय है सो निःशंकित पुरुषनिमैं शिरोमणि है ॥ ३३ ॥

या वचनतैं भी जिनेंद्रदेव सिवाय और देव मानवे योग्य नाहीं हैं। तैसैं ही और सुनो कि शासन देवी देवनिके पूजनका विधान कहनेवारो श्रुतसागर जो है तानैं भी सम्यग्दर्शनकी शुद्धता वो षोडशकारणव्रतका विधानमैं ऐसैं लिखी है;—

अधिष्ठानं प्रसादस्य मूलं सद्दर्शनस्य च।
तत्रार्हन् देवता धर्मस्त्वहिंसा निःस्पृहो गुरुः॥३८॥

अर्थ—जैसैं महलकै नींव है तैसैं व्रतको मूल सम्यग्दर्शन है, तहां अर्हंत तो देवता है अर अहिंसा धर्म है अर निर्वांछक गुरु है ॥ ३८ ॥

इहां भी अरहंतकौं देवता शब्दकरि कह्यो है तातैं मिथ्यापक्ष छांडि अनन्यशरण हो। तथा चरचासागरमैं भी, उक्तं च;—

देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यंतराद्याश्च देवताः।
समं पूजाविधानेषु पश्यन् दूरं व्रजेदधः ॥ १ ॥

अर्थ—तीन जगतका नेत्र तो अरहंतदेव अर व्यंतरादिक देवता

इनि दोऊनिकूं पूजाका विधानके विषैं समान देखता संता प्राणी दूरवर्त्ती अधोलोक जो है ता प्रति गमन करै है ॥

या वचनतैं जिनबिंबके बरोबर और देवतानिका बिंबस्थापन भी नहीं करना अर समान नहीं देखना, क्योंकि समान देखै सो नरकगामी होय यातैं। तैसैं ही काष्ठासंघी अमितगतिजी भी श्रावकाचारका दूसरा परिच्छेदमैं कहै है;—

पथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसाप्रपंचे देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते साधौ सर्वग्रंथसंदर्भहीने संवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः॥

अर्थ—दूर भयो है हिंसाको प्रपंच जातैं ऐसा सत्यधर्मके विषैं तथा राग द्वेष मोह आदि दोषनिकरि रहित देवके विषैं अर सर्व परिग्रहकी रचना करि रहित साधुके विषैं जो निश्चल अनुराग है सो संवेगनामा अंग है ॥ ७४ ॥

या वचनतैं भी रागद्वेषरहित देवमैं ही प्रीति करना योग्य है। इत्यादि सर्व ही वीतराग दिगंबर आचार्यनिनैं तौ निर्दोष ही देव कह्या है अर रागी द्वेषी देवके मानने वंदनेका निषेध किया है, अर रागद्वेषीकूं नमस्कार करनेकी आज्ञा कहूं भी लिखी नाहीं तातैं विश्वेश्वरादिक देवीनिकूं मानना नमस्कार करना योग्य नाहीं।

प्रश्न—ये सर्व श्लोक मोक्षमार्गके हैं सो तौ सत्य है परंतु शांति अर्थि विश्वेश्वरादिक देवी ही मान्य हैं।

उत्तर—शांतिनिमित्त भी क्षेत्रपाल आदिका निषेध तौ ऊपरि सुनाया ही है, यह अर श्लोक दीक्षान्वयक्रियाका है अर दीक्षा सम्यग्दर्शनपूर्वक होय है तातैं सर्व आचार्यनिका अभिप्राय जीवनिकूं मोक्षमार्गमैं लगानेका है, यातैं ही हमनैं भी तिनका उपकारनिमित्त ये वचनिकारूप ग्रंथ संग्रह किया है, अर या श्लोकतैं तौ शांति-

निमित्त भी विश्वेश्वर आदि पंच परमेष्ठी ही मान्य हैं।

प्रश्न—शांतिके अर्थि परमेष्ठी नहीं ग्रहण करिये है तातैं विश्वेश्वरादिक देवी ही ग्रहण करना कह्या है।

उत्तर—ऐसा कहना भी योग्य नाहीं, क्योंकि प्रथम तौ नित्यपूजनकी आदिमें "विघ्नौघाः प्रलयं यांति" इत्यादि, अर मध्यमें मंगल उत्तमशरणरूप अपराजितमंत्र, अर अंतमें "शांतिजिनंशशिनिर्मलवक्त्रं" इत्यादि नित्य पढिये है। तथा "शांतिदः शांतिकृच्छांतिः कांतिमान् कामितप्रदः" इनको अर्थ ऐसो है कि शांतिको देनेवारो है सो "शांतिदः" कहिये अर शांतिको करनेवारो है सो "शांतिकृत्" कहिये अर शांतिरूप है सो "शांति" कहिये अर कांतिको धारक है सो "कांतिमान्" कहिये अर कामको देनेवारो है सो "कामितप्रदः" कहिये, इत्यादि नाम सहस्रनाममें अर्हंतके प्रसिद्ध हैं। फिर शांति कर्मके अर्थि अर्हंतका निषेध कैसें करो हो।

तथा गोमटसारकी टीकामें;—

नेष्टं विहंतुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरंतरायः।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः॥

अर्थ—शुभ भावनिकरि नष्ट भई है रसकी प्रकर्षता जाकी ऐसो अंतरायनामा कर्म इष्टके नाश करनेकूं समर्थ नहीं होय है, तातैं इष्टप्राप्तिकी इच्छा करि अर्हंतादिक पंचपरमेष्ठीके गुणनिमें अनुरागतैं नमस्कारादिक जे हैं ते इष्टकी प्राप्तिके कर्त्ता हैं।

या वचनतैं इष्ट प्राप्ति अर अनिष्टविनाश भी अरहंतादि पंच परमेष्ठीके नमस्कारादिकतैं ही होना मानि करनो योग्य है। अर जो विघ्नकर्मके पुष्ट भयें शांतिका होना मानो हो तो कर्मबंधके कारण सूत्रकार कहै हैं, सो कहो;—

सूत्र—मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाबंधहेतवः।

अर्थ—मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग जे हैं ते बंधके कारण हैं।

अर जिनप्रतिमा निर्ग्रंथगुरु जिनागम सिवाय अन्य देवताका स्तवन पूजन नमस्काररूप क्रिया है सो मिथ्यात्वक्रिया है, औसैं राजवार्तिकमैं अकलंकदेव कह्याही है; सो अकलंकदेव कैसेक हैं जिनकूं जिनसेनाचार्यजी भी ग्रंथकी आदिमैं मंगलनिमित्त औसैं लिखे हैं;—

भट्टाकलंकश्रीपालपात्रकेसरिणां गुणाः।
विदुषां हृदयारूढा हारायंतेऽतिनिर्मलाः ॥५३॥

अर्थ—भट्ट अकलंक अर श्रीपाल अर पात्रकेसरी नामा आचार्य जे हैं तिनके अतिनिर्मल गुण पंडितनिके हृदयमैं आरूढ हुवा संता हार समान आचरण करै है॥

तातैं मिथ्यात्वकर्मबंधका कारण सर्व ही कुदेवनिका पूजन स्तवन नमस्कारादिककूं शांतिके कारण मानि मति करो।

प्रश्न—औसैं है तौ अनेक राजा विद्यासिद्धि करैं हैं तहां तौ विद्यादेवतानैं नमस्कार करते होंहिंगे।

उत्तर—विद्यासिद्धि करनेके समय नमस्कार करनेका निश्चय तुमारै कैसैं भया, वा समय नमस्कार करनेका विधान तौ आचारके ग्रंथनिमैं नहीं सुन्या अर कियेकी कथा प्रथमानुयोगमैं नहीं सुनी, तातैं जानिये है कि पंचपरमेष्ठीका वाचक मंत्रनितैं ही विद्यासिद्धि होय है।

प्रश्न—औसा नियम तुमारे कहनेसै ही कैसैं मान्याजाय॥

उत्तर—ये हमारे मनसैं ही नहीं कह्या है, समंतभद्र स्वामीनैं रत्नकरंडमैं कह्या है;—

विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः।
न संत्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

अर्थ—विद्याका आचरणकी उत्पत्ति* स्थिति, वृद्धि, अर फलको उदय सम्यक्त्वके नहीं होतें नहीं होय है कि जैसें बीजके अभाव होतें वृक्षकी उत्पत्ति आदि नहीं होय है ॥३२॥ या वचनतें सम्यक्त्व होतें ही विद्याकी सिद्धि होय है।

प्रश्न—ऐसा नियम कहो हो तो मिथ्यात्वीनिकै विद्यासिद्धि कैसें होय है।

उत्तर—मिथ्यात्वीनिकी क्रियाको कहा निर्णय करो हो मिथ्यात्वीनिकी क्रिया तो उन्मत्त समान है वैसें भी करै वैसें भी करै, परंतु हमारे ज्ञानमें तो ऐसा तुलै है कि विद्यासिद्धि होनेकी अनेक रीति है; तहां जाकै विशेष पुन्यका उदय होता है ताकै स्वयमेव विद्यासिद्धि होती है सो जैसें चक्रीकै बत्तीसहजार देव स्वयमेव सिद्ध होय है; अर जाकै अष्टांग शुद्ध सम्यक्त्व होता है ताकै आकांक्षाका अभावतें विद्यासिद्धि करनेका प्रयोजन ही नहीं रह्या; अर जाकै एकोदेश सर्व अंगहीण क्षायोपशमिक चल मलिन, अगाढरूप सम्यक्त्व होयहै ताकै परमेष्ठीवाचक मंत्रका जप ध्यान करनेंतेंही इच्छाप्रमाण विद्यासिद्धि होय है; अर मिथ्यात्वीकै विद्यादेवका नामकोसं न गुणस्मरण करनेंतें भी विद्यासिद्धि होय है परंतु मुख्य हेतु लाभांतरायकी निर्जरा होता हो है अर निर्जरा मिथ्यात्वीनितें अव्रत सम्यग्दृष्टीनिकै असंख्यातगुणी होनी कही है तातें जैसी विद्या

* हमारी समझमें 'विद्यावृत्तस्य' का अर्थ सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। यहाँ विद्याका और उसके सिद्ध होनेका कोई सम्बन्ध नहीं है। —प्रकाशक।

सम्यक्त्वीके होय है तैसी मिथ्यात्वीके नहीं होय है अर उनके भी वा विद्यासिद्धिका मंत्रविधानमात्र उपदेशमें तौ श्रद्धान भयें ही सिद्धि होय है, तातें मिथ्यात्वी तौ अपने योग्य करै अर सम्यक्त्वी अपने योग्य करै। तथा अंजन चोरकी कथामें लिख्या है कि एक माली तीक्ष्ण शस्त्र खडे करि वाके ऊपरि वृक्षकी पूर्व शाखाके छींका बांधि वा छींकामें बैठि तौ गया परंतु जो गुरूनें कह्या था कि पंचणमोकार मंत्र पढ़ि पढ़ि या छींकाकी लड़ छेदियो जिस वखत सर्व लड़ छिदेंगी उस ही वखत आकाश गामिनी विद्यासिद्ध होयगी, सो या मालीके तौ गुरुवचनका श्रद्धान नहीं भया तातैं लड़छेदन नहीं करि सक्या अर श्रद्धानपूर्वक परिपूर्ण विधि भया विना विद्या सिद्ध नहीं भई; अर अंजन चोरके औसा निःशंकित श्रद्धान भया कि एक समयमें ही मंत्र पढ़ि सर्व लड़को छेदन कियो अर छेदन करतां ही विद्या सिद्ध भई, या वचनतैं विद्या सिद्ध होनेमें श्रद्धानका अर परमेष्ठीवाचक मंत्रका नियमसिद्ध भया।

प्रश्न—औसैं है तौ भी कांक्षानामा दोष तौ रहैगा कि नहीं।

उत्तर—अनंतानुबंधी तौ च्यार कषाय अर मिथ्यात्व आदि तीन औसैं सात प्रकृति संबंधी आकांक्षा तौ नहीं है अर द्वादश कषाय विद्यमान हैं तिन संबंधी कांक्षा है तिननैं ही विद्यासिद्धिनिमित्त प्रयोग करै है। तथापि शुद्ध सम्यक्त्वीके औसा श्रद्धान रहै है सो स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखै है;—

ण य को वि देदि लच्छी ण कोइजीवस्स कुणइ उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥३२४॥
भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी।
तो किं धम्मं कीरइ एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥ ३२५ ॥

न च कः अपि ददाति लक्ष्मीं न कः अपि जीवस्य करोति उपकारं।
उपकारं अपकारं कर्म अपि शुभाशुभं करोति॥३२४॥
भक्त्या पूज्यमानः व्यंतरदेवः अपि यदि ददाति लक्ष्मीम्
तर्हि किं धर्मः करोति एवं चिंतयति सद्दृष्टिः ॥३२५॥

अर्थ—या जगतमैं लक्ष्मी कोई भी नहीं देवै है अर नहीं कोई जीवको उपकार करै है, उपकार अपकार शुभाशुभ कर्म ही करै है ॥३२४॥ अर जो भक्ति करि पूज्या यका विंतर देव ही लक्ष्मी देवै तौ धर्म काहेकूं करिये, या प्रकार सम्यग्दृष्टी चिंतवन करै है ॥३२५॥

तथा गाथा;—

जं जस्स जम्हि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अह व मरणं वा ॥३२६॥

तं तस्स तम्हि देसे तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि।
को सकइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥ ३२७॥

एवं जो णिच्छयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो संकदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥३२८॥

यत् यस्य यस्मिन् देशे येन विधानेन यस्मिन् काले।
ज्ञातं जिनेन नियतं जन्म वा अथ वा मरणं वा॥३२६॥
तत् तस्य तस्मिन् देशे तेन विधानेन तस्मिन् काले।
कः शक्नोति चालयितुं इंद्रः वा अथ जिनेंद्रः वा॥३२७॥

एवं यः निश्चयतःजानाति द्रव्याणि सर्वपर्यायान्।
सः सदृष्टिः शुद्धः यः शंकते सःखलु कुदृष्टिः ॥३२८॥

अर्थ—जाको जा देशमैं जा विधिकरि जा कालमैं जन्म तथा मरण जिनेंद्रनैं निश्चय करि जाण्यूं है ॥३२६॥ ताको ता देशमैं ता विधि करि ता कालमैं जन्म तथा मरण होहीगो ताकूं चलायमान करवेकूं कौन समर्थ है इंद्र अथवा जिनेंद्र भी नहीं समर्थ है ॥३२७॥ या प्रकार द्रव्यनैं तथा पर्यायनैं निश्चय करि जानैं है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है अर शंका करै है सो कुदृष्टी है ॥३२८॥

सो ही समयसारमैं कह्या है;—

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥२३०॥

सम्यग्दृष्टयः जीवाः निःशंकाःभवंति निर्भयास्तेन।
सप्तभयविप्रमुक्ताः यस्मात्तस्मात्तु निःशंकाः ॥२३०॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव निःशंक है ता कारण करि निर्भय है, जो तैं प्रकार सप्तभयरहित निःशंक है ॥ २३० ॥

अर वर्तमान उपद्रवका इलाज करनेका हुकम आत्मानुशासनमैं कह्या है;—

यावदस्ति प्रतीकारस्तावत्कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।
तथाप्यनुपशांतानामनुद्वेगःप्रतिक्रिया ॥२०८॥

अर्थ—जितनैं इलाज बनैं तितनैं इलाज करै अर इलाज करतां भी नहीं शांत होय तिन उपद्रवनिका उद्वेग छोड़ना ही इलाज है ॥ २०८ ॥

तथा—

जातामयः प्रतिविधाय तनौ वसेद्वा
नो चेत्तनुं त्यजतु वा द्वितयी गतिः स्यात्।
लग्नाग्निमावसति वह्निमपोह्य गेहं
निर्याय वा व्रजति तत्र सुधीःकिमास्ते॥२०६॥

अर्थ—उत्पन्न भया जो रोग ताका इलाज करि शरीरमें वास करै अर जो इलाज नहीं बणे तो शरीरनैं तजै, ये ही दोय उपाय हैं। जैसैं लगी हुई अग्निनैं बुझाय गृहमें वास करै अर जो नहीं बुझै तो गृहनैं छांडि बाहिर गमन करै, वा जलता गृहमें सुबुद्धी कहा वास करै? कदाचित् ही नहीं करै। भावार्थ—योग्य उपायनैं शांतता होती दीखै तो करै नहीं समता धरै, अर जातैं सम्यग्दर्शनादिकको घात होय सो कदाचित् ही नहीं करै॥ २०६ ॥

सो ही पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं;—

तं देशं तं नरं तत्स्वं तत्कर्माणि च नाश्रयेत्।
मलिनं दर्शनं येन येन च व्रतखंडनम् ॥ २९ ॥

अर्थ—जाकरि सम्यग्दर्शन मलिन होय तथा जाकरि व्रत खंडन होय ता देशनैं ता मनुष्यनैं ता द्रव्यनैं तथा तिनि कर्मनिनैं सम्यग्दृष्टी नहीं आश्रय करै ॥ २९ ॥

प्रश्न—ऐसैं है तो गृहस्थी माता पितादिक कुटुंबकेकूं तथा राजादिकनिकूं भी नमस्कारादि विनयरि भेट देवै कि नहीं?

उत्तर—नमस्कार तो असंयमीकूं योग्य ही नहीं, अर प्रीतिकी भ गृहस्थाश्रममें सम्यक्त्वी धर्मात्माके दोय रीत हैं। येक गृहस्थाचार-

की है तामैं तो जा पुरुषसूं गृहस्थाश्रमका कार्य सिद्ध होय तासूं वाकै योग्य प्रीति होती ही है यामैं तौ जाति तथा धर्मका देखना है ही नहीं, दूसरी परमार्थकी है सो सम्यक्त्वीकूं साधर्मीसैं ही करनौं योग्य है यामैं मिथ्यात्वीका संबंध हो जाय तौ परमार्थ बिगड़ि जाय। अर्थात्—तिनि दोऊनिमैं ही पूर्वोक्त पद्मनंदिजीका वचननैं तौ स्मरण राखै कि जाकरि सम्यग्दर्शनको तथा व्रतको घात होय सो तौ सर्वथा ही नहीं करै अर और कार्य देश कुल-की रीति माफिक करै क्योंकि जहां तहां कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कुदेव कुगुरु कुधर्मके धारक ये षट् धर्मके आयतन नहीं हैं अनायतन संज्ञाके धारक हैं, अर षट् अनायतन सम्यक्त्वके पचीस मलदूषणमैं कहे हैं तातैं अनायतनरूप माता पिता राजा आदि कोई हो नमस्कारआदि जा क्रियामैं सम्यक्त्वको घात होय सो नैं ही करै। अर गुणाधिकमैं प्रमोद राखनैंकी आज्ञा तत्त्वार्थ-सूत्रमैं भी लिखै है;—

सूत्र—मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्व-गुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु।

अर्थ—प्राणी मात्रमैं मैत्रीभाव राखै कि जैसैं कोऊ तरैं भी मित्रका बिगाड़ नहीं चाहै तैसैं प्राणीमात्रका बिगाड़ नहीं चाहै अर वणै जितनौं उपकार करै, अर गुणाधिकमैं प्रमोदभाव राखै कि अपनी वर्त्तमानकी व्यवस्थातैं अधिक गुणवान होय तामैं प्रमोद राखै कि आप सम्यक्त्वी है अर दूसरो देशव्रती है तौ वानैं देखतप्रमाण ऐसो हर्ष धारै कि जैसैं दरिद्री निधिनैं पाय प्रमोद धारै, अर रोगादि करि क्लेशित जीवमात्रमैं करुणाभाव धारै कि

जैसैं पुत्रकूं क्लेशित देखि माता करुणा करि उपकार बुद्धि धारै तैसैं धारै, अर अविनयी मिथ्यादृष्टी क्रूरपरिणामी, धर्मद्रोही आदिकै विषैं मध्यस्थभाव राखै कि नहीं तौ प्रीति राखै नहीं द्वेष राखै कि जैसैं वीतरागी द्रव्यमात्रमैं उदासीन भाव राखै है तैसैं राखै। या व्याख्यानमैं भी गुणाधिकमैं प्रमोदभाव करना ही तौ कह्या अर नमस्कार करना नहीं कह्या, तातैं आप सम्यक्त्वी होय तौ मिथ्यात्वी माता पिता राजादिकनैं नमस्कार नहीं करै, अर सम्यक्त्वी होय सो पंचपरमेष्ठी और जिनागम सिवाय नमस्कार करना तौ दूर ही रहौ सत्कार भी नहीं करै।

प्रश्न—चक्रीकै चक्रका पूजना कैसैं लिखे है।

उत्तर—इहां पूजन नाम सत्कारका जानना सो सत्कार यथायोग्य चेतन अचेतन वस्तुमात्रका ही करिये है।

प्रश्न—ऐसैं है तौ जिनशासनदेवनिमैं गुणाधिकपणा भी है क्योंकि सम्यग्दर्शनके धारक हैं; तथा धर्मात्माकै मोक्षमार्गमैं प्रीति है अर मोक्षमार्गमैं प्रधान सम्यग्दर्शन है सो उनकै पाइये है तातैं उनकूं नमस्कारादि करनेमैं कहा दोष है।

उत्तर—प्रथम तौ इनिकूं नमस्कारादिकका निषेध है, ता सवाय तुम जिनि देवनिका पूजन कराया चाहो हो सो भुवनत्रिकमैं हैं अर भुवनत्रिकमैं सम्यक्त्वीका उत्पाद नहीं ऐसा तौ नियम है। सो ही त्रिलोकसारमैं;—

उम्मग्गचारि सणिदाणणलादिमदा अकामणिज्जरिणो।
कुदवा सवलचरित्ता भवणतियं जांति ते जीवा ॥४०८॥

उन्मार्गचारिणः सनिदाना अनलादिमृता अकामनिर्जरिणः ।
कुतपसः सबलचरित्रा भवनत्रिके यांति ते जीवाः ४४८

अर्थ—"उन्मार्गचारिणः" कहिये जिनमतमैं विपरीतधर्मकूं आचरनेवारे, बहुरि "सनिदानाः" कहिये निदान जिननैं किया होय, बहुरि "अनिलादिभिर्मृताः" कहिये अग्नि जल झंपापात आदि करि मरे होंय, बहुरि "अकामनिर्जरिणः" कहिये विनां अभिलाष बंधादिकके निमित्ततैं परीषहसहनादिक करि जिनकै निर्जरा भई होय, बहुरि "कुत्सिततपाः (कुत्सिततपसः)" कहिये खोटे तपके करनवारे होंय, बहुरि "सबलचरित्राः" कहिये सदोष चारित्रके धारनेवारे होंय ते जीव "भवनत्रिके यांति" कहिये भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देव जे हैं तिनकै विषैं उत्पन्न होयहैं ॥ ४४८॥

अर ऐसा भी नियम नहीं है कि फलाणे फलाणेकै तौ सम्यक्त उपजै ही है, तीसरां ऐसा हू नियम नहीं है कि फलाणे फलाणे तौ जिनशासन हैं अर फलाणे फलाणे अन्यशासन हैं। च्यारूं ही निकायके देव जिनशासन हैं परंतु किसीकै सम्यक्त होय है किसीकै नहीं होय है, तातैं जिन देवनिकूं तुम जिनशासन कहो हौ तिनिकै सम्यक्तका नियम नाहीं, अर सम्यक्ती मात्रकूं नमस्कार करो ऐसा हुकम नाहीं अर असंयमीनैं नमस्कार मति करो ऐसा हुकम है, अर देवमात्रकै असंयम गुणस्थान है ऐसा हुकम है। ता सिवाय सम्यक्ती जानि करि हो नमस्कारादि करो हौ तौ च्यारूं ही गतिमैं सम्यक्त तौ उपजै है तातैं देव मनुष्य तिर्यंच नारकीनिकूं भी नमस्कारादि किया चाहिये;—

याका उत्तर कहै है कि मनुष्य तौ प्रत्यक्ष आवैं ही हैं तिनका सत्कार करिये ही है अर नारकी तिर्यंच हीन हैं, अर ये प्रतिष्ठादिकका काम महान है तातैं देवनिका ही किया चाहिये।

उत्तर—प्रथम तौ जैसें सम्यक्ती मनुष्य प्रत्यक्ष आवैं हैं तिनकूं भी नमस्कारादि नहीं करो हो तैसें ही सम्यक्ती देव प्रत्यक्ष आवै तौ तिनकूं भी नमस्कारादि तौ मति करो अर और सत्कार यथायोग्य करो। अर देवनिकूं महान जानि करि ही नमस्कारादि करो हो तौ सर्वमैं महान सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्र हैं तिनकूं ही करो औरनिकूं काहेकूं करो हो (यह वचन उन प्रति कटाक्षरूप है हुकम नहीं है)

प्रश्न—अहमिंद्रनिकूं भी करते हैं परंतु वे तौ आते नाहीं अर भवनत्रिक [illegible] आवै हैं अर उपसर्ग दूर करते हैं तातैं इनकूं भी करते हैं।

उत्तर—प्रथम तौ पूजनकी अपेक्षा राखि प्रतिष्ठादिकमैं उपसर्ग मेटैं हैं तौ सम्यक्तीपणां तौ दूरि ही रहो जैनीनाम ही नहीं पावैंगे। तथा उपसर्ग दूर करनेकी कथा जहां तहां शीलव्रतादिक धर्ममैं स्थिर रहनेतैं भये जे शुभपरिणाम तिनकरि उदय भया जो सातावेदनी आदि प्रशस्त प्रकृतिनिका रस ताके प्रभावतैं देवनिकै आसनकंपनादि चिह्न होंहि तब देव आप आय उपसर्ग मेटै है ऐसे संबंधरूप सुनी है। सो ही सुलोचनाकी कथा आदिपुराणका पैंतालीसमां पर्वमैं, श्लोक;—

ससंभ्रमं सहायेतुह दं हेमांगदादयः।
सुलोचनाऽपितान् वीक्ष्य कृतपंचनमस्कृतिः।५४४।

मंत्रमूर्त्तीन् समाधाय हृदये भक्तितोऽर्हतः।
उपसर्गापसर्गांतं त्यक्ताहारशरीरिका ॥ ५४५ ॥
प्राविशद्बहुभिः सार्द्धं गंगां गंगेव देवता ।
गंगापालप्रतिष्ठाने गंगाकूटाधिदेवता ॥ ५४६ ॥
विबुद्ध्याऽऽसनकंपेन कृतज्ञागत्य सत्त्वरम् ।
तानानयत्तटं सर्वान् संतर्ज्य खलकालिकाम् ।५४७।
स्वयमागत्य के नात्र रक्षंति कृतपुण्यकान् ।
गंगातटे विकृत्याऽऽशु भवनं सर्वसंपदा ॥५४८॥
मणिपीठे समास्थाप्य पूजयित्वा सुलोचनाम् ।
तव दत्तनमस्काराज्जज्ञे गंगाधिदेवता ॥५४९॥
त्वत्प्रसादादिदं सर्वमवरुद्धामरेशिनः ।
तयेत्युक्ते जयोऽप्येतत्किमित्याह सुलोचनाम् ।५५०।

अर्थ—जयकुमार सुलोचना हाथी सवार होय गंगामैं प्रवेश कियो वा समय काली देवी हाथीनैं आय पकड्यो ता समयकी कथा है कि—हेमांगदादिक गंगाके तटमें तिष्ठता व्याकुलचित्त भया संता सन्मुख आया अर सुलोचना भी हेमांगदादिकनिनैं व्याकुल देखि पंचनमस्काररूप मंत्रमूर्ति अरहंतकूं हृदयमैं धारणकरि उपसर्गका अंतपर्यंत त्याग्यो है आहार अर शरीर जानैं ऐसी बहुतनिकै साथि गंगा देवता की नांई गंगाके विषैं प्रवेश करत भई, वाही समय गंगाके पढनेके स्थानमैं रहनवारो गंगाकूटकी अधिदेवता जो है सो आसनकंपन करि सुलोचनाका उपसर्गनैं जाणि वाका किया

उपकारकूं जाननवारी शीघ्र आय दुष्टकालिका देवीनैं तर्जना करि वे सुलोचनादिक सब जे हैं तिननैं तीरपरि ल्यावत भई ॥५४४॥ ॥५४५॥ ५४६॥५४७॥ यहां ग्रंथकार कहै है कि—या लोकमैं पुन्यवाननिनैं कौन आप आय नहीं रक्षा करै। भावार्थ—पुन्यवानकी सर्व ही रक्षा करैं; तदनंतर शीघ्र ही सर्व संपदासंयुक्त भवन रचि ॥ ५४८॥ मणिपीठके विषैं सुलोचनानैं स्थापन करि पूजनकरि कही कि तेरा दीया नमस्कार मंत्रतैं गंगाकी अधिदेवता मैं उत्पन्न भई ॥ ५४९ ॥ अर तिहारा प्रसादतैं यो सब परिकर देवनिको स्वामीपणूं है, या प्रकार या गंगादेवीनैं कहतां संता जयकुमार भी सुलोचनाकूं या प्रकार कहतो भयो ॥५५०॥

इत्यादिक कथा जहां तहां व्रतमैं दृढ रहनेतैं अर अरहंतवाचक मंत्रके स्मरणतैं देवकृत सहाय होनेकी हैं। तैसैं ही पंचमकालके अंतमैं कलकीकृत उपसर्ग मुनीश्वरपरि होय तब मुनीश्वरके संयम दृढ परिणामके प्रभावतैं देवका आसन कंपित होय तब अवधिबलतैं कलकीकृत उपसर्ग भया जानि कलकीकूं दंड देवै है। इत्यादिक कथा सुनि व्रत शील संयम पूजन आदि शुभोपयोगमैं दृढपरिणाम तुम भी राखो अर पूजा प्रतिष्ठादिकमैं यत्नाचारपूवक मंदकषायरूप प्रवर्त्तो, तातैं सहज ही पुन्यकी वृद्धि होवैं सर्वै उपसर्ग नहीं आवैगा। अर देवनितैं उपसर्ग दूरि करने आदि वरकी वांछा राखोगे तौ देवमूढ होगे। सो ही रत्नकरंडमें;—

वरोपलिप्सयाऽऽशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—वरकी वांछाकरि जो आशावान् पुरुष राग द्वेषकरि मलिन देवता जे हैं तिननैं उपासना करै सो देवतामूढ कहिये है

॥२३॥ या वचनतैं रागीद्वेषी देवनितैं वरकी चाह राखना योग्य नाहीं।

प्रश्न—तुमनैं कहा सो तो सत्य है परन्तु आह्वानन कियें विना देवनिकूं खबरि कैसैं होय अर खबर हुये विना अन्य मिथ्यादृष्टी देवनिकृत उपसर्ग कैसैं मिटै।

उत्तर—जब या जीवकै पुन्य उदय होय तब तो सहज ही विना आह्वानन कियें ही हजारां देव आय सेवा करै हैं, सो ही देखो कि पुन्यप्रकृतिके पूर्ण उदयतैं तो तीर्थंकरकूं गर्भमें आवनेके छह महीने पहलीसैं ही देव रत्नवर्षादिक मंगल करै हैं तब तो कौन आह्वानन करै है अर जब उनकै भी कछू पुन्यकी न्यूनता अर असाताका उदय होय तब क्षुद्र देव भी उपसर्ग करै हैं, तब इंद्रादिकनिनैं आवतां अर उपसर्ग मेटतां कौन मनैं करै है। अर चक्रवर्त्तीके बत्तीसहजार देव सेवक होय हैं तिनमैं एकको भी आह्वानन करै नहीं अर वाको भी पुन्य मंद होय। तब ब्रह्मदत्त सुभूमिकी नाईं एक देव ही मार लेवै है। अर प्रतिनारायण रावणकै पुन्य अस्त भया तदि विद्यादेवता कैसैं कह्यो;—सो उत्तरपुराणसंबंधी मुनिसुव्रतपुराणमैं;—

नभश्चरकुमारेषु तदा रामाज्ञया गिरिं।
संप्राप्य युध्यमानेषु रावणस्याग्रसूनुना ॥४२२॥
संभूयेंद्रजिता यूयं युध्यध्वमिति सक्रुधा।
प्रेषिताःखचराधीशाःप्राच्याः सर्वाश्च देवताः ॥४२३॥
इयंतं कालमस्माभिर्वंत पुण्यबलोदयात्।
त्वयाभिलषितं कार्यं साधितं पुण्यसंक्षये ॥४२४॥

समर्था नेत्यसावुक्तो व्यक्तं ताभिर्दशाननः ।
भवतीभिर्वराकोभिर्यात किंमम साध्यते ॥ ४२५ ॥

अर्थ—यदि रामकी आज्ञाकरि विद्याधरनिके कुमारनिमेंसूं कितनेक कुमार आदित्यपाद गिरिनै प्राप्त होय रावणको बड़ो पुत्र इंद्रजीत जो है ताकै साथि युद्ध करतां संतां रावण और विद्याधरनिनैं अर पूर्व कालमैं सिद्ध किये देवनिनैं भेजन भयो कि थे इंद्रजीतके सामिल होय क्रोधसहित युद्ध करो, तदि वै सर्व विद्यादेवता बोल्या कि तिहारा पुन्यबलका उदयतैं इतना काल हमनैं तिहारो वांछित कार्य सिद्ध कियो अबै पुण्यका क्षयनैं होतां संतां तिहारो कार्य सिद्ध करनेंकूं हम समर्थ नहीं हैं ऐसैं उनकरि प्रकट उत्तर कह्यो संतो रावण बाल्यो कि तुम बराकीनि करि मेरै कहा सिद्ध करनो है, भलां ही जावो।

अर नारायणके भी पुन्यको उदय होत संतैं विना आह्वानन किये ही एक हजार देव जाकी सेवा करै औसा चक्ररत्न प्रदक्षिणा देय हाथमैं प्राप्त होय वाही समय आठ हजार देव सेवक होय हैं, ते सर्व पुन्यके अस्त होत संत छोडि करि चले जाय हैं जैसैं कृष्ण एकाकी वनमैं प्राणत्याग कियो अर अरविंदराजानैं चिरकालकी सेवक विद्या भी छोडि गई तथा पुत्रकी विद्या भी उपकार करवा समर्थ नहीं भई तौ और सामान्य मनुष्यनिकी कहा कथा। यातैं सुखको कारन पुन्य ही है, अर शुद्धोपयोगनैं कारणभूत जो शुभोपयोग यातैं पुन्य उत्पन्न होय है तातैं शुभोपयोगरूप परिणामनिकी प्रवृत्ति राखबो योग्य है।

प्रश्न—जैसे प्रतिष्ठादि महान विधानमैं साधर्मी पुरुषनिनैं पत्र लिखि देशांतरतैं बुलाइये है अर उनका सत्कार करिये है तैसे हो

जिनशासन देवनिका भी आह्वानन करि नमस्कारादि करना योग्य है।

उत्तर—साधर्मीपणाकी बुद्धितैं प्रतिष्ठादिकमें भलां ही आह्वानन करो अर आवैं तो उनका साधर्मीनिके समान सत्कार करो यामें कुछ दूषण नाहीं, अर वै तो आवै ही नहीं अर तुम पुष्पादिकनिमें संभावना करि भक्तिरूप परिणामनितैं नमस्कारादि करो हौ सो योग्य नाहीं।

प्रश्न—अर्हंतादि परमेष्ठीका आवना सर्वथा नहीं संभवै तिनकी ही संभावना पुष्पादिकनिमें करते हौ तो उनका तो आवना भी संभवै है तातैं संभावना करि नमस्कारादि करनेमें कहा दोष है।

उत्तर—अर्हंतादि परमेष्ठी तो शुद्ध चैतन्य रूप हैं अर अपने हितके वांछक पुरुषनिकूं शुद्ध चैतन्यरूपकी पिछानि करनी है तातैं उपचारमात्र संभावना करि अपना उपयोग शुद्धोपयोगतैं जुडने निमित्त अर्हंतादिकनिका गुणस्मरण करता संता नमस्कारादि करि पुन्यबंध करते हैं अर परमार्थतैं आवना बैठना भी नहीं है अर लेना देना भी नहीं है।

प्रश्न—ऐसैं है तो उनका उपचारमात्रतैं ही करो।

उत्तर—अरहंतादि परमेष्ठी तो सर्वोत्तम गुणाधिक हैं तातैं उनके गुणनिकी प्राप्तिके अर्थि संभावना करि नमस्कारादि करना योग्य है, अर भवनत्रिक तो दूरि ही रहो सम्यक्ती पुरुष आगामी कालमें कल्पेन्द्रपणाकी ही वांछा नहीं करे है।

प्रश्न—आगामी चाह नहीं है तो हू वरतमान उपद्रवका इलाज तो करै है, अर ये भवनत्रिक वरतमान उपद्रवकी शांति करै हैं तातैं संभावना करि भी नमस्कारादि करना योग्य है।

उत्तर—सम्यक्ती वर्त्तमान उपद्रवका योग्य इलाज करै है अर ये इलाज अयोग्य है तातैं करने योग्य नाहीं, क्योंकि इनतैं विघ्न-निवारण आदि वरकी वांछा करनेकूं समंतभद्रस्वामी देवमूढपणा कह्या है; तातैं प्रत्यक्षमैं, तथा परोक्षमैं नमस्कारादि करना अर वरकी वांछा करना तौ योग्य ही नाहीं।

प्रश्न—जिनशासन देवनिकूं नमस्कारादि करनेमैं ऐसा कहा दोष है जो सर्वथा निषेध करो हो।

उत्तर—याका उत्तर तौ प्रथम ही कह्या है कि विधि अर निषेध तौ आगमकै अनुकूल है, अर आपां कुंदकुंदाचार्यजीकी आम्नायमैं हैं अर कुंदकुंदाचार्यजीके आगममैं हुक्म स्पष्टतर निःसंदेह रागी द्वेषी देवनिकूं तथा परिग्रहवान गुरूनिकूं तथा दयारहित आगमकूं नहीं माननेका नहीं नमस्कारादि करनेका ऐसी तरह लिखै है कि जाका दूसरा अर्थ ही नहीं बनै है तातैं सर्वथा निषेध करै है, अर आगमके अनुकूल युक्त भी ऐसी ही उपजै है कि जैसें कुलांगना पतिव्रता होय सो पतिसैं भी अपने योग्य पदार्थ नहीं वांछै है अर केवल प्रारब्धके दिये भोगनिनैं भोगै है अर पतिकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्त्तै है अर सर्व मनुष्यनिमैं पिता पुत्र भ्रातापणाका भाव राखै है तैसैं सम्यग्दृष्टी भी त्रिलोकनाथसैं भी अपने योग्य पदार्थ नहीं वांछै है अर केवल प्रारब्धके दिये भोग भोगै है अर त्रिलोकनाथकी आज्ञा-प्रमाण प्रवर्त्तै है अर सवजीवनिमैं मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थभाव राखै है; अर जो या मार्गकूं उल्लंघन करि प्रवर्त्तै तौ स्त्री तौ विभचारिणी नाम पावै अर पुरुष मिथ्यादृष्टी नाम पावै। तातैं सम्यग्दृष्टी जीव परमेष्ठी सिवाय अन्य देवनैं नमस्कारादि नहीं करै है।

प्रश्न—ऐसैं है तौ यावत् सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं होय तावत् ती करै ।

उत्तर—यावत सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं होय तावत मिथ्यादृष्टी है अर मिथ्यादृष्टीके करने न करनेका कहा कहना है, मिथ्यादृष्टी तौ अनादिकालतैं नमस्कारादि करि पूजै ही है; परंतु जाकै सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेकी इच्छा होय ताकूं तो समझया चाहिये कि मिथ्यात्वका नाश कियां बिना सम्यग्दर्शन उदय ही कैसैं होयगा कदाचित ही नहीं होयगा। ऐसा आदिपुराणका नवमपर्वमें कह्या है;—

अनिर्धूय तमो नैशं यथा नोदीयतेंऽशुमान् ।
तथाऽनुद्भिद्य मिथ्यात्वतमो नोदेति दर्शनं ॥११६॥

अर्थ—जैसैं रात्रिसंबंधी अंधकारनैं उडायां विना सूर्य नहीं उदय होयहै तैसैं मिथ्यात्वरूप अंधकारन उडायां विना सम्यग्दर्शन नहीं उदय होय है ॥ या वचनतैं सम्यग्दर्शनका इच्छुक पुरुषकै भी मिथ्यात्वके कारणभूत कुदेव कुगुरु कुधर्म तौ नमस्कारादि करने योग्य नहीं है ताहीतैं पट् अनायतन त्याज्य कहे हैं ।

प्रश्न—उन देवनिके गुणकी इच्छा नहीं अर उनसैं और कछू वरकी भी चाह नहीं परंतु जिनपूजा प्रतिष्ठामें कोई तरैहका उपद्रव नहीं होय सर्व तरैं शांति रहै इस प्रयोजननिमित्त जिनशासनदेवनिकूं नमस्कारादि करिये है ।

उत्तर—याका भी उत्तर तौ ऊपरि ही लिख्या है, वा सिवाय और सुनो कि जा जीवनैं धर्मकार्यविषैं भी पहली अपनी पूजा चाही सो काहेका जिनशासन है जिनशासनहोगा सो तौ धर्मानुरागतैं सहज [illegible] विघ्न दूर करैगा, वा उपरांति ऐसी भूल मति राखो कि

जहां जिनबिंब विराजमान है वहां भी अमंगल होय है अर रागी देवनिका आगमन होय है वहां मंगल होय है, ऐसी तुमारी श्रद्धातैं तौ पर्वतके हू आछी श्रद्धा भई कि यज्ञके निर्विघ्न होने निमित्त यज्ञके च्यारुं तरफ जिनप्रतिमा स्थापन करीं या कथा उत्तरपुराणका मुनिसुव्रतपुराणमैं प्रसिद्ध है। यातैं ऐसी श्रद्धा करो कि जा जिनबिंबके प्रसादतैं पर्वतका यज्ञ ही (भी) निर्विघ्न भया तौ जिनयज्ञ प्रतिष्ठा निर्विघ्न कैसैं नहीं होयगी तातैं हितके वांछक सम्यग्दृष्टी पुरुषनिकूं तौ सर्व कार्यकी आदिमैं मंगलनिमित्त जिनपूजन ही करना योग्य है। सो ही ज्ञानी पुरुषकी प्रवृत्ति उत्तरपुराणसंबंधी चंद्रप्रभपुराणमैं लिखी है;—

तत्रोत्सवे जनाः पूजां मंगलार्थं प्रकुर्वते।
शोके तदपनोदार्थमेते जैनीं विवेकिनः॥ ३३॥

अर्थ—या श्रीपुर नामा नगरकै विषैं ये विवेकीजन उत्सवकै विषैं तौ मंगलकै अर्थि अर शोककै विषैं शोकके नाशकै अर्थि जिनपूजा करैं हैं॥ ३३॥ या वचनतैं शोकमैं तथा हर्षमैं जिनपूजा ही करना योग्य है।

प्रश्न—तुमनैं तौ जिनेंद्रदेव सिवाय और समस्तरागी देवनिके पूजनेका निषेध किया अर उत्तरपुराणसंबंधी पार्श्वनाथपुराणमैं धरणेंद्र पद्मावतीकूं पूज्य कहे हैं सो कैसैं है।

पर्यैतौ कृतवेदिनौ हि धरणौ धर्म्यावितौ गतौ
तावेवोपकृतिर्न ते त्रिभुवनक्षेमैकभूमे। स्तुतः।
भूभृत्पातनिषेधनं न तु कृतं चेत्प्राकृतोपद्रवाः
कैनो सन्निति सारसंस्तुतिकृतः पार्श्वो जिनः पातु नः॥

अर्थ—हे प्रभू ! निश्चयकरि ये धरणेन्द्र पद्मावती पूर्वजन्ममैं किया उपकारका जाननवारा है अर धर्मात्मा है तातैं सराहनानैं प्राप्त भये हैं तिननैं देखो, अर हे भगवन् ! तीन भुवनके क्षेमको एक भूमि ऐसो तू जो है ताकै जो ये धरणेन्द्र पद्मावती उपकारी नहीं है अर पर्वतनिका पतनको निषेध नहीं कियो है तो कमठनामा नीचदेवकृत उपद्रव कहा निमित्त करि नहीं निकट रह्यो; या प्रकार सारभूत स्तुतिरूप कियो पार्श्वजिनेंद्र जो है सो हम जे हैं तिनकी रक्षा करो ॥ ६६ ॥

उत्तर—या श्लोकमैं तो ऐसा भाव है कि पूर्वजन्मका उपकारनैं यादि राखि इहां उपसर्ग दूरि किया तातैं सर्व जगतकै सराहना करने योग्य भये सो योग्य ही है, उत्तम कार्य करै सो सराहना पावै यातैं । यो श्लोक तो सम्यक्तका लक्षणकै अनुकूल ही है, क्योंकि सम्यक्त नाम सांचापणाका है अर मिथ्यात्वनाम झूंठापणाका है अर या श्लोकमैं सत्यार्थरूप अर्थ है तातैं सम्यक्तरूप ही है ।

प्रश्न—या श्लोकमैं "इहां गतौ" ऐसा पद है तातैं स्तुतिरूप भये ऐसा अर्थ है सो ही पूज्यपणा स्थापन करै है, क्योंकि स्तुतिका लक्षण मूलाचारमैं नमस्कार करि पूजनकरि सत्यार्थ गुणानुवाद करना है सो स्तवन है ऐसा लिख्या है, तातैं नमस्कार पूजन भी स्तुति प्रशंसाकै ही मध्यवर्त्ती है ।

उत्तर—ऐसे प्रशंसारूप वचन तो केई पुरुषनि प्रति लिखे है । सो आदिपुराणका तीसरा पर्वमैं;—

ततस्तमृषयो दीप्ततपोलक्ष्मीविभूषणाः ।
प्रशशंसुरिति प्रीता धार्मिकं मगधेश्वरं ॥२२७॥

अर्थ—तदनंतर दीप्ततप ऋद्धिरूप लक्ष्मी है विभूषा जिनकै

ऐसे गौतम ऋषि गणधर देव जे हैं ते प्रसन्न भये संते मगधेश्वरनैं पूर्वोक्त प्रकार सराहते भये॥ २२७॥ तातैं विचारनेकी वार्त्ता है कि वा श्लोकमैं धरणेंद्र पद्मावतीकी देवेंद्रनि करि करी सराहनानैं देखि धरणेंद्र पद्मावतीकूं सम्यग्दृष्टीनिकरि पूज्य मानोगे तौ या श्लोकमैं अव्रत सम्यग्दृष्टी राजाकी गणधरनि करि करी सराहनानैं देखि संयमीनिकरि असंयमीनिका भी पूजना मानना पडैगा सो योग्य नाहीं। तातैं ऐसा मानो कि दोऊ ही श्लोकनिमैं उत्तम चेष्टा देखि सराहना करी है सो योग्य ही है, कछु सराहना करनेतैं पूज्य नहीं होय है। ता सिवाय और सुनो कि क्रूरदेवतानैं तौ तुम भी त्याज्य कहो हौ अर इनिकूं क्रूरसंज्ञा है तातैं सर्वथा अपूज्य ही हैं।

प्रश्न—इनकूं क्रूरसंज्ञा कहां कही है।

उत्तर—या ही स्थलमैं कही है;—

अमू क्रूरौ प्रकृत्यैव नागौ संस्मरतुः कृतम्।
नोपकारं परे कस्माद्विस्मरंत्यार्द्रचेतसः॥ १५॥

अर्थ—ये प्रकृति करि ही क्रूर नागकुमार जे हैं ते किया उपकारनैं स्मरण करैं हैं तौ आर्द्रचित्तके धारक परकृत उपकारनैं कैसैं भूलैं कदाचित ही नहीं भूलैं॥ १५॥ या श्लोकमैं उपकारनैं स्मरण करतां संतां भी प्रकृति करि ही क्रूर कहे हैं, तातैं निःसंदेह क्रूर हैं अर क्रूर हैं ते अपूज्य हैं।

प्रश्न—और वो तुमनैं कह्या सो मर्व जान्या परंतु आदिपुराणमैं पीठिका मंत्रनिमैं लिखे हैं। मंत्र;—"सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य निर्वाणपूजार्ह अग्नींद्राय स्वाहा।" अर निस्तारक मंत्रनिमैं ऐसा लिख्या है कि—"सम्यग्दृष्टिनिधिपतिवैश्रवणाय स्वाहा।" अर ऋषिमंत्रनिमैं ऐसा लिखें हैं कि—"सम्यग्दृष्टे भूपते नगरपते कालश्रमणाय

स्वाहा।" अर सुरेंद्रमंत्रनिमैं ऐसा लिखै है कि—"सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परंपरेंद्राय स्वाहा, अहमिंद्राय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे कल्पपते दिव्यमूर्ते वज्रनामाय स्वाहा।" अर परमराजादि मंत्रनिमैं ऐसा लिखै है कि—"सम्यग्दृष्टेऽनुमतेज: दिशांविजय स्वाहा।" अर परमेष्ठी मंत्रनिमैं ऐसैं लिखै है कि—"सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यविजयधर्ममूर्ते स्वाहा।" इन मंत्रनिके अक्षरार्थकूं समझि करि भी सम्यग्दृष्टीनिकूं जिनशासनदेवनि प्रति नमस्कारादि करना योग्य मानोगे ?

उत्तर—इन मंत्रनिका अक्षरार्थ जिन पुरुषनिनैं तुमनैं सुन्या है तिनके कुलमैं परंपरातैं ऐसा ही उपदेश चल्या आवै है, अर या ही उपदेशके अनेक ग्रंथ बडे बडे आचार्यनिके नामसैं बनाय धरे हैं क्योंकि चरणानुयोगमैं प्रधानता आगम प्रमाणकी है, तातैं भोले जीवनिकूं आगम दिखाय अपनी पक्षपक्षमैं शामिल करि लेते हैं, परंतु ज्ञानवाननिके आगमकी प्रमाणता वक्ताकी प्रमाणतातैं है अर वक्ताका निश्चय अर्थकूं संप्रदायके योग्य पूर्वापर विरुद्धतादि दूषणरहित प्रत्यक्ष अनुमानसैं अविरुद्ध होय मानैं होय है सो उन कल्पित (कृत्रिम) ग्रंथनिमैं तो अनेक दूषण दीखै हैं ते या ग्रंथके अंतमैं दिखावैंगे। अर महापुराण जिनसेनाचार्यजीकृत सर्वदूषणरहित प्रमाणीक सर्व आगमतैं अविरुद्ध निःसंदेह अर्थ देवै है तातैं इनि मंत्रनितैं भी रागी देवनिका नमस्कारादि करना सिद्ध नहीं होयगा, क्योंकि इनि मंत्रनिकी आदिमैं तो ऐसैं लिखे हैं;—

मध्यवेदि जिनेंद्रार्चा: स्थापयेच्च यथाविधि।
मंत्रकल्पोऽयमाम्नातस्तत्र तत्पूजनाविधौ॥

अर्थ—वेदीके मध्य जिनेंद्रकी प्रतिमा यथाविधि स्थापन करै

अर तहां क्रियानिके मध्य जिनेंद्रकी प्रतिमाका पूजनकी विधिकै विषैं ये मंत्रनिको कल्प कह्यो है ॥ ४ ॥

अर मंत्रनिके अंतमैं जैसैं लिखे हैं;—

एतेऽनु पीठिकामंत्राः सप्त ज्ञेया द्विजोत्तमैः ।
एतैःसिद्धार्चनं कुर्यादाधानादिक्रियाविधौ ॥७७॥

अर्थ—ये सातभेदरूप पीठिकामंत्र जे हैं ते द्विजोत्तमनिकरि जानवे योग्य हैं अर इन मंत्रनिकरि आधान आदि क्रियाविधिकै विषैं सिद्धप्रतिमाको पूजन करै ॥ ७७ ॥

तथा;—

सिद्धार्चासंनिधौ मंत्रान् जपेदष्टोत्तरं शतं ।
गंधपुष्पाक्षतार्घादिनिवेदनपुरःसरम् ॥ ८० ॥

अर्थ—सिद्धप्रतिमाका निकटमैं गंध पुष्प अक्षत आदि अर्घका निवेदन पुरःसर इनि मंत्रनिनैं अष्टोत्तरशतप्रमाण जप ॥ ८० ॥ इनि वचननितैं ये सर्व मंत्र अर्हंत सिद्ध परमेष्ठीके पूजनके हैं, इनि मंत्रनितैं और देवनिके पूजनेका काम नाहीं, ऐसा निःसंदेह श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न—हमारै तौ संदेह नाहीं रह्या परंतु जिन पुरुषनिकै रागीदेवनिकूं पुजानेका पक्षपात है तिनकूं अक्षरार्थ भी कह्या चाहिये।

उत्तर—सर्व ही मंत्रनिका अक्षरार्थ तौ प्रकट ही है, परंतु इनि मंत्रनिका अक्षरार्थ जैसैं पूर्वापरविचाररहित उनूनैं तुमैं सुनाया है तैसैं तौ हम लिखै नाहीं अर इन परि प्रमाणीक टीका नाहीं तथा कोऊ अन्य ग्रंथमैं इनिका वरनन नाहीं ताहि देखि करि लिखें, अर स्वयमेव ऐसा हमारा तीक्ष्ण ज्ञान नाहीं जो कंद कंदाम्नायतैं अविरुद्ध अर्थ वक्ताका अभिप्राय माफिक लिखें। तातैं

स्वाहा।" अर सुरेंद्रमंत्रनिमैं ऐसा लिखे हैं कि—"सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परंपरेंद्राय स्वाहा, अहमिंद्राय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे कल्याणे दिव्यमूर्ते वज्रनामाय स्वाहा।" अर परमराजादि मंत्रनिमैं ऐसा लिखे हैं कि—"सम्यग्दृष्टेऽनुपमेंद्र दिशांविजय स्वाहा।" अर परमेष्ठी मंत्रनिमैं ऐसैं लिखे हैं कि—"सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यविजयधर्ममूर्ते स्वाहा।" इन मंत्रनिके अक्षरार्थकूं समझि करि भी सम्यग्दृष्टीनिकूं जिनशासनदेवनि प्रति नमस्कारादि करना योग्य मानोगे ?

उत्तर—इन मंत्रनिका अक्षरार्थ जिन पुरुषनिनैं सुननैं सुन्या है तिनके मुखतैं परंपरातैं ऐसा ही उपदेश चल्या आवै है, अर या ही उपदेशके अनेक ग्रंथ बड़े बड़े आचार्यनिके नामतैं बनाय राखे हैं क्योंकि चरणानुयोगमैं प्रधानता आगम प्रमाणकी है, तातैं भोले जीवनिकूं आगम दिखाय अपनी पक्षपातके शामिल करि लेते हैं, परंतु ज्ञानवाननिकै आगमकी प्रमाणता वक्ताकी प्रमाणतातैं है अर वक्ताका निश्चय अर्थकूं संप्रदायके योग्य पूर्वापर विरुद्धतादि दूषण-रहित प्रत्यक्ष अनुमानतैं अविरुद्ध होय तातैं होय है सो इन कल्पित (कृत्रिम) ग्रंथनिमैं तो अनेक दूषण दीखै हैं ते या ग्रंथके अंतमैं दिखावैंगे। अर महापुराण जिनसेनाचार्यजीकृत सर्वदूषण-रहित प्रमाणीक सर्व आगमतैं अविरुद्ध निःसंदेह अर्थ देवै है तातैं इनि मंत्रनितैं तो रागी देवनिका नमस्कारादि करना सिद्ध नहीं होयगा, क्योंकि इनि मंत्रनिकी आदिमैं तो ऐसैं लिखे हैं;—

मध्यवेदि जिनेंद्रार्चाः स्थापयेच्च यथाविधि।
मंत्रकल्पोऽयमाम्नातस्तत्र तत्पूजनाविधौ॥

अर्थ—वेदीके मध्य जिनेंद्रकी प्रतिमा यथाविधि स्थापन करै

अर्थ—हे भगवन् ! आप पवनमूर्त्ति हो अर असंगात्मा हो अर अग्निमूर्त्ति हो अर अघर्मका दहन करनवारा हो। इत्यादि वचनतैं अग्निरूप जिन है अर जिनका इंद्र है सो जिनेंद्र है। यातैं इहां अग्नींद्रपद जिनेंद्रका हो वाचक है।

प्रश्न—पीठिकामंत्रनिका निर्वाह किया सो जान्या परंतु विशेष क्रियाविधानमैं सुप्रीतिक्रियाके विषैं अग्निदेवतानैं साक्षी करना कैसैं कह्या है।

उत्तर—अग्निकुमारदेवकूं साक्षी करना कह्या सो वा समय याका नियोग है यातैं साक्षी करनेमें कुछ दोष नाहीं।

प्रश्न—मोदक्रियामें रक्षासूत्र कैसें कह्या है।

उत्तर—वर्त्तमानका इलाज करनेका हुकम आत्मानुशासन आदि ग्रंथनिमें है ही तातैं परमेष्ठीवाचक मंत्रनितैं रक्षाबंधन करना योग्य ही है।

प्रश्न—प्रियोद्भवक्रियामें ऐसें लिख्या है कि "सम्यग्दृष्टे सर्वमातः वसुंधरे स्वाहा" याका प्रकट अर्थ ऐसा दीखे है कि—सम्यग्दृष्टी सर्वकी माता पृथ्वी जो है ताके अर्थि स्वाहा। सो कैसें है।

उत्तर—जिनागममें पृथ्वीके च्यार भेद ऐसें लिखे हैं कि—पृथ्वी, पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक, पृथ्वीजीव। इनिमें प्रथम भेद तौ सामान्य नाम है अर दूसरा भेद पुद्गल अचेतन है, अर बाकीके दोय भेदरूप जीव हैं तिनकूं सम्यग्दृष्टी कहनां संभवै नाहीं, क्योंकि प्रथम तौ तिनिमें सम्यक्तीका उत्पाद नाहीं; क्योंकि समंतभद्रस्वामी ऐसा लिखै हैं;—

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।

हमारे तौ जिनसेनजी इनि मंत्रनितैं अरहंत सिद्ध प्रतिमाका पूजन करनेका हुकम लिख्या है तातैं ये सर्व मंत्र परमेष्ठीवाचक हैं, ऐसा निश्चय है।

प्रश्न—उनका किया अर्थका निषेध लिखनेकूं तौ तुमारा ज्ञान तीक्ष्ण होय गया अर मंत्रनिका अक्षरार्थ लिखनेमैं मंद होय गया।

उत्तर—हमारा ज्ञान तौ मंद ही है परंतु आर्ष ग्रंथनिमैं निषेध देख्या सो निषेध लिख्या अर मंत्रनिका अक्षरार्थ कहूं नहीं देख्या तिसके लिखनेका इनकार लिख्या, परंतु हमारे ऐसा निश्चय है कि कोऊ पंडित ग्रंथांतरतैं शब्दार्थका निश्चय करै तौ सर्व मंत्रनिका सत्यार्थ आम्नायशुद्ध अर्थ लिखै। जैसैं एक मंत्रका अर्थ हमनैं सुन्या है सो लिखैं हैं;—

मंत्र—सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य निर्वाणपूजार्ह अग्नींद्राय स्वाहा।

अर्थ—परम क्षायिक सम्यग्दृष्टी अर परम निकटभव्य ऐसो निर्वाणकल्याण समयका पूजनकै योग्य पावकरूप अग्नींद्र कहिये जिनेंद्र जो है ताकै अर्थि स्वाहा।

प्रश्न—अग्नींद्रकूं जिनेंद्र कैसैं कहौ हौ।

उत्तर—जन्मकल्याणसमय इंद्रकृत स्तवनमैं लिखै हैं;—

श्लोक—कर्मेन्धनदहे तुभ्यं नमः पावकमूर्त्तये।

अर्थ—कर्मरूप ईंधनकौ दहनवारो पावकमूर्त्ति तू जो है ताकै अर्थि नमस्कार होहु। तथा ज्ञानकल्याणकसमय इंद्रकृत सहस्रनाममैं,—

श्लोक—वायमर्त्तिरसंगात्मा वह्निमूर्त्तिरधर्मधक्।

लक्षणतैं विपरीत अशुद्ध नहीं होय, अर जाग्रत नहीं होय कि सुतो नहीं होय, अर पर्याप्त होय कि अपर्याप्त नहीं होय, अर संसारके तटके विषैं निकटवर्त्ती होय कि अनंत संसारी नहीं होय, अर ज्ञानोपयोगयुक्त होय कि दर्शनोपयोगयुक्त नहीं होय; सो जीव सम्यक्तनैं प्राप्त होय है ॥ ३१२ ॥ यातैं पृथ्वीकायिकके तथा पृथ्वीजीवके सम्यक्त होनेकी योग्यता भी नहीं है। बहुरि सर्वकी माता भी कहना बनै नाहीं, क्योंकि जाकूं किसीकी माता कहिये ताके पतिहू बताया चाहिये, सो है नहीं। तातैं उनका किया अर्थ प्रमाणभूत नहीं जानना।

प्रश्न—ऐसैं है तौ प्रमाणभूत अर्थ होय सो तुम कहौ।

उत्तर—हम तौ प्रथम ही मंत्रनिके अर्थ लिखनेका इनकार लिख्या है परंतु इहां तौ ऐसा अर्थ मालूम होय है कि "हे सम्यग्दृष्टे" कहिये हे सम्यग्दर्शनरूप, अर "हे सर्वमातः" कहिये अर हे सर्वकी माता, अर "हे वसुंधरे" कहिये वसु जे द्रव्य तिननैं धारनेवारी तू जो है ताके अर्थि स्वाहा। भावार्थ—हे सम्यग्दर्शनरूप जगतकी माता छहूं द्रव्यनिके स्वरूपकूं धारनेवारी दिव्यध्वनि तिहारे अर्थि स्वाहा।

प्रश्न—वसुंधरा नाम पृथ्वीका प्रसिद्ध है ताकूं त्यागि वसुंधरारूप अर्हंतकी वानी कैसैं कहो हो।

उत्तर—पृथ्वीकै तौ पूज्यपणौ संभवै ही नहीं, अर जिनवानीमें यो अक्षरार्थ भी संभवै है अर पूज्यपणौं भी संभवै है तातैं ऐसा ही अर्थ उचित है। अर वसुंधरा नाम पृथ्वीका ही मानो हौ तौ जन्मत्र्याणसमय इंद्रकृत स्तवनमें लिख्या है। श्लोक;—"क्षमामहणप्रधानाय नमस्ते क्षितिमूर्तये।" अर्थ—क्षमागुणकी है प्रधानत

दुष्कुलविकृताल्पायर्दरिद्रतां च व्रजंति नाप्यव्रतिकाः।

अर्थ—व्रतरहित भी सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध जीव जे हैं ते नारकपणानैं तिर्यंचपणानैं नपुंसकपणानैं स्त्रीपणानैं अर खोटा कुलवानपणानैं खोटो आकृतिवानपणानैं अल्प आयुवानपणानैं दरिद्रीपणानैं नहीं प्राप्त होय हैं ॥ या वचनतैं सम्यक्तीका उत्पाद पृथ्वीमैं नहीं है ।

प्रश्न—या श्लोकमैं पृथ्वीका नाम मात्र तौ नाहीं या श्लोकतैं निषेध कैसैं करो हो।

उत्तर—प्रथम तो यामैं नपुंसकपणाका निषेध है अर एकेंद्रीकै वेदमार्गणामैं नपुंसकवेद कह्या है, दूसरां दुष्कुलका निषेध है सो ये दुष्कुल है, तीसरां विकृतिका निषेध है सो ये विकृति है चौथा दरिद्रीका निषेध है सो ये परम दरिद्री हैं; तातैं या श्लोकतैं ही निषेध है । बहुरि पृथ्वीपणानैं प्राप्त भया जीवकै सम्यक्त उत्पन्न होनेकी योग्यता भी नहीं है, क्योंकि स्वामिकार्तिकेयजी ऐसैं लिखैं हैं कि;—

चदुगदिभव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाण पज्जत्तो ।
संसारतडे णियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥३१२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञी सुविशुद्धः जागरमाणः पर्याप्तः ।
संसारतटे निकटः ज्ञानी प्राप्नोति सम्यक्त्वं॥ ३१२ ॥

अर्थ—च्यारूं गतिमैं भव्य होय कि च्यारूं ही गति वारै धातुचतुष्कमैं तथा निगोदमैं नहीं होय अर भव्य होय कि अभव्य नहीं होय, अर सैनी होय कि असैनी नहीं होय, अर सुविशुद्ध कहिये जाकै सर्व घाती प्रकृतिनिके उदयका तौ अभाव होय अर देशघाती प्रकृतिनिका मंद उदय होय ऐसो विशेषपणे शुद्ध हयो ग

प्रायश्चित्तविधानज्ञः श्रुतिस्मृतिपुराणवित् ।
गृहस्थाचार्यतां प्राप्तस्तदा धत्ते गृहीशितां ॥७६॥

अर्थ—या पूर्वोक्त आचरण करि विशेषपणैं शुद्ध होय ता पीछैं "गृहीशितां अभ्येति" कहिये गृहस्थनिका स्वामीपणानैं प्राप्त होय है ॥७५॥ अर वृत्तकी अर अध्ययनकी संपत्तिकरि पर जीवनि प्रति अनुग्रह करवामैं समर्थ होय है अर प्रायश्चित्तकी विधिको ज्ञाता होय अर श्रुतिस्मृतिपुराणको वेत्ता होय सो गृहस्थाचार्यपणानैं प्राप्त होय है तदि गृहस्थनिका स्वामीपणानैं धारण करै है ॥ ७६ ॥

तथा गुणताळीसमा पर्वमें;—

वर्णांतः पातिनो नैते मंतव्याः द्विजसत्तमाः।
व्रतमंत्रादिसंस्कारसमारोपितगौरवाः ॥ ३० ॥
वर्णोत्तमानिमान् विद्मः क्षांतिशौचपरायणान् ।
संतुष्टान् प्राप्तवैशिष्ट्यानक्लिष्टाचारभूषणान् ॥ ३१ ॥

अर्थ—ए द्विजसत्तम जे हैं ते तीन वर्णके अंतमैं प्राप्त भये नहीं मानवे योग्य हैं, क्योंकि व्रत अर मंत्र अर संस्कारका धारण करवातैं गौरव है कि वर्णोत्तम हैं ॥ ३० ॥ अर क्षमामैं अर शौचमैं परायण अर संतुष्ट अर सर्व गृहस्थनिमैं पायो है विशेषपणू जिननैं अर पुन्यरूप आचरण ही है आभूषण जिनके औसे ये वर्णोत्तम जे हैं तिननैं जाणबो योग्य है ॥ ३१ ॥ भावार्थ—पूर्वे कहे जे सम्यक्त्वपूर्वक गृहस्थनिके योग्य अणुव्रत तिन करि विशेषपणैं शुद्ध होय सो गृहस्थनिमैं श्रेष्ठ है, अर व्रतकी अर अध्ययनकी संपत्ति करि परजीवका उपकार करवामैं समर्थ होय, अर प्रायश्चित्तकी विधिनं श्रुतिनैं स्मृतिनैं पुराणनैं जाणवो होय सो गृहस्थाचार्यपणानें पावै

मा विषै ऐसो क्षितिमूर्ति तू जो है ताके अर्थि नमस्कार होहू। तथा इंद्रकृत सहस्रनाममें लिख्या है;—श्लोक—"क्षांतिभाक् पृथ्वीमूर्त्तिः" ।अर्थ—हे भगवन् तू क्षमाको भजवावारो पृथ्वीमूर्ति है। इत्यादि वचननितैं वसुंधरारूप अरहंत भगवानके अर्थि स्वाहा मानौ। और इहां इतनी और जाननी कि मंत्रशास्त्रकी यही रीति है कि भगवानके अनंत गुण अर अनंत नाम हैं तिनमैंसूं जहां जैसो प्रयोजन होय वहां वैसो ही नाम चितवन करै। जैसे भक्तामरमैं सर्पभयनिवारणनिमित्त "त्वं नामनागदमनी०" ऐसैं वरनन कियो, अर अग्नि भयनिवारणनिमित्त "त्वं नाम कीर्त्तनजलं०" ऐसैं वरनन कियो, अर रोगभयनिवारण-निमित्त "त्वत्पादपंकजरजोमृत०" ऐसैं वरनन कियो; तैसैं ही इहां क्षमागुणयुक्त पुत्रका वांछा है तातै पृथ्वीरूपचितवन कियां है।

प्रश्न—नामकर्म क्रियामैं मुहूर्त्तका देखना कैसैं कह्या है ?

उत्तर—मुहूर्त्त देखनेकी आगममैं आज्ञा है ही सो स्पष्टतर आगें लिखेंगे।

प्रश्न—याही क्रियामैं द्विजोत्तमका पूजन कैसैं लिख्या है ?

उत्तर—इनिकै योग्य इनिका सत्कार है सो ही इनिका पूजन है।

प्रश्न—ये कौन हैं अर इनिकै योग्य सत्कारका कहा विधान है सो कहो।

उत्तर—प्रथम तो इनिका लक्षण कहैं हैं पीछै इनिके पूजने-का विधान कहैंगे;—

विशुद्धस्तेन वृत्तेन ततोऽभ्येति गृहीशितां।
वृत्ताध्ययनसंपत्या परानुग्रहणक्षमः ॥ ७५ ॥

अर्थ—तिनमें निश्चयकरि जैनीनिके समस्त हिंसाको विशेष-पणे वर्जन है यो तो पक्ष है, अर सर्व जीवमात्रमें मैत्रीभाव अर गुणाधिकमें प्रमोदभाव अर दुःखितमें सुःखितमें कारुण्यभाव अर विपरीतमार्गीमें माध्यस्थभाव जे हैं तिनकरि या पक्ष वर्धित है ॥ ४६ ॥

चर्या तु देवतार्थं वा मंत्रसिद्ध्यर्थमेव वा ।
औषधाऽऽहारकृत्यै वा न हिंसामेति चेष्टितम ॥४७॥

अर्थ—चर्या ऐसी है कि देवताके अर्थि अथवा मंत्रसिद्धिके अर्थि अथवा औषधिकी अर आहारकी सिद्धिके अर्थि हिंसानैं नहीं प्राप्त होय ऐसी चेष्टा करै है ॥ ४७ ॥

तत्राकामकृते शुद्धिः प्रायश्चित्तैर्विधीयते ।
पश्चाच्चात्मान्वयं सूनौ व्यवस्थाप्य गृहोज्झनम् ॥४८॥

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार पक्षकूं धारण करतां अर क्याहूं भावनानैं भावतां अर बलात्कारतैं चर्या करतां प्रमदाकृत दोष होवतां संतां प्रायश्चित्तनिकरि शुद्धि करै है, ऐसैं कालनैं वितीत करि पीछे अपना वंशनैं पुत्रके विर्षे समस्तपणों स्था पन करि गृहको त्याग करै है तातैं हिंसालेप नहीं है ॥ ४८

प्रश्न—इनका लक्षण तो जान्या परंतु इनके पूजनका विधान भी कहो।

उत्तर—जा समय भरतचक्री दिग्विजयकरि अयोध्यामैं आय जिनेन्द्रको महामहनामा पूजनको विधान करनूं विचार्यो ता समय विचार करै है। सो अडतीसमां पर्वमें;—

नानगारा वसून्यस्मात् प्रतिगृह्णंति निःस्पृहाः।
सागारः कतमः पूज्यो धनधान्यसमृद्धिभिः ॥७॥

है सो ही गृहस्थनिको स्वामी है। अर तीन वर्ण तौ आदिनाथस्वामी स्थापन किये अर ब्राह्मणनिकूं भरतजी स्थापन किये तातें पीछें भये हैं तौ इनिकूं पीछें होनेतें न्यून नहीं जानना अर व्रत मंत्र संस्कारका संयोगतें वर्णोत्तम जानना, क्योंकि ये क्षमा शौच संतोष पापरहित आचरण करि विशेषरूप हैं।

इहां प्रश्नरूप श्लोक कहैं हैं, सो;—

स्यादारेका च षट्कर्मजीविनां गृहमेधिनां।
हिंसादोषोऽनुषंगी स्याज्जैनानां च द्विजन्मनां॥४३॥

अर्थ—इहां कथंचित प्रश्न है कि जैनी द्विजन्मा षट्कर्मकरि जीवनवारे गृहस्थ जे हैं तिनकै भी हिंसादोष तौ सहगामी है।

उत्तररूप;—

इत्यत्र ब्रूमहे सत्यमल्पसावद्यसंगतिः।
तत्रास्त्येव तथाऽप्येषां स्याच्छुद्धिः शास्त्रदर्शिता॥४४॥
अपि चैषां विशुद्ध्यंगं पक्षचर्या च शोधनम्।
इति त्रितयमस्त्येव तदिदानीं विवृण्महे॥ ४५ ॥

अर्थ—उत्तर;—इहां या प्रकार कहिये है कि तिन गृहस्थनिकै विषैं अल्पहिंसाकी संगति सत्यपणै है ही तथापि इनिकै प्रथम तौ आगममैं दिखाई शुद्धि है॥ ४४॥ अर और भी इनिकै पक्ष अर चर्याको सोधन है सो शुद्धिताको अङ्ग है, या प्रकार तीनूं ही शुद्धि हैं सो अब बरननकरिये है॥ ४५॥

तत्र पक्षो हि जैनानां कृत्स्नहिंसाविवर्जनम्।
मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यैरुपबृंहितम्॥ ४६॥

अर्थ—तिनमें निश्चयकरि जैनीनिकै समस्त हिंसाको विशेषपणे वर्जन है यो सो पक्ष है, अर सर्व जीवमात्रमें मैत्रीभाव अर गुणाधिकमें प्रमोदभाव अर दुःखितमें सुःखितमें कारुण्यभाव अर विपरीतमार्गीमें माध्यस्थभाव जे हैं तिनकरि वा पक्ष वर्धित है ॥ ४६॥

चर्या तु देवतार्थं वा मंत्रसिद्ध्यर्थमेव वा।
औषधाऽऽहारक्लृत्यै वा न हिंसामेति चेष्टितम ॥४७॥

अर्थ—चर्या ऐसी है कि देवताके अर्थि अथवा मंत्रसिद्धिकै अर्थि अथवा औषधिकी अर आहारकी सिद्धिकै अर्थ हिंसानैं नहीं प्राप्त होय ऐसी चेष्टा करै है ॥ ४७॥

तत्राकामकृते शुद्धिः प्रायश्चित्तै र्विधीयते।
पश्चाचात्मान्वयं सूनौ व्यवस्थाप्य गृहोज्झनम् ।४८।

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार पक्षकूं धारण करतां अर स्याद् भावनानैं भावतां अर यत्नाचारतैं चर्या करतां प्रमादकृत दोष होवतां संतां प्रायश्चित्तनिकरि शुद्धि करै है, ऐसैं कालनैं वितीत करि पीछै अपना वंशनैं पुत्रकै विर्षे समस्तपणैं स्था पन करि गृहको त्याग करै है यातैं हिंसालेप नहीं है ॥ ४८

प्रश्न—इनका लक्षण तौ जान्या परंतु इनके पूजनका विधान भी कहो।

उत्तर—जा समय भरतचक्री दिग्विजयकरि अयोध्यामैं आय जिनेन्द्रको महामहनामा पूजनको विधान करनूं विचार्यो ता समय विचार करै है। सो अड़तीसमा पर्वमें;—

नानगारा वसून्यस्मात् प्रतिगृह्णंति निःस्पृहाः।
सागारः कतमः पूज्यो धनधान्यसमृद्धिभिः ॥७॥

अर्थ—निर्वांछक मुनीश्वर तौ हमतैं द्रव्य नहीं ग्रहण करैं, अर कौन सो गृहस्थी हमतैं धन धान्य आदि समृद्धिकरि पूज्य है ॥ ७ ॥

येऽणुव्रतधरा धीरा धौरेया गृहमेधिनाम् ।
तर्पणीया हि तेऽस्माभिरीप्सितैर्वस्तुवाहनैः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो गृहस्थनिके मध्य अग्रगामी धीर्यवान अणुव्रतके धारक हैं ते हम जे हैं तिनकरि वांछित वस्तु वाहननि करि तृप्त करिबे योग्य हैं ॥ ८ ॥ भावार्थ—इहां विचार कीया तहां तौ धन धान्य समृद्धि वस्तु वाहन आदि वांछित देने करि तृप्ति करि पूज्य कहे, ता पीछैं देशांतरतैं सर्व लोकनिकूं बुलाये अर ये आये तिनकी परीक्षानिमित्त चक्री मार्गनैं हरित अंकुरनि करि व्याप्त करायो तदि जो व्रती थे ते तौ दूरि ही तिष्ठे अर जे व्रती नहीं थे ते अंकुरनिकूं खूंदते आये, पीछैं चक्री दूसरे मार्ग होय व्रतीनिकूं बुलाये अर उनकूं दूर तिष्ठनेका कारण पूछ्या तदि वा कह्यो कि हरित अंकुरनिमैं भगवान सर्वज्ञ देव निगोतराशि कहीहै तिनका घात होनेके भयतैं हम वहां ही तिष्ठे थे।

इति तद्वचनात्सर्वान् सोऽभिनंद्य दृढव्रतान् ।
पूजयामास लक्ष्मीवान् दानमानादिसत्कृतैः ॥ २० ॥

अर्थ—या प्रकार वा धर्मरूप वचनका सुनवातैं वो लक्ष्मीवान चक्री जो है सो सर्व ही दृढव्रतीनिनैं सराह करि दान मान आदि सत्कार करि पूजत भयो ॥ २० ॥ भावार्थ—इहां भी दान मान सत्कार करि ही पूजे लिखे तातैं सम्यग्दृष्टी देशव्रती जे हैं ते ही तौ वर्णोत्तम गृहस्थाचार्य हैं अर ते ही धन धान्य वाहन वस्त्राभरण करि पूजने योग्य हैं।

अर समानदत्तीका लक्षणमें;—

समानायात्मनाऽन्यस्मै क्रियामंत्रव्रतादिभिः ।
निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम् ॥ ३८ ॥
समानदत्तिरेपा स्यात्पात्रे मध्यमतामिते ।
समानप्रतिपत्त्यैव प्रवृत्त्या श्रद्धयाऽन्विता ॥ ३९ ॥

अर्थ—इहां समानदत्तीके विषैं क्रिया मंत्र व्रतादिकनि करि आपके समान और निस्तारक उत्तम जे हैं तिनकै अर्थि पृथ्वी सुवर्ण आदिका देना है ॥ ३८ ॥ अर समान प्रतिपत्तिरूप प्रवृत्तिकरि श्रद्धाकरि संयुक्त या समानदत्ती मध्यमपणानैं प्राप्त भये ऐसे पात्र जे हैं तिनकै अर्थि है ॥ ३९ ॥ भावार्थ—जो गृहस्थनिमैं उत्तम क्रिया मंत्र व्रत आदि करि आपकै समान है ताहि वैभवमैं समान करनेके अर्थि समानपणाकी रीति करि श्रद्धा विनय संयुक्त पृथ्वी सुवर्ण आदिका देना है सो समानदत्ती है, सो समानदत्ती सम्यग्दर्शनसंयुक्त गृहस्थ योग्य व्रतके धारक पुरुषनिकै अर्थि योग्य है ।

तथा चालीसमा पर्वमैं;—

परिहार्यं यथा देवगुरुद्रव्यं हितार्थिभिः ।
ब्रह्मस्वंभी तथा भूतं न दंडार्हस्ततो द्विजः ॥२००॥

अर्थ—जैसैं देवद्रव्य अर गुरुद्रव्य जो है सो हितका अर्थीनिकरि त्याग करवे योग्य है, तैसैं ही ब्रह्मस्वंभी त्याग करवे योग्य है, तातैं आगमप्रमाण आचरण करतो द्विज जो है सो दंडकै योग्य नहीं है ॥ २०० ॥

तथा चालीसमा पर्वमैं;—

सर्वः प्राणी न हंतव्यो ब्राह्मणस्तु विशेषतः ।
गुणोत्कर्षापकर्षाभ्यां वधेऽपि ह्यात्ममतता ॥१९४॥

अर्थ—सर्व प्राणी नहीं मारबे योग्य हैं अर ब्राह्मण विशेषपणै नहीं मारबे योग्य है क्योंकि गुणका अधिक न्यूनपणा करि हिंसाकै विषैं भी द्विविधपणू मान्य है ॥ १९४ ॥ भावार्थ—सम्यग्दर्शनपूर्वक क्रिया कहिये विधान अर मंत्र कहिये परमेष्ठीके नाम गुण वाचक शब्द अर व्रत कहिये आचरण अर प्रायश्चित्तादिक विद्या अर परिणामनिमैं उदासीनता इत्यादि गुणनि करि संयुक्त गृहस्थ जो है सो द्विजोत्तम गृहस्थाचार्य है, अर सो ही मध्यमपात्र है, ताहि देखत प्रमाण खड़ा होना वा आसन देना पृथ्वी धन धान्य गृह वस्त्र आभूषण वाहन आहार औषधि पुस्तक अभय आदि उनकै वांछित पदार्थ अपनी सामर्थ्यपूर्वक विनय करि देना है सो ही इनका पूजनविधान है, अर ये दानपात्र हैं तातैं इनका द्रव्य ग्रहण करनेका निषेध किया है, अर क्रिया मंत्र व्रत विद्यायुक्त है तातैं अवश्य अवंद्य कहा है; इत्यादि इनका वरनन बहुत बहुत लिख्या है परन्तु नमस्कार करना नहीं लिख्या तातैं नमस्कार नहीं करै; क्योंकि कुंदकुंदाचार्यजीका वचन दर्शनपाहुडमैं ऐसा है;—

असंजदं ण वंदे वत्थविहोणोवि सो ण वंदिज्जो ।
दुण्णि वि हुंति समाणा एगोवि ण संजदो होदि । २६

असंयतं न वंदेत वस्त्रविहीनोऽपि सः न वंद्येत ।
द्वौ अपि भवतः समानौ एकोऽपि न संयतः भवति ।२६।

अर्थ—असंयमीकूं नहीं वंदिये, बहुरि भावसंयम नहीं होय अर वस्त्ररहित होय सो भी वंदिबे योग्य नहीं है, क्योंकि ये दोऊ ही

संयमरहित हैं इनिमैं एक भी संयमी नहीं है। भावार्थ—भावसंयमरहित तथा द्रव्यलिंगी मुनि है सो भी बंदवे योग्य नहीं है ॥२६॥

प्रश्न—बाह्य भेष दिगंबर शुद्धचर्या दीखै अर अंतरंग संयमहीन होय मिथ्यात्वी होय तिनका देखत प्रमाण द्रव्यलिंगीपणाका अर भावलिंगीपणाका निश्चय कैसैं होय अर निश्चय हुआ विना नमस्कार करै कि नहीं करै।

उत्तर—गृहस्थनिकूं व्यवहार ही सरण कह्या है तातै बाह्य चर्या शुद्धि देखि वंदना करो, परंतु इहां अभिप्राय असा जानो कि उनकी बाह्य क्रियातैं अंतरंग असंयम जानो ता पीछैं वंदना मति करो। अर वस्त्ररहित परमहंसादिकनिकूं भी वंदना मति करो।

प्रश्न—इनिकै तौ देशसंयम है यातैं असंयमी नहीं है तातैं नमस्कार योग्य हैं।

उत्तर—सूत्रपाहुडमैं वंदवे योग्यको लक्षणरूप;—

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरदो वि।
सो होइ वंदणीओससुरासुरमाणुसे लोए ॥ ११ ॥
यः संयमेषु सहितः आरंभपरिग्रहेषु विरतः अपि।
सः भवति वंदनीयः ससुरासुरमानुषे लोके ॥११॥

अर्थ—जो दिगंबर मुद्राका धारक मुनि इंद्रिय मनका तौ वसि करना अर छह कायके जीवनिकी दया करना असे संयम करि तौ सहित होय, समस्त गृहस्थनिके समस्त आरंभनिके विषैं तथा बाह्य अभ्यंतर परिग्रहके विषैं विरक्त होय कि तिनमैं नहीं प्रवर्त्तै अर "अपि" शब्दतैं दशलक्षणधर्मकरि युक्त होय सो देवदानवनिकरि सहित मनुष्य लोकके विषैं वंदवे योग्य है। भावार्थ—अन्यभेषी

आरंभपरिग्रहादि करि संयुक्त पाखंडी हैं ते वंदिवे योग्य नहीं हैं ॥११॥

सो ही उत्तरपुराणसंबंधी वर्द्धमानपुराणमैं;—

इति तद्भाषितं श्रुत्वा वरिष्ठःश्रावकेष्वहं ।
नान्यलिंगिनमस्कारं कुर्वे केनापि हेतुना ॥ २७८ ॥
स्याद्वैमनस्यं तेऽवश्यं तदभावे भिमानिनः ।
इति श्रेष्ठ्याह तच्छ्रुत्वा तं (?) सद्भावमब्रवीत् ॥२७९॥

अर्थ—या प्रकार तापसीको वचन सुनि सेठ कहत भयो कि मैं श्रावकनिमैं श्रेष्ठ हूं यातैं कोऊ हेतु करि भी अन्यलिंगीनैं नमस्कार नहीं करूं । अर नमस्कारका अभावमैं अभिमानी तुम जो हौ तिनकै विमनस्कपणौ होय या प्रकार सेठ कहत भयो तानैं सुणि वा सेठ प्रति तापसी सांचो भाव कहत भयो ॥ २७८–२७९ ॥ या वचनतैं उत्तमपुरुषनिकी प्रवृत्ति ऐसी ही जाननी ।

तथा संयतीका लक्षणरूप;—

पंचमहव्वयजुत्तो तिहिं गुत्तीहि जो स संजदो होदि ।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ।२०।

पंचमहाव्रतयुक्तःत्रिभिःगुप्तिभिःयःसःसंयतःभवति ।
निर्ग्रंथमोक्षमार्गःसः भवति खलु वंदनीयः च ॥२०॥

अर्थ—जो मुनि पंचमहाव्रत करि युक्त होय अर तीन गुप्ति करि संयुक्त होय सो संयत है कि संयमवान है, सो ही निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है, सो ही प्रकटपणैं निश्चयकरि वंदवे योग्य है । भावार्थ—और कोऊ वंदवे योग्य नहीं है ॥ २० ॥

इत्यादि लक्षण वंदवे योग्य अर नहीं वंदवे योग्यका अष्टपा-

हुवतैं . तथा अन्यग्रंथनितैं सदाकाल अनुभवकरि श्रद्धान शुद्ध करो।

प्रश्न—ऐसैं है तो प्रत्यक्ष मिलापमैं जैसैं वर्त्तमान देश कालमैं मुजरो जुहार सलाम नमस्कार धोक आदि अनेक शब्द प्रवर्तै हैं तैसैं इन साधर्मीनिके मिलापमैं कहा योग्य है।

उत्तर;—

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया [१] इच्छणिज्जाय।१३।
अवशेषा ये लिंगिनः दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ताः।
चेलेन च परिगृहीताः ते भणिता इच्छनीयाः च।१३।

अर्थ—जे दिगम्बर मुद्रा सिवाय अवशेष लिंगी कहिये उत्कृष्ट श्रावकका तथा आर्यिकाका लिंगयुक्त हैं अर सम्यग्दर्शनज्ञानकरि संयुक्त हैं ते इच्छाकार करने योग्य कहे हैं। भावार्थ—सम्यक्ती व्रती जे हैं तिनकूं "इच्छामि" कहो अर इनके ही नाम गुणनिकी न्यूनाधिकतातैं गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थ हैं तिन सबनिकूं "इच्छामि" ही करना योग्य है॥१३॥

प्रश्न— या ही क्रियामैं घटपत्रविधान लिख्या है सो कहा है।

उत्तर— भगवानके एक हजार आठ नाम जे हैं तिननैं भिन्न भिन्न पत्रनिमैं लिखि पत्रनिनैं समेटि सर्व पत्र एक घटमैं स्थापन करै अर एक हजार सात सौ कोरा पत्र समेटि लेवै अर एक पत्रमैं "कुमार" इतना ही अक्षर लिखि समेटि लेवै पीछैं कुमारका नाम युक्त पत्रनैं कोरा पत्रके सामिल करि एक घटमैं स्थापन करै पीछैं

१ षट्प्राभृतादिसंग्रह नामक मुद्रित ग्रंथमें "इच्छणिज्जा य" इसकी संस्कृत छाया "इच्छाकारयोग्याः" इस प्रकार है।

अज्ञात बालकके हाथतैं दोऊ घटनिमैंतैं पत्र साथि साथि निकसावै तिनमैं जो कोरा पत्रकै साथि नाम निकसै सो सो तौ भिन्न मेलतो आवै अर "कुमार" का पत्रकै साथि जो नाम निकसै सो कुमारको नाम स्थापन करै याको नाम घटपत्रविधान है।

प्रश्न—विवाह क्रियामैं अग्नित्रयका पूजना कह्या है सो कैसैं है।

उत्तर—या प्रश्नका उत्तररूप वचन जिनसेनजीनैं ही गुणतालीसमा पर्वमैं लिख्या है;—

न स्वतोऽग्नेः पवित्रत्वं देवतारूपमेव वा।
किं त्वर्हद्दिव्यमूर्त्तिस्वसंश्रयात्पावनोऽनलः ॥८७॥
ततः पूजांगतामस्य मत्वाऽर्चंति द्विजोत्तमाः।
निर्वाणक्षेत्रपूजावत्तत्पूजातो न दुष्यति ॥८८॥

अर्थ—अग्निकै स्वतैं पवित्रपणू भी नहीं है अर देवतारूप भी नहीं है तौ कहा है? उत्तर—अर्हन्तकी दिव्यमूर्त्तिका आश्रयतैं अग्नि पवित्र है॥८७॥ तातैं या अग्निकै पूजाको अंगपणूमानि द्विजोत्तम पूजै है यातैं निर्वाणक्षेत्र पूजाकी नाई अग्निकी पूजा दूषित नहीं है, या वचनतैं जैसैं सिद्धक्षेत्रमैं सिद्ध भयेनिकूं पूजिये है तैसैं अग्निमैं परमेष्ठीवाचक मंत्रनिकरि आहुति करना योग्य है।

प्रश्न—चक्रलाभ क्रियामैं तौ निधिनिनैं अर रत्ननिनैं पूजना कह्या है, अर साम्राज्यक्रियामैं दिव्यास्त्र देवता विधानतैं आराध्य कह्या सो कैसैं है।

उत्तर—प्रथम तौ इनिका स्वरूप समझ्या चाहिये सो सुनो कि दिव्य अस्त्रनिके अधिष्ठाता देव तौ भवनत्रिकमैंरा गद्वेषयुक्त हैं अर चक्रीके सेवक हैं। अर रत्न जीव अजीव भेद करि दोय प्रकार हैं तिनके नामक;—

चक्रातपत्रदंडासिमणयश्चर्मकाकिणी ।
चमूगृहपती भास्वयोषित्तत्पुरोधसः ॥ ८४ ॥

अर्थ—चक्र १ छत्र २ दंड ३ खड्ग ४ मणि ५ चर्म ६ काकिणी ७ सेनापति ८ श्रेष्ठी ९ हस्ती १० अश्व ११ स्त्री १२ सिलावट १३ पुरोहित १४। इनिमें सात तौ अचेतन पुद्गल द्रव्य हैं अर दोय तिर्यंच हैं अर पुरुष हैं ते सेवक हैं अर येक स्त्री, है इनिमें पूज्य पदस्थ लायक कौन है मिथ्यादृष्टीनिके भी कहू पूज्य संभवै नाहीं।

अर निधिनिके नामका;—

कालाख्यश्च महाकालो नैसर्पःपांडुकाह्वयः ।
पद्ममाणवपिंगाब्जसर्वरत्नप्रदादिकाः ॥ ७३ ॥

अर्थ—काल १ महाकाल २ नैसर्प ३ पांडुक ४ पद्म ५ माणव ६ पिंग ७ अब्ज ८ (अब्जकूं ही शंख कहै हैं) सर्वरत्नप्रद ॥ ७३

निधयो नव तस्यासन्प्रतीतैरिति नामभिः ।
यैरयं गृहवार्त्तायां निश्चिंतोऽभून्निधीश्वरः ॥ ८४॥

अर्थ—या चक्रीकै नवनिधि होत भई ते इनि नामनिकरि प्रतीत मैं आई तिनकरि यो निधीश्वर गृहवार्त्ताकै विषै निश्चित होत भयो ॥ ७४ ॥

या वचनतैं गृहसंबंधी कार्यके करनेवारे मनुष्यनिकै समान सेवक हैं तातैं इनिकै भी चक्रीकरि पूज्यपणू नहीं संभवै। वा सिवाय ये क्रिया सम्यग्दृष्टीके करनेकी हैं ऐसा हुकम सौ अडतीसमा पर्वमें है;—

ताश्च क्रियाः त्रिधाम्नाताः श्रावकाध्यायसंग्रहे ।

सद्दृष्टिभिरनुष्ठेया महोदर्काः शुभावहाः ॥ ५० ॥

अर्थ—वे क्रियां जे हैं ते गर्भान्वय दीक्षान्वय कर्त्रन्वय नाम करि तीन प्रकार श्रावकाध्यायसंग्रह नामा आगमके विषैं आम्नाय-रूप करी हैं सो महान उदयकी करता शुभफलकी दाता सम्यग्दृष्टीनिकरि अनुष्ठान करने योग्य हैं ॥ ५० ॥

अर सम्यग्दृष्टीकूं समंतभद्रस्वामी असा हुकम देवे है;—

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥ ५१ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जो है सो भयतैं आशातैं स्नेहतैं लोभतैं कुदेव कुआगम कुलिंगी जे हैं तिनकूं प्रणाम अर विनय नहीं करै ॥ ५१ ॥ सो ये कुदेव हैं क्योंकि देवका लक्षण दोषरहित किया है अर ये रागद्वेषादि दोषनि करि सहित हैं तातैं वंदवे योग्य नहीं हैं, तथा दीक्षान्वयक्रियामैं क्रूरदेव त्याज्य कहे हैं अर ये क्रूर हैं ही क्योंकि क्रूर शब्द भी द्वेषका पर्यायवाची है तातैं भी वंदवे योग्य नहीं हैं।

तथा गणग्रहक्रियामैं ऐसैं लिखे है;—

निर्दिष्टस्थानलाभस्य पुनरस्य गणग्रहः ।
स्यान्मिथ्यादेवताःस्वस्माद्विनिःसारयतां गृहात् ॥४५॥

अर्थ—दिखायो है स्थानलाभ जाके ताके फेरि गणग्रहण होय है तहां क्रियाकै विषैं अपने घरतैं मिथ्यादेवतानैं बाहिर निकारो ॥ ४५ ॥

इयंतं कालमज्ञानात् पूजिताः स्थ कृतादरं ।
पूज्यास्त्विदानीमस्माभिरस्मत्समयदेवताः ॥४६॥

अर्थ—अर असैं कहै कि इतना काल अज्ञानतातैं आदरपूर्वक

तुमनैं पूजे, अब आगामीकालमैं हम जे हैं तिन करि हमारे सिद्धान्तमैं जिनकूं देव संज्ञा है ते पूज्य हैं ॥ ४६ ॥

ततोऽपमृपितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यतां ।
इति प्रकाशमेवैता नीत्वाऽन्यत्र क्वचित्यजेत् ॥४७॥

अर्थ—तातैं ईर्षाकरि तथा क्रोध करि तौ पूरी पड़ो अर औरनिके घरमैं इच्छापूर्वक तिष्ठो, या प्रकार प्रकट जैसैं होय तैसैं कहि इननैं उठाय और कोऊ स्थानमैं त्यजै ॥ ४७ ॥

गणग्रहः स एषः स्यात्प्राक्तनं देवतागणं ।
विसृज्यार्चयतः शांता देवताःसमयोचिताः॥ ४८ ॥

अर्थ—सो यो गणग्रहण विधान है तातैं अंगीकार करि प्राक्तन देवतागणनैं विसर्जन करि सिद्धांतमैं उचित शांतरूप देवता जे हैं ते पूजै ॥ ४ ॥

या वचनतैं सिद्धांतमैं उचित अर शांतरूप देव जे हैं ते पूज्य हैं। ता सिवाय अन्य प्रकरणमैं आराध्यशब्द नमस्कारादिवाची ही नहीं है; ये शब्द सामान्यपणे अपणानेकां वाची है; क्योंकि गोंमटसारकी टीकामैं उपासकाध्ययन अंगका व्याख्यानमैं लिखे हैं कि— "आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयंतीत्युपासकाः,, याका अर्थ ऐसा है कि आहार आदि दान करि अर नित्यमह आदि पूजनविधान करि संघनै आराधन करै है। तातैं विचारनैंकी वार्त्ता है कि संघमैं मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका च्यारूं हैं अर साधर्मी श्रावकनिकूं इच्छामि करनेका हुकम है, तातैं केवल नमस्कारादि करना ही नहीं जानना, सामान्यपणें अपणेश करनेका नाम जानना।

प्रश्न—अक्षरार्थ तो ऐसा ही करै है परंतु कहै है कि भवन-त्रिकमें भी जे जिनशासन हैं ते क्रूर भी नहीं है अर शांत भी हैं अर समयोचित भी हैं तातैं पूज्य हैं।

उत्तर—शांतता अर क्रूरता तो उनके स्तोत्रनिके सुननेतैं तथा प्रतिबिंबनिके देखनेतैं प्रकट ही बाल गोपालनिकै निश्चय होय है जिनके वस्त्राभरण अंगराग गंधमाल्य वाहन खड्ग त्रिशूल चक्र आदि विद्यमान हैं ते रागतैं अर द्वेषतैं भिन्न कैसैं मानें जायं तथा रागद्वेष नहीं होय तो व्रती संयमी शीलवाननिकी सहायता अर धर्मद्रोहीनिका तिरस्कार कैसैं करैं, इत्यादि चर्याके देखनेतैं रागीद्वेषीपणा निश्चय होय है; तातैं भवनत्रिकमैं देव शांत नहीं हैं क्रूर ही हैं, अर शांतता नहीं है क्रूरता है तहां पूज्यता नहीं है, पूजकता ही है।

प्रश्न—शुभराग तो सरागचारित्रके धारक मुनीश्वरनिकै भी है तातैं वै भी अपूज्य हैं कहा।

उत्तर—देवनिके रागमैं अर मुनीश्वरनिके रागमैं बड़ा अन्तर है, क्योंकि देवनिका राग तो निरंतर विषय भोगनिमैं प्रवर्त्तै है अर मुनीश्वरनिका राग संयमके उपकरणनिमैं कदाचित् किंचित् प्रवर्त्तै है; तातैं देवनिकूं तो राग द्वेष करि मलीमस कहे हैं अर मुनीश्वरनिकूं वीतराग कहे हैं। अर रागद्वेषरूप परणति धरणेंद्रादिकनिकी भई ताको तो अनेक कथा है, अर मुनीश्वरनिमैं रागद्वेषरूप परणति अभव्यसेन द्वीपायन आदिकी भई तिनको गति नरक लिखो है तातैं देव तो पूजक ही हैं अर मुनीश्वर पूज्य ही हैं। अर समयोचित कही हो तो देखो कि आदिपुराणमैं तो क्रूरदेव त्याज्य कहे हैं अर शांतदेव पूज्य कहे सो इनिकै रागद्वेष विद्यमान है तातैं

समयोचित नहीं हैं अर मोषपाहुड़में कहे हैं कि—गयो है मोह जातैं सो देव है सो इनिकै मोह विद्यमान है तातैं समयोचित नहीं हैं। अर मोक्षपाहुड़में कहे हैं कि—अष्टादशदोषविवर्जित देवमैं श्रद्धा होवे संते सम्यक्त होय है; तथा औसैं कहे हैं कि—रागी देवनै वंदमान जो मिथ्यादृष्टी है सो इनिकै दोष भी विद्यमान है अर राग भी विद्यमान है तातैं समयोचित नहीं हैं; तथा स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षामैं कहे हैं कि—वर्जितदोष देवनैं मानैं सो तौ सम्यग्दृष्टी अर दोषसहित देवनैं मानैं सो मिथ्यादृष्टी, सो इनिकै दोष विद्यमान है तातैं समयोचित नहीं हैं; तथा राजवार्त्तिकमैं चत्यगुरुप्रवचन सिवाय अन्य देवताका स्तवन पूजन वंदना रूप क्रियाकूं मिथ्यात्वक्रिया कही तातैं इनिका स्तवन पूजन वंदना रूप क्रिया है सो भी समयोचित नहीं है। तातैं भवनत्रिक आदि सर्वही देवनिकै समयोचितपणू भी नहीं है यातैं पूज्य नहीं हैं।

प्रश्न—सर्वही देवनिकूं तौ अपूज्य मति कहो अहमिंद्र तौ सदाकाल धर्मचर्चा ही करै है अर देवांगना भी नहीं राखै है अर एकाभवावतारी है, तातैं पूज्य है।

उत्तर—पूज्य तौ वीतराग देव ही हैं उनकै हूं विषयानुराग विद्यमान है, सो ही आदिपुराणका एकादशम पर्वमैं;—

स्वावासोपांतिकोद्याने सरःपुलिनभूमिषु।
दिव्यहंसश्चिरं रेमे विहरन् स यदृच्छया ॥१३९॥
परक्षेत्रविहारस्तु नाहमिंद्रेषु विद्यते।
शुक्ललेश्यानुभावेन स्वभोगैः धृतिमीयुषां ॥१४०॥
स्वस्थाने या च संप्रीतिर्निरपायसुखोदये।

न साऽन्यत्र ततोनैषां रिरंसा परभुक्तिषु ॥१४१॥
अहमिंद्रोऽस्मि नेंद्रोऽन्यो मत्तोऽस्तीत्यात्तकच्छनाः ?
अहमिंद्राख्ययाख्यातिं गतास्ते हि सुरोत्तमाः ॥१४२॥

अर्थ—वो दिव्यहंस जो है सो अपने विमानका निकट उद्यानकै विषैं सरोवरनिकै तटकी भूमिमैं अपनी इच्छाकरि विहार करतो संतो चिरकाल रमत भयो ॥ १३९ ॥ अर अहमिंद्रनिकै विष परक्षेत्रविहार नहीं विद्यमान हैं क्योंकि शुक्लेश्याका प्रभावकरि अपने भोगनि करि भली प्रीतिकूं प्राप्त होय है ॥ १४० ॥ अर कष्टरहित सुखका उदयतैं होत संतैं जो निजस्थानमैं भली प्रीति है सो अन्य स्थानमैं नहीं है, तातैं इनिकै परक्षेत्रमैं रमवाको इच्छा नहीं है ॥ १४१ ॥ अर हम ही इंद्र हैं और इंद्र नहीं है या प्रकार प्राप्त भयो है निजसराहनारूप अहंकार जिनकै ते ही सुरोत्तम अहमिंद्र नामकरि विख्यातिनैं प्राप्त होय हैं ॥

इत्यादि वरननतैं सरागी है अर असंयमी ही है तातैं नमस्कारादि योग्य नहीं है। ता सिवाय त्रेपन क्रियानिमैं जा जीवनैं छब्बीसमी क्रियामैं तौ षोडशकारण भावना भाई अर अड़तीसमी क्रियामैं वाही जीवनैं सिद्धनिनैं ही नमस्कार किया, अर वाही जीवकै गुणतीसमी क्रियामैं श्रीदेवी आदि कुलाचलनिवासिनी देव्यां तौ माताको सेवा करी अर कुबेर छः महीना पहली रत्नवर्षादि मंगल किये, अर चालीसमी क्रियामैं वोही जीव सुमेर ऊपरि इंद्र निकरि अभिषेककूं प्राप्त भयो; अर वाही जीवकै छियालीसमी क्रियामैं तौ चक्रका तथा निधिनिका तथा रत्ननिका पूजना कहै है अर सैतालीसमी क्रियामैं दिव्यास्त्रदेवनिका आराधन करना कहै है सो कैसैं

संभवै, क्योंकि तीर्थंकरकूं तौ वे भी त्रिलोकनाथ परमेश्वर सकल परमात्मा कहे हैं; अर इनिकै पूज्य चक्र निधि रत्न दिव्यअस्र देव भये तब ये तौ निकल परमात्मा सिद्ध जे हैं तिनकै समान सर्वोत्तम ठहरे अर तीर्थंकर सामान्य मनुष्य समान ठहरे। इहां भी वे कहै हैं किहमारे मनसैं तौ कहे ही नहीं हैं मूल ग्रंथमैं लिखे हैं ताकूं अन्यथा कैसैं करैं।

उत्तर—शब्दका अक्षरार्थ उनके ज्ञानमैं दीख्या ताहीकूं तौ सत्य कहे हैं अर परंपरा संप्रदायके अर्थतैं महान विरुद्धता होय है ताकूं नहीं गिनै है, अर तीन लोकके समस्त जीवनिकरि पूज्य तीर्थंकरनिकूं भी नीच देवनिके पूजक कहै हैं, ऐसा अर्थ कोऊ हिंदू मुसलमानके मुखतैं नहीं सुन्या कि वाहीकूं तौ समस्तजगतकै पूज्य कहै अर वाहीकूं नीच देवनिका पूजक कहै, तातैं तुमतौ ऐसे कहनवारे पुरुषनिकी संगति मतिकरो अर उनसे विसंवाद भी मतिकरो उनसैं तौ मध्यस्थ भाव ही राखो याहीमैं कल्याण है, हम तौ तुमारे ताई धर्मा त्मा सम्यग्दृष्टी प्रथम भूमिकाने प्राप्त भया जानि कहैं हैं कि जाकै पांचूं इंद्रिय अर छठा मन संबंधी विषयनिके सेवनेका भी प्रमाण नाहीं भया अर पांचूं थावर अर छठा त्रसके घातका भी त्याग नाहीं भया केवल साँचा देवगुरुशास्त्रका श्रद्धानी भया ताके लक्षण कुंदकुंदाचार्य आदि ऋषीश्वरनिके सुनाय श्रद्धान शुद्ध करानेका उद्यम किया है तातैं कहैं हैं कि—इन कियानिमैं जो "पूजयित्वा" शब्द है तथा ऐसैं ही अन्य प्रकरणमैं "पूज्य-संपूज्य-पूजयित्वा-पूजां चकार-पूजनीय" इत्यादि शब्द होय तथा पूजावाची अन्य शब्द होय तहां भी पूजा नाम सत्कारका ही जानना। जैसैं आदिपुराणक पैंतालीसमा पर्वमैं;—

इति प्रश्रयपणीं वाणीं श्रुत्वा तस्य निधीश्वरः ।
तुष्टया संपूज्य पूजाविद्वस्त्राभरणवाहनैः ॥ ५३३ ॥
दत्त्वा सुलोचनायैव तद्योग्यं विससर्ज तं ।
मर्हीं प्रियमिवालिंग्य तं प्रणम्य ययौ जयः ॥ ५३४ ॥

अर्थ—पूर्वोक्तप्रकार अकंपन महाराजाका जयनामा दूतकी हर्षकारी वाणी सुणि करि पूजाको जाननवारो चक्री हर्ष करि वस्त्राभरण वाहन करि वा दूतनैं भले प्रकार पूजि ॥ ५३३ ॥ सुलोचनाके अर्थि याकै योग्य देय अर वा दूतनै विदा कियो सो दूत प्रियाकी नाई पृथ्वीनैं आलिंगन करि चक्रीनैं नमस्कार करि जात भयो ॥ ५३४ ॥

या वचननैं दूतका पूजना दीखै है सो दूतका चक्री करि पूजना संभवै नाहीं तातैं सत्कार ही अर्थ करिये है । तथा उत्तरपुराणसंबन्धी शांतिनाथपुराणमैं;—

दृष्टवंतौ खगाधीशं यथौचित्यं प्रतुष्य सः ।
संभाष्य सामवाक्सारैः पूजयित्वा दिने परे ॥४६३॥
अङ्गहारैः सकरणैः रसैर्भावैर्मनोहरैः ।
नृत्यं तयोर्विलोक्याऽऽसम्मदः परितोषदः ॥ ४६४॥

अर्थ—दमितारि नामा प्रतिनारायणके निकट होणहार बलदेव नारायण नृत्यकारिणीको भेषधारि नृपमंदिरमैं प्रवेश करि दमितारि नामा खगाधीशनैं यथायोग्य देखत भये, अर वो दमितारि हर्षित होय सारभूत साम्यवचन करि बतलाय दूसरैं दिन इनि दोऊनिको नृत्य इंद्रियनिसहित अंगहारकरि तथा मनोहर रसभावकरि हर्षको उपजावनवारो देखि पायो है आनंद जानैं ऐसो नरपति वा नृत्यका-

रिणीका युगलनैं पूजि अर बोलत भयो ॥ ४६३-४६४ ॥

इहां नृत्यकारिणीनिकूं पूजना कह्या है सो सम्भवै नाहीं, तातैं सत्कारपर्वक इनाम देना ही अर्थ जानना। अर आराधनशब्दका भी अंगीकार करना ही मात्र अर्थ जानना, क्योंकि पंचपरमेष्ठी-सिवाय अन्यका पूजना आगममें निषेध्या है।

प्रश्न—पंचपरमेष्ठी सिवाय रत्नत्रय दशलक्षण आदिका भी पूजना योग्य है कि नहीं।

उत्तर—रत्नत्रयादिक पंचपरमेष्ठीतैं भिन्न पदार्थ नहीं हैं, पंचपरमेष्ठीके ही निजस्वभावरूप गुण हैं तातैं रत्नत्रयादिक अनंत गुण हैं ते सर्व ही पूज्य हैं, तैसैं ही नव पदार्थनिकूं देव संज्ञा है ते सर्व पूज्य हैं तिनका नामका;—

इति पंचमहापुरुषाःप्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमला दिशंतु बोधिं बुधजनेष्टां ॥ १ ॥

अर्थ—या प्रकार अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुरूप तौ पंच महापुरुष अर जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, जे हैं वे नमस्कार किया संता बुधजननिकै इष्ट निर्मल ज्ञाननैं द्यो ॥१॥

चौपई—पूज्य पंच गुरु आदिक जानि।
पट् अनायतन त्याज्य बखानि ॥
पूज्यापूज्य किये निरनीत।
आगमरीति अनौपम नीति ॥ १ ॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकांडे पूज्यापूज्यनिर्णयो नाम पंचमोल्लासः।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

अथ पूज्यपूजकदिशानिर्णय लिख्यते ।

श्रीजिन श्रीगुरु परमऋपि, जिन प्रतिमा जिनग्रंथ।
सन्मुख मंगल करन हित, करन कहे निर्ग्रंथ ॥ १ ॥

प्रश्न—पूज्यापूज्यनिर्णयमें पूज्यपणा तौ पंचपरमेष्ठीकै तथा जिनधर्मकै तथा जिनवचनकै तथा जिनप्रतिमाकै तथा जिनालयकै सिद्ध भया अर इनि सिवाय कुदेवादिकनिकै अपूज्यपणा सिद्ध भया, परंतु केई पुरुष तौ पूज्यकै सन्मुख खड़ा होय पूजन करै हैं अर केई पुरुष दक्षिणभागमें बैठि पूजन करै हैं सो आगमत कैसे योग्य है ।

उत्तर—आदिपुराणमें केवलपूजा इंद्रकृतविधानका, श्लोक;—

अथोत्थाय तुष्टया सुरेंद्राः स्वहस्तैः,
जिनस्यांघ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः ॥ १ ॥

अर्थ—अथानंतर प्रतीतवान कहिये सम्यग्दृष्टी सुरेंद्र जे हैं ते हर्षकरि खड़ा होय अपनेहाथनिकरि जिनेंद्रके चरणनिका पूजन करते भये ॥१॥ या वचनतैं खड़ा होय पूजन करना उचित है ।

प्रश्न—या श्लोकमें 'उत्थाय' पद है तातैं तुम खड़ा पूजन करना कहौ हौ सो बने नाहीं, क्योंकि सभामेंसूं ऊठि पूजन कियो होयगो; तातैं 'उत्थाय' पद लिख्यो है ।

उत्तर—सभामें तौ पूजन किया पाछै बैठना लिख्या है, इहां तौ दर्शन करि नमस्कार करि खड़ा होय पूजन लिख्या है ।

प्रश्न—ऐसैं है तौ हू नमस्कार करि खड़ा होना जानो खड़ा रह पूजन करना तौ नहीं समवै ।

उत्तर—नमस्कार करि खड़ा होना अर पूजन करना तौ तुमनैं मान्या अर खड़ा पूजन करना नहीं संभवता बताया तौ याकै वीचिमैं बैठनाका वाचक और पद होय सो बताओ नहीं तर अंगीकार करो

तथा मूलाचारमें चतुर्विंशतिस्तवनविधानकी गाथा;—

१चउरंगुलंतरपादो पडिलेहिय अंजलीकयपसत्थो।
अव्वाखित्तो वुत्तो कुणदि य चउवीसत्थयं भिक्खू ७३

अर्थ—च्यार अंगुलके अंतररूप हैं पद जाके अर त्याग्यो है शरीरके अवयवनिको हलन चलन जानैं (यो अर्थ चकारतैं प्राप्त भयो है) अर शरीर भूमि आसन आदिनैं शोधि करि कियो है पिच्छिकासहित अंजुलीको संपुट जानैं अर प्रशस्त कहिये साम्यभावयुक्त अर अव्याक्षिप्त कहिये सर्व आकुलता रहित ऐसो भिक्षु कहिये संयमी पुरुष जो है सो चतुर्विंशतिस्तवन करै ॥ ७३ ॥

या वचनतैं अपने पगनिकै च्यार अंगुलको अंतर राखि निश्चल खड़ो रहि शरीर भूमि आसन आदिनैं शोधि हाथ जोड़ि साम्यभावयुक्त होय मनवचनकायकी अन्यक्रिया त्यागि चतुर्विंशतिस्तवन पूजन करै।

प्रश्न—यामैं तौ स्तवन शब्द है तुम पूजन अर्थ कहांतैं करो हौ।

---

१ चतुरंगुलांतरपादः प्रतिलिख्य अंजुलीकृतः प्रशस्तः।
अव्याक्षिप्तः उक्तः करोति च चतुर्विंशतिस्तवं भिक्षुः।
इस गाथाकी संस्कृतछाया लिखित प्रतिमें नहीं थी। यह गाथा मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें ७५ वें नंबरकी है।

उत्तर—स्तवनका लक्षण मूलाचारमें वट्टकेर स्वामी कह्या है सो सुनहु;—

उसहादिजिणवराणं णामणिरुत्तं गुणाणुकित्तं च।
काऊण अचिदूण य तिसुद्धिपणमो थवो णेओ ॥२५॥
ऋषभादिजिनवराणां नामनिरुक्तिं गुणानुकीर्त्तिं च।
कृत्वा अर्चयित्वा च त्रिशुद्धिप्रणामः स्तवो ज्ञेयः ॥२५॥

अर्थ—ऋषभादि जिनवर जे हैं तिनकी नामनिरुक्ति करि गुणानुकीर्त्तन करि पूजन करि मन वचन कायकी शुद्धता करि नमस्कार करै सो स्तवन जानवे योग्य है।

टीका—उसहादिजिणवराणं-ऋषभतीर्थंकर आदिर्येषां ते ऋषभादयस्ते च जिनवराश्च ऋषभादिजिनवरास्तेषां ऋषभादिजिनवराणां वृषभादिवर्द्धमानपर्यंतानां चतुर्विंशतितीर्थंकराणां। णामणिरुत्तिं-नाम्नामभिधानानां निरुक्तिर्नामनिरुक्तिस्तां नामनिरुक्तिं प्रकृतिप्रत्ययकालकारकादिभिर्निश्चयेनानुगतार्थकथनं ऋषभाजितसंभवाभिनंदनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्वचन्द्रप्रभपुष्पदंतशीतलश्रेयांसवासुपूज्यविमलानंतधर्मशांतिकुंथ्वरमल्लिमुनिसुव्रतनमि - अरिष्टनेमिपार्श्ववर्द्धमानाः नामकीर्त्तनमेतत्। गुणाणुकित्ति च-गुणानामसाधारणधर्माणामनुत्कीर्त्तिं च निर्दोषासलक्षणस्तुतिः, लोकस्योद्योतकराः धर्म-

तीर्थकराः ससुरासुरेंद्रमनुष्येंद्रस्तुताः दृष्टपरमार्थतत्वस्वरूपाः विमुक्तघातिकठिनकर्माणः इत्येवमादिगुणानुकीर्त्तनं। काऊण-कृत्वा गुणग्रहणपूर्वकं नामग्रहणं प्रकृत्वा। अच्चिदूण य-अर्चित्वा च गंधपुष्पधूपदीपादिभिः प्रासुकैरानीतैर्द्रव्यरूपैश्च दिव्यैर्निराकृतमलपटलैः सुगंधैश्चतुर्विंशतितीर्थंकरपदयुगलानामर्चनं कृत्वाऽन्यस्याश्रुतत्वात्तेषामेवग्रहणं। तिशुद्धिपणमो-तिस्त्रश्च ताः शुद्धयश्च त्रिशुद्धयस्ताभिः त्रिशुद्धिभिः प्रणामःत्रिशुद्धिप्रणामः मनोवाक्कायशुद्धिभिः स्तुतेः करणं। थओ-स्तवः चतुर्विंशतितीर्थंकरस्तुतिः। नामैकदेशेऽपि शब्दस्य प्रवर्त्तनात् यथा सत्यभामा भामा, भीमो भीमसेनः। एवं चतुर्विंशतिस्तवः स्तवः। णेओ-ज्ञातव्यः। ऋषभादिजिनवराणां नामनिरुक्तिं गुणानुकीर्त्तिं च कृत्वा अर्चित्वा च योऽयं मनोवचनकायशुद्ध्या प्रणामः सः चतुर्विंशतिस्तव इत्यर्थः॥ २५॥

अर्थ—नामनिरुक्ति कहिये प्रकृति प्रत्यय काल कारक ये व्याकरणके अंग हैं इनिकरि निश्चयकरि यथावत नामका अर्थको जो कथन सो नामनिरुक्ति है, सो ही नामकीर्त्तन है सो ऐसैं-ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ,पुष्पदंत,शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति,

कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व, वर्द्धमान, यो नामकीर्त्तन है। अर गुणानुकीर्त्तन कहिये अन्य देव दानव मनुष्यनिमैं नहीं संभवै ऐसें असाधारण धर्मनिका अनुकीर्त्तन, सो निर्दोष आप्तका लक्षणसंयुक्त स्तुति है सो ऐसैं—लोकका उद्योत करनवारा (भावार्थ—लोकका यथावत् स्वरूप दिखावनवारा) अर धर्मतीर्थका करता अर देवनि सहित देवेंद्रनिकरि तथा मनुष्येंद्रनिकरि स्तुतिरूप कीए अर देख्यो है परमार्थरूप तत्त्वस्वरूप जानैं अर, विरै (पर्यो? त्यागे हैं घातिया कठिन कर्म जानैं, या प्रकार इत्यादिक गुणनिको कीर्त्तन करि गुणग्रहणपूर्वक नामग्रहण प्रकर्षपणैं करि गंधपुष्प धूप दीप आदि प्रासुक, अर दूरि भयो है मलपटल जिनतैं अर सुगंधित अर दिव्य ऐसे ल्याये जे द्रव्यरूप तथा भावरूप द्रव्य तिनिकरि चतुर्विंशति तीर्थकरनिके चरणयुगलको पूजनकरि (इहां और देवादिकनिको शास्त्रमैं हुकम नहीं है तातैं तीर्थंकरनिको ही ग्रहण है) अर त्रिशुद्धिप्रणाम कहिये मन वचन कायकूं शुद्ध करि स्तुतिका करना सो स्तव कहिये चतुर्विंशतितीर्थंकरस्तवन है, क्योंकि नामका एकदेशमैं भी सर्वदेश शब्दको प्रवर्त्तन होय है। तातैं जैसैं भामा शब्दतैं सत्यभामा अर भीमशब्दतैं भीमसेन ग्रहण करिये है तैसैं ही स्तवशब्दतैं चतुर्विंशतिस्तवन है सो स्तव है ऐसैं 'स्तेयः' कहिये जाणबो योग्य है॥ भावार्थ—ऋषभादि जिनवरनिकी नामनिरुक्तिकरि अर गुणानुकीर्त्तन करि पूजन करि मन वचन कायको शुद्धता करि जो प्रणाम करै सो चतुर्विंशतिस्तवन है॥ २५॥

या वचनतैं नाम कथन गुणानुकीर्त्तन पूजन प्रणाम ये च्यारूं ही स्तवनके अंग हैं तातैं स्तवनका विधान है सो ही पूजनका विधान है यातैं खड़ा रहि करि ही पूजन करना उचित है।

प्रश्न—यो वचन मुनीश्वरां प्रति है।

उत्तर—यामैं द्रव्यरूप अर भावरूप दोऊ ही द्रव्य कहे हैं तातैं गृहस्थनिकूं तथा मुनीश्वनिरकूं ये ही हुकम है।

अर च्यारूं दिशाओंमैं पूजन करनेका हुकमकी त्रिलोकसारमैं—

दिव्वफलपुप्फहत्था सत्थाभरणा सचामराणीया।
बहुधयतूरारावा गत्ता कुव्वंति कल्लाणं॥ ९६५॥
पडिवरसं आसाढे तह कत्तिय फग्गुणे य अट्ठमिदो
पुण्णदिणोत्ति यभिक्खं दो दो पहरं तु ससुरेहिं९६६
सोहम्मो ईसाणो चमरो वइरोयणो पदक्खिणदो।
पुव्वपरदक्खिणुत्तरदिसासु कुव्वंति कल्लाणं॥ ९६७

अर्थ—दिव्य फल पुष्प हैं हाथ विषैं जिनके अर प्रशस्त आभरण तथा चामर तथा सेनासहित अर बहुत ध्वजा तथा वादित्रनिके शब्दसंयुक्त नंदीश्वर द्वीपमैं जाय कल्याण कहिये पूजन करै है॥९६५॥ सो सर्व वर्ष प्रति आसाढमैं तथा कार्त्तिकमैं तथा फाल्गुनमैं शुक्ल

१ संस्कृतच्छाया-दिव्यफलपुष्पहस्ताः शस्ताभरणाः सचामरानीकाः॥
बहुध्वजतूर्यारावाः गत्वा कुर्वंति कल्याणं॥९६५॥
प्रतिवर्षं आसाढे तथा कार्त्तिके फाल्गुने च अष्टमीतः।
पुण्यदिनांतं चाभीक्ष्णं द्वौ द्वौ प्रहरौ तु ससुरैः॥९६६॥
सौधर्म ईशानः चमरः वैरोचनः प्रदक्षिणतः।
पूर्वापरदक्षिणोत्तरदिशासु कुर्वन्ति कल्याणं॥ ९६७॥

(क) लिखित प्रतिमें छाया नहीं थी। (ख) मुद्रितप्रतियोंमें ये तीनों गाथायें क्रमसे९७५-९७६-९७७के नंबर पर हैं, सो ही ठीक हैं।

अष्टमीके दिनतैं पूर्णमासीके दिन पर्यंत निरंतर दोय दोय प्रहर अपने अपने देवनि सहित ॥ ९६६ ॥ सौधर्म ईशान अर चमर वैरोचन ये च्यारूं प्रदक्षिणारूप पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर दिशानिकै विषैं जिनपूजारूप कल्याण करैं हैं ॥९६७॥

या वचनतैं च्यारूं ही दिशामैं जिनप्रतिमाकै सन्मुख होय पूजन करना योग्य है। तथा मूलाचारमैं चतुर्विंशतिस्तवनविधानके पूर्वमैं;—

१तेसिं अहिमुहदाए अत्था सिज्झंति तह य भत्तीए।
तो भत्ति रागपुव्वं वुच्चइ एदं ण हु णिदाणं ॥७२॥

अर्थ—तिन जिनवरादिकका सन्मुखपणाकरि तथा भक्तिकरि वांछित अर्थ सिद्ध होय है कि आत्मस्वभावकी सिद्धि होय है तातैं या भक्ति रागपूर्वक कहिए है अर निदान नहीं है, क्योंकि यामैं संसारका कारणपणाको अभाव है यातैं ॥ ७२ ॥

या वचनतैं सन्मुख ही पूजन स्तवन भक्ति करना योग्य है।

प्रश्न—तुमनैं तो खड़ा रहि सन्मुख पूजन करना स्थापन किया परंतु जिनसंहितामैं उमास्वामी ऐसा कह्या है;—

पद्मासनसमासीनो नासाग्रन्यस्तलोचनः।
मौनी वस्त्रावृतः सोऽयं पूजां कुर्याज्जिनेशिनाम् ॥१॥
तत्रार्चकः स्यात्पूर्वस्यामुत्तरस्यां च सन्मुखः।
दक्षिणस्यां दिशायां च विदिशायां च वर्जयेत् ॥२॥

१ संस्कृतच्छाया—तेषामभिमुखतया अर्थाः सिद्ध्यंति तथा च भक्त्या।
ततः भक्तिः रागपूर्वं उच्यते एतत् न खलु निदानं ॥७२॥
यह संस्कृतच्छाया लिखित प्रतिमें नहीं थी।

पश्चिमाभिमुखः कुर्यात्पूजां श्रीमज्जिनेशिनः।
तदा स्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसंततिः ॥ ३ ॥
आग्नेय्यां च कृता पूजा धनहानिर्दिने दिने।
वायव्यां च संततिर्नैव नैर्ऋत्यां तु कुलक्षयः ॥४॥
ईशान्यां नैव कर्त्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी।
पूर्वस्यां शांतिपुष्टयर्थमुत्तरे च धनागमः ॥ ५ ॥
अर्हतो दक्षिणे भागे चैत्यानां वंदनं तथा।
ध्यानं च दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—पद्मासन करि बैठि नासिकाका अग्रमैं स्थापन करे हैं नेत्र जानैं अर धारण कियो है मौनव्रत जानैं अर वस्त्रकरि वेष्टित है सो यो जिनेश्वरको पूजन करै ॥ १ ॥ वहां पूजक पूर्वदिशामैं तथा उत्तर दिशामैं सन्मुख रहै अर दक्षिण दिशामैं तथा विदिशामैं पूजानैं वर्जै ॥ २ ॥ अर श्रीमज्जिनेश्वरकी पूजा पश्चिमदिशा सन्मुख करै तौ वाही समय संततिको छेद होय अर दक्षिणमैं करै तौ संतति नहीं होय ॥ ३ ॥ अग्निदिशामैं करी पूजा दिन दिनमैं धनकी हानि करै है, अर वायव्य दिशामैं करै तौ कुलको क्षय होय ॥ ४ ॥ अर ईशान दिशामैं सौभाग्यकी हरनवारी पूजा नहीं करणीं, अर पूर्व दिशामैं शांतिकै तथा पुष्टिकै अर्थि करणी, अर उत्तर दिशामैं करै तौ धनको आगम होय ॥ ५ ॥ अर अरहंतका तथा अरहंतप्रतिमाका दक्षिण भागमैं वंदना करवो योग्य है अर दक्षिण भागमैं ही ध्यान करै तथा दीपकस्थापन भी दक्षिण भागमैं ही करै ॥ ६ ॥

या वचनतैं पूर्व उत्तर सन्मुख ही बैठि पूजन करिवौ योग्य है।

उत्तर—ये वचन सूत्रकार उमास्वामीके तौ हैं नाहीं।

प्रश्न—ये तुमनैं कैसे जानी।

उत्तर—हमनैं अनुमानतैं जानी।

प्रश्न—औसा अनुमान कौनसा है।

उत्तर—यो अनुमान औसैं है कि जिनागमको लक्षण समंतभद्र स्वामी रत्नकरंडमें औसो लिख्यो है;—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥

अर्थ—आप्तको भाषित होय अर स्वमत परमतकी युक्ति करि उल्लंघन करनेमैं नहीं आवै अर प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणको अविरोधी होय अर तत्त्वस्वरूप उपदेशको करता होय अर सर्वको हितकारी होय अर कुमारगको खंडन करनवारो सो शास्त्र है॥ तथा शीतलनाथपुराणमैं गुणभद्रस्वामी औसा कहा है;—

पूर्वापरविरोधादिदूरं हिंसाद्यपासनं।
प्रमाणद्वयसंवादि शास्त्रं सर्वज्ञभाषितम्॥ ६८॥

अर्थ—पूर्वापरविरोध आदि दूषणनि करि दूरवर्ती अर हिंसादिक पापनिको नाश करता अर प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणद्वयको कहनवारो होय अर सर्वज्ञभाषित होय सो शास्त्र है॥ ६८॥

शास्त्रका लक्षण तौ औसा है, अर सूत्रकार उमास्वामीके वचन भी महान गंभीर हैं; अर जिनसंहिताके वचन उनतैं विरुद्ध प्रकट भासैं हैं, सो औसैं:— प्रथम तौ उमास्वामी सूत्रकारके होनेका समयवरननका प्रसिद्ध श्लोक सुनो;—

वर्षे सप्तशते चैव सप्तत्या च विस्तृतौ ।
उमास्वामी मुनिर्जातः कुंदकुंदस्तथैव च ॥

अर्थ—महावीरस्वामीनैं सातसै सत्तरि वर्ष वितीत भये पीछैं उमास्वामी नामा मुनि तथा कुंदकुंदस्वामी नामा मुनि उत्पन्न भये हैं॥

तिनके पीछैं जिनसेनजी नेमचन्द्रजी वट्टकेरिजी भये हैं, सो ये जिनसंहिताके वचन सूत्रकार उमास्वामीके ही होते तौ वे जिनसेनादिक भी इनतैं मिलते ही लिखते, विरुद्ध वचन नहीं लिखते, क्योंकि और जो कथन किया है सो सर्व सूत्रके अनुकूल ही किया है; तातैं ये वचन सूत्रकार उमास्वामीके ही मानैतैं आदिपुराणके तथा त्रिलोकसारके तथा मूलाचारके अप्रमाणता आवै सो होजे नाहीं; तातैं जानिये है कि ये वचन सूत्रकार उमास्वामीके नाहीं हैं । उमास्वामी नामा ये और कवि हैं । दूसरां ये वचन अशक्यानुष्ठानरूप हैं।

प्रश्न—अशक्यानुष्ठान कहा होय है ।

उत्तर—अशक्यानुष्ठान उपदेशका दूषण है ।

प्रश्न—याका लक्षण कहा है ।

उत्तर—लक्षण तौ नामका अक्षरार्थमात्र ही है, सो ऐसैं है कि नहीं बणि सकै ऐसा जो अनुष्ठान सो अशक्यानुष्ठान है । अर याका दृष्टांत परीक्षामुख सूत्रकी टीका प्रमेयचन्द्रिकाकी आदिमैं गद्यरूप ऐसा लिख्या है,—"अशक्यानुष्ठानस्येष्टप्रयोजनस्य सर्वज्वरहरतक्षकचूडारत्नालंकारोपदेशस्येव प्रेक्षावद्भिरनादरणीयत्वात्" । अर्थ-अशक्य अनुष्ठानरूप इष्ट प्रयोजनकै सर्वज्वरका हरता तक्षक सर्पका जो चूडारत्न ताका अलंकार करनेका उपदेशकी नांई परीक्षावान पुरुषनि करि आदरणीयपणातैं नहीं कहने योग्य है । भावार्थ—नहीं बणि सकै ऐसा अपना चाहता भी उपदेश परीक्षावाननिकै आदर

करने योग्य नहीं है। याका दृष्टांत ऐसा है कि जैसे किसीके ज्वर है वाकै अर्थ कोई कहै है कि तक्षक सर्पका मस्तककी मणि सर्वज्वरकी हरणहारी त्याय याके कंठकै बांधो ज्यूं याको ज्वर निवृत्ति होय, सो या उपदेशमें ज्वरका मिटना इष्ट है तौ भी तक्षक सर्पके मस्तककी मणिका ल्यावना अशक्य है तातैं परीक्षावान या उपदेशकूं नहीं ग्रहण करै हैं। तैसैं ही यहां कृत्रिम जिनमंदिरनिमैं जिनप्रतिमा उत्तर सन्मुख है तहां पूजक दक्षिणभागमैं बैठैगा ताकै पश्चिम दिशा ही सन्मुख रहैगी तदि पूर्व उत्तरका नियम नहीं करैगा अर पूर्व उत्तरका नियम राखैगा तौ दक्षिण भागका नियम नहीं रहैगा, तातैं जिनसंहिताका उपदेश अशक्यानुष्ठानरूप है। तथा पूजक पद्मासन नासादृष्टि धरि बैठै तदि अभिषेकमें तौ बिम्बस्थापन कलशस्थापन अर्घदान आदि अभिषेक तथा मार्जन तथा पुनः सिंहासनमैं स्थापन नहीं बणैगा, क्योंकि नासादृष्टिवारेकूं अन्यपदार्थ दीखैं नाहीं अर दीखे बिना यथावत् क्रिया बने नाहीं तातैं अशक्यानुष्ठान है, अर पूजनमैं क्रमसैं यथास्थानतैं द्रव्यनिका उठाना तथा चढ़ाना नहीं बणै अर ये सर्व क्रिया किया बिना पूजन होता नाहीं अर ये क्रिया रहैं तौ नासादृष्टि रहै नाहीं, तातैं अशक्यानुष्ठानरूप उपदेश है।

तथा स्ववचनबाधित उपदेश है, सो ऐसैं;—

श्रीचंदनैर्विना नैव पूजा कुर्यात्कदाचन ।
प्रभाते घनसारस्य पूजा कुर्याद्विचक्षणैः [1] ॥

---

१ "पूजा कुर्याद्विचक्षणैः" यहां कर्तृपद तृतीयान्त होनेसे कर्ममें प्रत्यय होना चाहिये सो "कुर्यात्" प्रयोग अशुद्ध है "क्रियेत" ऐसा होना चाहिये था। यदि "पूजां कुर्याद्विचक्षणः" ऐसा पाठ समझा जाय तो सर्वत्र पूजा प्रथमांत प्रयोग है।

मध्याह्ने कुसुमैःपूजा संध्यायां दीपधूपयुक् ।
वामांगे धूपदाहः स्यात् दीपपूजा च सन्मुखी ॥

अर्थ—श्रीचन्दन विना पूजा कदाचित् ही नहीं करै। अर प्रभातमैं विचक्षण पुरुषनिकरि घनसारकी पूजा करबी योग्य है अर मध्यान्हमैं पुष्पनिकरि पूजा करै अर संध्या. समयमैं दीपधूप संयुक्त पूजा करै अर वामभागमैं धूपदाह करै दीपक पूजा सन्मुख करै ॥

यामैं प्रथम तौ 'कदाच' अर 'एव' पद चंदनकै साथि लिख्या तातैं तौ ये नियम भया कि कदाचित् भी चंदन विना पूजन नहीं करै अर पीछैं मध्याह्नमैं पुष्पनिकरि पूजा लिखी तहां चंदनका नाम हू नाहीं लिख्या अर संध्यामैं दीपधूप करि पूजा लिखी वहां भी चंदनका नाम नाहीं लिख्या, तातैं स्ववचनवाधित भया। अर यहां तौ पूर्व उत्तर सन्मुख पूजा लिखी अर इहां भगवत सन्मुख पूजा दीपकतैं लिखी तहां पूर्व उत्तरका नियम नहीं रहि सकै तातैं स्व-चनवाधित अर पूर्वापरविरोध भया । इत्यादि दोषनियुक्त वाधित वचन सूत्रकार उमास्वामीके होजे नाहीं। अर और सुनो कि सम-वसरण वरननमैं ऐसा लिख्या है;—

[यो]ऽर्हन्प्राङ्मुखो वा नियतिमनुसरन्नुत्तराशामुखो वा,
[य]ामध्यास्ते स्म पुण्यांसमवसृतिमहीं तां परीत्याध्युवास
[प्र]ादक्षिण्येन धींद्रा युयुवतिगणिनी नृस्त्रियस्त्रिश्च(?)देव्यो
[दे]वाः सेंद्राश्च मर्त्याःपशव इति गुणा द्वादशामी क्रमेण ॥

अर्थ—मर्यादानैं अंगीकार करनवारो अरहंत देव या पवित्र समवसरणकी पृथ्वीका मध्यके विषैं पूर्व दिशाके तथा उत्तर

दिशाके सन्मुख तिष्ठै है, अर वा अरहंतनैं प्रदक्षिणारूप वेष्टित करि मुनीश्वर कल्पवासिनी देवी आर्यिकानैं आदि लेय मनुष्यनिकी स्त्री ज्योतिषिनी देवी व्यंतरी देवी भवनवासिनी देवी भवनवासी देव व्यंतरदेव ज्योतिषीदेव और मनुष्य तथा पशू ऐसैं ये द्वादश गण अनुक्रमकरि तिष्ठैं हैं॥

तथा प्रसिद्ध, काव्य;—

निर्ग्रंथकल्पवनिता व्रतिकाभभौम-
नागस्त्रियो भवनभौमभकल्पदेवाः।
कोष्ठस्थिता नृपशवोऽपि नमंति यस्य
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय॥

अर्थ—प्रथम कोठेमैं मुनिराज, दूसरे कोठेमैं कल्पवासिनी देवी, तीसरा कोठामैं आर्यकादिक मनुष्यनिकी स्त्रियां, चौथा कोठामैं ज्योतिषिनी देवी, पांचमा कोठामैं व्यंतरिनी देवी, छठा कोठामैं भवनवासिनी, सातमा कोठामैं भवनवासी, आठमा कोठामैं ज्योतिषी, नवमा कोठामैं व्यंतर, दशमा कोठामैं कल्पवासी देव, ग्यारहमा कोठामैं मनुष्य, बारमा कोठामैं पशु, तिष्ठता संता जा भगवाननैं नमस्कार करैं हैं ता जिनेश्वरकै अर्थि हमारो नमस्कार होहू॥

याही अनुक्रमतैं सकलकीर्तिजी छोटा आदिपुराणमैं लिखै है। या वचनतैं पूज्यका तौ पूर्व उत्तर सन्मुख तिष्ठनेका नियम भी भास्या अर पूजकके तौ कुछ दिशाका नियम नहीं भास्या क्योंकि समवसरणमैं च्यारूं ही दिशाके च्यारि मार्ग हैं अर च्यारूं तरफ ही भगवानका मुख भासै है तातैं च्यारूं ही तरफ पूजक पूजन करै है, अर द्वादश सभाके जीव विदिशामैं बैठे च्यारूं ही विदिशाके सन्मुख नामकीर्त्तन गुणकथन स्तवन धर्मश्रवण करता संता

लिखे हैं। तथा आदिपुराणका अड़तीसमां पर्व विवाहक्रियाका वर्णनमें;—

पुण्याश्रमे क्वचित्सिद्धप्रतिमाभिमुखं तयोः।
दंपत्योःपरया भूत्या कार्यः पाणिग्रहोत्सवः॥ १२८॥

अर्थ—कोई पवित्र स्थानमैं सिद्धप्रतिमाके सन्मुख दोऊ वर कन्याका पाणिग्रहणको उत्सव परम विभूति करि करै॥ १२८॥

तथा वर्णलाभक्रियामें;

तदापि पूर्ववत्सिद्धप्रतिमार्चनमग्रतः।
कृत्वान्योपासकान्मुख्यान्साक्षीकृत्यार्पयेद्धनम्॥१३८॥

अर्थ—वा समयमैं भी पूर्ववत् सिद्धप्रतिमाका अर्चन अग्रभागमैं करि अर मुख्य गृहस्थनिनैं साक्षी करि पुत्रकै अर्थि धन अर्पण करै॥ १३८॥

तथा गुणचालीसमा पर्वमैं उपासकदीक्षाका उपदेशमैं;—

जिनार्चाभिमुखं सूरिर्विधिनैनं निवेशयेत्।
तवोपासकदीक्षेयमिति मूर्द्धि मुहुः स्पृशन्॥४१॥

अर्थ—गृहस्थाचार्य जो है सो जिनप्रतिमाके सन्मुख या शिष्यनैं विधिकरि बैठावै अर वारंवार मस्तक स्पर्श करतो संतो कहै कि तिहारै या उपासकदीक्षा है॥ ४१॥

तथा भगवती आराधनामैं आलोचनासमय आचार्यका बैठवाको वर्णन;—

पाचीणोदीचिमुहो आयदणमुहो वसुह णिसण्णो हु।
आलोयणं पडिच्छदि एक्को एक्कस्स विरहम्मि॥६५॥

अर्थ—आचार्य है आलोचनाके श्रवणसमयमैं पूर्वसन्मुख

अथवा उत्तरसन्मुख अथवा जिनमंदिरसन्मुख तिष्ठता एकाकी एकांत स्थानमें एक ही क्षपकको आलोचना श्रवण करै ॥ ६५॥

अर इहां और सुनो कि समवसरणमें मानस्तंभके मूलमें अर अकृत्रिम मंदिरनिमें मानस्तंभके मस्तक परि च्यारूं दिशाकै सन्मुख जिनबिंब विराजमान हैं तहां पूजनवारे दक्षिण भागमें बैठेंगे तौ अर सन्मुख बैठेंगे तौ पूर्व उत्तरका नियम नहीं रहेगा । तथा चैत्यवृक्षनिके मूलमें च्यारूं दिशा सन्मुख जिनबिंब विराजमान हैं तथा सिद्धार्थ वृक्षनिके मूलमें सिद्धबिंब भी च्यारूं दिशा सन्मुख ही विराजमान हैं, तहां भी पूजनवारे दक्षिणभागमें बैठेंगे तौ अर सन्मुख बैठेंगे तौ पूर्व उत्तरका नियम नहीं रहेगा । तथा स्तूपगिरनिमें चहूं दिशा चहूं विदिशाकै सन्मुख जिनबिंब तथा सिद्धबिंब विराजमान हैं तहां पूजनवारेकै किसी ही दिशाका नियम नहीं रहैगा । इत्यादि वचननितैं जिनबिंबका भी कोई दिशा सन्मुख स्थापनेका नियम नहीं रहा अर पूजककै भी नियम नहीं रहा, मुख्य नियम ये रहा कि जिनबिंबके तथा जिनागमके तथा साधुनिकै सन्मुख ही खड़ा रहि पूजन स्तवन करना । तथा आलोचना प्रतिक्रमण मंत्रोपदेश दीक्षा विवाह आदि क्रिया कर्म भी जिनबिंब जिनागमके सन्मुख ही करना । तथा जिन पुरुषनिकै दक्षिणभागमें बैठिकरि ही पूजन करनेका आग्रह है ते भी सन्मुख नमस्कार करि खड़ा रहि विदाम नारेल चढ़ावै ही हैं तथा आरती भी सन्मुख खड़ा ही करैं हैं । तथा महा अभिषेक तथा महा अर्घदान तथा शांतिधारा आदि केई पूजनके अंग सन्मुख खड़ा ही करैं हैं तथापि वचनपक्ष नहीं छोड़ैं सो बड़ा अनर्थकी वार्त्ता है; क्योंकि वर्त्तमान देशकालमें प्रथमानुयोगमें तौ आदि उत्तर खंडद्वयरूप महापुराण, अर करणानुयोगमें त्रिलोकसार, अर चरणानुयोगमें

मूलाचार, इनि सिवाय या प्रकरणका प्राचीन सर्वके प्रामाण्य और ग्रंथ नहीं है अर इनके वचनत तथा अपनी प्रवृत्तितैं भी विरुद्ध वचनपक्ष करना योग्य नाहीं है, अर करैं हैं तो जानिये है कि उनकै हाल संसार बाकी बहुत है; क्योंकि आगमका हुकम तो त्रिलोकसारमैं (गोम्मटसारमें ?)ऐसा है;—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहई।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगेण॥ १॥
सुत्तादुत्तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि॥२॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश किया प्रवचननैं श्रद्धान करै है गुरुका उपदेशकरि अजानमान हुवा संता असत्यार्थनैं भी श्रद्धान करै है॥ १॥ भावार्थ—यथार्थ गुरुको उपदेश तौ मिलै नहीं अर आप अज्ञानमान है सो अन्यथा भी ग्रहण करै है॥ १॥ बहुरि जो सूत्रोक्त सम्यक् दिखाया तत्वनैं नहीं श्रद्धान करै तौ वो ही सम्यग्दृष्टी जीव वाही समयतैं मिथ्यादृष्टी है अर मिथ्यादृष्टी है वाहीकै दीर्घ संसार है॥

ऐसैं तौ जिनागमतैं जिनपूजन सन्मुख खड़ा रहि करि करना सिद्ध भया अर याहीके अनुकूल किंचित् युक्त भी और लिखिये है कि—राजादिकनिकी भी निजरि भेट करते हैं सो सन्मुख खड़ा ही करते हैं अर और भी भाई सगासूं मिलणी मुजरो करिये है सो भी सन्मुख खड़ा ही करिये है, किसीकूं राजादिकनिके दक्षिणभागमैं बैठि निजरि भेट करता देख्या सुन्या नाहीं। तातैं पूज्यकै तौ अग्रभाग ही मैं खड़ा रहि पूजन स्तवन करना योग्य है।

चौपई।

सन्मुख उत्थित ह्वै सिर नाय।
पूजन करहु भविक गुन गाय॥
नरभव सफल गात जिननाम।
अर्चन करत सरत सब काम॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके
सम्यग्दर्शनोद्योतके पचमकांडे पूज्यपूजक-
दिशानिर्णयो नाम षष्ठोल्लासः।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अथ अभिषेकनिर्णय लिख्यते।

लखि प्रतिबिंब जिनेशकौं, नमन ठानि अभिषेक।
करन कह्यो ऋषिवर सकल, धरि धरि परम विवेक॥१॥

प्रश्न—पूज्य पूजककै दिशाका नियम तौ सिद्ध भया परंतु केई पुरुष तो पूज्यका पूजन अभिषेकपूर्वक करैं है अर केई पुरुष पूजन अभिषेकरहित करैं हैं, सो आगमतैं कैसैं योग्य है?

उत्तर—बृहत्सामायिकमैं;—

स्नपनार्चास्तुतिजपान् साम्यार्थं प्रतिमार्पिते।
युंज्याद्यथाऽऽम्नायमाद्यादृते संकल्पितेऽर्हति॥

अर्थ—साम्यभावकी प्राप्तिके अर्थ आम्नायपूर्वक प्रतिमामैं अर्पित किया अरहंतकै विषैं स्नपन अर्चन स्तवन जपन इन च्यारूं-हीनै युक्त करै अर संकल्पित अरहंतकै विषैं स्नपन विना पूजन-स्तवन जपन ये तीनूं ही करै। भावार्थ—साकार स्थापनारूप प्रतिमा-

का तौ अभिषेक पूजन स्तवन जपन क्यारूं ही करना अर पुष्प अक्षतादिकनिमैं करी जो निराकार स्थापना ताका स्तवन तौ नहीं करना अर पूजन स्तवन जपन करना।

प्रश्न—अभिषेक करना तौ श्रद्धान किया परंतु केई पुरुष तौ पंचामृत करि करैं हैं, सो आगमतैं कैसैं है।

उत्तर—मूल संघमैं दिगंबरनिके किये ग्रंथनिमैं तौ पंचामृतका नाम हू नहीं सुन्या।

प्रश्न—तुम सर्व ग्रंथनिका नियम करो हो सो सर्वज्ञ हो कहा।

उत्तर—हम सर्वज्ञ तौ नाहीं परंतु सर्वज्ञनैं अनुमान प्रमाणकूं भी प्रमाणभूत कह्या है तातैं यो अनुमान करिये है कि—दिगंबरनिके वचननिमैं प्रत्यक्ष अनुमानके विषयमैं परस्पर विरोधता नहीं है अर अकृत्रिम कृत्रिम बिंबनिका अभिषेक जहां तहां शुद्ध जलतैं ही लिख्या है। सो अकृत्रिम बिंबनिका अभिषेक तौ सिद्धांतसारमैं ऐसैं लिख्या है;—

अभिषेकमहं नित्यं सुरनाथाः सुरैः समम्।
द्विद्विप्रहरपर्यंतमेकैकदिशि शांतये ॥ ६९ ॥
कनत्कांचनकुंभास्यनिर्गतैः निर्मलांबुभिः।
महोत्सवशतैर्वाद्यैर्जयकोलाहलस्वनैः ॥ ७० ॥
नित्यं प्रकुर्वते भूत्या विश्वविघ्नहरं शुभम्।
जिनेंद्रदिव्यबिंबानां गीतनृत्यस्तवैः सह ॥ ७१ ॥

अर्थ—देवेंद्र जे हैं ते देवनि करि साथि एक एक दिशामैं दोय दोय प्रहर पर्यंत अशुभ कर्मकी शांतिकै निमित्त जिनेंद्रके दिव्य बिंबनिका गीत नृत्य स्तवन करि तथा अनेक वादित्रनिकरि तथा

महान उत्सवनिके सैकड़ेनि करि तथा जय जय रूप कोलाहल शब्द-निकरि तथा अन्य विभूति करि संयुक्त कांतिमान सुवर्ण कुंभनिके मुखतैं निकलता निर्मलजल करि निरंतर समस्त विघ्नको हरता शुभ महान अभिषेक नित्य करैं हैं ॥ ६९—७०—७१ ॥

या वचततैं अनेक वादित्रनि सहित जय जय शब्द उच्चारण करता संता शुद्ध जलकरि अभिषेक करना योग्य है। तथा कृत्रिम बिंबनिका भी अभिषेक शुद्ध जलतैं ही आदिपुराणमैं लिख्या है;—

दिक्चतुष्टयमाश्रित्य रेजे स्तंभचतुष्टयम् ।
तत्सध्याजादिवोद्भूतं जिनानंतचतुष्टयम् ॥ १ ॥
हिरण्मयी जिनेंद्रार्चा तेषां बुध्नप्रतिष्ठिता ।
देवेंद्राः पूजयंति स्म क्षीरोदांभोभिषेचनैः ॥ २ ॥

अर्थ—च्यारूं दिशानैं आश्रय करि च्यार मानस्तंभ सोहै हैं सो मानूं जिनेंद्रको अनंतचतुष्टय ही मानस्तंभनिके छलतैं प्रकट भयो है ॥ १ ॥ तिनि मानस्तंभनिके मूलमैं तिष्ठती सुवर्णमयी जिनेंद्रकी प्रतिमा है तिनिमैं देवेंद्र जे हैं ते क्षीर समुद्रके जलकरि अभिषेचन-करि पूजे हैं ॥

या वचनतैं कर्तृ (कृत्रिम) बिंबनिका भी शुद्धजलतैं ही अभिषेक करि पूजन करना योग्य है। अर और स्थलमैं भी जहां तहां सामान्यपणै अभिषेक तौ लिख्या परंतु पंचामृतका नाम नहीं लिख्या तातैं सर्व ग्रंथनिका नियम लिख्या है। अर जा समयमैं मूलसंघमैं भगवन् जिनसेनजी तथा गुणभद्रजी भये हैं तिननैं तौ पंचामृतका नाम मात्र हू कहूं जन्माभिषेकमैं कि राज्याभिषेकमैं कि प्रतिमा अभिषेकमैं कि अभिषेक विना अन्य प्रकरणमैं भी नहीं लिख्या। तथा अन्य दिगंबर मूलसंघके आचार्यनिनैं भी नहीं

लिख्या। तातैं जानिये है कि पंचामृत संज्ञा ही जिनागममें नहीं है। अर बाही समय काष्ठासंघमें जिनसेनजी रविसेनजी भये तिननैं हरिवंशपुराण पद्मपुराणमें जहां तहां पंचामृत लिख्या है तातैं जानिये है कि ये पंचामृतकी राह उनकी है।

प्रश्न—जहां अभिषेक सामान्य पद है तहां पंचामृतका ही क्यूं नहीं कहो।

उत्तर—प्रथम तौ ऐसैं छिपाय करि कहै सो उनके मायाचार है कि भय है जो पंचामृतके विषयमें सामान्य पद कहै। दूसरा जहां अभिषेक द्रव्यकी व्यक्ति लिखी तहां शुद्ध जल ही लिख्या तातैं सामान्य अभिषेक पद है तहां भी शुद्धजलका ही अर्थ करना योग्य है। तथा और विचारनेकी वार्ता है कि अभिषेकतैं भिन्न क्रिया तौ दुग्धकरि करी लिखी परंतु अभिषेक नहीं लिख्या। सो आदिपुराणमें;—

> शांतिक्रियामतश्चक्रे दुःस्वप्नानिष्टशांतये।
> जिनाभिषेकसत्पात्रदानाद्यैः पुण्यचेष्टितैः ॥८५॥
> गोदोहैः प्लाविता धात्री पूजितास्च महर्षयः।
> महादानानि दत्तानि प्रीणितः प्रणयी जनः ॥८६॥

अर्थ—या उपरांति दुःस्वप्नजनित अनिष्टफलकी शांतिके अर्थि जिनेंद्रका अभिषेक तथा सत्पात्रदान आदि पुण्य चेष्टाकरि शांतिक्रिया करत भयो ॥ ८५ ॥ अर गोदुग्धकरि पृथ्वी प्लावित करी अर अष्टद्रव्य करि महर्षीनिकूं पूजे तथा महादान दिये तथा बंधुजन तृप्त किये ॥ ८६ ॥

यामें प्रथम तौ अभिषेक लिख्या ता पीछे और पुन्य चेष्टा करी लिखी, ता पीछें गोदुग्धकरि पृथ्वी प्लावित करी लिखी, ता

पीछैं महर्षीनिकूं पूजे लिखे, तापीछैं महादान दिये लिखे, ता पीछैं बंधुजन तृप्त किये लिखे, ऐसैं सर्व क्रिया भिन्न भिन्न लिखी तिनिमैं सत्पात्रदान अर महादान दोऊ भिन्न भिन्न लिख्या तातैं जानिये है कि सत्पात्रदानमैं तौ मुनीश्वरनिकूं आहार आदि दीया होगा अर महादानमैं अश्व गज सुवर्ण वस्त्र आभूषण आदि बंधुजन आदि राजनिकूं दिये होंगे। अर अभिषेकतैं भिन्न गोदुग्ध करि पृथ्वी प्लावित करी लिखी तातैं जानिये है कि अभिषेक तौ शुद्धजलतैं ही किया होगा अर गोदुग्धतैं पृथ्वी प्लावित करी लिखी सो क्रिया अभिषेकतैं भिन्न और कछू करी होगी तातैं ही भिन्न लिखी है। अर मूलसंघके आर्ष ग्रंथनिमैं तौ अभिषेक शुद्धजलतैं ही है, अर और मूलसंघके नामतैं आधुनिक ग्रंथ हैं तिनमैं लिख्या है परंतु मूलसंघके सिद्धांत शास्त्रनितैं तथा आदि उत्तरपुराणतैं तौ मिलते नाहीं अर पद्मपुराण हरिवंशपुराणतैं मिलते नाहीं, तातैं जानिये है कि ये राह भी उनकी ही है।

प्रश्न—केवल जलतैं ही कैसैं कहो हो, गंधजलतैं सौ आदिपुराणमैं भी लिख्या है;—

शुद्धांबुस्नपने निष्ठां गते गंधांबुभिः शुभैः।
ततोऽभिषेकुमैशानं शतयज्वा प्रचक्रमे ॥

अर्थ—शुद्धजलकरि स्नपननैं हद्दपर पहुंचता संता ता पीछैं देवेंद्र जो है सो भगवाननैं शुभगंध जलकरि अभिषेक करावनेका प्रारंभ करतो भयो॥

या वचनतैं गंधमिश्रित जलकरि तौ अभिषेक करना योग्य है॥

उत्तर—तुमनैं श्लोक कह्या सो तौ सत्य है परंतु ये वर्णन

जन्माभिषेक समयका है अर या प्रतिष्ठित अरहंत प्रतिबिंबकै विषैं फेर जन्माभिषेककी कल्पना करि गंधमिश्रित जलतैं अभिषेक करैंगे तो वहांकी और भी असी क्रिया है;—

गंधैः सुगंधिभिः सांद्रैरिंद्राणी गात्रमीशितुः।
अन्वलिं पंच लिंपद्भिरिवामोदैस्त्रिविष्टपम्॥ १॥
प्रत्यंगमिव विन्यस्तैः पौलोम्या मणिभूषणैः।
स रेजे कल्पशाखीव शाखोल्लासिविभूषणैः॥२॥

अर्थ—इंद्राणी प्रभूके शरीरनैं जलसहित सुगंधित गंधकरि लेपन करत भई सो मानूं सुगंधकरि तीन जगतनैं लेपन करती ही प्रभूके सर्वाङ्गमें लेपन कियो। अर इंद्राणीनैं अंग अंग प्रति स्थापन किये जे मणिनके आभूषण तिनकरि प्रभू असे सोहते भये कि मानूं शाखाके विषैं उल्लासित भये विभूषणनिकरि कल्पवृक्ष ही सोहै है॥२

या वचन तैं सर्वांगमें गंधलेपन आदि सर्व आभूषण भी धारण करावणे पड़ैंगे तातैं जन्माभिषेकका संकल्पकरि अभिषेककी क्रिया करना योग्य नाहीं, क्योंकि ये प्रतिमा प्रथम तौ अरहंत केवलीकी है तथा सामान्यपणै पंचपरमेष्ठीकी भी है यातैं।

प्रश्न—आदिपुराण का चालीसमा पर्वमें;—

जन्मसंस्कारमंत्रोऽयमेतेनार्भकमादितः।
सिद्धाभिषेकगंधांबुसंसिक्तं शिरसि स्पृशेत्॥१०९॥

अर्थ—यो मंत्र जन्मसंस्कारको है या करि आदितैं कहिये प्रथमतैं सिद्धनिका अभिषेक गंधजल करि भले प्रकार सींच्या बालकनैं मस्तक विषैं स्पर्श करै॥ १०९॥

यो बचनतें तो गंधमिश्रित जलतें अभिषेक करना स्थापन करोगे ?

उत्तर—यामें गंधाबुपद है सो प्रथम तो गंधशब्द सामान्यवाची है तामें सुगंध दुर्गंधका निर्णय है ही नहीं, वा सिवाय गंध है सो पुद्गलको गुण है यातें गंधांबु कह्या है, तातें या पदतें ही गंधमिश्रित जलका ग्रहण करणा अयोग्य है, क्योंकि गंधमिश्रित जलतें तौ पादप्रक्षालनका भी निषेध मूलाचारमें अनगारभावनाका व्याख्यानमें लिख्या है;—

मुहणयणदंतधोयणमुव्वट्टणपादधोयणं चेव ।
संवाहणपरिमद्दणसरीरसंठावणं सव्वं ॥ ७४ ॥

टीका—मुखस्य नयनयोर्दंतानां च धोवनं शोधनं प्रक्षालनं, उद्वर्त्तनं सुगंधद्रव्यादिभिः शरीरोद्वर्त्तनं, पादप्रक्षालनं कुंकुमादिरागेण पादयोर्निर्मलीकरणं, संवाहनं अंगमर्दनं पुरुषेण शरीरोपरिस्थितेन मर्दनं, परिमर्दनं करमुष्टिभिस्ताडनं काष्ठमययंत्रेण वा पीडनं, इत्येवं सर्वं शरीरसंस्थानं शरीरसंस्कार साधवो न कुर्वंतीति संबंधः ॥

अर्थ—मुखनयनदंतशोधनं कहिये मुखका तथा नयनका तथा दंतनिका शोधन प्रक्षालन करना, अर उद्वर्त्तनं कहिये सुगंधद्रव्यकरि शरीरका उपटना करना अर पादप्रक्षालनं कहिये कुंकुमादिकका रंग करि चरणनिका निर्मल करना अर संवाहन कहिये शरीरकै ऊपरि तिष्ठता पुरुषकरि अंगका मर्दन करावना अर परिमर्दनं कहिये करमुष्टिकाकरि ताडन करना तथा काष्ठमयी यंत्रकरि अंग-

का पीडना; इत्यादिक या प्रकार आपका सर्व शरीरका संस्थापन कहिये संस्कार साधु पुरुष नहीं करै, ऐसो अर्थसंबंध है ॥ ७४ ॥

या वचनतैं गंधद्रव्यमिश्रित जलकरि पंचपरमेष्ठीका अभिषेक नहीं करना।

प्रश्न—ये वरनन तौ मुनीश्वरनिका है तुम प्रतिमाका अभिषेक गंधमिश्रित जलतैं करनेका निषेध या वचनतैं कैसैं करो हो।

उत्तर—ये प्रश्न तौ अतिमुग्ध पुरुषका सा तुमारे करने योग्य नहीं है क्योंकि प्रतिमा भी तौ उनकी ही है; जाका मूलमैं निषेध है ताका प्रतिमामैं भी करना योग्य नाहीं।

प्रश्न—मूलमैं तौ स्नानका भी त्याग है तुम अभिषेक स्थापन कैसैं करो हो अर अभिषेक स्थापन करो हो तो गंधमिश्रित जलका तथा पंचामृतका भी स्थापन करो।

उत्तर—स्थापन करना अर निषेध करना केवल युक्तितैं ही नहीं होय है क्योंकि केवल युक्ति तौ अयुक्ति है अर आगमकै अनुकूल युक्ति है सो युक्ति है तातैं जैसैं शुद्ध जलतैं अभिषेक करनेकी राह अनादिकालतैं है ताका वचन अनेक आर्षग्रंथनिमैं पाइये है तिनिमैं प्राचीनसिद्धांतनिमैं शिरोमणि तौ त्रिलोकसार है ताका वचन तुमैं सुनाया अर प्रथमानुयोगमैं सर्वकै मान्य प्राचीन सर्वमैं शिरोमणि महापुराण है ताका वचन सुनाया तथा वृहत्सामायिकका तथा सिद्धांतसारका वचन सुनाया तैसैं ही कोई आर्षग्रंथ सर्वकै मान्य होय ताका वचन सुनावो तौ हमारै भी मान्य होय, हमारै तौ आर्षवचन होय सो सर्व प्रमान है। सो ही गोम्मटसारकी टीका अभयनंदिकृतमैं गद्यरूप:—

तत्र नाममंगलमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां, स्थापनामंगलं कृत्रिमाकृत्रिमजिनादीनां प्रतिबिंबं।

अर्थ—तहां अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इनिका नाम कीर्त्तन है सो नाम मंगल है, अर कृत्रिम अकृत्रिम जिनादिकनिका प्रतिबिंब है सो स्थापना मंगल है यामें आदि पदतैं सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ग्रहण करनें क्योंकि नाममंगलमें भी ये ही कहे हैं। तथा वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासारमें भी पंचपरमेष्ठीकी ही प्रतिमा बनावना कह्या है;—

प्रातिहार्याष्टकोपेतं संपूर्णावयवं शुभं।
भावरूपानुविद्धांगं कारयेद्बिंबमर्हतः॥ ६९॥
प्रातिहार्यैर्विना शुद्धं सिद्धबिंबमपीदृशं।
सूरीणां पाठकानां च साधूनां च यथागमम्॥७०॥

अर्थ—प्रातिहार्यका अष्टक करि संयुक्त अर शुभरूप संपूर्ण अवयनिकरि संयुक्त अर भावरूपानुविद्धांगं कहिये साक्षात जिनेंद्रका रूप समान है अंग जाका ऐसा अरहंतको बिंब करै॥ ६९ अर प्रातिहार्य विना शुद्ध सिद्धबिंब करै अर सिद्धबिंबसमान आचार्यनिको तथा उपाध्यायनिको तथा साधनको बिंब आगमप्रमाण करै। *भावार्थ—सर्व अंगोपांग शास्त्रके अनुकूल करै॥ ७०॥*

ता सिवाय जो प्रतिबिंबके तपविशेषके चिह्न हैं सो साधु अवस्थाके हैं कि जैसें वेलिसहित तो बाहुबलिजीका अर फणसहित पार्श्वनाथजीका है सो बिंब तप अवस्थाका है।

उत्तर—महापुराणका आदि उत्तर खंडमें ही लिख्या है, सो ही आदिपुराणकी छत्तीशमी संधिमें;—

विद्याधर्यः कदाचिच्चक्रीडाहेतोरुपागताः।
वल्लीरुद्वेष्टयामासुः मुनेः सर्वांगसंगिनी॥ १८३॥

इत्युपारूढसद्ध्यानबलोद्धततपोबलः ।

स लेश्याशुद्धिमास्कंदन् शुक्लध्यानमुखो भवेत् ।१८४।

अर्थ—कदाचित् क्रीड़ानिमित्त विद्याधरी वा वनमैं आई अर बाहुबलि मुनिका सर्वांगमैं प्राप्त भई वल्लीनै 'उद्वेष्टयामासुः' कहिये उधेड़ती भई ॥ १ ॥ या प्रकार प्राप्त भयो जो उत्कृष्ट ध्यानको बल तातैं उत्पन्न भयो है तपबल जाकै ऐसो बाहुबलि मुनि लेश्याकी शुद्धतानैं धारण करतो संतो शुक्लध्यानकै सन्मुख होतो भयो ॥ २॥

या वचनतैं शुक्लध्यानकै पूर्व ही बेलिका तौ अभाव है तथापि प्राचीनबिंब बेलिसहित देखिये है सो तप अवस्थाका जानिये ।

तथा उत्तरपुराणका पार्श्वनाथपुराणमैं;—

तं ज्ञात्वाऽवधिबोधेन धरणेशो विनिर्गतः ।
धरण्याः प्रस्फुरद्रत्नफणमंडपमंडितः ॥ १ ॥
भद्रं तमस्यादावृत्य तत्पत्नी च फणाततेः ।
उपर्युच्चैः समुद्धृत्य स्थिता वज्रातपच्छिदं ॥ २॥
अमू क्रूरौ प्रकृत्यैव नागौ संस्मरतुः कृतं ।
नोपकारं परे कस्माद्विस्मरंत्यार्द्रचेतसः ॥ ३ ॥
ततो भगवतो ध्यानमाहात्म्यान्मोहसंक्षये ।
विनाशमगमद् विश्वो विकारःकमठद्विषः ॥ ४ ॥
द्वितीयशुक्लध्यानेन मुनिर्निर्जित्य कर्मणां ।
त्रितयं चैत्रमासस्य काले पक्षे दिनादिमे ॥ ५ ॥
भागे विशाखनक्षत्रे चतुर्दश्यां महोदयः ।
संप्राप केवलज्ञानं लोकालोकावभासनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—धरणेंद्र जो है सो अवधिज्ञान करि पार्श्वनाथका उपसर्गनैं जाणि स्फुरायमान रत्ननिका फणमंडपकरि मंडित हुवो संतो पृथ्वीमें आयो ॥ १ ॥

अर वा कल्याणरूप प्रभूनैं वेष्टिनकरि तिष्ठतो भयो अर धरणेंद्रकी पत्नी पद्मावती जो है सो फणनिका पंक्तिकै ऊपरि भलै प्रकार धरणकरि वज्रमई छत्रकरि तिष्ठती भई ॥ २ ॥

इहां ग्रंथकार कहै है कि ये दोऊ नाग नागिणी प्रकृति करि क्रूर हैं तौ हू भगवानका उपकारनैं स्मरण करत भये तो अन्य कोमल परिणामके धारक पुरुष परकृत उपकारनैं कैसैं भूलैं कदाचित हू नहीं भूलैं ॥ ३ ॥

वा पीछै भगवान ध्यानके माहात्म्यत मोहका भलप्रकार नाश करता संता कमठ वैरीकृत समस्त विकार नाशनैं प्राप्त होतो भयो ॥ ४ ॥

अर पार्श्वनाथमुनि दूसरा शुक्लध्यान करि बाकीके ज्ञानावरणी दर्शनावरणी अंतरायरूप घातिया कर्मनिका त्रितयनैं जीति चैत्रमासका कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका दिनका अदिमभागमैं विशाखा नक्षत्रकै विषैं महान उदयको धारक लोकालोकको प्रकाशक केवलज्ञान जो है ताहि प्राप्त होतो भयो ॥ ५-६ ॥

या वचनतैं शुक्लध्यानका प्रथम चरण होतसंतै मोहका नाश भया वाही समय कमठकृत समस्त विकाररूप उपसर्ग मिटि गया तदि फणमंडप आदिका भी कार्य नहीं रहा, ता पीछैं शुक्लध्यानका दूसरा चरण करि बाकीके तीन घातिया नष्ट भये तब केवलज्ञान भया तथापि उपसर्ग समयके चिह्नयुक्त प्रतिबिंब देखिये है सो तप अवस्थाका जानिये है। ऐसैं ही और भी तप विशेषके चिह्नयुक्त होय सो प्रतिबिंब साधुका जानना तैसैं गर्भजन्मके चिह्नयुक्त प्रति-

बिंब बनानेका हुकम भी नहीं सुन्या अर कहूं वर्त्तमानमें तिष्ठता भी नहीं सुन्या।

प्रश्न—जो प्रतिबिंब पुरुषाकार अर निराकार जालीकै समान पारगुजार है सो कौनका है।

उत्तर—ये प्रतिबिंब सिद्धनिका है, क्योंकि द्रव्यसंग्रहमें सिद्ध स्वरूपकी, गाथा;—

णट्टट्टकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धोज्झाएइ लोयसिहरम्मि॥५२
नष्टाष्टकर्मदेहः लोकालोकस्य ज्ञाता द्रष्टा।
पुरुषाकारः आत्मा सिद्धः ध्यायत लोकशिखरस्थः॥५२॥

अर्थ— नष्ट भये हैं ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म अर औदारिक आदि देह जिनके अर लोक अलोकका ज्ञाता द्रष्टा पुरुषाकार लोकका शिखरमें तिष्ठता सिद्ध आत्मा ध्यावो॥ ५२॥

प्रश्न—अरहंतका कहनेतैं याही प्रतिबिंबकूं पांचूं ही कल्याणकका जानना ?

उत्तर—अरहंतका प्रतिबिंब तौ अष्ट प्रातिहार्ययुक्त हो कह्या है सो प्रातिहार्य गर्भ जन्ममें होय नाहीं तातैं तेरमा गुणस्थानवर्ती भगवान अरहंत भट्टारकका ही या प्रतिबिंबकूं जानना।

प्रश्न—जमें प्रातिहार्यके चिह्न नहीं हैं जामें तौ जन्मकल्याणसंबंधी उत्सव करनेका कुछ दोष नहीं ?

उत्तर—प्रथम तौ जा प्रतिबिंबके चरणचौकीमें तौ बलद आदिका चिह्न है अर प्रातिहार्य भिन्न भिन्न कराय स्थापन करै हैं सो तौ तीर्थंकरनिका ही जानो, अर जाके बलद आदिका चिह्न नहीं है अर प्रातिहार्य भी नहीं है ताकूं सिद्धनिका तथा साधुनिका जानो, परंतु

गर्भकल्याणक जन्मकल्याणकका तौ संभवै ही नाहीं क्योंकि वीतरागमुद्रायुक्त प्रतिबिंबमैं कोऊ गर्भजन्मका चिह्न नहीं दीखै है अर जिनबिंब संयमीनिकै पूजने वंदने योग्य हैं तातैं जो कदाचित् याही प्रतिष्ठित बिंबमैं गर्भजन्मका कोऊ चिह्नकरि गर्भजन्मकी संभावना करोगे तौ असंयमीनितैं संयमीनिका दरजा बड़ा है, क्योंकि असंयमी चतुर्थ गुणस्थानी है अर संयमी पंचम आदि गुणस्थानी है तातैं नहीं वंदै है। अर उत्तरपुराणका महावीरपुराणमैं ऐसा लिख्या है;

संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च।
जन्मानंतरमेवैनमभ्येत्यालोकमात्रतः॥ १॥
तत्संदेहे गते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः॥ २॥

अर्थ—संजयंत अर विजयनामा चारण मुनिकै अर्थमैं संदेह उत्पन्न होता संता जन्मते ही भगवान महावीरनैं प्राप्त होय देखवा मात्रतैं ही वा संदेहनैं दूर होतां संतां वै दोऊ चारण मुनि अपनी भक्तितैं या प्रकार बोलते भये कि यो होणहार सन्मति देव है॥१२॥

यामैं प्रत्यक्ष मिलाप अर प्रीतिमैं प्रशंसारूप वचन तौ लिख्या परंतु नमस्कार नहीं लिख्या तथा गर्भ जन्मके उत्सवमैं भी मुनीश्वरनिका आगमन कहूं नहीं लिख्या तौ जन्मोत्सव समयका प्रतिबिंबनैं नमस्कार कैसैं करै, अर कृत्रिम अकृत्रिम अरहंत बिंबनैं मुनीश्वर नमस्कार करैं ही हैं।

प्रश्न—जो प्रतिमा पंच कल्याण करि प्रतिष्ठित है तामैं फेर जन्मकल्याणका संकल्पकरि अभिषेकादि क्रिया करनेका कहा दोष है।

उत्तर—प्रतिष्ठा नाम स्थापनेका है सो जाकी जामैं स्थापना

करिये ताकी सर्व भावना यामैं करिये तब वो नाम पावै तातैं गर्भ आदि जो जो जैसैं जैसैं भया है सो सो तैसैं तैसैं यथाशक्ति प्रतिष्ठा-मैं करिये है अर उनकै जो जो नहीं भया सो सो अन्याय व्यभिचार आदि नहीं करिये है अर दीक्षा भये पीछैं काहू इंद्रादिकनिनैं गर्भ जन्म-का उत्सव उनपै नहीं किया सुन्या, अर स्तवनमैं तौ ऋषभदेवका दश पूर्व भवका हू वरनन किया है तथा गर्भजन्मका हू वैभव वर्णन किया है तैसैं इहां भी प्रतिष्ठामैं प्रतिमाका तप कल्याण भये पीछैं गर्भजन्मका उत्सव करना योग्य नाहीं अर स्तुतिमैं सर्व ही वरनन करना योग्य है।

प्रश्न—जो प्रतिमाकूं पंच परमेष्ठीकी ही मानूंगे तौ अभिषेक ही नहीं बनैगा क्योंकि प्रतिबिंब उनहीका कही हौ तातैं, क्योंकि उनमैं अरहंत सिद्धकै तौ स्पर्श करनेहीका काम नाहीं अर साधुनिकै मूलगुणमैं ही स्नान वस्त्रादिकका त्याग है तातैं।

उत्तर—तुमनैं कह्या सो तौ सत्य है परंतु अभिषेक शुद्धजलतैं करनेका हुकम आर्ष ग्रंथनिमैं है तातैं यामैं जैनी मात्र तौ प्रश्न करै ही नाहीं क्योंकि जिनागमके एक अक्षरकूं भी अश्रद्धानरूप ग्रहण करनेकूं मिथ्यादृष्टी कह्या है, सो भगवती आराधनामैं;—

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो॥ ३९॥

अर्थ—जो पुरुष जिनसूत्रमैं दिखाया एक पदनैं तथा एक अक्षरनैं भी नहीं श्रद्धान करै है सो पुरुष और समस्त आगमका अर्थनैं श्रद्धान करतो संतो भी प्रकट मिथ्यादृष्टी जानवे योग्य है॥ ३९॥

अर अकृत्रिम जिनबिंबनिका अभिषेक वरननको त्रिलोकसारमैं—

ही वरै करै ।

प्रश्न—ये रीति तो पूजनकी है, सचित्तसैं अभिषेक करणेका होय सो कहो ?

उत्तर—प्रथम तो अभिषेक भी पूजनहीका अंग है न्यारा नहीं समझणा ता सिवाय अभिषेक समवसरणका वर्णनमैं प्रतिमाका क्षीरसागरका जलकरि लिख्या तहां तत्न नहीं लिख्या तातैं सचित्तसैं भी है ।

प्रश्न—क्षीरसमुद्रके जलमैं तो है जलचर जीव नहीं हैं तातैं उसका ग्रहण है ?

उत्तर—जलचर तो नहीं हैं परंतु जबतक जलकायके जीव हैं तब तक अचित्त नहीं कह्या जाता है अर तैसैं ही इहां कूपादिकके जलकौं वस्त्रतैं छाणि जलचररहित मानि एक मुहूर्त्तपर्यन्त अभिषेक पूजनमैं ग्रहण करिए है अर मुहूर्त्त उपरांत राखणा होय तौ तीक्ष्ण लवंगादि द्रव्य मिलाय दोय पहर पर्यंत ग्रहण करिए है, अर सचित्तका त्यागीके योग्य द्रव्य अष्टद्रव्यका निर्णयकै अनंतर ही प्रासुकद्रव्यनिर्णयका प्रकरण लिखियेगा तहांतैं जानना ।

प्रश्न—पूजनके पूर्व अभिषेक करना तो सिद्ध भया परंतु वर्त्तमानमैं पूजनके अंतमैं भी अभिषेक करते हैं सो कैसैं है ?

उत्तररूप उत्तरपुराणका बासठमा पर्वमैं,—

विधाय विधिवद्भक्त्या शांतिपूजापुरःसरम् ।
महाभिषेकं लोकेशामर्हतां सचिवोत्तमाः ॥

अर्थ—मंत्रीनिमैं उत्तम जे हैं ते सर्व लोकके स्वामी अरहंत जे हैं तिनिकी भक्तिकरि यथाविधि शांतिपूजापूर्वक महा अभिषेक करि राजाकौं अभिषेककरि सिंहासनमैं स्थापन करते भये ऐसा

संबंध है, यातें शांतिके निमित्त पूजनके अंतमैं भी महाअभिषेक करना योग्य है।

चौपई।

मूलसंघमें आर्षकृतग्रंथ। करत नित्यअभिषेक सुपंथ॥
यजन आदि पुनि अन्तमझार। केवल नीर थकी निरधार।

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीते विद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनाद्योतके प्रथमकांडे जिनाभिषेक-निर्णयो नाम सप्तमोल्लासः।

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

अथ स्थापना निर्णय।

दोहा।

स्वर्ग मध्य पाताल मधि, दुविध थापना थापि।
यजत भव्य जिनपद सुमरि, नमूं जिनद गुन जापि॥

प्रश्न—अभिषेकनिर्णय तो भया परंतु आह्वानन, संस्थापन, संनिधीकरण, पूजन, विसर्जन ऐसैं पंचोपचार पूजन वृद्धव्यवहारतैं प्रवर्त्त है तामैं स्थापना सद्भावा नामा तो साकारा अर असद्भावा नामा निराकारा है, तिनिमैं निराकाराको निषेध वसुनंदिश्रावकाचारमें लिख्या है सो कैसैं है?

हुंडावसप्पिणीए बिइया ठवणा ण होय कायव्वा।
लोए कुलिंगमयमोहियं जदा होइ संदेहो॥३८४॥

अर्थ—हुंडावसर्पिणीकालके विषैं निराकारा नामा दूसरी स्थापना नहीं होय ऐसैं जाननी क्योंकि लोक कुलिंगमय है अर बहुधाकरि निराकार स्थापना करै है तातैं संदेह होय है अर मोह

होय है, यातें ॥ ३८४ ॥

ऐसें कैसें लिख्या है ?

उत्तर—ये वसुनंदिजी बहुश्रुत है इनूंनें कोई आगमतें लिखी होगी परन्तु वर्त्तमानमें तौ जितने प्रबंध पूजनके हैं तिनिमें तौ पंचोपचार ही देखिये है अर निराकारका निषेध कहूं अन्य ग्रंथनिमें सुन्या नाहीं अर सर्व ही जैनी अक्षत पुष्पनिमें स्थापनाकरि पूजें हैं, इतना विशेष तौ सुन्या है कि जा पूज्यका पूजन करणा होय सो पूज्य प्रत्यक्ष विद्यमान होय अर कितनेक काल रहेगा ताका तौ आह्वानन संस्थापन संनिधीकरण विसर्जन तौ होय नाहीं अर केवल पूजन ही होय है जैसैं साक्षात् केवली तथा मुनि तथा अकृत्रिम अर कृत्रिम बिंब विराजमान हैं तिनको पूजन ही होय है अर आह्वानन संस्थापन संनिधीकरण विसर्जन नहीं होय है क्योंकि जो जो प्रत्यक्ष विराजमान होय ताको बुलावणूं बैठावणूं निकट धरतावणूं पुनरुक्त शोभै नाहीं अर कितनेक काल रहैंगे तातैं विसर्जन भी योग्य नाहीं, अर जा भावतें विद्यमान हैं ता भावतैं अन्य भावरूप तथा अन्यप्रकाररूप तथा अन्य पूज्यरूप गुणी तथा गुणका पूजन करणा होय तहां पंचोपचार ही योग्य है क्योंकि आह्वानन संस्थापन संनिधीकरण नहीं करै तौ पूजन किसका करै अर जिन पुष्पादिकनिमें स्थापना करि तिनको पूजन स्तवन वंदना भक्तिकरि विसर्जन भी करै ही क्योंकि सिवाय काल रह सकै नाहीं तातैं ऐसैं स्थापनाको विधान हुन्यो है।

प्रश्न—जहां पंचपरमेष्ठीरूप प्रतिमा विराजमान है तहां स्थापना फेर कौन कारणतैं करै हैं ?

उत्तर—केवल स्थापना निक्षेप हीपूज्य है, नोआगमभावरूप भगवानके सूचक सर्व ही निक्षेप पूज्य हैं तातैं प्रथम तौ निक्षेप-स्वरूप

जानवो योग्य है, यातैं मूलाचारमैं कही है सो;—

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले तहेव भावे य ।
एसो थवम्हि णेओ णिक्खेवो छव्विहो होदि ॥

टीका—नामस्तवः स्थापनास्तवः द्रव्यस्तवः क्षेत्रस्तवः कालस्तवः भावस्तवः एष स्तवे निक्षेपः षड्विधो भवति ज्ञातव्यः। चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अर्थानुगैरष्टोत्तरसहस्रसंख्यैर्नामभिः स्तवनं चतुर्विंशतिनामस्तवः चतुर्विंशतितीर्थंकराणामपरिमितानां कृत्रिमाकृत्रिमस्थापनानां स्तवनं चतुर्विंशतिस्थापनास्तवः, तीर्थंकरस्वरूपाणां परमौदारिकस्वरूपाणां वर्णभेदेन स्तवनं द्रव्यस्तवः, कैलाससम्मेदोर्जयन्तपावाचंपानगरादिनिर्वाणक्षेत्राणां समवसृतिक्षेत्राणां च स्तवनं क्षेत्रस्तवः, स्वर्गावतरणजन्मनिष्क्रमणकेवलोत्पत्तिनिर्वाणकालानां स्तवनं कालस्तवः, केवलज्ञानकेवलदर्शनादिगुणानां स्तवनं भावस्तवः।

अर्थ—नामस्तव स्थापनास्तव द्रव्यस्तव क्षेत्रस्तव कालस्तव भावस्तव ये छह प्रकार स्तवमैं निक्षेप हैं सो जाणवा योग्य हैं। अब इनिके भिन्न भिन्न लक्षण कहैं हैं—चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका अर्थकै अनुकूल जे अष्टोत्तरसहस्रसंख्यारूप नाम तिनकरि जो स्तवन सो चतुर्विंशति नामस्तव है, अर चतुर्विंशति तीर्थंकरनिकी

अपरिमाण कृत्रिम अकृत्रिम स्थापना जे हैं तिनको जो स्तवन सो चतुर्विंशतिस्थापनास्तव है, अर चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका परम औदरिकस्वरूपको वर्णभेदकरि जो स्तवन सो द्रव्यस्तव है, अर कैलास सम्मेदशिखर गिरनारि पावापुर चंपापुरनगरादि निर्वाणक्षेत्रनिको तथा समवसरणक्षेत्रको जो स्तवन सो क्षेत्रस्तव है, अर स्वर्गावतरणसमयादि कहिये गर्भ अर जन्म तथा केवलोत्पत्ति निर्वाणसमयको जो स्तवन सो कालस्तव है, अर केवलज्ञान केवलदर्शन आदि गुणनिको जो स्तवन सो भावस्तव है। तथा ऐसें भी जानना कि जा नामके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो नामस्तव है, तथा जा स्थापनाके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो स्थापनास्तव है, तथा जा द्रव्यके आश्रय जो नो आगमरूप पूज्यका स्तवन करिये सो द्रव्यस्तव है, तथा जा क्षेत्रके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो क्षेत्रस्तव है, तथा जा कालके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो क्षेत्रस्तव है, तथा जा कालके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो कालस्तव है, तथा जा भावके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो भावस्तव है; ऐसें स्तवन पूजनके निक्षेप तौ ये जानने, अर वस्तुस्थापनके निक्षेप मुख्यपणें च्यारके अनेक प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें तथा राजवार्त्तिकमें लिखे हैं ते सर्व जानने योग्य हैं इनिके जानेतें प्रवचनके नानाभेद प्रवर्त्ते देखतें संतें नानाप्रकार नयका स्वरूप ही तौ भासै अर संशय मोह नहीं उपजै है॥

भावार्थ—नो आगम भाव नाम जो वस्तु जिस पर्यायविषै वर्त्तमानकालमें होवे ताका है तातैं जो जो निक्षेप नोआगमभावरूप पूज्यके सूचक हैं सो सर्व ही स्तवनपूजनयोग्य हैं। तिनि सबनिका विषय-

भूत जो पूज्य ताका इहूं निक्षेपमय स्वभावन स्मरण करता संता इहूं निक्षेपनिका पूजन करनेका इच्छुक पुरुष जो है सो पुनःस्थापना करि पूजन करै है, तथा केई पूजक भिन्न भिन्न भी स्थापनाकरि पूजन करैं हैं। जैसें नामका पूजन करना होवै तहां अष्टोत्तरसहस्र नामनिकी स्थापना करि अष्टोत्तर सहस्र अर्घ देय तथा एक अर्घ देय पूजन करै है, तथा स्थापनाका पूजन करना होवै तहां तीन लोकका मंडल आदिमें अकृत्रिम कृत्रिम बिंबनिकी स्थापना करि पूजन करै है, तथा द्रव्यका पूजन करना होवै तहां परम औदारिकादि शरीरका वर्ण आदि गुणनिकी स्थापनाकरि भिन्न भिन्न तथा समुच्चयपूजन करै है तथा क्षेत्रका पूजन करना होवै तहां कैलास सम्मेदशिखर पूजन करै हैं समवसरण आदि क्षेत्रनिकी स्थापना करि भिन्न भिन्न तथा समुच्चय पूजन करै है, तथा कालका पूजन करना होवै तहां गर्भादिनिर्वाण-पर्यन्त समयकी तिथिनिका स्थापन करि पूजन करै है, तथा भावनिका पूजन करना होवै तहां अनंत चतुष्टयादि भावनिकी स्थापनाकरि पूजन करै है। तातैं प्रतिमाके विराजमान होते भी ऐसे अभिप्रायतैं स्थापना करना योग्य है अर जो पूजककै विशेष-काल ठहरनेकी थिरता नहीं होवै है सो जिनप्रतिमाको अभिषेककरि अष्टद्रव्यनिकरि भिन्न भिन्न तथा समुच्चय अर्घ चढ़ाय नमस्कार करै है सो भी पूजन ही है॥

प्रश्न—केई जैनी नव स्थापना करै हैं, सो कैसे हैं?

उत्तर—प्रथम तो जिस प्रबंधसैं करै हैं तिस प्रबंधमें नवका ही पाठ है,. दूसरा जिनि नवनिकी स्थापना करैं हैं सो नव जैनी मात्रकै पूज्य है।

प्रश्न—तुमारे कहनेसैं तो प्राचीन रीति भासै है अर रत्नकरंड-की वचनिकामैं अठारासै पचास १८५० के संवतसैं भई लिखी है

सो कैसे है ?

उत्तर—उनके लिखनेका अभिप्राय जैपुरमें मड जाननेका है, पूर्वे कहूं ही नहीं थी अर इहां ही नई कल्पना करी ऐसा तो नहीं लिख्या क्योंकि वे सदासुखजी अनेक ग्रंथ अनेक पूजनप्रबंध अनेक देशनिकी प्रवृत्तिकूं जाननेंवारे थे वे चूकि अर कदाचित् नहीं लिखें। अर तुम सिवाय और भी केई मनुष्य विना समझ्या कहे हैं कि गुमानीरामजीने ही ये रीति खड़ी करी है तातैं लिखिये है कि गुमानीरामजीके महोत काल पहली मैनपुरी वगैरेमें था ही नव। स्थापनाकी रीति पाइये है तथा उनके भी बहोत काल पहलीका पंडित मेधावीकृत धर्मसंग्रहनामा ग्रंथ है ताके नवम अधिकारमें भी ये ही नव पूज्य कहे हैं;—

पूज्योऽर्हन्केवलज्ञानदृग्वीर्यसुखधारकः।
निःस्वेदत्वादिनैर्मल्यमुख्यकैः सयतो गुणैः॥ ४१ ॥
सम्यक्त्वादिगुणः सिद्धः सूरिराचारपंचकः।
पाठको द्वादशांगज्ञः साधुर्वार्यः स्वसाधकः॥ ४२॥
सर्वज्ञभाषितार्थं यद्ग्रथितं गणधरादिभिः।
स्थापितं पुस्तकादौ तच्छ्रुतं पूज्यं च भक्तितः॥ ४३॥
यथैते धर्मिणः पूज्यास्तथा धर्मोऽपि तन्मतः।
स च दृग्बोधचारित्रलक्षणश्च क्षमादिकः॥ ४४ ॥
चकारात् षोडशकारणमपि।

अर्थ—केवलज्ञान केवलदर्शन केवलवीर्य केवलसुखके धारक अर निःस्वेदत्वनैं आदि लेय निर्मल मुख्य गुणनिकरि संयुक्त ऐसे अर्हन् पूज्य हैं॥ ४१ ॥ अर सम्यक्त्वनैं आदि लेय आत्मीक

गुणनिकरि युक्त सिद्ध पूज्य हैं, अर आचारपंचकयुक्त आचार्य अर द्वादशांगका ज्ञाता उपाध्याय अर निजगुणका साधक आर्य कहिये साधु ॥ ४२ ॥ अर जो सर्वज्ञभाषित अर्थ गणधरनिनैं गूंथि पुस्तकादिकमें स्थापित कियो सो श्रुत भक्तितैं पूज्य है ॥ ४३ ॥ अर जैसें तिहारे धर्म पूज्य हैं तैसे अरहंतनिके माम्य धर्म भी पूज्य है सो धर्म दर्शनज्ञानचारित्रलक्षण है अर उत्तमक्षमादिक दशलक्षण है। अर दूसरा प्रकार शब्दतैं षोडशकारण भी धर्ममैं हो जानना ॥ ४४ ॥

या प्रथमत भी ये ही नव पूज्य पत्ररासै इकतालीसका साल पहलीसैं लिखे हैं।

तथा दूसरा जिनसेन काष्ठासंघी हरिवंशपुराणका कर्त्ता भी ये ही कहै है;—

> क्षीरहीरगौरनीरपूरवारिधारयाऽ—
> मन्दकुन्दनन्दनेन सौरभेण सारया।
> देवबोधिसूरिसिद्धदर्शनादिकत्रयं
> द्व्यष्टकारणं यजे वरोत्तमक्षमादिकम् ॥ १ ॥

अर्थः—सुगंधभूत सार करि, क्षीर कहिये दुग्ध अर हीर कहिये हीरो जो है ता समान गौर प्रचुर जलकी धाराकरि, फेरि वै धारा कैसीक है कि प्रचुर कुंदाका पुष्पकरि वृद्धिनैं प्राप्त भई जो सुगंध ताकरिकै सारभूत है, ताकरि अरहंत, जिनवाणी, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सिद्ध, षोडशकारण, उत्तमक्षमादि धर्म ऐसैं नव जो ताहि यजे कहिये यजूं हूं ॥ १ ॥

इति वचनांतर्ते ये राह भी प्राचीन है।

प्रश्न—देव शास्त्र गुरु आदिका एक श्लोकतैं ही स्तवन पूजन करनेकी रीति काष्ठासंघ की है ?

उत्तर—ऐसा कहना भी उचित नाहीं क्योंकि ऐसैं तौ वृहत्सामायिकमैं भी नव देवनिकूं एक ही श्लोकमैं स्तवनरूप किये हैं,—

इति पंचमहापुरुषाः प्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमला दिशंतु बोधिं बुधजनेष्टाम् ॥

अर्थ—या प्रकार 'पांचमहापुरुषाः'कहिये अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु अर जिनधर्म जिनवचन चैत्य चैत्यालय जे हैं ते नमस्कार किया संता बुधजननिकै इष्ट निर्मल ज्ञान द्यो ॥

यामैं भी नवदेवनितैं प्रर्थना एक ही श्लोकमैं करी है सो एकमैं करै तथा भिन्न भिन्न करै या तौ वक्ताकी इच्छा है यामैं एकांत नहीं है। अर और भी देखिये है कि पंच परमेष्ठीको पूजन करै तदि प्रथम तो सामान्यपणैं पांचांहीकी एक श्लोक मंत्रसैं ही स्थापना करि सामान्यपणैं समुच्चय पूजन करै पीछैं पांचांकी भिन्न भिन्न ही तौ स्थापना करै अर भिन्न भिन्न ही पूजन करै। ऐसैं अनेक प्रबंध हैं तौ हैं ही परंतु मूलमंत्र एक आर्याछंदरूप है तामैं पंचपरमेष्ठीनैं नमस्कार करै है तातैं सामिलका तथा भिन्न भिन्नका कुछ एकांत नहीं कहणा।

प्रश्न—इहां भी केई पक्षपाती कहै हैं कि षोडशकारण तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करै है तातैं बंधका कारणपणातैं नित्यपूजनमैं पूजन करना योग्य नाहीं।

उत्तर—पूजन करै है सो गुणाधिकमैं रागकी अधिकता होने करै है अर रागभाव है सो सर्व ही बंधनैं कारण है परंतु

इतना विशेष है कि अरहंतादिकमें राग है सो पुण्यबंधनें कारण है अर षोडशकारणमें राग है सो सर्वोत्तमपणातें तीर्थकरगोत्रका बंधनें कारण है तातें षोडशकारणका पूजन सर्वथा नित्य कर्त्तव्य है।

प्रश्न—नव देवता मूलसंघमें तौ कहे हैं तहां रत्नत्रय षोडशकारण तौ कहे नाहीं अर जिनमंदिर जिनप्रतिमा कहे हैं, सो त्रिभंगीके अंतमें मंगलरूप;—

अरहंत सिद्ध साहूतिदयं जिणधम्मवयणपडिमाओ।
जिणणिलया इति एदे णव देवा दिंतु मे बोहिं॥ ११६॥
अर्हंतः सिद्धाः साधुत्रितयं जिनधर्मवचनप्रतिमाः।
जिननिलया इति एते नव देवा ददतु मे बोधिं॥

अर्थः—अरहंत सिद्ध साधुत्रितयं कहियं आचार्य उपाध्याय साधु अर जिनधर्म जिनवचन जिनप्रतिमा जिनालय या प्रकार ये नव देव जे हैं ते मेरे अर्थि सम्यक् ज्ञान द्यो॥ ११६॥

उत्तर—तुमनें कह्या सो तौ सत्य है क्योंकि नव देव संज्ञा तौ इन नवंहूीकी है परंतु वचनरत्न छोड़ि विचारनेकी बात है कि नवदेवसंज्ञामें नहीं है तौहू रत्नत्रय षोडशकारणकूं जहां तहां पूज्य तौ कहे हैं तातें कषायके आश्रय आपसमें निंदा करि कषाय वधावना कर्मबंधकाका कारण है, तातें ऐसी कुतर्क करना योग्य नाहीं जिनेंद्रका धर्म तौ निःकषाय है।

चौपई।

षट् निक्षेप जिनागममाहिं,
कहे पूज्यके पूज्य सराहिं।
परिहरि पक्ष पंच उपचार,

करहु भव्य लखिये निरधार॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतो विद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकांडे स्थापनानिर्णयो नाम अष्टमोल्लासः॥

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

अथ अष्टद्रव्यनिर्णय लिख्यते।

दोहा।

जिन प्रतिमा तिहुंलोकमें,राजत नित्य निरंत।

ताहि वंदि तत् भजन हित,कहूं द्रव्य विरतंत॥१॥

प्रश्न—स्थापनाका निर्णय तौ सिद्ध भया परंतु स्थापना किये पीछें पूजन करनेमें द्रव्यके स्वरूपमें तथा द्रव्यके चढ़ानेमें भी केई पुरुष विसंवाद करै हैं तातें इनिका भी भिन्न भिन्न निर्णयकरि कहौ क्योंकि प्रथम तौ केई पुरुष जलकी धारा जिन प्रतिमाके चरण ऊपरि चढ़ावैं हैं अर केई पुरुष जिन प्रतिमाके अग्रभागमें चढ़ावैं हैं सो आगमतैं कैसैं योग्य है?

उत्तर—पद्मनंदिपंचविंशतिकामें श्लोक;—

जातिर्जरामरणमित्यनलत्रयस्य

जीवाश्रितस्य बहुतापकृतो यथावत्।

विध्यापनाय जिनपादयुगाग्रभूमौ

धारात्रयं प्रवरवारिकृतं क्षिपामि ॥ १ ॥

अर्थ—जोवके आश्रित बहुत तापका करता जन्म जरा मरणरूप अग्नित्रय जो है ताकूं यथावत दूरि करिनेके अर्थि जिनचरणयुगलकी अग्रभूमिमें अति उत्तम जलकृत धारात्रयनें क्षेपूं हूं ॥ १ ॥

या वचनतें अग्रभूमिमें जलधारा देवो योग्य है।

तथा आदिपुराणके विषै इंद्राणीकृत पूजनमें;—

ततो नीरधारां शुचिस्वानुकारां
लसद्रत्नभृंगारनालस्रुतां ताम्।
निजां स्वांतवृत्तिं प्रसन्नामिवांच्छां
जिनोपांघ्रि सम्पातयामास भक्त्या ॥१॥

अर्थ—तदनंतर शची जो है सो देदीप्यमान रत्ननिकी झारीका नालतें निकलती अर पवित्र तथा आत्माके अनुकरण करनवारी ऐसी निर्मल अपना सुन्दर अंतःकरणकी प्रवृत्ति समान वा जलकी धारा जो है ताहि भक्तिकरि जिनेंद्रका चरणनिके समीप भागके विषैं पटकत भई ॥ १ ॥

इहां अंघ्रि शब्दके उप उपसर्ग है तातें समीप अर्थ भया है यातें अग्रभागमें ही चढ़ावो योग्य है।

इति जलपूजननिर्णय ।

ॐनमःसिद्धेभ्यः ।

प्रश्न—जल चढ़नेकी रीति तौ मानी अब चंदन चढ़ानेकी भी रीति कहो ?

उत्तर—आदिपुराणमें श्लोक—

स्वरुदमृतगंधैः सुगन्धीकृताशैः

भ्रमद्भृंगमालाकृतारावहृद्यैः।
जिनांघ्री स्मरंती विभोः पादपीठं
समानर्च भक्त्या तदा शक्रपत्नी ॥ १ ॥

अर्थ—वा समयमें शक्रपत्नी जो है सो जिनेंद्रका चरणनैं स्मरण करती संती सुगंधित करी है दशूं दिशा जानैं अर भ्रमण करते भ्रमरनिकी पंक्तिनैं कियो जो शब्द ताकरि मनोहर ऐसा स्वर्गलोकतैं उत्पन्न भया गंधकरि प्रभूका पादपीठनैं भक्तिकरि पूजत भई ॥ १ ॥

या वचनतैं पादपीठकै निकट चढ़ाना योग्य है।

प्रश्न—तुमनैं तौ पादपीठके निकट चढ़ाना स्थापन किया परंतु वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासार आदि ग्रंथनिमैं चरणकै लगाना लिख्या बतावे हैं, सो कैसेंहै ?

उत्तर—वै श्लोक कौनसे हैं ?

प्रश्न—सुनो कि वसुनंदिकृत प्रतिष्ठापाठमैं ऐसा है,—

कर्पूरैलालवंगादिद्रव्यमिश्रितचन्दनैः।
सौगंध्यवासिताशेषदिङ्मुखैश्चर्चयेज्जिनम् ॥१॥

अर्थ—अपनी सुगंध करि सुगंधित किये हैं समस्त दिशाके मुख जानैं ऐसा कर्पूर इलायची लवंग आदि द्रव्यनिकरि मिश्रित चंदनि करि जिनेंद्र जो है ताहि "चर्चयेत्" ॥

तथा अभयनंदिकृत श्रेयोभिधानमें;—

काश्मीरपंकहरिचन्दनसारसान्द्र-
निष्यन्दनादिरचितेन विलेपनेन।
अव्याजसौरभतनोः प्रतिमां जिनस्य

संचर्चयामि भवदुःखविनाशनाय ॥ १॥

अर्थ—काश्मीरको पंक अर हरिचंदनको सार जलसहित घसि कर बनायो जो विलेपन द्रव्य ताकरि स्वाभाविक सुगंधित है शरीर जाको ऐसा जिनेंद्रकी प्रतिमानैं भवदुःखका विनाशके अर्थि "संचर्चयामि" ॥ १ ॥

तथा आशाधरकृत नित्यपूजनमैं; —

काश्मीरकृष्णागरुगंधसार-
कर्पूरपौरस्त्यविलेपनेन ।
निसर्गसौरभ्यगुणोल्बणानां
संचर्चयाम्यंघ्रियुगं जिनानाम् ॥ १ ॥

अर्थ—केशरि कृष्णागरु चंदन कपूरनैं आदि लेय मुख्य विलेपन द्रव्यकरि स्वभावतैं सुगंधगुणकी है उत्कटता जाविषैं ऐसा जिनेंद्रका चरणयुगलनैं "संचर्चयामि" ॥ १ ॥

तथा दूसरा शुभचंद्रकृत सहस्रगुणी पूजामैं—

परिमलविमलाढ्यैश्चन्द्रकाश्मीरमिश्रै-
र्निखिलमिलितद्रव्यैश्चन्दनैर्घ्राणपेयैः ।
शिवसदननिविष्टं नाद्यनंतप्रमुक्तं
दशशतजिनवारं चर्चये सिद्धचक्रम् ॥ १ ॥

अर्थ— मैं पूजक जो हूं सो निर्मल सुगंधकरि व्याप्त अर नासिकानैं प्यारा ऐसा कर्पूर केसरि करि मिश्रित संपूर्ण मिले हैं द्रव्य जाविषैं ऐसा चंदनकरि मोक्षमंदिरमैं तिष्ठता आदि अंतरहित हजारां जिनका समूहरूप सिद्धचक्र जो है तानैं "चर्चये" ॥ १॥

तथा सोमदेवकृत यशस्तिलकमें;—

मंदमदमदनदमनं मंदरगिरिशिखरमज्जनावसरे।
कंदमुमालतिकायाश्चन्दनचर्चार्चितं जिनं कुर्वे ॥ १ ॥

अर्थ—अज्ञानमद मदनको दमन करनवारो अर लक्ष्मीरूप लताको कंद ऐसो जिनेंद्र जो है ताहि सुमेर गिरिका शिखरके विषै अभिषेकसमयमें चन्दनकी चर्चाकरि अर्चित करूं हूं ॥ १ ॥

इत्यादि श्लोकनिमें 'चर्चयेत्' 'संचर्चयामि' 'चर्चा' क्रियापद है सो चरणारविंदके लेपन करनेका वाचक है।

उत्तर—प्रथम तौ वसुनंदिप्रतिष्ठापाठका श्लोकमें 'जिनं चर्चये' ऐसा अन्वय है ताका ऐसा अर्थ होय है कि जिनेंद्रनैं 'चर्चये' कहिये पूजत हूं, तथा अभयनंदिकृत श्रेयोविधानका श्लोकमें 'जिनस्य प्रतिमां संचर्चयामि' ऐसो अन्वय है ताको ऐसो अर्थ होय है कि जिनेंद्रकी प्रतिमानैं 'संचर्चयामि' कहिये पूजत हूं,तथा शुभचंद्रकृत सहस्रगुणी पूजाका श्लोकमें 'सिद्धचक्रं संचर्चये' ऐसो अन्वय है ताको ऐसो अर्थ होय है कि सिद्धचक्रनैं 'संचर्चये' कहिये भलै प्रकार पूजत हूं,तथा यशस्तिलकका श्लोकमें 'जिनं चन्दनचर्चार्चितं कुर्वे' ऐसा अन्वय है ताको ऐसो अर्थ होय है कि जिनेंद्रनैं चन्दनकी चर्चा कहिये पूजाकरि अर्चित करूं हूं कि पजूं हूं ऐसो अर्थ है। अर या अर्थतैं विपरीत लेपन करूं हूं विलेपन करूं हूं विलेपन करतभये ऐसा अर्थ करोगे तौ सर्वांगलेपन करना पड़ैगा क्योंकि च्यारूं ही श्लोकनिमैं चरणका नाम नहीं है। तथा यशस्तिलकको श्लोक जन्मसमयको है तातैं, बहुरि और श्लोकनिका अर्थमैं असंगतता आवैगी सो सुनो,प्रथम तौ ब्रह्म नेमिदत्तकृत नेमिपुराणमैं केवलसमयका पूजनमैं;—

चंदनागुरुकारमीरसंभवैः सुविलेपनैः ।
जिनेंद्रचरणांभोजं चर्चयंतिस्म संमदम् ॥ १ ॥

अर्थ— चन्दन अगुरु केसरितैं उत्पन्न भया सुंदर विलेपन द्रव्यकरि जिनेंद्रका चरणकमलनैं हर्षसहित जैसैं होय तसैं 'चर्चयंतिस्म' ॥ १ ॥

इहां भी वा ही चर्चधातुका रूप 'चर्चयंति स्म' है तातैं विलेपन अर्थ करोगे तौ केवलसमयका पूजनमैं लेपन करना कदाचित् ही नहीं संभवैगा क्योंकि प्रथम तौ केवलीको कोऊ स्पर्श ही करै नाहीं दूसरा वा समयका सहस्रनाममैं निर्लेप नाम है यातैं ।

तथा दूसरा पद्मनंदिजीकृत सिद्धपूजनमैं;—

नेत्रोन्मीलविकाशभावनिवहैरत्यंतबोधाय वै
वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैर्फलैः ।
यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत्
सिद्धंस्वादमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयम् ॥

अर्थ—जो पुरुष चिंतामणिसमान शुद्धभावस्वरूप परम ज्ञानात्मक जल चंदन अक्षत पुष्पमाला नैवेद्य और दीप धूप फल जे हैं तिनकरि सिद्ध भयो है आत्मीक रसको स्वाद जाकै ऐसो अचल अगाध बोध जो है ताहि पूजै है ताकै निश्चय करि नेत्रनिका उघाड़नाकै समान प्रकाशका समूहरूप ज्ञानके अर्थ होय है तातैं हम जे हैं ते वा सिद्धरूपनैं संचर्चयामः कहिये पूजैं हैं ॥ १ ॥

यामैं भी 'बोधं अर्चयेत् तं संचर्चयामः' ऐसा अन्वय है अर वै ही चर्च धातुका रूप है वाका ऐसा अर्थ है कि पूजत हूं। अर यहां भी वै ही विपरीत अर्थ करोगे कि लेपन करूं हूं तौ प्रथम तौ

को स्वभाव अमूर्तीक है तातैं ज्ञानका स्पर्श ही नहीं संभवै लेपन कैसैं करोगे, अर ज्ञानकी मूर्ति शास्त्रनैं मानि वाकै न करोगे तो प्रथम तौ गंधके लेपनतैं ही शास्त्रके अक्षर लुप्त जावैंगे वा सिवाय यामैं अष्टद्रव्यतैं ही 'संचर्चयामि' ऐसा संबंध तातैं जलका भी लेपन करना पड़ैगा तथा अक्षत पुष्प नैवेद्य धूप फलकरि भी लेपन करना पड़ैगा सो लेपन शास्त्रके कीये स्त्रकी कहा दशा होयैगी ताहि अनुभव करि डरो। अर शास्त्र वाय अरहंतबिंबकूं तथा सिद्धबिंबकूं ज्ञानकी मूर्ति मानोगे तो नैवेद्य दीप धूप आदि अष्ट द्रव्यका लेपन तौ करना ही पड़ैगा द धातु पाषाणकी मूर्त्तिको भी कहा व्यवस्था होवैगी सो ज्ञानमैं नुभव करि डरो।

तथा जिनसेनजीकृत सहस्रनामका धर्मभूषणनामा मुनिकृत जनमैं 'बृहत् आदि' अष्टशतकका प्रत्येक अर्घदानको;—

जगच्छ्रेष्टो जगन्नाथो जगच्छ्रेष्ठैः प्रपूजितः ।
बृहन्नामा जितानंगश्चर्चे तं सलिलादिकैः ॥ १ ॥

अर्थ—जगतमैं श्रेष्ठ, अर जगतका नाथ, अर जगतमैं श्रेष्ठ जीव जे हैं तिनकरि प्रपूजित, अर जीत्यो है अनंग जानैं ऐसो हत् नामा जिनेंद्र जो है ताहि सलिल आदि अष्टद्रव्यनिकरि 'चर्चे'।

इहां भी ताही चर्च धातुको रूप है तातैं "चर्चे" कहिये पूजत हूं सा ही अर्थ है अर वैसे ही विपरीत अर्थ करोगे कि लेपन रैं हैं तो प्रथम तौ ये सहस्रनाम साक्षात केवलीको स्तुति है तातैं पन करना संभवै नाहीं, वा सिवाय इहां भी सलिल आदिकरि चर्चें ऐसो अन्वय है तातैं आठूं द्रव्यनिकरि ही लेपन करना ड़ैगा सो योग्य नाहीं तातैं जहां तहां पूजनप्रकरणमैं "चर्च" धातुका

चंदनागुरुकाश्मीरसंभवैः सुविलेपनैः ।
जिनेंद्रचरणांभोजं चर्चयंतिस्म संमदम् ॥ १ ॥

अर्थ— चन्दन अगुरु केसरितैं उत्पन्न भया सुंदर विलेपन द्रव्यकरि जिनेंद्रका चरणकमलनैं हर्षसहित जैसैं होय तसैं 'चर्चयंतिस्म' ॥ १ ॥

इहां भी या ही चर्चधातुका रूप 'चर्चयंति स्म' है तातैं विलेपन अर्थ करोगे तो केवलसमयका पूजनमैं लेपन करना कदाचित् ही नहीं संभवैगा क्योंकि प्रथम तो केवलीको कोऊ स्पर्श ही करै नाहीं दूसरा या समयका सहस्रनाममैं निर्लेप नाम है यातैं ।

तथा दूसरा पद्मनंदिस्त्रीकृत सिद्धपूजनमैं;—

नेत्रोन्मीलविकाशभावनिवहैरत्यंतबोधाय वै
वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः ।
यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत्
सिद्धस्वादमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयम् ॥

अर्थ—जो पुरुष चिंतामणिसमान शुद्धभावस्वरूप परम ज्ञानात्मक जल चंदन अक्षत पुष्पमाला नैवेद्य और दीप धूप फल जे हैं तिनकरि सिद्ध भयो है आत्मीक रसको स्वाद जाकै ऐसो अचल अगाध बोध जो है ताहि पूजै है ताकै निश्चय करि नेत्रनिका उघाड़नाकै समान प्रकाशका समूहरूप ज्ञानकै अर्थ होय है तातैं हम जे हैं ते वा सिद्धरूपनैं संचर्चयामः कहिये पूजैं हैं ॥ १ ॥

यामैं भी 'बोधं अर्चयेत् तं संचर्चयामः' ऐसा अन्वय है अर वै ही चर्च धातुका रूप है ताका ऐसा अर्थ है कि पूजत हूं। अर यहां भी वै ही विपरीत अर्थ करोगे कि लेपन करूं हूं तो प्रथम तो

ज्ञानको स्वभाव अमूर्तीक है तातैं ज्ञानका स्पर्श ही नहीं संभवै तदि लेपन कैसैं करोगे, अर ज्ञानकी मूर्ति शास्त्रनैं मानि याकै लेपन करोगे तो प्रथम तौ गंधके लेपनतैं ही शास्त्रके अक्षर लुप्त हो जावैंगे ता सिवाय यामैं अष्टद्रव्यतैं ही 'संचर्चयामि' ऐसा संबंध है तातैं जलका भी लेपन करना पड़ैगा तथा अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फलकरि भी लेपन करना पड़ैगा सो लेपन शास्त्रके कीये शास्त्रकी कहा दशा होवैगी ताहि अनुभव करि डरो। अर शास्त्र सिवाय अरहंतबिंबकूं तथा सिद्धबिंबकूं ज्ञानकी मूर्त्ति मानोगे तौ भी नैवेद्य दीप धूप आदि अष्ट द्रव्यका लेपन तौ करना ही पड़ैगा तदि धातु पाषाणकी मूर्त्तिकी भी कहा व्यवस्था होवैगी सो ज्ञानमैं अनुभव करि डरो।

तथा जिनसेनजीकृत सहस्रनामका धर्मभूषणनामा मुनिकृत पूजनमैं 'बृहत् आदि' अष्टशतकका प्रत्येक अर्घदानको;—

जगच्छ्रेष्टो जगन्नाथो जगच्छ्रेष्टैः प्रपूजितः ।
बृहन्नामा जितानंगश्चर्चे तं सलिलादिकैः ॥ १ ॥

अर्थ—जगतमैं श्रेष्ठ, अर जगतका नाथ, अर जगतमैं श्रेष्ठ जीव जे हैं तिनकरि प्रपूजित, अर जीत्यो है अनंग जानैं ऐसो बृहत् नामा जिनेंद्र जो है ताहि सलिल आदि अष्टद्रव्यनिकरि 'चर्चे'।

इहां भी वाही चर्च धातुको रूप है तातैं 'चर्चे' कहिये पूजत हूं ऐसा ही अर्थ है अर वैसे ही विपरीत अर्थ करोगे कि लेपन करैं हैं तौ प्रथम तौ ये सहस्रनाम साक्षात केवलीकी स्तुति है तातैं लेपन करना संभवै नाहीं, ता सिवाय इहां भी सलिल आदिकरि चर्चे ऐसो अन्वय है तातैं आठूं द्रव्यनिकरि ही लेपन करना पड़ैगा सो योग्य नाहीं तातैं जहां तहां पूजनप्रकरणमैं 'चर्च' धातुका

रूप होय वहां पूजन अर्थ ही करना योग्य है।

प्रश्न—इनि श्लोकनिका अर्थ तौ तुमनें कह्या सो जाण्या परंतु वसुनंदिसंहिताको श्लोक सुनो कि—

अनर्चितपदद्वन्द्वं कुंकुमादिविलेपनैः।
यिंबं पश्यति जैनेंद्रं ज्ञानहीनः स उच्यते ॥ १ ॥

अर्थ—कुंकुम आदितैं उत्पन्न भया विलेपनद्रव्यकरि अनर्चित कहिये नहीं लेपन कियो है चरणयुगल जाको ऐसा जिनेंद्रका बिंबनैं देखै है सो ज्ञानहीन कहिये है ॥ १ ॥

या वचनतैं जिनबिंबका चरणयुगलनैं केसरि चंदन आदितैं बनाया विलेपनद्रव्यकरि लिप्त सदाकाल राखणूं क्योंकि लेपनरहित जिनबिंबनै देखै सो ज्ञानहीन होय ऐसैं कह्यो है यातैं।

उत्तर—प्रथम तौ या श्लोकमैं 'अनर्चित' पद है ताकी निरुक्ति ऐसी होवे है कि 'न अर्चितं अनर्चितं' इहां 'नञ्' अव्ययपद है ताकूं 'अन्' आदेश होय करि "अर्च पूजायां" धातुका रूपतैं मिल्यो समासांत पद है यातैं अपूजित अर्थ होय है यातैं वक्ताको तात्पर्य ऐसो है कि अप्रतिष्ठित जिनबिंबनैं देखै कि भक्तियुक्त दर्शन करै विनय करै नमस्कार करै पूजन करै सो ज्ञानहीन कहिये।

प्रश्न—ऐसा अभिप्राय तुमनें कैसें जान्या ?

उत्तर—हमनैं ऐसैं जान्या कि वसुनंदिजी बहुश्रुत है यातैं तुमनैं कह्या सो अर्थ नहीं राख्या होगा क्योंकि तुमारा कीया ही अर्थ मानैं तौ बड़ा दूषण आवे, सो ऐसैं कि—प्रथम तौ समवसरणमैं विराजमान केवली भगवान है सो सदा निर्लेप सिंहासनतैं ही अंतरिक्ष है ताहीतैं सहस्रनाममैं निर्लेप नाम प्रसिद्ध है तौ उनके दर्शन करनेंवारे सबै जीव अज्ञानी ठहरैंगे।

प्रश्न—ये वार्त्ता केवली भगवानकी है अर यो श्लोक प्रतिमा वरननको है तातैं हमनैं अर्थ कियो सो ही वक्ताको अभिप्राय मानो।

उत्तर—तुमारे तांई अभिषेक वरननमैं स्पष्टतर दिखाया है कि साक्षातमैं अर प्रतिमामैं कुछ भेद नहीं है, फेर भी वे ही प्रश्न करो हौ तौ अपनों मुख दर्पणमैं तौ देखौ कि प्रत्यक्ष वैसाको वैसो ही दीखै है कि कुछ कमती ज्यादा भी दीखै है। जो कमती ज्यादा दीखै जदि तौ साक्षातमैं अर प्रतिबिंबमैं फर्क मानो अर जो वैसाका वैसा ही दीखै तौ केवली भगवानके समान ही प्रतिमानैं मानो। या सिवाय और सुनो कि त्रिलोकसारमैं,—

सिरि गिहसीसठिसंवुजकण्णियसिंहासणं जडामउलं।
जिणमभिसेत्तु मणा वा ऊदिण्णा मत्थए गङ्गा ॥५८५॥

अर्थ—गंगा देवीका जो श्रीमंदिर ताका मस्तक ऊपरि तिष्ठता कमलकी कर्णिकाविषैं तिष्ठता सिंहासनमैं जिनबिंब जो है ताहि अभिषेक करानेके मन करिकैं ही कहा मानो जिनबिंबके मस्तक ऊपरि गंगा अवतरे है ॥५८५॥

या वचनतैं जानिये है कि वे बिंब सदा निर्लेप रहे है क्योंकि जलके प्रवाहतैं चंदन ठहरै नाहीं तौ उन बिंबनिका दर्शन करनेवारा सर्व अज्ञानी ठहरैंगे ?

प्रश्न—ये वरनन भी अकृत्रिम बिंबनिका है अर ये श्लोक कृत्रिम बिंबनिका है।

उत्तर—प्रथम तौ कृत्रिममैं अर अकृत्रिममैं भेद नहीं है ता सिवाय कृत्रिम बिंब भी अभिषेकसमय निर्लेप रहे हैं तातैं अभिषेक करता तथा वा समयमैं दर्शन करता अज्ञानी ठहरैंगे सो है नाहीं।

तथा और भी विचारनेकी वार्त्ता है कि गंधलेपसहित ही प्रतिमा पूज्य ठहरै तौ प्रतिमा तौ अज्ञानकारक ठहरी प्रतिमाका कुछ महातम ही नहीं रह्या अर ज्ञानादिकका कर्त्ता गंधलेप ही ठहरया, तातैं मिथ्यापक्ष मति करो।

प्रश्न—पूजन विना और अनेक प्रकरणमैं अर्च धातुका तथा चर्च धातुका रूप विलेपन अर्थमैं सबकै मान्य है अर तुम एकांततैं पूजन अर्थ ही करो हो सो कैसैं मान्य होगा?

उत्तर—हमारै धातु अर्थमैं एकांत नहीं है ये धातु तौ "अर्च-चर्च पूजनविलेपनयोः" ऐसा धातु पाठमैं लिखे है तथा "धातूनां अनेकार्थत्वात्" या वचनतैं धातुनिका अनेक अर्थ होय है तातैं ही पंचपरमेष्ठीके पूजनमैं पूजन अर्थ करैं हैं क्योंकि गंधलेप तौ रागका उद्दीपक है अर पंचपरमेष्ठी वीतराग हैं तथा दिगंबर हैं यातैं, अर वस्त्रत्यागसमयका वरननमैं गंधलेपका भी त्याग लिख्या है सो गाथा मूलाचारकी आगैं लिखैंगे। तातैं पंचपरमेष्ठीका प्रतिबिंबकै गंधलेपनका निषेध सर्वथा करैं हैं। जैसैं 'दृशि धातु' दर्शन अर्थमैं प्रसिद्ध है तथापि जहां सम्यक्त्वका प्रकरण है तहां दर्शन शब्दका श्रद्धान अर्थ ही करैं हैं तैसैंही इहां पूजन अर्थ ही करैं हैं।

प्रश्न—इहां तौ तुमनैं कहा सो जाण्या परंतु चंद्रप्रभकाव्यका तीसरा सर्गमैं ऐसा लिख्या है—

कृत्वा करावथ स संकुचदब्जकांती
सप्रश्रयामिति जगाद गिरं क्षितीशः।
दन्तावलीविशदरश्मिवितानकेन
लिंपन्मुनींद्रचरणाविव चन्दनेन ॥ ४७ ॥

अर्थ—अथानंतर श्रीषेणनामा पृथ्वीपति जो है सो संकुचित कमलकी कांतिसमान हस्तनिनैं करि अपने दंतनिकी जो पंक्ति ताकी विशद कांतिका समूहरूप चंदनकरि मुनीश्वरनिके चरणनिनैं लेपन करतो ही कहा मानौं आनंदसहित होतो संतो या प्रकार वचन कहत भयो ॥ ४७ ॥

यामैं मुनीन्द्रके चरणनिनैं चन्दनकरि लेपन करना कह्या है।

उत्तर—प्रथम तौ यामैं चन्दनकी उपमा दांतनिकी कांतिकूं दिई है साक्षात् चन्दन है ही नहीं ता सिवाय इस उपमाके वचनतैं ही लेपन करना मानौंगे तौ वहां या श्लोकके प्रथम ऐसा लिखै हैं,—

सोऽप्यात्मनः परिसमाप्य समाधियोग-
माशीर्वचांसि निपपाठ विशुद्धपाठः ।
संस्नापयन्नरपतिं कुमुदोज्ज्वलेन
धर्माभिषेकपयसेव निजस्मितेन ॥ ४८ ॥

अर्थ—सो अनंतनामा चारणमुनि भी अपनी समाधिनैं परिपूर्ण करि कुमुदका पुष्पके समान उज्ज्वल अपना मंदहास्य करि धर्मरूप अभिषेकका जल करि श्रीषेण नरपतिकूं भले प्रकार स्नान करावतो संतो ही कहा मानौं विशुद्ध है पाठ जाको ऐसो आशीर्वादरूप वचन कहत भयो ॥

यामैं मुनीश्वरनिनैं नरपतिकौं स्नान कराया लिख्या है, सो जा श्लोकतैं मुनीश्वरके चरणनिकौं चन्दनकरि लेपन करना मानौगे तौ या श्लोककरि नरपतिका अभिषेक करना मुनीश्वरनिकौं भी योग्य मानना पड़ैगा तातैं ऐसा समझो कि दाऊ ही श्लोकमैं अलंकाररूप कथन है, वा कथनतैं नहीं तो लेपन सिद्ध होय है अर नहीं या कथनतैं स्नान सिद्ध होय है। ता सिवाय इतनी और विचारनेकी

है कि ये तौ काव्य है तामैं भी इतिहासका श्लोक है, अर यत्याचारका आर्षग्रंथ मूलाचार है तामैं मुनीश्वरनिका चरण-प्रक्षालन भी गंधजलतैं करनेका निषेध लिख्या है सो गाथा आगैं लिखैंगे। तातैं ऐसा मानो कि वीतरागीनिकै गंधलेप कदाचित् ही नहीं संभवै।

प्रश्न—इहां भी तुमनैं कह्या सो आयग्या परंतु देवसेनकृत भावसंग्रहमैं ऐसैं लिखै हैं;—

चंदणसुगंधलेओ जिनवरचरणेसु कुणइ जो भविओ।
लहइ तणु विक्किरियं सहावसुगंधयं विमलं॥ ६५॥

अर्थ— जो भव्य जिनचरणके विषैं चन्दनको सुगंधित लेप करै है सो स्वाभाविक सुगंधित निर्मल वैक्रियिक शरीर पावै है॥ ६५॥

या वचनतैं तौ जिनेंद्रका चरणकै लेपन करोगे?

उत्तर—जो अर्थ होय है सो संप्रदायकै अनुकूल होय है कि—जैसैं पार्वतीको नाम हैमवती प्रसिद्ध है तथापि जैनी तौ अर्थ करैंगे तहां हिमवत राजाकी पुत्री है ऐसा ही करैंगे अर वैष्णव अर्थ करैंगे तहां हिमाचल नामा पर्वतकी पुत्री है ऐसा ही अर्थ करैंगे तथा गणेश शब्दका अर्थ जैनी करैंगे तहां तौ द्वादश गणका स्वामी गणधरही कहैंगे अर वैष्णव अर्थ करैंगे तहां विकृत मुखका धारी एकदंतवान गजका मुखवाला कहैंगे तैसैं ही हम तौ इहां भी जिनचरण निकट ही गंधलेपन करना कहैंगे। सो ऐसैं जानो कि अर्थ लक्षणातैं व्यंजनातैं ध्वनितैं व्यंग्यतैं और अनेक तरैं उपचारतैं होय है, केवल अक्षरार्थतैं ही नहीं होय है सो इहां मुख्य अर्थमैं दूषण आवता जानि आरोपिताक्रिया नामा लक्षणातैं अर्थ करैंगे।

प्रश्न—प्रथम तो लक्षणा किसकूं कहो हौ सो कहौ, पीछैं या लक्षणाका लक्षण यामैं कैसैं स्थापन करो हौ सो कहौ ?

उत्तर—प्रथम तौ लक्षणाका लक्षण काव्यप्रकाशमैं सुनो;—

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात् ।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणाऽऽरोपिता क्रिया ॥

अर्थ—मुख्य अर्थनैं बाधित होता संतां रूढितैं तथा प्रयोजनतैं वा शब्दको योग होत संतैं और अर्थ देखिये सो आरोपिता क्रिया नामा लक्षणा है ॥

याका उदाहरण ऐसा है कि—'वटे गावः सुशेरते' या पदको अक्षरार्थ तो ऐसो है कि 'वटके विषैं गौ सोवै है', तथापि यो अर्थ असंभव मानि ऐसो अर्थ करैं हैं कि "वटकी छायामैं गौ सोवै है" तैसैं ही इहां भी निर्लेप भगवान जिनेंद्रकै लेप करना असंभव मानि चरणनिकी छायामैं लेप करना कहैं हैं। तथा "गंगायां घोषः" या पदको भी अक्षरार्थ तो ऐसो है कि 'गंगाकै विषैं घोष है' इहां घोषनाम गोपालनिकी बस्तीको है तथापि गंगाका प्रवाहकै विषैं बस्तीको असंभव मानि 'गंगाके निकट तीरकै विषैं घोष है' ऐसो ही अर्थ करते हैं तैसैं ही इहां भी निकट अर्थ ही करैं हैं।

तथा भक्तामरस्तोत्रमैं मानतुंगजी भगवत् चरणको विशेषण लिख्यो है कि—

आलंबनं भवजले पततां जनानाम् ।

अर्थ—या को अक्षरार्थ ऐसो है कि संसाररूप जलमैं पड़तां मनुष्यनिकूं पकड़णेको पदार्थ है सो भगवान् अर्हतका चरणको पकड़णौं असंभव मानि स्मरण करनेको पदार्थ है ऐसो ही अर्थ करैहैं ।

तथा वसुनंदिकृत श्रावकाचारमैं चंदनपूजनका वरननकी गाथामैं भी जिनेंद्रका चरणको विशेषण ऐसो लिख्योहै कि—

'सुरमउडघिट्टिचलणं'

याको भी अक्षरार्थ ऐसो है कि 'देवनिके मुकुटनिकरि घस्यो है चरण जिनको' तथापि अर्हंत भगवानका चरणकै मुकुटको स्पर्श होनौं असंभव मानि निकटकी भूमिको ही मुकुटतैं घसनौं अर्थ कहैं हैं।

तथा बृहत्सामायिकमैं; श्लोक—

जयति भगवान् हेमांभोजप्रचारविजृंभिता—
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥१॥

अर्थ—जा भगवान्के चरणनिकै विषैं प्राप्त होय परस्पर वैरके धारक अहि नकुल भी पापरहित हुवा संता विश्वासकूं प्राप्त होत भये सो भगवान् जयवंता रहौ, वा भगवान्के चरण कैसेक हैं कि सुवर्णमय कमलनिकै विषैं जो प्रचार ताकरि शोभायमान हैं, तथा देवनिके जे मुकुट तिनिमैं जो मणि तिनितैं निकसी जो प्रभा ताकरि सर्व तरफतैं चुंवित हैं, अर कैसेक हैं अहि नकुलादिक पापरूप है हृदय जिनिका तथा अहंकारतें भ्रमनैं प्राप्त भया है ॥ १ ॥

या श्लोकमैं सुवर्णकमलकै विषैं भगवानको प्रचार लिख्यो है तथापि कमलनिका स्पर्शना अरहंतकै असंभव जानि अंतरीकही प्रचार कहैं हैं तथा देवनिके मुकुटनिमैं रत्न जे हैं तिनितैं निकसी प्रभाकरि चुंवित चरण लिखेहैं तथापि जिनचरणनिके अतिनिकट जाना असंभव जानि दूरितैं ही नमस्कार करना कहैं हैं तथा

अहि नकुलादिकनिका चरणनिके विषैं प्राप्त होना लिख्या है तथापि अरहंतके चरणनिके विषैं प्राप्त होना असंभव जानि सभामैं प्राप्त भया ही कहैं हैं। ऐसैं अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं तैसैं ही या गाथाको अर्थ भी लक्षणातैं करैं हैं।

प्रश्न—पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं श्लोक,—

गद्गद्वचो जिनपतेर्भवतापहारि
नाहं सुशीतलमपीह भवामि तद्वत्।
कर्पूरचन्दनमितीव मयार्पितं सत्
त्वत्पादपंकजसमाश्रयणं करोति ॥ १ ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र, जैसो जिनपतिको वचन संसारकी आतापको हरनवारो है तैसो मैं शीतल भी हूं तथापि भवतापहारी नाहीं, अर इहां होहूंगो या हेतुतैं ही कहा मानूं मैंकरि अर्पण कियो कर्पूर चंदन जो है सो तिहारा चरणकमलको भलै प्रकार आश्रय करै है ॥ १ ॥

यामैं समाश्रय पद है ताको अर्थ विलेपन है तातैं चन्दनका चरणकै विलेपन करना दुरस्त है।

उत्तर—तुमारे कहनेमैं ऐसी सिद्ध हो है कि जो जाको आश्रय करै सो ताकै ऊपरि चढ़ै तौ पुराणनिमैं केई स्थलमैं ऐसा लिखे हैं कि हे राजन्, हम तिहारा चरणनिको आश्रय करैं हैं सो ऐसैं कहनवारा पुरुष राजाका चरणनिकै ऊपरि बैठता होगा, सो ऐसी अविनीतता संभवै नाहीं।

तथा भक्तामरस्तोत्रमैं, श्लोक—

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।

युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते ॥ ४३ ॥

अर्थ—हे जिनेंद्र, भालाका अग्रकरि भेदनैं प्राप्त भये जे गज तिनका रुधिररूप जलको जो प्रवाह कहिये वेग ताका अवतारकै विष कि उतरवाकै विषैं आतुर जे योद्धा तिनकरि भयंकर ऐसा युद्धकै विषैं तिहारा पादपङ्कजरूप वनको आश्रय करनेवारे पुरुष जीत्यो है दुर्जय शत्रुपक्ष जिननैं ऐसे भये संते विजयनैं प्राप्त होय हैं ॥ ४३ ॥

यामैं भी चरणनिकै आश्रयकरनेवारे लिखे हैं ते भी चरणनिकै ऊपरि ही चढ़ते होंगे, सो ऐसो विपरीत अर्थ संभवै नाहीं।

प्रश्न—तुमनैं इनि श्लोकनिका अर्थ तौ समर्थनपूर्वक कह्या सो जान्या परन्तु जिनके चरण ऊपरि चंदन चढ़ानेकी पक्ष है ते इनि श्लोकनिका अर्थ दूसरा सुनाय हम सारिसेनिकै भ्रम पैदा करैं हैं तातैं ऐसा वचन प्रामाण्य बतावो कि जाका दूसरा अर्थ ही नहीं होवै।

उत्तर—आदिपुराणकै विषैं केवलकल्याणमैं इंद्रकृत पूजनवरननमैं, श्लोक—

अथोत्थाय तुष्टया सुरेन्द्राः स्वहस्तैः
जिनस्यांघ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः।
सगंधैः समाल्यैः सधूपैः सदीपैः
सदिव्याक्षतैः प्राज्यपीयूषपिंडैः ॥ १ ॥
पुरो रंगवल्यातते भूमिभागे
सुरेन्द्रोपनीता बभौ सा सपर्या।

शुचिद्रव्यसंपत् समस्तैव भर्तुः
पदोपास्तिमिच्छुः श्रिता तच्छलेन ॥ २ ॥

अर्थ—अथानंतर श्रद्धावान देवेन्द्र खड़े होय हर्षकरि अपने हाथनिकरि गंधसहित पुष्पसहित धूपसहित दीपसहित दिव्य अक्षतसहित प्रचुर घृत तथा अमृतपिंडकरि जिनेन्द्रके चरणनिकी पूजा करत भये॥ १॥

सो इंद्रनिकरि प्राप्त करी पूजा अग्रभागमें रंगावलीकरि विस्तृत भूमिभागके विर्षे सोहत भई सो मानो समस्त ही पवित्र द्रव्यनिकी संपदा भर्त्ताके चरणनिकी उपासना करनेकी इच्छुक पूजाका मिसकरि आश्रित भई है॥

या वचनतैं प्रभूके अग्रभागमें खड़ा होय हर्षयुक्त रंगावलीसंयुक्त अग्रभूमि करि ताके विर्षे जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल चढ़ावने योग्य है। या वचनको और अर्थ भी कदाचित ही नहीं होय है, अर या सिवाय प्राचीन आर्षग्रन्थ भी या प्रकरणको नहीं है तातैं या अर्थसैं मिलतो ही जहां तहां अर्थ करनो योग्य है। अर पद्मनंदिपंचविंशतिकाका श्लोकमें समाश्रयपदको अर्थ निकट वर्त्तनामें संदेह करै ताकूं विचार करनेकी है कि इहां भी 'श्रिता' पद समस्त द्रव्यनिके संबंधमें है तातैं वहां अर्थ लेपन करोगे तौ इहां भी अष्टद्रव्यतैं लेपन करना पड़ैगा सो योग्य नाहीं तातैं वहां भी अर इहां भी निकट वर्त्तावना ही अर्थ योग्य है।

प्रश्न—या वचनतैं और तौ सर्व संदेह दूरि भया परंतु केवली भगवानको स्पर्श इंद्रादिक भी नहीं करैं हैं तातैं इहां तौ अग्रभागमें गंध पुष्प भी चढ़ाये हैं ऐसा उन लोगोंका कहना है ताका भी जवाब होय तौ और कहौ।

उत्तर—महापुराणको उत्तरपुराणसंबंधी महावीरपुराणमें महावीरका प्रथम आहारसमय पूजनवरननमें, श्लोक—

गंधादिभिर्विभूष्यैतत् पादोपान्तमहीतलम् ।
परमान्नं त्रिशुद्धयाऽस्मै सोऽदितेष्टार्थसाधनम् ॥५२१॥

अर्थ—सो राजा या भगवानका चरणनिके निकटकी पृथ्वीतलनैं गंधादिक द्रव्यनिकरि विभूषित करि या प्रभूकै अर्थि अपनें इष्ट अर्थको साधनभूत परम अन्न मन वचन कायकी शुद्धि करि देत भयो ॥ ५२१ ॥

या वचनतैं स्पर्श करने योग्य भगवानका भी पूजनमें गंधादिक समस्त द्रव्य चरणके अग्रभूमिमें ही चढ़ाना सिद्ध भया ।

प्रश्न—ये वरनन भी मुनि अवस्थाका है ।

उत्तर—किंचित् हृदयके नेत्र खोलिकरि तौ प्रश्न करो कि तुम पूजन किसका करो हो ?

प्रश्न—हम पूजन तौ जिनेन्द्रकी प्रतिमाका करैं हैं ।

उत्तर—जिनेन्द्रकी प्रतिमाका पूजन करो हो तौ प्रथम तौ निश्चय करो कि प्रतिमा नाम ही काहेका है, पीछैं जिनेन्द्रकी प्रतिमा कैसीक होय है ताका निश्चय करो, तथा जिनेन्द्रकी प्रवृत्तिका निश्चय करो तातैं तुमारा भ्रमरूप प्रश्न करना मिटै ।

प्रश्न—प्रथम तौ सामान्यपणैं प्रतिमाका लक्षण कहौ ।

उत्तर—अमरकोशमें श्लोक;—

प्रतिमानं प्रतिबिंबं प्रतिमा प्रतियातना ।
प्रतिच्छाया प्रतिकृतीरर्चा पुंसि प्रतिनिधिः ॥ १ ॥

अर्थ—प्रतिमान, प्रतिबिंब, प्रतिमा, प्रतियातना, प्रतिच्छाया, प्रति कृती, अर्चा, प्रतिनिधि, यामें प्रतिनिधि शब्द पुल्लिंग-

वाची है ॥ १ ॥

या वचनतैं साक्षात् प्रतिबिंब है सो प्रतिमा है यातैं साक्षात्तैं सिवाय प्रतिमामैं किंचित् भी अधिक नहीं करना चाहिये, सो ही सर्वमतमैं प्रवृत्ति है कि कृष्णकी प्रतिमाके तौ मोर मुकुट गुंजा हार वंशी आदि चिह्न करे हैं अर रामकी प्रतिमाके धनुषबाण आदि चिह्न करे हैं तैसें ही जिनप्रतिमा जिनसमान राखी चाहिये ।

प्रश्न—ऐसे है तो जिनप्रतिमाका लक्षण कहो ।

उत्तर—बृहत्सामायिकमैं, श्लोक—

> द्युतिमंडलभासुरांगयष्टी-
> र्भुवनेषु त्रिषु भूतये प्रवृत्ताः ।
> वपुषा प्रतिमा जिनोत्तमानां
> प्रतिमाः प्रांजलिरस्मि वन्दमानः ॥ १ ॥
> विगतायुधविक्रियाविभूषाः
> प्रकृतिस्थाःकृतिनां जिनेश्वराणाम् ।
> प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या—
> प्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे ॥ २ ॥

अर्थ—द्युतिमंडलकरि भासुर है अंगयष्टी जिनकी अर तीन लोकमैं प्राणीनिके उपकार निमित्त प्रवर्त्तता जिनोत्तम जे हैं तिनका शरीरकरि समान प्रतिमा जो है ताकूं अंजुलीबद्ध वंदन करतो संतो तिष्ठूं हूं ॥ १ ॥ अर आयुध विक्रिया विभूषा रहित निजस्वभावमैं तिष्ठता कृती जिनेश्वर जे हैं तिनकी कांतिकरि अनुपम प्रतिमा जो है ताकूं प्रतिमागृहके विषैं पापकी शान्तिके अर्थि हर्ष तरफतैं वंदना करूं हूं कि मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना

करि नमस्कार करूं हूं ॥ २ ॥

या वचनतैं जिनेन्द्रके शरीर समान प्रतिमा आनि आयुध-विक्रियाविभूषारहित राखि पूजन स्तवन करना योग्य है।

प्रश्न—इनि श्लोकनिमैं तौ गंधमाल्यका नाम भी नाहीं, तुम गंधमाल्यका निषेध काहेतैं करौ हौ ?

उत्तर—यामैं विभूषा पद है सो गंधमाल्य आदि सर्व आभूषण वस्त्रादिकका ही वाचक जानना क्योंकि मूलाचारमैं अचेलकगुण-व्याख्यानमैं लिखे हैं:—

वत्थाजिणवक्केण य अह वा पत्ताइणा असंवरणं।
णिब्भूसण णिग्गंथं अचेलक्कं जगदि पुज्जं ॥ २६ ॥
१वस्त्रं अजिनं वल्कलं च अथवा पत्रादिना असंवरणं।
निर्विभूषणं निर्ग्रंथं अचेलकत्वं जगति पूज्यम् ॥२६॥

टीका—वत्थाजिणवक्केण य वस्त्रं पट्टचीवरकंबलकादिकं, अजिनं चर्म मगव्याघ्रादिसमुद्भवं, वक्कं वल्कं वृक्षादित्वक्, वस्त्रं चाजिनं च वल्कं च वस्त्राजिनवल्कानि तैः वस्त्राजिनवल्कैः, पट्टचीवरचर्मवल्कलैरपि, अह वा अथ वा पत्ताइणा पत्रादिना पत्राणि आदिर्येषां तानि पत्रादीनि तैः पत्रादिभिः पत्रपालतृणादिभिः असंवरणं अनावरणमनाच्छादनं, णिब्भूसण भूषणानि कटककेयूरमुकुटाद्याभरणमंडनविलेपनधूपनादीनि तेभ्यो निर्गतं निर्भूषणं सर्वरागांग-

१—यह छाया जैसी लिखित प्रतिमैं थी उसी प्रकार लिखीहै।

विकाराभावः,णिग्गंथं ग्रंथेभ्यः संयमविनाशकद्रव्येभ्यो निर्गतं निर्ग्रंथं बाह्याभ्यंतरपरिग्रहाभावः,अचेलक्कं अचेलकत्वं चेलं वस्त्रं तस्य मनोवाक्कायैः संवरणार्थमग्रहणं, जगदि पुज्जं जगति पूज्यं महापुरुषाभिप्रेतवन्दनीयं। वस्त्राजिनवल्कलैः पत्रादिभिर्वा यदसंवरणं निर्ग्रंथं निर्भूषणं च तदचेलकत्वं व्रतं जगति पूज्यं भवतीत्यर्थः ॥

अर्थ—वस्त्र नाम पटवस्त्र तथा सूतवस्त्र तथा कंबल आदिका है, अर अजिन नाम चर्मका है सो मृगतैं तथा व्याघ्र आदितैं उत्पन्न भया चर्मका है, अर वल्क नाम वृक्षकी छालिका है सो वस्त्र तथा अजिन तथा वल्कल इनिकरि, अथवा पत्रादिक कहिये पत्र बालतृण आदि करि भी आवरणरहित अर निर्विभूषण कहिये आभूषणरहित, भावार्थ-सर्व ही रागके अंगरूप विकारका है अभाव जिनकै, अर निर्ग्रंथ कहिये ग्रंथ जे संयमके विनाशक द्रव्य तिनकरि दूरवर्ती, भावार्थ-बाह्य अभ्यंतर परिग्रहको है अभाव जिनकै, अर अचेलकत्वं कहिये चेल जो वस्त्र ताहि आवरणकै अर्थि ग्रहण नहीं करवो, अर 'जगति पूज्यं' कहिये महापुरुषनिकरि वंद्नीक। ऐसैं तौ सर्व पदनिका भिन्नभिन्नरूप अर्थ जानना, अर सर्व पदनिका संबंधरूप अर्थ ऐसैं जानना कि- वस्त्र अजिन वल्कलनिकरि तथा पत्र बालतृणआदि करि भयो आवरण ताकरि रहितपणू अर निर्ग्रंथपणू तथा निर्भूषणपणू ऐसो अचेलकत्वरूप व्रत जगतमैं पूज्य होय है ॥ २९ ॥

या वचनतैं गंधमाल्य भी विभूषणमैं ही है तथा अचेलक गुणमैं इनिका त्याग लिखनेतैं पक्षसमान है । तातैं गंधमाल्य आदि

पदार्थतैं आवरण होवै तथा रागभाव होवै सो द्रव्य कदाचित ही प्रतिमा उपरि लगाना योग्य नाहीं।

इहां भी अपना हठग्राहीपणातैं प्रश्न करै है कि–आभूषण तौ और सब ही अंगके होवै है चरणके ऊपरि किंचित् चंदन लगाणेका कहा दोष है ?

ताका उत्तर—गंधका चरणके लगाणा तौ दूर ही रहौ गंधजल-का संस्कार ही चरणकै करना योग्य नाहीं, सो ही मूलाचारमैं अनगार भावनाका व्याख्यानमैं संस्कारस्वरूप भेदनिरूपणको, गाथा—

मुहणयणदंतधोयणमुव्वट्टण पादधोयणं चेव।
संवाहण परिमद्दण सरीरसंठावणं सव्वं ॥ ७४ ॥

मुखनयनदंतधावनमुद्वर्त्तनं पादधावनं चैव।
संवाहनं परिमर्दनं शरीरसंस्थापनं सर्वम् ॥ ७४ ॥

टीका—मुखस्य नयनयोर्दन्तानां च धावनं शोधनं प्रक्षालनं उद्वर्त्तनं सुगंधद्रव्यादिभिः शरीरोद्वर्त्तनं पादप्रक्षालनं कुंकुमादिरागेण पादयोर्निर्मलीकरणं संवाहनं अंगमर्दनं पुरुषेण शरीरोपरि स्थितेन मर्दनं परिमर्दनं करमुष्टिभिस्ताडनं काष्ठमययंत्रेण वा पीडनं इत्येवं सर्वं शरीरसंस्थानं शरीरसंस्कारं साधवो न कुर्वन्तीति संबंधः ॥

तथा गाथा—

धूवण वमण विरेयण अंजन अब्भंग लेवणं चेव।
णत्थय वत्थयकम्मं सिरवेधं अप्पणो सव्वं ॥ ७५॥

धूपनं वमनं विरेचनं अंजनं अभ्यंगं लेपनं चैव।
नासिकावस्तिकाकर्म शिरोवेधः आत्मनः सर्व्वम् ॥७५

टीका—धूपनं शरीरावयवानामुपकरणानां च धूपेन संस्करणं, वमनं कंठशोधनाय स्वरनिमित्तं वा भुक्तस्य छर्दनं, विरेचनमौषधादिनाऽधोद्वारेण मलनिर्हरणं, अंजनं नयनयोः कज्जलप्रक्षेपणं, अभ्यंगनं सुगंधतैलेन शरीरसंस्कारः,लेपनं चंदन-कस्तूरिकादिना शरीरस्य म्रक्षणं, नासिकाकर्म-वस्तिकर्म शलाकावर्त्तिकादिक्रिया, शिरोवेधः शिरा-भ्यो रक्तापनयनं इत्येवमात्मनः सर्वं शरीर-संस्कारं न कुर्वंतीति ॥ ७५ ॥

अर्थ—'मुखनयनदंतधावनं' कहिये मुखका तथा नयनका तथा दंतका शोधना प्रक्षालन करना, अर 'उद्वर्त्तनं' कहिये सुगंध द्रव्यकरि शरीरका उबटना करना, अर 'पादप्रक्षालनं' कहिये कुंकुमादिका रंगकरि चरणनिका निर्मल करना, अर 'संवाहनं' कहिये शरीरकै ऊपरि विष्ठता पुरुषकरि अंगका मर्दन कराना, अर 'परिमर्दनं' कहिये करमुष्टिकाकरि ताडन करना तथा काष्ठमय यंत्रकरि अंग-का पीडना इत्यादिक या प्रकार आपका सर्व शरीरका संस्थापन कहिये संस्कार साधुपुरुष नहीं करै, ऐसो अर्थ संबंध है ॥ ७४ ॥

तैसें ही और कहैं हैं कि—'धूपनं' कहिये शरीरके 'अंग उपां-गनिका तथा कमंडल पींछी पुस्तकरूप उपकरणनिका धूपकरि संस्कार करना, अर वमन कहिये कंठशोधन निमित्त तथा स्वर शुद्ध

करनें निमित्त किया भोजनका मुखद्वार करि निकालना, अर विरेचन कहिये औषधादिककरि मूलद्वार होय करि मलका निकालना, अर अंजन कहिये नेत्रनिमैं कज्जलका खेपना, अर अभ्यंगन कहिये सुगंध तैल करि शरीरका संस्कार करना, अर लेपन कहिये चंदन कस्तूरी आदिकरि शरीरकै मृक्षण कहिये लेपन करना, अर नासिकाकर्म कहिये तमाखू आदिका सूंघना, अर बस्तिकर्म कहिये गुदाकै शलाका वर्तिका आदि कर्म कराना, अर शिरावेध कहिये शिराकरि रुधिरका निकालना, या प्रकार आदि और हू आपकै सर्व ही शरीरसंस्कार साधु नहीं करै ॥

यामैं गंधलेपन तथा गंधजलकरि पादप्रक्षालन आदि सर्व शरीरसंस्कारका निषेध है।

प्रश्न—सब संस्कारका ही निषेध है तौ जलका भी संस्कार काहेकूं करौ हौ ?

उत्तर—प्रथम तौ जलकृत संस्कारका कहूं निषेध लिख्या नाहीं, दूसरां लघुबाधा दीर्घबाधा आदिमैं मल दूर करना तथा अस्पृश्यके स्पर्श आदि कारण होतैं स्नानका हू करना लिख्या है सो अभिषेकके प्रकरणमैं या ग्रंथमैं भी लिख्या है तैसैं प्रथम तौ गंधमाल्यका हुकम नाहीं, दूसरां निषेधवचन, तीसरां वीतराग निर्लेप पंचपरमेष्ठीकै लेपका करना अनुभव करतैं ही असंभव भासै, चौथां कुछ प्रयोजन भासै नाहीं अर हुकम विना तथा प्रयोजन विना मूर्ख भी प्रवर्तै नाहीं तातैं गंधमाल्य आदि पदार्थनिका संस्कार करना योग्य नाहीं। नाहीतैं ज्ञानवाननिनैं ऐसा स्तवन किया है कि—

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय
सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय ।

प्रशांतरूपाय दिगम्बराय

देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥

अर्थ—जीव आदि तत्त्व जे हैं तिनको दिखावनेवारो, अर सम्यक्त है मुख्य जिनमें ऐसे अष्ट गुणनिको समुद्र, अर अत्यंत शांत है स्वरूप जाको, अर दिशा ही हैं अंबर कहिये वस्त्र जाके ऐसो जिनेंद्र जो है ताकै अर्थि नमस्कार हो ॥

यामें अत्यंत शांत अर दिगम्बर विशेषणतैं ऐसा भाव प्रकट होय है कि शांत होय सो प्रथम ही परम वीतराग होय अर वीतराग होय ताकै गंधमाल्यको काम नाहीं अर दिगंबर होय ताकै सर्व आवरणको अभाव होय अर सर्व आवरणको अभाव होय ताकै गंधमाल्यको कहा काम ?

तथा एकीभावमें, श्लोक—

आहार्येभ्यः स्पृहयति परो यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणां यश्च शक्यः ।
सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१६॥

अर्थ—हे भगवन्, आप सिवाय और देव दानव स्वभावतः असुंदर हैं सो गंधमाल्य आभूषणादिककरि मनोज्ञपणूं वांछे हैं अर जो वैरीनिकै शक्य है सो निरंतर शस्त्रग्राही रहै है, अर तूं सर्व अंगकै विषैं सुभग है तथा तू शत्रूनिकै शक्य नहीं है तातैं तिहारै गंधलेपनादि आभूषणनिकरि तथा वस्त्र कुसुमकरि कहा ? तथा उत्कट शस्त्रनिकरि कहा ? ॥ १९ ॥

या वचनतैं गंधमाल्य आदि द्रव्यनिका कुछ प्रयोजन नाहीं ।

प्रश्न—तुम बारंबार केसर आदि रंगका लेपतैं दिगंबरपणाका अभाव कहो हो परंतु अकृत्रिम प्रतिमाका स्वरूप तौ त्रिलोकसारमें ऐसा कहा है;—

सिंहासणादिसहिदा विणीलकुंतल सुवज्जमयदंता।
विद्दुमअहरा किसलयसोहाधरहत्थपादतला ॥९७५॥
सिंहासनादिसहिता विनीलकुंतला सुवज्रमयदन्ता।
विद्रुमाधरा किसलयशोभाधरहस्तपादतला ॥९७५॥

अर्थ—सिंहासन आदि प्रातिहार्यसहित अर विशेषकरि नीले हैं केश जाके अर सुंदर वज्रमय हैं दांत जाके अर मूंगा समान हैं अधर जाके अर कूंपलकी शोभानैं धारण करता है हस्ततल तथा पादतल जाके, ऐसी रत्नमय प्रतिमा है ॥ ९७५ ॥

या वचनतैं केसरि आदि रंग चरणकै लगानेतैं दिगंबरपणाका अभाव नहीं होय है क्योंकि अकृत्रिमकै ही चरणनिकै रंग है तौ कृत्रिमकै केसरि चंदनका रंग लगानेमैं कहा दोष है ? क्योंकि जिनबिंब सर्व समान है।

उत्तर—जिनबिंब सर्व समान है तातैं ही इहां कृत्रिमकै रंग नहीं लगाये हैं क्योंकि वहां तौ सहज ही स्वाभाविक या प्रकार पुद्गलनिकी परणति होवै है तैसें इहां भी सहज पुद्गल परणमैं तौ दोष नाहीं क्योंकि सहज पुद्गलनिकी परणति तौ अरहंत केवलीके अंगमैं तथा साधुनिके अंगमैं भी होय है परंतु ऊपरिसैं कोई इंद्रादिक ज्ञानवान भक्त नहीं लगावै है तैसें ही इहां पंचपरमेष्ठीकी प्रतिमाकै भी ज्ञानवान भक्तकूं ऊपरिसूं लगाना योग्य नाहीं क्योंकि प्रतिबिंब उनका ही है। अर ऊपरिसैं लगानेत दिगंबरपणा नहीं बिगड़ता होता तौ प्रतिष्ठाके पूर्व ही ऐसा रंग करा देवे जो काला-

तरमें भी नहीं जाता अर अकृत्रिम बिंबनितैं समानता दीखती परंतु दिगंबरपणा बिगड़नेके भयतैं ही दिगंबर संप्रदायके आचार्यनिनैं रंग लगानेकी राह नहीं राखी अर श्वेतांबरनिकै सर्वथा लेप करनेकी प्रवृत्ति है ही परंतु दिगंबरनिकै तौ संभवे ही नाहीं, तातैं ही मूलाचारकी टीकामैं स्पष्ट निषेध लिख्या है तातैं जो दिगंबर संप्रदायका शिष्य है सो तौ जिनप्रतिमाके ऊपरि गंधमाल्य कदाचित ही नहीं चढ़ावैगा ।

प्रश्न—प्रतिमाका स्वरूप लक्षण सुननेतैं साक्षातमैं अर प्रतिमामैं भेदबुद्धिका तौ हमारे अभाव भया अर साक्षातके गंधमाल्यादि संस्कारका निषेध सुननेतैं प्रतिमाके चरण ऊपरि गंधमाल्य चढ़ाना भी बुरा जानि हमनैं तौ त्याग्या परंतु वे पक्ष फेर भी कहैं हैं कि प्रतिमाके चरण ऊपरि चढ़ानेका और भी निषेध होय सो बताओ ।

उत्तर—हमारे कहने लायक तौ जो कुछ कहना था सो आर्षग्रथनिका वचन कह्या, या उपरांति भी जाकै संदेह है सो अनन्तसंसारी है या पुरुषका संदेह दूर करनेकूं हम समर्थ नाहीं क्योंकि निषेधवचन भी मूलाचारका तुम्हें सुनाया तौ भी फिर प्रश्न करते हो यातैं, तथापि तुमारे आग्रहतैं उनूंनैं ही कह्या है सो और कहैं हैं कि—एकसंधिभट्टारककृत संहितामैं ऐसा लिख्या है;—

पश्येन्नो जिनबिंबस्य चर्चितं कुंकुमादिभिः ।
पादपद्मद्वयं भव्यैः तद्वंद्यं नैव धार्मिकैः ॥ १ ॥

अर्थ—कुंकुमादि करि चर्चित कहिये लिप्त ऐसा जिनबिंबका पादपद्मद्वय जो है सो नहीं देखै क्योंकि धर्मात्मा भव्य जीवनि करि वो चरणयुगल नहीं वंदवा योग्य है तातैं नहीं ही दर्शन करै ॥ १ ॥

यामें चर्चित पदका हमनें विलेपन अर्थ किया है सो तो पंडित शुभशीलजीनें विलेपन अर्थमें चर्चित पद लिख्या ही है अर वाकै ये अर्थ मान्य [redacted] है। अर कदाचित् इहां वाकी पक्ष टूटनेतें चर्चित-पदका अर्थ पूजित करै तो हमारे कुछ हानि नाहीं वाहीकै हानि होगी क्योंकि जहां तहां अपणो पक्ष राखवेके निमित्त चर्चित पदका अर्थ लेपन करता है सो नहीं ठहरैगा तदि सर्व श्लोकनिमैं चर्चित पदका अर्थ वाहीकी जबानतें पूजित ठहरैगा तदि हमारा अर्थ तो सिद्ध रहैगा अर वाको पक्षका भंग होगा अर हमारै तो दोऊही अर्थतें सत्य अर्थकी सिद्धि है क्योंकि इहां चर्चित पदका अर्थ विलेपित राखै तो हम लेपनका निषेध पूर्वे बताया ही है अर पूजित अर्थ राखै तो हम पूजित अप्रतिष्ठितका निषेध भी पूर्वे कह्या ही है तातें वाकी राजी आवै सो अर्थ करो। अर इनि दोऊ ही अर्थकूं त्यागि तीसरा ऐसा विपरीत अर्थ ग्रहण करैगा कि कुंकुमादिककरि नहीं चर्चित कहिये नहीं लिप्त ऐसा जिनबिंबको पादपद्मद्वय जो है सो धर्मात्मा भव्यजीवनि करि नहीं वंदवे योग्य है तातें नहीं दर्शन करै, तो जानें ऐसा अर्थ अंगीकार किया तानें सर्वथा धर्मनें जलांजली दई।

प्रश्न—ऐसा कह्या दोष भया।

उत्तर—धर्मका लक्षण कार्तिकेय स्वामी ऐसा कह्या है,—

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥४८२॥
धर्मः वस्तुस्वभावः क्षमादिभावः च दशविधः धर्मः।
रत्नत्रयं च धर्मः जीवानां रक्षणं धर्मः ॥ ४८२ ॥

अर्थः—वस्तुका स्वभाव है सो धर्म है तथा उत्तमक्षमादिक भाव दश प्रकार सो धर्म है तथा रत्नत्रय है सो धर्म है तथा

जीवनिकी रक्षण है सो धर्म है ॥ ४८२ ॥

ये च्यार लक्षण शिष्यके समझावने निमित्त दिखाये हैं परंतु ये तीनूं ही लक्षण एक वस्तुस्वभाव लक्षण धर्मके विषैं अन्तर्भूत होय हैं क्योंकि ये तीनूं ही लक्षण परभावतैं भिन्न निजस्वभावरूप हैं यातैं। सो वा विपरीत अर्थ ग्रहण करनेवारेन वस्तुस्वभावलक्षण धर्मनैं ऐसैं घात्या कि बिंब नाम प्रतिबिंबका है सो प्रतिबिंबका स्वभाव ऐसा है कि जैसा मूल पदार्थ होय वैसा ही प्रतिबिंब होय कुछ न्यूनाधिक नहीं होय सो अरहंत सिद्धकूं तौ देव मनुष्य स्पर्श नहीं करैं तदि गंधलेप कहांतें होय याहीतैं निर्लेप नाम है अर आचार्य उपाध्याय साधु ये तीनूं मुनीश्वर हैं अर मुनीश्वरनिकी प्रवृत्तिका प्रधान ग्रंथ मूलाचार है सो मूलाचारमैं गंधलेपका तथा गंधजलतैं चरणसंस्कारका भी निषेध है। अर प्रवृत्तिका उदाहरणरूप वचन महावीरस्वामीका पूजनको कह्यो ही है तातैं मुनीश्वर भी निर्लेप ही हैं अर अकृत्रिम कृत्रिम बिंब हैं सो इनि ही पंच परमेष्ठीनिका प्रतिबिंब है तातैं प्रतिमाके चरणनिकै लेप सर्वथा संभवै नाहीं। अर वाके किये अर्थमैं एवकार पदतैं नियम भया कि लेप बिना धर्मात्मा जिनबिंबचरणनैं वंदै ही नाहीं जावैं दर्शन ही नहीं करै तदि प्रथम तौ वस्तुस्वभावलक्षण धर्मकी श्रद्धा गई अर श्रद्धारहित भया वाही समय मिथ्यादृष्टी भया, पीछैं निर्लेप बिंबनितैं पराङ्मुख भया तदि महापापी भया। अर और भी विचारनेकी वार्त्ता है कि गंधसहित ही प्रतिमा पूज्य ठहरै तौ प्रतिमाका तौ कुछ महात्म हो नहीं ठहरै, पूज्यपणूं गंधमैं ही ठहरै ?

प्रश्न सर्व बिंबनिकै गंधलेप सदा रहै है निर्लेप बिंब कोई भी नहीं रहै है तातैं हम तौ सर्व बिंबनितैं सन्मुख ही हैं तातैं पुण्यात्मा ही हैं पापी नहीं हैं, ऐसैं वे लोग कहै हैं।

उत्तर—प्रथम तौ सम्यक्ती देव मनुष्य हैं ते आर्षवचनके उल्लंघनेवारे नहीं हैं अर आर्ष ग्रंथनिमें चरण ऊपरि गंधमाल्य चढ़ानेका हुकम नहीं, उलटा निषेध है सो लिख्या ही है तातैं सर्व बिंब निर्लेप ही रहे हैं। ता सिवाय गंगादिक देवीनिके मंदिरके ऊपरि अकृत्रिम बिंब विराजमान अनादिकालतैं हैं, तिनिके मस्तक ऊपरि अनादिकालतैं ही गंगादिक नदीका प्रवाह दश योजन चौड़ा अवतरै है तातैं सदा गंधलेपरहित उनकूं तौ मानैगा तदि उनकूं वंदना करते दर्शन करते देव मनुष्यनिकूं धर्मात्मा कहैगा कि अधर्मी कहैगा ?

प्रश्न—ये वरनन अकृत्रिम बिंबनिका है, अर ये श्लोक कृत्रिम बिंबनिका है।

उत्तर—ऐसा विपरीत अर्थ करनेवालेका कह्या मानै तौ प्रथम तौ अभिषेक ही नहीं करै क्योंकि अभिषेकतैं निश्चय करि निर्लेप होय है सो सर्व करै ही है, दूसरां कदाचित करै तौ नेत्र बांधि करै सो कोई नेत्र बांधै नहीं है, तीसरा अभिषेक समय और धर्मात्मा नहीं देखै सो अवश्य देखै है, अर प्रतिमा लेपसहित होय सो भी अभिषेकके प्रारंभमें ही निर्लेप होय है सो यावत् अभिषेक होय तथा वस्त्रतैं मार्जन होय तथा सिंहासनमें विराजमान होय पीछैं पूजक पंच नमस्कारमंत्र तथा मंगल उत्तम शरणरूप मंत्र पढ़ि स्वस्तिपाठ पढ़ि पूजनप्रतिज्ञाकी पुष्पांजली क्षेपि स्थापना करि जलतैं पूजन करि गंधतैं पूजन करनेका पाठ पढ़ै तावत् समय तौ अवश्य निर्लेप ही रहै है अर या समय अवश्यकरि देव मनुष्य आवैं हैं वंदना करै हैं स्तवन पूजन करैं ही हैं अर या विपरीतबुद्धिका वचन कोई जैनी-मात्र नहीं मानै है अर गंध पूजनका पाठ पढ़ैं पीछैं कोई मंदज्ञानी

भोला पुरुष चरण ऊपरि गंध चढावै है तौ लेपसहित होय है, परंतु जानिये है कि वो विपरीत अर्थ करनवारो पुरुष हठग्राही दुर्बुद्धी तौ अभिषेक प्रारंभतैं लेप किये पहली मध्यके समयमैं नेत्र बांध्यां ही सर्व क्रिया करना होगा । इत्यादि अनेक दोष वा अर्थमैं आवै हैं यातैं तुमारे मानवे योग्य याको वचन नाहीं है ।

प्रश्न—या श्लोकका तुमारा किया ही अर्थ राखैगा तौ भी इतना प्रश्न तौ फेर भी करैहीगा कि—गंधलेप करनेकी राह प्राचीन होगी तब या श्लोकमैं निषेध लिख्या है ।

उत्तर—ऐसा संदेह तुम तौ मति राखौ क्योंकि दिगंबरसंप्रदाय-मैं तौ भूत भविष्यत् वर्त्तमान कालमैं कदाचित् भी गंधलेप संभवै नाहीं परंतु एकसंधि भट्टारक दिगंबर मूलसंघमैं ही भये हैं तिननैं बहुत काल पहली सर्वथा लेप करना अर लेप विना प्रतिमा होय ताका दर्शन सर्वथा नहीं करना ऐसी पक्ष स्थापन करनवारे श्वेतांबर भये हैं तिनकी पक्ष कदाचित् अपने श्रावक ग्रहण नहीं कर लेवैं या अभिप्रायतैं अपने श्रावकनिकूं कह्या है कि—सर्वांगलेप तौ दूरि ही रहो, चरणकै लेप होय सो ही वंदवे योग्य नहीं है ।

याही श्लोकका अभिप्रायतैं बणारसीदासजी बाणारसीविलास-मैं दोहा कह्या है कि—

जिन प्रतिमा जिन सारिसी, कही जिनागममाहिं ।
रंचमात्र दूषण लगै, वंदनीक सो नाहिं ॥ १ ॥

ऐसैं एकसंधि भट्टारकके वचनमैं तथा बाणारसीदासजीके वचनमैं भी गंधलेपसहित प्रतिमाका दर्शन करनेका वंदना करनेका निषेध है, अर विधि कहूं भी नहीं कही है; तथापि अज्ञानीजन दिगंबर प्रतिमाके चरणनिनैं चंदन केसरितैं लिप्त करि चमेली

गुलाब केवड़ा आदि पुष्पनिकरि आच्छादित राखें हैं तथा प्रभावनाका नाम लेय उत्सव करें तदि पुष्पमाला जिनप्रतिमाके गलेमें पहरावै हैं तथा मुकुटसप्तमीका व्रतके दिन पुष्पांको मुकुट बनाय वीतराग देवकी प्रतिमाका मस्तक ऊपरि धरें हैं इत्यादि अनेक विपरीतता करेंहैं तामें वीतरागताको अर दिगंबरपणाको मूल नाश होय है, सो जानियेहै कि दिल्लीमें तेरासै पांच १३०५ का संवतमें प्रभाचंद्र-नामा मुनि भ्रष्ट भये, रक्त वस्त्र यवन बादस्याहकी आज्ञातैं धारण किये तिनिके शिष्यनिनें वस्त्राभरण वाहन धन धान्य आदि परिग्रह ग्रहण करि लेनी बाग बिराज आदि आरंभ करने लगन लगे अर बादस्याहनकी हिमायत पाय भोले जीवनिके गुरु बणे तिननें अपना सरागीपणानैं सही दिखाणे निमित्त अरहंतदेवका स्वरूपनें भी सरागी दिखाने वास्तै ये चाल चलाई है, अर धर्ममें भी रात्रिपूजन कुदेवपूजन आदि अनेक विपरीतता चलाई है तिनका विशेष स्वरूप चतुर्थकांडमें लिखेंगे। इहां तौ ऐसा जानना कि जा मंदिरमें उनके शिष्यनिनें दिगम्बर प्रतिमाका स्वरूपनें आच्छादित किया जानौ ता मन्दिरमें अपना इष्टका अविनयरूप दिगम्बरपणाका अभावनें दूर करनेकी सामर्थ्य होय तौ जाओ अर चदन पुष्पकृत आवरणनें तत्काल दूर करो अर दिगम्बर वीतराग मुद्राका दर्शन करि स्तवन पूजन वन्दन आदि भक्ति करो अर इतनी सामर्थ्य नहीं होय तौ वहां मति जाओ अर्थात्—अरहंत भगवान निर्लेप निरावरण हैं तातैं लेपसहित आवरणित पुष्पादि आभरणयुक्त है सो अरहंतप्रतिमा नहीं है अर अरहंत प्रतिमा नहीं है सो पूज्य नहींहै।

प्रश्न—जिनप्रतिमाके चरण ऊपरि चंदन पुष्प चढावने वारा तौ पापी होहै परंतु दर्शन करनेवालेकूं तौ कुछ पाप है ही नहीं।

उत्तर—प्रथम तो अपना इष्टका अविनय देखनेमें उत्साह करै वै भी तो वैसा ही है।

प्रश्न—अविनयके देखनेमें तो कोऊके भी उत्साह नहीं है, उत्साह तो जिनप्रतिमाके देखनेका ही है।

उत्तर—जो आवरणित प्रतिमा है सो जिनप्रतिमा ही है तथापि वा समय पूज्य नहीं है क्योंकि प्रतिमाका लक्षण पूर्वं कह्यो है सो है यातैं। ता सिवाय तुम जानो हो इहां अविनय हो रह्या है अर अबै विशेष होगा अर वहां वाके देखनेका संकल्प करि जावो हो फिर हमसैं धर्मके कार्यमें भी मायाचारतैं मिथ्याभावनकरि सचिक्कण कर्म काहेकूं बांधो हो। हमारे ज्ञानमें तो अविनय करना कराना करतेकूं सराहना तथा प्रीतिसैं देखना सर्व बरोबर है।

प्रश्न—जा क्षेत्रमें शुद्ध बिंब नहीं होय तहां कहा करै?

उत्तर—सामर्थ्य होय तो उपवास करै तथा नीरस एकभक्त करै, इतनी भी सामर्थ्य नहीं होय तो एक रसका त्यागकरि अपना अन्तरायकर्मकी हानि निमित्त एकाम बैठि ध्यान करि भावपूजन करि भोजन करै।

इति चंदनकृत पूजननिर्णयः।

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

प्रश्न—चंदनकी रीति भी मानी अब अक्षत चढ़ानेकी रीति भी कहो।

उत्तर—पद्मनंदि पचविंशतिकामें, श्लोक—

राजत्यसौ शुचितराक्षतपुंजराजिः
दत्ताधिकृत्य जिनमक्षतमक्षधूर्त्तैः।

वीरस्य नेतरजनस्य तु वीरपट्टो
बद्धःशिरस्यतितरां श्रियमातनोति ॥ १ ॥

अर्थ—इंद्रियरूप धूर्तनिकरि नहीं हत्या गया ऐसा जिनेन्द्रनैं अधिकारकरि दई ऐसी या पवित्र उत्तम अक्षतनिके पुंजनिकी पंक्ति सोहै है सो योग्य ही है क्योंकि वीरका शिरकै विषैं बांध्यो वीरपट्ट अत्यंत पुष्कल लक्ष्मीनैं विस्तारै है अर कायरका शिरकै विषैं वीरपट्ट नहीं शोभै है। भावार्थ—भगवान आप अक्षत हैं तातैं अक्षतपुंज शोभै है ॥ १ ॥

या वचनतैं जिनचरणके अग्रभागमैं अक्षतपुंज करयो योग्य है। तथा आदिपुराणमैं इंद्राणीकृत पूजनमैं—

व्यधान्मौक्तिकौघैविभोस्तंदुलेज्यां
स्वचित्तप्रसादैरिव स्वच्छभाभिः ।

अर्थ—प्रभूकी तंदुलपूजाके विषैं निजचित्तकी प्रसन्नताकै समान निर्मल कांतिमान मौक्तिकनिके समूहकरि पूजन करत भई ॥ १ ॥

या वचनतैं तंदुलपूजामैं मुक्ताफल भी चढ़ावो योग्य है।

प्रश्न—प्रवृत्तिमैं मोती सीपके तथा संखके मुखमैं पैदा हुये आते हैं तिनका ग्रहण पूजनमैं कैसैं योग्य होय ?

उत्तर—मोतीकी पैदासि रत्नपरीक्षामैं आठ स्थाननिमैं लिखी है, सो ही रत्नपरीक्षाका द्वितीय प्रकरणमैं श्लोक—

जीमूतकरिमत्स्याहिवंशशंखवराहजाः ।
शुक्त्युद्भवाश्च विज्ञेया अष्टौ मौक्तिकजातयः ॥ ३० ॥

अर्थ—जीमूत १ गज २ मच्छ ३ सर्प ४ बांस ५ शंख ६

बराह ७ सीप ८ इनितैं उत्पन्न भये मोती आठ जातिके हैं ॥ तिनिमें मेघतैं तथा वांसतैं भी उपजना लिख्या है तातैं सामान्य मोतीके नाममैं प्रश्न करना योग्य नहीं । दो जातिके उत्तम मिलैं सो ल्यो, अशुद्ध मिलैं तौ मति ल्यो।

इति तंदुलपूजननिर्णयः ।

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

प्रश्न—अक्षतपूजनकी रीति भी मानो अब पुष्पनितैं पूजनकी रीति भी कहो ।

उत्तर—आदिपुराणमैं इंद्राणीकृत पूजनमैं, श्लोक—

तथाऽम्लानमन्दारमालाशतैश्च

प्रभोः पादपूजामकार्षीत् प्रहर्षात् ॥

अर्थ—तैसैंही इंद्राणी नवीन प्रफुल्लित मंदारजातिके कल्पवृक्षजनित मालाके सैंकड़ेनिकरि प्रभूके चरणकी पूजा हर्षतै करती भई ॥

प्रश्न—यामैं तौ देवलोकके पुष्पनिका ही वर्णन है सो योग्य हीहै क्योंकि पूजक इंद्राणी है तातैं, परन्तु केई पुरुष हरित पुष्प चढ़ाना मनैं करैं हैं सो कैसें है ?

उत्तर—जे पुरुष नित्यपूजन आ पद्धतितैं करैं हैं ताहीका श्लोक सुनो—

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान्

वर्यासुचर्याकथनैकधुर्यान् ।

कुन्दारविन्दप्रमुखप्रसूनै—

र्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥

अर्थ—जो पुष्प हाथतैं पड़ि गयो तथा वृक्षतैं स्वयमेव ही पृथ्वीमें पड़ि गयो तथा कदाचित् चरणमें लगि गयो तथा मस्तक ऊपरि प्राप्त भयो तथा कुत्सित वस्त्रमें धरि दियो तथा नाभिके नीचें धरि दियो तथा दुष्ट अस्पृश्यजन स्पर्श करि लियो तथा मेघवर्गाकरि गलि गयो तथा कीट पतंगकरि दूषित भयो सो पुष्प जिनेन्द्रमें प्रीतिके अर्थि भक्तिकरि ज्ञानवाननिनें त्याज्य कह्यो है। ऐसा लक्षण कह्यो है सो कैसें है ?

उत्तर—या श्लोकमें त्याज्य पुष्पके जो विशेषण कहे हैं सो उचित ही कहे हैं तातैं मानवे योग्य ही हैं।

प्रश्न—याही ग्रंथके वचन दिशानिर्णयमें तौ खंडन किये अर इहां ग्रहण किये सो ऐसी मनोक्त रीति तुमारी कैसैं मान्य होयगी ?

उत्तर—ऐसी रीति हमारे मनसें ही नहीं है, भगवती आराधनामें कह्या है ;—

गिहिदत्थो संविग्गो अत्थुवदेसेण संकणिज्जो हु।
सो चेव मंदधम्मो अत्थुवदेसम्मि भयणिज्जो ॥३५॥
गृहीतार्थः संविग्नः अर्थोपदेशेन शंकनीयः खलु।
सःचैव मंदधर्मः अर्थोपदेशे भजनीयः ॥ ३५ ॥

अर्थ—आगमका अर्थकूं प्रमाण नय निक्षेप करि तथा गुरुपरिपाटी करि तथा शब्दब्रह्मका सेवन करि तथा स्वानुभव प्रत्यक्ष करि भले प्रकार सत्यार्थ ग्रहण करचा होय बहुरि संसार देहभोगतैं विरक्त होय पापतैं भयभीत होय ऐसा सम्यग्ज्ञानी अर वीतरागी शास्त्रार्थका उपदेशमें नहीं शंका करनेयोग्य है। भावार्थ—ज्ञानी व.तरागीका वाक्य निःशंक ग्रहण करना अर जो

उपदेशदाता धर्ममें मंद होय अर संसार परिभ्रमणका जाकै भय नहीं होय सो शास्त्रार्थका उपदेशमें भजनीय कहिये प्रमाण करने योग्य भी है अर प्रमाण नहीं करने योग्य भी है। भावार्थ—जो परमागमकी परिपाटीसूं अर्थ मिलि जाय तौ प्रमाण करने योग्य है अर परमागमसूं विरुद्ध दीखै तौ नहीं प्रमाण करने योग्य है।

प्रश्न—या पुष्पवरननका श्लोकमें कीटक पदकी एवज कंटक पद कहें हैं, सो कैसें है ?

उत्तर—कीटक पद ही दुरुस्त है क्योंकि जीवित कीटकयुक्त होय तौ धोनें पूंछनेंमें जीवघात होय अर मृतक कीटकयुक्त होय तौ सर्वथा अस्पृश्य ही होय तातैं कीटककरि दूषित ही त्याज्य है। बहुरि कंटक पद होय तौ कंटककरि छेदित होय सो त्याज्य है ऐसा भाव जानना। अर या वचनतैं कंटक वृक्षके पुष्पनिका निषेध करैं हैं सो योग्य नाहीं है क्योंकि कमल केवड़ा केतकी आदि कंटक वृक्षनिके पुष्प केई स्थलमें लिखे हैं। भावार्थ—जामें जंतुघात होय तथा जंतुकरि छेदित होय तथा कंटककरि छेदित होय तथा अमनोज्ञ गंधयुक्त होय सो प्रभूके नहीं चढाणें योग्य है।

प्रश्न—पुष्पनिका स्वरूप तौ निश्चय भया परंतु केई मनुष्य पुष्पनिकूं जिनचरणके ऊपरि चढाते हैं सो आगमतैं योग्य है कि नहीं ?

उत्तर—प्रथम तौ पंचमी प्रतिमाधारी श्रावक ही सचित्तका त्यागी होय है ता पीछैं उत्तरोत्तर शुद्धता चारित्रकी होत संतैं मुनिपदवीमें तौ सचित्तका स्पर्श ही नहीं रह्या अर ये प्रतिमा पंचपरमेष्ठीकी हैं तातैं चरणनै स्पर्श करना ही योग्य नाहीं। अर देवनिकृत पुष्पवृष्टिका वरननमें भी प्रभूके निकट ही पुष्पनिका पड़ना लिख्या है सो सुनो आदिपुराणका वेदसभा पर्वमें; श्लोक—

वृष्टिरसौ कुसुमानां तुष्टिकरी प्रमदानाम् ।
दृष्टिनतीरनुकृत्य स्रष्टुरपसदुपान्ते ॥३३ ॥

अर्थ—या आनंदकी करता पुष्पनिकी वृष्टि जो है सो नायिकानिकी दृष्टिपंक्तिनैं अनुकरण करि स्रष्टाका समीपके विषैं पड़त भई कि भगवानका निकटवर्त्ती क्षेत्रके विषैं पड़त भई ॥ ३३ ॥

तथा श्लोकः—

शीतलैर्वारिभिर्गांगैरार्द्रिता कौसुमी वृष्टिः * ।
षट्पदैराकुलाऽपसत्पत्युरग्रे ततो मुदा ॥ ३५ ॥

अर्थ—गंगाका शीतल जलकरि आर्द्रित कहिये आली अर भ्रमरनिकरि व्याप्त अर विस्तार्यो है सुगंध जानैं अर विस्तार्यो है हर्ष जानैं ऐसी पुष्पवृष्टि जो है सो भर्त्तारका अग्रभागके विषैं पड़त भई ॥ ३५ ॥

तथा चौबीसमा पर्वमैं, श्लोक—

पुष्पवृष्टिप्रतानेन परितो भ्राजितं प्रभुम् ।
कल्पद्रुमप्रगलितप्रसूनमिव मंदरम् ॥ १२३ ॥

अर्थ—कल्पद्रुमतैं झरता पुष्प सुमेरुगिरिनैं शोभित करै तैसैं सुरेंद्र जो है सो पुष्पवृष्टिका समूहकरि प्रभूनैं चहूं तरफतैं शोभित करत भयो ॥ १२३ ॥

---

* 'आर्द्रिता कौसुमी वृष्टिः' यहां पर छंदोभंग है इसलिए अगर यों पढ़ा जाय तो अच्छा है;—

शीतलैर्वारिभिर्गांगैः कौसुमी वृष्टिरार्द्रिता ।

इत्यादि वचननित हरित पुष्प तथा प्रासुक पुष्प तथा सुवर्ण-रजतजनित पुष्प तथा रत्नजटित पुष्प जैसे अपने योग्य मिलै तैसे ही उत्तम पुष्प भगवतके अग्रभागमें चढ़ाना योग्य है ॥

इति पुष्पपूजननिर्णयः ।

ॐनमः सिद्धेभ्यः ।

प्रश्न—पुष्पपूजनकी रीति भी मानी अबैं नैवेद्यकी रीति भी कहो ।

उत्तर—पद्मनंदिपंचविंशतिकामें, श्लोक—

देवोऽयमिन्द्रियबलप्रलयं करोति
नैवेद्यमिंद्रियबलप्रदखाद्यमेतत् ।
चित्रं तथाऽपि पुरतः स्थित मर्हतोऽस्य
शोभां बिभर्त्ति जगतो नयनोत्सवाय ॥ १ ॥

अर्थ—यो देव तो इन्द्रियबलको प्रलय करै है अर यो नैवेद्य इन्द्रियबलको दाता खाद्य है तो भी या अरहंतका अग्रभागमैं तिष्ठतो जगतका नेत्रनिकै उत्सवनिमित्त शोभानैं धारण करै है, यो आश्चर्य है ॥

या वचनतैं भक्षण करने योग्य सर्व ही द्रव्य भगवानके अग्रभागमैं चढ़ाना योग्य है । तथा आदिपुराणमैं ऐसा है कि—

"प्राज्यपीयूषपिंडैः"

अर्थ—इन्द्राणी जो है सो उत्तम घृत तथा अमृतपिंडकरि पूजन करत भई ।

तथा सकलकीर्तिजी शांतिनाथपुराणमैं ऐसा लिख्या है कि—

"नैवेद्यैश्चतुर्विधैः"

अर्थ—च्यार प्रकारका नैवेद्यकरि पूजत हूं। या वचनतें खाद्य स्वाद्य लेह्य पेयरूप च्यारूं ही भेदके नैवेद्य जिनेंद्रका अग्रभागमें चढ़ाना योग्य है।

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारका बीशमा परिच्छेदमें श्लोक—

क्षीरमोदकपक्वान्नशाल्यन्नवटकादिभिः।
जिनपूजां विधत्ते यो लभेद्भोगं त्रिलोकजम् ॥२००॥

अर्थ—दुग्ध लाडू पकान्न चावल वडानें आदि लेय नैवेद्यकरि जो पुरुष जिनपूजा रचे है सो तीनलोकतें उत्पन्न भया भोगन पावै है ॥

या वचनतें भी च्यारूं ही प्रकारका नैवेद्य चढ़ावो योग्य है।

प्रश्न—तुमनें तौ सर्व भक्षणयोग्य द्रव्य चढ़ाना स्थापित किया अर केई मनुष्य चावल रोटी व्यंजन चढ़ानेका निषेध करैं हैं, सो कैसैं है ?

उत्तर—भक्षणयोग्यमें किसीका निषेध तौ आगममें है नहीं, सर्व ही चढ़ानेयोग्य चावल रोटी व्यंजन हैं, नहीं चढ़ानेयोग्य बताई है सो आगमके अनुकूल नहीं कहै है। अर इतना विचारना सौ अलबत योग्य दीखै है कि—जहां तहां पूजनद्रव्यका विशेषण पवित्र खाद्य उत्तम लिखे हैं अर वर्त्तमान देशकालमें चावल रोटी व्यंजन चौका बारे होय तामें जिसके अपवित्र बुद्धि तथा वचन प्रवर्त्ते अर जो श्रावक जन ग्रहण नहीं करै तातैं पवित्र खाद्य उत्तमपणाको भाव जाकै नहीं रहै सो नहीं चढ़ावे। अर पूजक नाना जातिका नाना देशका नाना अभिप्रायका सर्वही देव मनुष्य तिर्यंच हैं तिनमें जिनके जा द्रव्यमें अपवित्र अखाद्य अधम बुद्धि उत्पन्न होय तिनकूं तौ वो द्रव्य चढ़ानूं योग्य नाहीं क्योंकि भावदुष्ट द्रव्य अखाद्य

कह्या है अर जिनकै जा द्रव्यमें पवित्र खाद्य उत्तम बुद्धि होय सो सर्व रोटी चावल आदि नाना व्यंजन प्रभृति च्यारूं ही प्रकार भोज्य चढ़ावो योग्य है।

इति नैवेद्यपूजननिर्णयः।

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

प्रश्न—नैवेद्यपूजनकी रीति भी मानी अब दीपकपूजनकी रीति भी कहो।

उत्तर—पद्मनंदि पंचविंशतिकामें, श्लोक—

> आरार्त्तिकं तरलवह्निशिखं विभाति
>
> स्वच्छे जिनस्य वपुषि प्रतिबिंबितं सत्।
>
> ध्यानानलो मृगयमाण इवात्रशिष्टं
>
> दग्धुं परिभ्रमति कर्मचयं प्रचण्डम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिनेंद्रका स्वच्छ शरीरके विषै चंचल अग्निकी शिखारूप आरती प्रतिबिंबित होती संती सोहै है सो मानों ध्यान रूप अग्नि बाकीका प्रचंड कर्मसमूहनैं भस्म करनेकूं हेरती संती ही सोहै है॥ या वचनतैं उत्तम घृतजनित ज्वलित दीपक चढ़ावो योग्य है।

प्रश्न—कर्पूर योग्य है या नहीं है?

उत्तर—कर्पूर द्रव्य वनस्पतीका रस है अर आर्ष ग्रंथनिमैं ग्राह्य लिखे है तातैं सो उत्तम द्रव्य है तथापि वर्तमान कालमैं आर्यदेशमैं आर्य मनुष्यनिकरि नहीं बनै है अर म्लेच्छ ही बनावै है अर म्लेच्छ ही ल्यावेहै तातैं पूजनमैं ग्रहण करने योग्य नहीं है।

तथा आदिपुराणमें श्लोकः—

> ततो रत्नदीपैर्जिनांगद्युतीनां
>
> प्रसर्पेण मन्दीकृतात्मप्रकाशैः।

जिनार्कं शची प्राचिचद्रत्निदीपा
न भक्ता हि युक्तं विदन्त्यप्ययुक्तम्॥ १ ॥

अर्थ—तदनंतर इन्द्राणी जो है सो जिनेंद्रका अंगकी द्युतिका फैलावकरि-मंद कियो है आत्मप्रकाश जानैं ऐसा रत्नदीपककरि जिन सूर्यनैं पूजत भई, इहां ग्रंथकार कहै है कि-निश्चयकरि भक्ति-करि संयुक्त भक्त जे हैं ते युक्त अयुक्त भी नहीं जानें हैं। भावार्थ-जा रत्नकी कांति भगवानकी देह संबंधी कांतिकरि मंद हो गई ता रत्नका चढ़ाना कहा योग्य था ? परंतु भक्तजननिकूं योग्य अयोग्यका कछू ज्ञान नहीं रहै है ॥

या वचनतें प्रकाशमान रत्ननिके दीपककरि भी पूजन करना योग्य है ॥

प्रश्न—केई पुरुष उत्तम घृत कपूर रत्न सिवाय खोपराका खंड-कै पीतरंग लगाय दीपक मानि चढ़ावै है, सो कैसें है ?

उत्तर—ऐसें बनानेका हुकम तौ कहूं देख्या नाहीं अर उन पुरुषनितैं प्रश्न किया तौ ऐसा ही कह्या कि यामैं दीपककी संभावना ही करनी पड़ती है सो संभावना करनेका तौ दोष नाहीं परंतु जाकै सचित्तका त्याग होय ताकूं तौ ऐसा भी करना योग्य ही है। तथा उत्तम घृत कपूर रत्नका जा देश कालमैं अभाव होय ता देश कालमैं करना योग्य है अर उत्तम घृत कपूर रत्नका सद्भावनैं होतां संतां उनका निषेध करि सचित्तग्राही पुरुष भी केवळ हठग्रा-हीपणातैं करै है सो तो उत्सूत्र ही करै है।

इति दीपकपूजननिर्णयः।

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

प्रश्न—दीप पूजनकी रीति तो मानी अब धूपपूजनकी रीति

भी कहो।

उत्तर—पद्मनंदि पंचविंशतिकामें, श्लोक—

कस्तूरिकारसमयैरिव पत्रवल्लीं
कुर्वन्मुखेषु वलनैरिव दिग्वधूनाम्।
हर्षादिव प्रभुजिनाश्रयणेन वात-
प्रेंखत्वपुर्नटति पश्यत धूपधूमः ॥ १ ॥

अर्थ—दिशारूप स्त्रीनिका मुखके विषै कस्तूरीका रसमई वलनैः कहिये वलन करिकैं पत्ररचनानैं करतो संतो समर्थ जिनका आश्रयकरि हर्षतैंही कहा मानूं पवन करि हालतो है शरीर जाको ऐसो धूपको धूम जो है सो नृत्य करै है, सो हे आत्मन् ! देखो ॥१॥

या वचनतैं प्रभूका अग्रभागमैं धूप अग्निकुंडरूप धूपायनमैं खेपि धूम करवो योग्य है। तथा—

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजाल—
संधूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधै-
र्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥ १ ॥

अर्थ—दुष्ट अष्टकर्मरूप इंधनका पुष्ट जालनैं दूर करवाकै अर्थि दूर कियो है अन्य सुगंध द्रव्यनिको गंध जानैं ऐसा धूप करि प्रज्वलित धूमकेतु समान जिनेन्द्र सिद्धांत यती जे हैं तिननैं पूजत हूं ॥

या वचनतैं सर्वोत्तम सुगंधित धूप अग्निमैं खेपि पूजन करवो योग्य है।

प्रश्न—धूपमैं देवदारु, चंदन, तगर, चांपी, कपूर, कपूरकाचरी

लौंग, अगर, चालछड़, छाड़छड़ीलो, सिलारस, इनि दश द्रव्यनिका धूप बनाते हैं सो योग्य है कि नहीं ?

उत्तर—ये दशूं ही द्रव्य मूलमैं तौ उत्तम धूपयोग्य ही हैं परंतु वर्तमान देशकालमैं सिलारस चर्मके पात्रमैं देशांतरतैं म्लेच्छके हाथसैं आवै है तातैं ग्रहण करनेयोग्य नहीं है क्योंकि चर्मके संयोगतैं रसमैं त्रसकायकी उत्पत्ति लिखी है तातैं चर्मसंयोगजनित 'सिलारस' की धूप अग्निमैं खेपै थी त्रसकायका घात होय तातैं सिलारस और कपूर विना और द्रव्य तथा और भी कंकोल मिरचि जायफल जावत्री वगैरे उत्तम सुगंध द्रव्य मिलाय प्रभूके अग्रभागमैं धूपायनमैं खेपवो योग्य है। अर ऐसा भी आग्रह नहीं करना कि दशसैं तथा सिवायसैं ही धूप होय है, अपनी सामर्थ्य माफिक एक दोय दश बीस जितनें उत्तम द्रव्य सुगंधित मिलैं तितनेहीका चूर्ण करि धूप बनावनी अर चर्मसंयोग विना अर म्लेच्छनिके हाथ विना सिलारस मिलै तौ वै भी द्रव्य लेने योग्य ही वृक्षका गूंद है तैसैं ही कपूर भी वृक्षका ही गूंद है तातैं त्याज्य द्रव्य नहीं है।

इति धूपपूजननिर्णयः।

ॐनमःसिद्धेभ्यः।

प्रश्न—धूप पूजनकी रीति भी मानी अब फलकृत पूजनकी रीति भी कहो।

उत्तर—पद्मानंदिपंचविंशतिकामैं श्लोक—

उच्चैः फलाय परमामृतसंज्ञकाय
नानाफलैर्जिनपतिं परिपूजयामि।
त्वद्भक्तिरेव सकलानि फलानि दत्ते,

मोहेन तत्तदपि याचत एव लोकः ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र! परमामृत है नाम जाका ऐसा उचफलके वास्ते नानाफल जे हैं तिन करि तू जिनपति जो है ताहि परिपूजयामि कहिये परिपूर्णताकरि पूजूं हूं सो तिहारी भक्ति ही सकल फल देवै है सो भी लोक मोहकरि फल याचै ही है ॥ १ ॥

या वचनतैं नाना जातिके उत्तम फल जे हैं तिनकरि पूजन करना योग्यहै।

तथा आदिपुराणका सतरमां पर्वमें, श्लोक—

अथ भरतनरेन्द्रो रुन्द्रभक्त्या मुनीन्द्रं
समधिगतसमाधिं सावधानं स्वसाध्ये।
सुरभिसलिलधारागंधपुष्पाक्षतार्घै-
रयजत जितमोहं सप्रदीपैश्च धूपैः ॥२५१॥
परिणतफलभेदैराम्रजंबूकपित्थैः
पनसलकुचमोचैर्दाडिमैर्मातुलिंगैः।
क्रमुकरुचिरगुच्छैर्नालिकेरैश्च रम्यै-
र्गुरुचरणसपर्यामातनोदाततश्रीः ॥२५२॥

अर्थ—अथानंतर भरतनरेन्द्र जो है सो घनभक्तिकरि प्राप्त भयो है ध्यान जाकै अर अपना कार्यकै विषैं सावधान ऐसो जितमोह मुनीन्द्र जो है ताहि प्रचुर दीपकसहित तथा धूपसहित सुगंधित जलधारा गंध पुष्प अक्षतयुक्त अर्घकरि पूजत भयो ॥२५१॥ अर आम जांबूंणि कैथ पनस लिकुच कहिये केला मोच कहिये दाडयूं विजोरा क्रमुक कहिये सुपारीका मनोहर गुच्छा नारेल तथा और मनोहर पक्या फलविशेषकरि गुरुका चरणकी पूजाकै विषैं

विस्तीर्ण शोभा विस्तारतो भयो ॥ २५२ ॥

या वचनतैं सचित्त अचित्त भेदयुक्त सर्व ही मनोहर उत्तम फल चढ़ावो योग्य है।

इति फलपूजननिर्णयः।

प्रश्न—अष्ट द्रव्यकृत पूजनके निर्णयमें तौ सचित्त अचित्त दोऊ ही जातिके द्रव्य पूजनयोग्य सिद्ध भये परंतु कहूं केवल प्रासुक द्रव्यनितैं भी पूजन कह्या कि नाहीं ?

उत्तर—पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें,आर्या—

प्रातःप्रोत्थाय ततः कृत्वा तात्कालिकं क्रियाकल्पम्।
निर्वर्त्तयेद्यथोक्तं जिनपूजां प्रासुकैर्द्रव्यैः॥ १५४ ॥

अर्थ—प्रातःकाल ऊठि ता पीछें वा समयसंबंधी क्रियाकल्प करि जिनेंद्रकी पूजा प्रासुकद्रव्यनिकरि यथोक्त रचै ॥ १५४ ॥

या वचनतैं प्रासुक द्रव्यनितैं ही पूजन करना योग्य है।

प्रश्न—ये श्लोक तौ प्रोषधव्रतीके वरननका है।

उत्तर—प्रोषधव्रतीका ही है तातैं इतना तौ नियम जानों कि प्रोषध करै ताकूं तौ प्रासुकतैं ही करनेका हुकम है तातैं सचित्ततैं नहीं करै अर और भी करै तौ उच्चमार्ग है कहूं निषेध तौ है नाहीं।

प्रश्न—निषेध नहीं है तौ भी आज्ञा विना उच्चमार्ग गृहस्थकै करपात्रतैं भोजन करना समान है तातैं ही सूत्रपाहुड़में निषेध किया है;—

सुत्तत्थपदविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणियपत्तं सचेलस्स ॥७॥

सूत्रार्थपदविनष्टः मिथ्यादृष्टिः स्फुटं सः ज्ञातव्यः।
खेले अपि न कर्त्तव्यं पाणिपात्रं सचेलस्य ॥ ७ ॥

अर्थ—जो पुरुष सूत्रका अर्थरूप स्थानतैं भ्रष्ट है सो प्रकट मिथ्यादृष्टी है जैसैं वस्त्रधारी गृहस्थकूं ख्याल कौतूहलमैं भी पाणिपात्रकरि भोजन नहीं करवो योग्य है ॥

या वचनतैं अपने पदस्थतैं उच्च प्रवृत्ति करना है सो भी उत्सूत्र प्रवृत्ति ही है।

उत्तर—ये वचन तो सत्य ही है परंतु जैसैं करपात्रभोजनका निषेध है तैसैं प्रासुक पूजनका तो निषेध नहीं है। आज्ञा भी है सो दिशानिर्णयका प्रकरणमैं चतुर्विंशतिस्तवन स्वरूपकी गाथा मूलाचारकी टीका सहित लिखी है तामैं "अचिदूण य" पदकी व्याख्यामैं ऐसा लिख्या है कि "अर्चित्वा च गंधपुष्पधूपदीपादिभिः प्रासुकैरानीतैर्द्रव्यरूपैर्भावरूपैश्च" अर्थ—"प्रासुक ल्याये द्रव्यरूप तथा भावरूप गंध पुष्प धूप दीप जे हैं तिनकरि अर्चित्वा कहिये पूजनकरि" इत्यादि संबंध है या वचनतैं सर्व ही पुरुष सदा काल ही प्रासुक द्रव्यतैं भी पूजन करैं।

प्रश्न—ये मूलाचार ग्रंथ यत्याचारका है तातैं मुनीश्वरनिका वरनन है।

उत्तर—ये प्रकरण चतुर्विंशतिस्तवनका है सो सर्व ही गृहस्थ तथा मुनीश्वरनिके करनेका है तातैं ही द्रव्यरूप भावरूप विशेषण सर्व द्रव्य प्रति जनाया है। अर केवल मुनीश्वरनिकूं ही ये उपदेश होता तो द्रव्यरूप विशेषण नहीं होता क्योंकि मुनीश्वरनिकै द्रव्यपूजन है ही नहीं। अर इतनी और जानो कि–दर्शन व्रत सामायिक प्रोषध ये च्यार प्रतिमाके धारक तो सचित्ततैं भी करैं तथा अचित्ततैं भी करैं क्योंकि इनि च्यारनिकै आपकै भी त्याग नहीं है यातैं इनिकै सचित्तमैं ग्लानि नहीं है अर पांचमा सचित्तविरती छ ?

रात्रिभुक्तिविरती सातमा ब्रह्मचारी आठमा आरम्भत्यागी ये च्यार प्रतिमाके धारी अचित्त द्रव्यतैं ही करैं क्योंकि इन च्यारनिकै सचित्तका त्याग है तातैं सचित्तमैं ग्लानि है यातैं, अर नवमा परिग्रहत्यागी दशमा अनुमोदनत्यागी ग्यारमा उद्दिष्ट आहारत्यागी ये च्यार प्रतिमाके धारक भावरूप द्रव्यतैं ही करैं हैं क्योंकि इनकै द्रव्य नहीं है यातैं। अर और विचारनेकी वार्त्ता है कि—पूजन अतिथिसंविभागव्रतके अंतर्भूत है अर द्वादश व्रतमैं गणना नहीं कियो है और द्वादश व्रततैं बाहिर भी नहीं है अर अतिथिसंविभागका अतीचार सूत्रकारनैं ऐसा लिख्या है कि—सूत्र—"सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः" याको अर्थ ऐसो है कि-सचित्तनिक्षेप कहिये सचित्त पत्र आदिकै विषैं स्थापन कियो अर सचित्त अपिधान कहिये सचित्त पत्र आदितैं ढक्यो अर परव्यपदेश कहिये पैलानैं उपदेश कियो अर मात्सर्य कहिये ईर्षासहित दियो अर कालातिक्रम कहिये कालको उल्लंघन कियो ऐसैं पांच अतीचार हैं अर्थात् अतिथिसंविभागमैं पूजन है अर अतिथिसंविभागका अतीचारांमैं सचित्तनिक्षेप अर सचित्तापिधान लिख्या तातैं सचित्तपूजनका निषेध सर्वथा संभवै है तथापि सचित्तपूजनकी भी आज्ञा है तातैं अनुमानतैं मालूम होय है कि ये दोऊ ही वचन पूजककी अपेक्षातैं हैं, ऐसैं अवधारण किये वचन विरोध नहीं होय है।

प्रश्न—प्रासुक द्रव्यतैं तो पूजन करना सिद्ध भया परंतु प्रासुक द्रव्यका लक्षण भी कहो।

उत्तर—गाथा:—

तत्तं पक्कं सुक्कं आमिललवणेण मिस्सियं दव्वं ।

जं जंतेण य छन्नं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥ १ ॥
तप्तं पक्वं शुष्कं आम्ललवणेन मिश्रितं द्रव्यम्।
यत् यंत्रेण च छिन्नं तत्सर्वं प्रासुकं भणितम् ॥१॥

अर्थ—तप्तं कहिये अग्निकरि तप्त भये जल दुग्ध छाछि आदि द्रव द्रव्य अर पक्वं कहिये अग्निकरि पक्यो हरितकाय तथा शुष्कं कहिये सूखा हरितकाय अर आमिली लवणकरि मिश्रित भयो हरितकाय तथा यंत्रकरि छेदित भेदित भयो हरितकाय सो सर्व द्रव्य प्रासुक कह्यो है॥

ऐसैं तौ सामान्यवचन ये है तथा आचारसारमैं;—

नारं तु प्रासुकं ग्राह्यं मुनिभिः शुद्धमेव तत्।
षष्ठ्यंशं स्थापयेद्द्रव्यं प्रासुकं च जिनोदितम्॥

अर्थ—प्रासुक जल करनेके समयमैं जो हरडै आदि द्रव्य जलमैं जलका प्रमाणतैं साठिवैं भाग प्रमाण मिलावै सो जल प्रासुक मुनीश्वरनिकै ग्रहण करने योग्य है क्योंकि जिनेंद्रको कह्यो शुद्ध ही है॥

तथा मूलाचारमैं आहारके दोषनिमैं निक्षिप्तदोष वरननकी गाथा—

सचित्तपुढविआऊतेऊ हरिदं च बीय तसजीवा।
जं तेसिमुवरि ठविदं णिक्खित्तं होदि छब्भेयं ॥४१॥
सचित्तपृथिव्यप्तेजांसि हरितं च बीजत्रसजीवाः।
यत्तेषामुपरि स्थापितं निक्षिप्तं भवति षड्भेदम्॥

टीका—सचित्तपृथिव्यां सचित्ताप्सु सचित्ततेजःसु हरितकायेषु बीजकायेषु त्रसजीवेषु तेषूपरि

यत्स्थापितमाहारादिकं तन्निक्षिप्तं भवति षट्भेदं । अथ वा सह चित्तेनाप्रासुकेन वर्त्तत इति सचित्तं च पृथिवीकायाश्चाप्कायाश्च तेजः कायाश्च हरितकायाश्च बीजकायाश्च त्रसजीवाश्च तेषामुपरि यन्निक्षिप्तं सचित्तं तत् षड्भेदं भवति ज्ञातव्यम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—सचित्त पृथ्वीकै विषैं सचित्त जलकै विषैं सचित्त अग्निकै विषैं हरितकायकै विषैं बीजकायकै विषैं तथा त्रस जीवनिकै विषैं कि इनिकै ऊपरि जो आहारादिक स्थापित किया सो छह भेदरूप निक्षिप्तदोषयुक्त द्रव्य भया । अथ वा चित्तकै साथि प्रवर्त्तै सो सचित्त, अर पृथिवीकाय अप्काय तेजकाय हरितकाय बीजकाय अर त्रसकाय जे हैं ते प्रासुककै ऊपरि स्थापित करै तौ यो द्रव्य षट्भेदरूप सचित्त है, ऐसैं जानवे योग्य है । भावार्थ—प्रासुक द्रव्य अप्रासुककै ऊपरि धरि देवै अथवा नीचें धरि देवै अथवा दोऊ मामिल करि देवै तौ सर्व अप्रासुक ही जानना ॥ ४१ ॥

प्रश्न—प्रथम प्रासुकलक्षणमैं अग्नितैं तप्त भया तथा पक्व भया सो प्रासुक है ऐसैं कह्या अर इहां अग्निकै ऊपरि धरनेतैं प्रासुकपणा बिगड़ना कह्या सो कैसें है ?

उत्तर—अग्नितैं तप्त पक्व भया ताही द्रव्यनैं बहुरि तप्त करैं चलितरस होय है तातैं त्यागने योग्य कह्या है ।

तथा अपरिणतदोषकी गाथा:—

तिलतंदुलउसिणोदय चणोदय तुसोदयं अविद्धत्थं ।
अण्णं तहाविहं वा अपरिणदं णेव गेण्हिज्जो ॥४२॥

तिलतंदुलोष्णोदकं चणोदकं तुषोदकं अविध्वस्तम्।
अन्यत्तथाविधं वा अपरिणतं नैव गृण्हीयात् ॥४६॥

टीका—तिलोदकं तिलप्रक्षालनं तंदुलोदकं तंदुलप्रक्षालनं उष्णोदकं भूत्वा शीतं च चणोदकं चणप्रक्षालनं तुषोदकं तुषप्रक्षालनं अविध्वस्तमपरिणतं आत्मीयवर्णगंधरसापरित्यक्तं अन्यदपि तथाविधमपरिणतं हरीतकीचूर्णादिना अविध्वस्तं नैव गृण्हीयात् नैव ग्राह्यमिति, एतानि परिणतानि ग्राह्याणीति ॥ ४६ ॥

अर्थ—तिलांको धोवण तंदुलको धोवण उष्ण होय करि होहु तथा शीतल होहु चणांको धोवण तुषांको धोवण जो अपना वर्ण गंध रसनैं नहीं छोड्यो होय तथा और भी तैसें ही हरडैका चूर्ण आदि द्रव्यकरि अन्यरूप नहीं परिणम्यूं होय सो जल मुनीश्वर नहीं ग्रहण करै। भावार्थ—ये पूर्वोक्त जल निज वर्ण गंध रूपतैं परिणति पा जाय तौ प्रासुक जाणि ग्रहण करै अर तिल तंदुल चणा तुष हरड आदिका रस गंधरूप जा जलमैं नहीं प्रवेश करै सो जल अप्रासुक जाणि नहीं ग्रहण करै ॥ ४९ ॥ तथाः—

पगदा असवो जम्हा तम्हादो दव्वदोत्ति तं दव्वं।
फासुगमिदि सिद्धं त्विय अत्तकदं असुद्धं तु ॥६१॥
प्रगता असवो यस्मात्तस्मात् द्रव्यतः इति तत् द्रव्यम्।
प्रासुकमिति सिद्धं त्वियं(?) आत्मकृतं अशुद्धं तु ।६१।

टीका—द्रव्यभावतः प्रासुकं द्रव्यं भुंक्ते । द्रव्यगतप्रासुकमाह–प्रगता असवः प्राणिनः यस्मात्तस्मात् तत्द्रव्यतः शुद्धं तत् द्रव्यं यत्रैकेन्द्रिया जीवा न संति न विद्यंते स आहारस्तद्द्रव्यतः शुद्धः द्वीन्द्रियादीनां कलेवराः पुनर्यत्र सजीवा निर्जीवाः संति सः आहारो दूरतः परिवर्जनीयो द्रव्यतोऽशुद्धत्वादिति प्रासुकमिति, अनेन प्रकारेण प्रासुकं सिद्धं निष्पन्नमपि द्रव्यं यथात्मकृतं आत्मनिमित्तं कृतं चिंतयति तदा द्रव्यतः शुद्धमशुद्धमेव ॥ ६१ ॥

अर्थ—द्रव्यतैं तथा भावतैं प्रासुक द्रव्य होय सो मुनीश्वर भोजन करै तातैं द्रव्यगत प्रासुक कहैं हैं–अतिशयकरि गये हैं प्राणी जातैं तातैं यो द्रव्य द्रव्यतैं शुद्ध है। भावार्थ—जहां एकेंद्रिय जीव नहीं विद्यमान है सो आहार द्रव्यतैं शुद्ध है अर जहां द्वीन्द्रियादिकका कलेवर जीवसहित तथा निर्जीव है सो आहार दूरतैं ही अत्यंत वर्जनीक है क्योंकि याकी मांस संज्ञा है तातैं द्रव्यतैं अशुद्धपणूं है यातैं, या प्रकार प्रासुकको लक्षण जाननो। इहां इतना और जानना कि या प्रकारकरि प्रासुक सिद्ध भयो भी द्रव्य जो आपके निमित्त कियो चितवन करै कि जान लेवै वो वाही समय आहारादिक द्रव्य द्रव्यतैं शुद्ध है सो भी अशुद्ध ही है ॥ ६१ ॥

तथा प्रसिद्ध, श्लोक—

मुहूर्त्तं गालितं तोयं प्रासुकं प्रहरद्वयम् ।
कोष्णं चतुष्कयामं च विशेषोष्णं तथाष्टकम् ॥ १ ॥

अर्थ—वस्त्रकरि छाण्यूं जल मुहूर्तमात्र प्रासुक चतुर्थप्रतिमाधारक श्रावक पर्यंत पुरुषकै योग्य है, अर हरडे आदिका चूर्णकरि रस गंध वर्ण जाको परिणति पागयो होय सो जल दोय प्रहरमात्र प्रासुक है, अर किंचित् तप्त भयो जल च्यार प्रहर मात्र प्रासुक है, अर विशेष तप्त भयो जल आठ प्रहर मात्र प्रासुक है सो मुनिकै तथा गृहस्थकै गृहण करिबे योग्य है। इहां इतना और विशेष जानना कि—केवल वस्त्रकरि छाण्यूं ही जल सचित्तत्यागी गृहस्थी पुरुषकै तथा महाव्रती मुनीश्वरनिकै योग्य नहीं है क्योंकि यामैं एकेंद्रिय जलजीव विद्यमान हैं यातैं दो घड़ी पहली तीक्ष्ण द्रव्य मिलाने योग्य है तथा तप्त करने योग्य है ॥ चौपई।

अष्टद्रव्यको निर्णय एम,
लिख्यो जिनागम देखगे जेम।
भक्तिवान ज्ञानी जो होय,
हठ तजि ग्रहण करहु सब कोय ॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकांडे अष्टद्रव्यनिर्णयो नाम नवमोल्लासः ।

—※—

ॐनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ चमर आदि अनेकपदार्थ निर्णय लिख्यते दोहा;—

शुद्ध सिद्ध चिद्रूपमय सकल निरंजन देव।
हृदय धारि बहु द्रव्यको निर्णय कियो सुएव ॥१॥

प्रश्न—केई पुरुष तौ चमरी गौके केशानिका चमर बनाते हैं

अर कहते हैं कि आदिपुराणमें लिखते हैं अर केई पुरुष निषेध करते हैं, सो कैसें है ?

उत्तर—यहां 'चमरीरुह' लिखते हैं तातैं कहैं हैं परंतु इहां विचार करनेका काम है कि वहां जो पदार्थ हैं सो सब स्वर्गमसुद्भव हैं तातैं ये चमरीके केश वहां नहीं हैं जैसें नारायणके हस्तमें संख लिखे है सो संखके आकार देव.पनीत उत्तम द्रव्य है ये हाडद्रव्य नहीं है, तथा नारायणका नाम 'शार्ङ्गी' है ताका अक्षरार्थ ऐसा करते हैं कि जो सींग शार्ङ्ग ताका धनुष जाकै होय सो शार्ङ्गी है परन्तु सो धनुष देवोपनीत द्रव्य है सींगका नहीं है तातैं यहां चमरीके केशकै समान आकृतिमान चमर करना योग्य है, केशनिका चमर बनाना योग्य नहीं है क्योंकि केश तौ अस्पृश्य द्रव्य है अर इहां परम उत्तम द्रव्यका ग्रहण है।

प्रश्न—केई पुरुष कहैं हैं कि एक पुरुष पूजन करै ता समय दूसरेकूं करना योग्य नाहीं है, सो कैसें है ?

उत्तर—समवसरणमें असंख्यात देव मनुष्य तिर्यंच एकै काल पूजन स्तवन वंदना करै हैं तथा नंदीश्वरादिक कृत्रिम अकृत्रिम जिनमंदिरनिमें देव मनुष्य एकत्र होय सदाकाल पूजन स्तवन वंदना करै हैं तातैं ऐसा भी एकान्त पक्ष करना योग्य नाहीं जो एक समय एक ही पूजन करै।

प्रश्न—देव पूजन सामान्यपनें एक भेदरूप ही है कि कछू यामें विशेष भी है ?

उत्तर—आदिपुराणका अड़तीसवां पर्वमें;—

कुलधर्मोयमित्येषामर्हत्पूजादिवर्णनम्।
तदा भरतराजर्षिरन्ववोचदनुक्रमात् ॥ २५ ॥

प्रोक्ता पूजाऽर्हतामिज्या सा चतुर्द्धा सदाऽर्चनम् ।
चतुर्मुखमहः कल्पद्रुमश्चाष्टाह्निकोऽपि च ॥ २६ ॥

अर्थ—तिन श्रावकनिकै योग्य अर्हंतपूजादिकको वर्णन जो है सो कुलधर्म है सो या समय भरत राजऋषि अनुक्रमतैं कहत भयो॥ २५॥ अरहंतकी पूजानैं इज्या कहै है सो पूजा च्यार प्रकार है, तिनिके नाम—सदार्चन, चतुर्मुखपूजन, कल्पद्रुमपूजन, अष्टाह्निकपूजन॥२६ ॥

प्रश्न—इनके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहौ। उत्तररूप श्लोक—

तत्र नित्यमहो नाम शश्वज्जिनगृहं प्रति ।
स्वगृहान्नीयमानाऽर्चा गंधपुष्पाक्षतादिका ॥ २७ ॥
चैत्यचैत्यालयादीनां भक्त्या निर्मापणं च तत् ।
शासनीकृत्य दानं च ग्रामादीनां सदार्चनम् ॥२८॥
या च पूजा मुनीन्द्राणां नित्यदानानुषङ्गिनी ।
स च नित्यमहो ज्ञेयो यथाशक्त्युपबृंहितः ॥ २९॥

अर्थ—तिन च्यार भेदनिमैं जो निरंतर जिनमंदिर प्रति अपने गृहतैं ल्याये जे गंध पुष्प अक्षत आदि द्रव्य पूजा सो नित्यमह नाम पूजन है ॥ २७॥ तथा जो जिनप्रतिमाका तथा जिनमंदिरका भक्तिकरि बनावना है सो भी नित्यमह है, तथा दानतैं प्रधान करि ग्राम नगर आदिकै विषैं ※ सदार्चन है सो भी नित्यमह है ॥ २८॥ तथा जो नित्यदानकै साथि प्रवर्त्तनेवारी मुनीश्वरनिकी पूजा है सो

※ इसका अर्थ इस तरह होना चाहिये—"गाँव, जमीन आदि 'शासनीकृत्य' या दस्तावेज लिखकर मन्दिर को दानकर देना भी सदार्चन या नित्यमह है। —प्रकाशक

भी यथाशक्तिकरि मुद्धिनें प्राप्त भई नित्यमह जानवे योग्य है ॥२९॥

महामुकुटबद्धैस्तु क्रियमाणो महामहः ।
चतुर्मुखः स विज्ञेयः सर्वतोभद्र इत्यपि ॥ ३० ॥

अर्थ—महा मुकुटबद्ध राजानिकरि कियो महामह है सो चतुर्मुख है सो ही सर्वतोभद्र है, या प्रकार जानवे योग्य है ॥ ३० ॥

दत्त्वा किमिच्छकं दानं सम्राड्भिर्यः प्रवर्त्यते ।
कल्पद्रुममहः सोऽयं जगदाशाप्रपूरणः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो किमिच्छक दान देय चक्रवर्तीनिकरि प्रवर्त्तै सो यो जगतकी आशाको परिपूर्ण करनेवारो कल्पद्रुममह है ॥ ३१ ॥

अष्टाह्निको महः सार्वजनिको रूढ एव सः ।
महानैन्द्रध्वजो यस्तु सुरराजैः कृतो महः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अर जो देवेन्द्रनिकरि कियो महान ऐन्द्रध्वज पूजन है सो ही सर्वजनप्रसिद्ध अष्टाह्निकमह है ॥ ३२ ॥

बलिस्नपनमित्यन्यत्त्रिसंध्यासेवया समम् ।
उक्तेष्वेव विकल्पेषु ज्ञेयमन्यच्च तादृशम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—या प्रकार और तीनूं सध्यासंबंधी सेवन करि है साथि मंडल पूजन स्नपन जो है सो कहे विकल्पनिकै विर्षे ही अन्तर्भूत जाननें अर और भी तिनसमान जे हैं ते सर्व उनहीमें अन्तर्भूत जाननें ॥ ३३ ॥

एवंविधविधानेन या महेज्या जिनेशिनाम् ।
विधिज्ञास्तामुशंतीज्यां वृत्तिं प्रथमकल्पिकाम् ॥

अर्थ—या प्रकार विध विधानकरि जो जिनेश्वरकी महान पूजा

है ताहि विधिका ज्ञाता प्रथम कल्पकी इच्या वृत्ति कहै है ॥ ३४ ॥

प्रश्न—जिनपूजननिमित्त मंडलविधान करतेहैं सो रीति प्राचीन है कि नवीन है ?

उत्तर—आदिपुराणका तेईसमा पर्वमें, श्लोक—

पुरो रंगवल्याततै भूमिभागे
सुरेन्द्रोपनीता बभौ सा सपर्या ।
शुचिद्रव्यसंपत्समस्तैव भर्तुः
पदोपास्तिमिच्छुः श्रिता तच्छलेन ॥१०७॥

अर्थ—सुरेन्द्रनिकरि ल्याई या पूजा जो है सो अग्रभागके विषैं रंगावलीकरि विस्तृत भूमिभागकै विषैं सोहत भई, इहां कवि उत्प्रेक्षा करै है कि—समस्त ही पवित्र द्रव्यनिकी संपदा जो है सो मानों भर्त्तारके चरणनिकी उपासनाकी इच्छुक पूजनके छलकरि आश्रय कियो ॥ १०७ ॥

शची रत्नपूर्णैर्बलिं भर्तुरग्रे
ततानोन्मयूखप्ररोहैर्विचित्राम् ।
मृदुस्निग्धसूक्ष्मैरनेकप्रकारैः
सुरेन्द्रायुधानामिव श्लक्ष्णचूर्णैः ॥ १०८ ॥

अर्थ—शची जो है सो भर्त्तारके अग्रभागके विषैं सुरेन्द्रका धनुषके समान निकलती कांतिके हैं अंकुरे जिनविषैं ऐसे कोमल सचिक्कण सूक्ष्म अनेक प्रकारके महीन चूर्ण जे हैं तिनकरि चित्रित बलि कहिये मंडलरचना जो है सो विस्तारत भई ॥ १०८ ॥

या वचनतैं अनेक रंगयुक्त प्रभूका अग्रभागमें मंडल करनेकी प्राचीन राह है ।

प्रश्न—मंडलकी रीति तौ प्राचीन मानी तथापि केई पुरुष तौ चांवलांको करै है अर केई पुरुष चूनको करै है अर केई पुरुष चंदन आदि सुगंधित द्रव्यनिको करै है, सो आगममें कैसैं योग्य है ?

उत्तर—आदिपुराणका अड़तीसमा पर्वमें स्थानलाभक्रियाका वरननके विषैं, श्लोक—

श्लक्ष्णेन पिष्टचूर्णेन सलिलालोडितेन वा ।
वर्त्तनं मंडलस्येष्टं चंदनादिद्रवेण वा ॥ ३७ ॥

अर्थ—सूक्ष्म पीस्या शुष्क चूर्णकरि अथवा जलकरि पीस्या चून करि अथवा चंदन आदिका द्रव कहिये विलेपन योग्य द्रव्य करि मंडलको वर्त्तन कहिये बनायबो इष्ट है ॥ ३७ ॥

प्रश्न—पूजनका विधान कह्या सो तौ श्रद्धान किया अब पूजकका भी लक्षण कहौ ।

उत्तर—आर्षग्रंथनिमैं कहूं भिन्नपणैं तौ लक्षण हमारी दृष्टिमैं आये नहीं अर जहां तहां पूजन च्यारूं ही वर्णके मनुष्यनिका तथा च्यारूं ही निकायके देवनिका द्रव्यरूप तथा भावरूप तथा सर्व ही तिर्यंचनिका भावरूप तथा द्रव्यरूप पूजन स्तवन समवसरणमैं तथा कृत्रिम अकृत्रिम जिनमंदिरनिमैं करना लिखै है तातैं श्रीजिनेंद्रके पूजक सर्व ही हैं तथापि स्पर्श करनेका शूद्रकूं अधिकार वर्त्तमान देशकालमैं नहीं है सो ही योग्य दीखै है अर और आधुनिक ग्रंथकार भिन्न लक्षण भी लिखै है, सो पूजासारमैं;—

पूजकः पूजकाचार्य इति द्वेधा स पूजकः ।
आद्यो नित्यार्चकोऽन्यस्तु प्रतिष्ठादिविधायकः ॥१६॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाऽऽद्यः सुशीलवान्
दृढव्रतो दृढाचारः सत्यशौचसमन्वितः ॥ १७ ॥

कुलेन जात्या संशुद्धो मित्रबंध्वादिभिः शुचिः ।
गुरूपदिष्टमंत्राढ्यः प्राणिबाधादिदूरगः ॥ १८ ॥
द्वितीयस्योच्यते ऽ स्माभिर्लक्षणं सर्वसंपदः ।
लक्षितं त्रिजगन्नाथवचोमुकुरमंडले ॥ १९ ॥
कुलीनो लक्षणोद्भासी जिनागमविशारदः ।
सम्यग्दर्शनसम्पन्नो देशसंयमभूषितः ॥ २० ॥

अर्थ—सो जिनेन्द्रका पूजन करनेवारा दोय भेदरूप है, एक पूजक दूसरा पूजकाचार्य, तिनमें आदिको पूजक जो है सो तौ नित्य पूजनकरनेवारो है अर दूसरो जो है सो प्रतिष्ठादिक विधानको करावनेवारो है ॥ १६ ॥ तहां भले प्रकार शीलवान होय अर दृढव्रत कहिये लिया व्रतकूं दृढपणैं धारनेवारो होय अर दृढाचारः कहिये कुलकै तथा देशकै योग्य जिनागमकै अनुकूल आचारवान होय अर निर्दोष वचनरूप सत्य अर निर्लोभतारूप शौच जो है ताकरि संयुक्त होय अर कुलकरि तथा जातिकरि भलै प्रकार शुद्ध होय अर मित्र तथा बंधुजनकरि पवित्र होय अर गुरुनिकरि उपदेश दिया मंत्रकरि संयुक्त होय अर जीवहिंसातैं दूरवर्त्ती होय ऐसो ब्राह्मण हौ अथवा क्षत्रिय हौ अथवा वैश्य हौ अथवा शूद्र हौ सो तौ आद्यका भेदरूप नित्य पूजक कहिये है । अर कुलीन कहिये उत्तमकुलवान होय अर प्रतिमा मंदिर सामग्री आदिका लक्षणको प्रकट करनेवारो होय अर जिनागमको भलै प्रकार जाननेवारो होय अर सम्यग्दर्शनकरि युक्त होय अर देशसंयम जो गृहस्थकै योग्य अणुव्रत तिनकरि भूषित होय सो दूसरा भेद रूप प्रतिष्ठादिविधान-

को करानेवारो सर्व संपदावान जो है ताको लक्षण तीन जगत्का नाथ सर्वज्ञ जे हैं तिनका वचनरूप काव्यका मंडलकै विषैं देख्यो सो हम जे हैं तिनकरि कहिये है ॥ १७–१८–१९–२० ॥

इहां इतनी और विचारनेकी है कि यामैं शूद्र भी पूजक लिखे हैं सो सामान्यपणें पूजक हैं परंतु अभिषेकपूर्वक स्पर्शन करना संभवै नहीं क्योंकि जिनपूजन अतिथिसंविभागमैं है अर यत्याचारमैं शूद्रका घरका आहार लेनेका मुनीश्वरनिकूं निषेध किया है तातैं शूद्र जो है सो अग्रभागमैं खड़ा रहि द्रव्य अर्पण तो करै अर स्पर्शकरि पूजन तो करै नहीं यां ही वर्त्तमान क्षेत्र कालमैं प्रवृत्ति है, सो ही योग्य है।

तथा प्रतिष्ठापाठय मुनंदिजीकृतमैं—

तत्र तावत्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् ।
तस्योपदेशतो यस्माद्विश्वकर्मप्रवर्त्तनम् ॥

अर्थ—तत्र कहिये प्रतिष्ठासारसंग्रहके विषैं प्रथम ही प्रतिष्ठाचार्यका लक्षण कहैंगे क्योंकि ताके उपदेशतैं प्रतिष्ठामैं समस्त कर्मको प्रवर्त्तन होय है ॥

कुलीनो जातिसम्पन्नः कुत्साहीनः सुदेशजः ।
कल्याणांगो रुजाहीनः प्रसन्नोऽविकलेंद्रियः ॥७॥
शुभलक्षणसम्पन्नः सौम्यरूपः सुदर्शनः ।
विप्रो वा क्षत्रियो वैश्यो विकर्मकरणोज्झितः ॥८॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा सम्यग्दृष्टिर्जितेन्द्रियः ।
निःकषायः प्रशांतात्मा वेश्यादिव्यसनोज्झितः ॥९॥

श्रद्धालुर्भक्तिसम्पन्नः कृतज्ञो विनयान्वितः।
व्रतशीलतपोदानजिनपूजासमन्वितः ॥ १० ॥
जिनवन्दनकर्मादिष्वनुष्ठानपरः शुचिः।
श्रावकाध्ययने दक्षः प्रतिष्ठाविधिवित्सुधीः ॥ ११ ॥
महापुराणशास्त्रज्ञो वास्तुविद्याविशारदः।
एवंगुणो महासत्त्वः प्रतिष्ठाचार्य इष्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—कुलीन कहिये उत्तम कुलवान होय, अर जातिसंपन्नः कहिये उत्तम मातृपितृपक्षरूप जातिकरि संपन्न होय, अर कुलाहीन कहिये लोकनिंदाकरि रहित होय, अर सुदेशज कहिये आर्यक्षेत्रमैं उपन्न भयो होय, अर कल्याणांग कहिये मनोहर अंगको धारी होय हीनाधिक अंगकरि रहित होय, अर रुजाहीन कहिये कुष्ट आदि रोगनिकरि रहित नीरोग होय, अर प्रसन्न कहिये क्रोध मानकरि रहित प्रसन्न होय, अर अविकलेंद्रिय कहिये इंद्रियनिकी शिथिलतारहित होय ॥ ७ ॥ अर शुभलक्षणसंपन्न कहिये सुन्दर लक्षणकरि संयुक्त होय अर सौम्यरूप कहिये वक्रतारहित शांतरूप होय अर सुदर्शन कहिये जाको सुन्दर दर्शन होय ऐसो ब्राह्मण होय अथवा क्षत्रिय होय वा वैश्य होय अर विकर्मकरणोज्झित कहिये कुकार्यके करणेकरि रहित उत्तमकार्यको कर्त्ता होय ॥ ८ ॥ सम्यग्दृष्टी होय जितेंद्रिय होय निःकषायी होय अर प्रशांतात्मा होय अर वेश्यादि सप्त व्यसनकरि रहित होय ॥ ९ ॥ श्रद्धावान होय भक्तिसंयुक्त होय कृतज्ञ होय विनयवान होय व्रत शील तप दान जिनपूजाको कर्त्ता होय पवित्र होय श्रावकाध्ययन विषैं चतुर होय अर प्रतिष्ठाकी विधिको जाननवारो होय अर सुबुद्धी

होय ॥१०-११॥ महापुराण आदि शास्त्रको ज्ञाता होय अर वास्तुविद्या जो मंदिर आदि करावनेके ग्रंथ तिनके जाननेमें प्रवीण होय। या प्रकार गुणनिको धारक महापराक्रमी ब्राह्मण होय वा क्षत्रिय होय वा वैश्य होय इनि तीन उत्तम कुलनिमें उत्पन्न भयो ब्रह्मचारी होय वा गृहस्थ होय सो प्रतिष्ठाचार्य इष्ट करिये है॥ १२॥

ये ही लक्षण प्रतिष्ठाचार्यके आशाधरजीने भी प्रतिष्ठापाठमें लिखे हैं।

प्रश्न—इन वचननितैं तौ प्रतिष्ठाचार्य गृहस्थ है अर भेषीजन गृहस्थनिके करानेका निषेध कहैं हैं, सो कैसें है?

उत्तर—वर्त्तमानमें जो आधुनिक प्रतिष्ठाके ग्रंथ मिलेहैं जिनका वचन तौ तुमैं सुनाये ही तिनहीमें जो भेषीनिका नाम नहीं है तौ आर्ष ग्रंथनिमें भेषीनिका नाम होना संभवै ही नहीं, अर जिनके करावनेका निषेध याहीमें लिख्या है सो और सुनौ;—

लिंगिपापंडिपुत्रो वा भ्रष्टलिंगी कलंकवान्।
गीतवाद्योपजीवी च भांडो वैतालिको नटः ॥१३॥
उन्मत्तो वा ग्रहग्रस्तो भोजने पंक्तिवर्जितः।
शास्त्रज्ञः कुलजातो वा वर्जनीयस्तथाविधः ॥१४॥

अर्थ—'लिंगिपापंडि पुत्रो वा' कहिये जिनागममें कहे जे तीन लिंग तिनितैं बाह्य स्वइच्छा लिंगके धारक होय सो लिंगिपापंडि कहिये अर तिनके पुत्र होय कि भेषधारीको पुत्र होय अथवा शिष्य होय अर भ्रष्टलिंगी कहिये मुनिलिंगका धारणकरि भ्रष्ट भये होय अर कलंकवान कहिये पंच पाप रूप कलंककरि युक्त होय अर गीतवाद्योपजीवी कहिये गानविद्याकरि अथवा वादित्रविद्याकरि जीविका करनेवारो होय अर भांड कहिये अयोग्य क्रियाको कर्त्ता

होय तथा अयोग्य वचनको वक्ता होय अर वैतालिक कहिये भूत विद्या मंत्र यंत्र तंत्रादिकको कर्त्ता होय अर नट कहिये नृत्य कर्मको कर्त्ता होय ॥ १३ ॥ उन्मत्त होय अथवा पिशाच आदि ग्रसित होय तथा भोजनके विषैं पंक्तिबाह्य होय ऐसो होय सो शास्त्रको ज्ञाता होय अर कुलवान होय तौहू प्रतिष्ठादि महान विधानके विषैं वर्जनीक है ॥ १४ ॥

प्रश्न—केई पुरुष कहै हैं कि प्राचीनमार्गमैं तौ जिनपूजन केवल मंत्रनितैं ही है काव्य छंद संस्कृत प्राकृतदेशभाषामय है सो मार्ग आधुनिक है।

उत्तर—मंत्र तौ सर्वही पूजनपाठमैं हैं बिना मंत्र तौ कोऊ पाठ है ही नहीं अर काव्य छंद है सो द्रव्यका तथा पूज्यका तथा पूजकके भावनिका सत्यार्थ स्वरूप दिखावनेकूं है सो सर्व ही प्राचीन-पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं तथा महापुराणमैं तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार-मैं दिगंबर आचार्यनिनैं जहां तहां लिख्या है तातैं काव्य छंदनिका उच्चारणपूर्वक पंचपरमेष्ठीवाचक मंत्र पढि उत्तम द्रव्य चढ़ाना योग्य है सो हां सर्वकै मान्य प्रवृत्ति अद्यापि विद्यमान है। अर द्रव्यनिकी प्रशंसा करना है सो प्रस्तावनविधि है सो महापुराणमैं जन्माभिषेकवर्णनमैं इंद्रका करना लिख्या ही है तातैं केवल मंत्रनितैं ही पूजन कहनेवारेकूं हठग्राही जानना।

प्रश्न—केई पुरुष वादित्रनिसहित गान नृत्यपूर्वक पूजन करै है सो योग्य है कि नाहीं ?

उत्तर—सिद्धान्तसारमैं, श्लोक—

नित्यं प्रकुर्वते भूत्या विश्वविघ्नहरं शुभम्।
जिनेंद्रदिव्यबिंबानां गीतनृत्यस्तवैः सह ॥ ७१ ॥

अर्थ—देवेन्द्र जे हैं ते विभूतिकरि समस्त विघ्नको हरता महान शुभरूप जिनेंद्रके दिव्य बिंबनिको पूजन गीत नृत्य स्तवनकरि सहित निरंतर अतिशयरूप करैं हैं ॥ ७१ ॥

इत्यादि अनेक स्थलमैं तथा पूजनके पाठमैं जहां तहां लिखे हैं तातैं योग्य है ।

प्रश्न—शरद पून्यूंका तथा दीपमालिकाका उत्सव जिनमंदिरमैं करना योग्य है कि नाहीं ?

उत्तर—शरदऋतुका उत्सव राजनिकै योग्य है वीतरागके मंदिरमैं करनेका चरणानुयोगरूप तथा प्रथमानुयोगरूप आर्ष ग्रंथनिमैं कहूं हुकम नाहीं तातैं उन्मार्ग ही है अर दीपमालिकाको भी हुकम नाहीं तातैं ये भी उन्मार्ग ही है।

प्रश्न—तुमतो उन्मार्ग कहो हो अर केई पुरुष कहैं हैं कि महावीरस्वामीका निर्वाणको उत्सव देवनिनैं रात्रिमैं आय कियो है तहां दीपमालिका करी है तादिनतैं दीपमालिका प्रसिद्ध है।

उत्तर—प्रथम तो देवनिके कृत्य सर्व तीर्थंकरनिके कल्याणमैं समान हैं सो तेईस तीर्थंकरनिका निर्वाणनिमैं तो दूसरां देव आय दीपोत्सव नहीं कियो, अर चौवीसवांके समयमैं ही कहो तो महापुराणसंबंधी महावीरपुराणमैं तथा सकलकीर्त्तिजीकृत महावीरपुराणमैं तो लिख्यो नाहीं तातैं ही अपनी संप्रदायमैं कोऊ जिनमंदिरमैं तथा गृहस्थनिके घरनिमैं निर्वाणदिनके संध्यासमयमैं दीपोत्सव करनेकी मर्यादा भी अद्यापि नहीं है, अर कार्त्तिककृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिमैं अरुणोदय पहली नक्षत्रनिकी प्रत्यक्ष होत संतैं महावीरस्वामीका निर्वाण भया है तातैं वा समय पूजन उत्सव करियेहै बहुरि वाही दिन दीपोत्सव करनेंकूं संध्यासमय श्रावकजन जिनमंदिरमैं सामिल होय जाते नाहीं अर अमावास्याकी रात्रिमैं सर्व ही

ग्राममें दीपमालिका होय है सो वैष्णव आम्नायमें वा दिन अर्धरात्रिमें लक्ष्मीको आगमन नगरमें लिखै है ता निमित्त गृहका घोवना चित्रित करना दीपक जोवना उज्वल वस्त्र पहरना उत्तम भोजन करना सर्व जन करते हैं सो अन्यमतीनिकै योग्य है अपनें तौ राज-आज्ञातैं करैं हैं॥

प्रश्न—सूतककी आगममें कहा आज्ञा है?

उत्तर—सामान्य वचन तौ सूतकके माननेका आर्षग्रंथनिमें है, मूलाचारका समयसार अधिकारमें; गाथा—

ववहारसोहणाए परमट्ठविसोहणाय परिहरउ।
दुविहा चावि दुगुंछा लोइय लोगुत्तरा चेव॥ ५७॥
व्यवहारशोधनाय परमार्थविशोधनाय परिहरणीया।
द्विविधा चापि जुगुप्सा लौकिकी लोकोत्तरा चैव॥५७॥

अर्थ—व्यवहारका शोधनकै अर्थि तथा परमार्थका शोधनकै अर्थि लौकिकी अर लोकोत्तरा दोऊ ही जुगुप्सा जो है सो त्यागवे योग्य है॥ ५७॥

टीका—जुगुप्सा गर्हा द्विविधा द्विप्रकारा, लौकिकी लोकोत्तरा च। लोकव्यवहारशोधनार्थं सूतकादिनिवारणाय लौकिकी जुगुप्सा परिहरणीया तथा परमार्थशोधनार्थं रत्नत्रयशुद्ध्यर्थं लोकोत्तरा च कार्येति॥ ५७॥

अर्थ—जुगुप्सा गर्हा ग्लानि ये तीनों शब्द एक अर्थवाची हैं सो ग्लानि दोय प्रकार है, एक लौकिकी दूसरी अलौकिकी। तिनमें

लोकव्यवहारका शोधनके निमित्त सूतकादिकका निवारणनिमित्त लौकिकी ग्लानि त्यागने योग्य है अर तैसें ही परमार्थका शोधनके अर्थि रत्नत्रयकी शुद्धिके निमित्त लोकोत्तर शुद्धि भी करिबे योग्य है। अर इहां ग्लानिका त्याग करना कहा याका अभिप्राय ऐसा जानना कि जैसें लोकव्यवहारमें तथा परमार्थमें ग्लानि नहीं करो तैसें प्रवर्त्तन करना चाहोगे लोकमें सूतकादिकं त्याग दिये हैं जिनमें स्वाध्याय पूजन नहीं करते हैं सो या धर्मका ही निमित्तनिमित्त ग्लानिरूप तिनका त्याग है। इहां आचारका आचरणमें व्यवहार करि ग्लानिका त्यागना कहा है। अर परमार्थमें शल्यादिकका त्याग करना है सो रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गका शुद्ध करना है यातें इहां ही ग्लानि त्याग करने योग्य हैं॥

तथा पिंडशुद्धग्रंथविचारमें दोषकरीन वर्णनकी गाथा—

सूदी सोंडी रोगी मदय णउंसय पिसाय णग्गोया।
उच्चारपडिदवंतरुहिरवेसी समणी अंगमक्खीय॥
सूती शौंडी रोगी मृतकनपुंसकपिशाचनग्नाश्च।
उच्चारपतितवान्तरुधिरवेश्याश्रमण्यंगम्रक्षिकाः॥१॥

टीका—सूती या बालं प्रसाधयति, शौंडी मद्यपानलंपटः, रोगी व्याधिग्रस्तः, मृतकं श्मशाने प्रक्षिप्याऽऽगतो यः मृतक इत्युच्यते, मृतकसूतकेन यो जुष्टः सोऽपि मृतक इत्युच्यते, णपुंसय न स्त्री न पुमान् नपुंसकमिति जानीहि, पिशाचो वातापगृहीतः, नग्नःपटाद्यावरणरहितो गृहस्थः, उच्चारमूत्रा-

दीन् कृत्वा य आगतः स उच्चार इत्युच्यते, पतितो मूर्च्छां गतः, वांतः छर्दिं कृत्वा य आगतः, रुधिरं रुधिरसहितः, वेश्या दासी, श्रमणिकाऽऽर्यिका, अथ वा पंचश्रमणिका रक्तपटिकादयः, अंगम्रक्षिका अंगाभ्यंगनकारिणी॥ ४६ ॥

अर्थ—सूती कहिये बालककूं चुखावती होय, सौंडी कहिये मद्यपान भांगि वगैरे मदके वस्तु खानपानमें लंपटी होय, रोगी कहिये व्याधिकरि पीडित होय, मृतक कहिये जो श्मशानमें मृतककूं क्षेपि करि आया होय सो मृतक कहिये अथवा मृतकका सूतककरि युक्त होय सो मृतक कहिये, अर नपुंसक होय, अर पिशाच कहिये उन्माद वाय करि पीडित उन्मत्त होय, अर नग्न कहिये वस्त्रादिकका आवरण करि रहित गृहस्थ होय, अर उच्चार कहिये मूत्र पुरीष आदि करिकै जो आयो होय, अर पतित कहिये मूर्च्छाने प्राप्त भयो होय अर वांत कहिये जो वमनकरि आयो होय, अर रुधिरं कहिये रुधिरसहित होय, वेश्या कहिये वेश्या, दासी, श्रमणिका अथवा पंच श्रमणिका रक्तपटकादिक अर अंगम्रक्षिका कहिये उबटनूं तैल आदि करि अंगमर्दन करनेवारी होय ॥

या वचनतें इनके करतें दीयात आहारकूं साधु ग्रहण नहीं करै है ताहीतें जिनेंद्रका अभिषेक पूजन भी इनकूं करना योग्य नहीं है क्योंक जिनपूजन भी अतिथिसंविभागमें लिखै है, अर देव गुरु सिद्धांतका विनय समान है यातें। अर इहां इस विषयका कालप्रमाण जनावनेवारा आर्ष वचन तौ हमनें पाया नाहीं अर मूलमें सूतकका मानना ऐसा वचन है तातें यावत्काल आर्ष वचन नहीं

मिलै तावत्काळ जो वचन मिलै है सो ही मानने योग है, तातैं प्रसिद्ध; श्लोक—

सूतकं धृद्धिहानिभ्यां दिनानि दश द्वादश ।
प्रसूतिस्थानमासैकं दिनानि पंच गोत्रिणाम् ॥१॥

अर्थ—वृद्धिकरि अर हानिकरि सूतक जो है सो दश दिन अर बारा दिनको है। भावार्थ—जन्मका सूतक तौ दश दिनका है अर मृत्युका सूतक द्वादश दिनका है। बहुरि प्रसूतिका स्थान एक मास पर्यंत सूतकयुक्त जानना अर गोत्रके मनुष्यनिकै पंच दिनका सूतक जानना ॥ १ ॥

अबैं इनिकी विशेष व्यक्ति दिखाइयेहै;—

प्रव्रजिते मृते बाले देशांतरे मृते रणे ।
सन्यासे मरणे चैव दिनैकं सूतकं भवेत् ॥ २ ॥

अर्थ—अपना कुलको दीक्षित भयो कि उत्कृष्ट क्षुल्लक पद धारयो अथवा मुनिपद धारयो ताको मरण होतसंतैं तथा बालकको मरण होतसंतैं तथा देशान्तरमैं मरण होतसंतैं तथा संग्राममैं मरण होत संतैं तथा सन्यासमैं मरण होत संतैं एक दिनको सूतक होय है। भावार्थ—जो गृह त्यागि दीक्षित भयो ताका मरणमैं अर सात आठ महीना तांईका बालकका मरणमैं सूतक एक दिनको है ॥

प्रश्न—सात आठ महीनेका प्रमाण या श्लोकमैं तौ है नहीं, तुम कहांसैं लिखो हो ?

उत्तर—बालक संज्ञा कहूं तौ योग्य अयोग्य शब्दका विचाररहितकूं कहैहै अर कहूं अष्ट वर्ष पर्यंतकूं बालक कहैहै अर कहूं स्तनपान करतेकूं बालक कहै है तथापि इहां हमारे ज्ञानमैं यावत्

अन्नभक्षण नहीं करै केवल स्तनपानहीतैं जीवै तावत् काल बालक-संज्ञा है सो अन्नप्राशनक्रिया महापुराणमैं सातवां मासमैं तथा आठवां मासमैं करना कह्या है, सो ही श्लोक—

गते मासपृथक्त्वे च जन्मादस्य यथाक्रमम् ।
अन्नप्राशनमाम्नातं पूजाविधिपुरःसरम् ॥ ९५ ॥

अर्थ—जन्मका दिनतैं सातवां मासनैं अथवा आठवां मासनैं प्राप्त होता संता जिनेंद्रदेवकी पूजाविधिपूर्वक अन्नप्राशनक्रिया कही है। भावार्थ—इस श्लोकमैं पृथक्त्व शब्द है सो सिद्धांतमैं तीनकै उपरांति नव पर्यन्तका वाचक कह्या है तातैं इहां सात आठ मास ग्रहण किया है। अर जो अपना संबंधीका देशान्तरमैं मरण भया अर द्वादश दिन उपरांति सुणयां तौ वाका सुणै जाकै एक दिनका ही सूतक है अर संग्राममैं तथा सन्यासमैं मरण करै ताका भी एक भी दिनका सूतक है। भावार्थ—द्वादश दिनमाहिं सुणै तदि तौ द्वादश-की घटतीका दिन जानना अर द्वादश दिन उपरांति सुणै तदि एक दिन जानना।

अब पीढ़्यांका भेदतैं सूतकमैं भेद दिखावै हैं;—

चतुर्थे दशरात्रिः स्यात् षटरात्रिः पुंसि पंचमे ।
षष्ठे चतुरहः शुद्धि सप्तमे च दिनत्रयम् ॥ ११ ॥
अष्टमे पुंस्यहोरात्रं नवमे प्रहरद्वयम् ।
दशमे स्नानमात्रंस्यादेतद्गोत्रस्य सूतकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—पूर्वै कह्या जो मरणका द्वादश दिन सो तौ तीन पीढ़ी ताईं जानना अर चौथी पीढ़ीमैं दश रात्रि प्रमाण सूतक है अर पांचमी पीढ़ीमैं षट्रात्रि प्रमाण है अर छट्ठी पीढ़ीमैं च्यार दिन

उपरांति शुद्धि है अर सातमी पीढ़ीमें तीन दिन सूतक है अर आठमी पीढ़ीमें अहोरात्रिप्रमाण आठ प्रहरका सूतक है अर नवमी पीढ़ीमें दोय प्रहर सूतक है अर दशमी पीढ़ीमें स्नानमात्रतैं शुद्धि है। यो गोत्रको सूतक जानना ॥ ११-१२ ॥

यदि गर्भविपत्तिः स्यात् स्रवणं चापि योषिताम् ।
यावन्मासस्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम् ॥ ६ ॥

अर्थ—बहुरि जो स्त्रीनिका गर्भका पात होय तथा स्राव होय तौ जितना मास गर्भ स्थित भया तितना दिन प्रमाण सूतक जानना ॥ ६ ॥

पुत्रादिसूतके जाते गते द्वादशके दिने ।
जिनाभिषेकपूजाभ्यां पात्रदानेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—पुत्र आदिका सूतकनैं प्राप्त होत संतैं द्वादश दिननैं व्यतीत होत संतैं जिनेंद्रका अभिषेक अर पूजन करि तथा पात्रदान-करि शुद्ध होय है ॥ ४ ॥

अश्वी च महिषी चेटी गौः प्रसूता गृहांगणे ।
सूतकं दिनमेकं स्याद्गृहबाह्ये न सूतकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—घोड़ी भैंसि दासी गौ जो अपना गृहका आंगणमें व्यावै तौ एक दिनको सूतक है अर गृहकै बारैं अन्य गृहमें व्यावै तौ सूतक नहीं है ॥ ३ ॥

सतीनां सूतकं हत्यापापं षण्मासकं भवेत् ।
अन्यासामात्महत्यानां यथापापं प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—सती जे हैं तिनका आत्महत्याकरि पापरूप सूतक षट् मास प्रमाण है अर औरनिकै आत्महत्यानिको पाप यथायोग्य

प्रकारो ॥ ९ ॥

दासी दासस्तथा कन्या जायते म्रियते यदि।
त्रिरात्रं सूतकं ज्ञेयं गृहमध्ये तु दूषणम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जो दासी दासके तथा कन्याके प्रसूति होवै तथा मरै तौ तीन रात्रिको सूतक है सो गृहके मध्य होय तौ दूषण है गृहकै बार होय तौ दूषण नहीं है ॥ ५ ॥

महिष्याः पाक्षिकं क्षीरं गोक्षीरं च दशोदितम्।
अष्टमे दिवसेऽजायाः क्षीरं शुद्धं न चान्यथा ॥ १० ॥

अर्थ—भैंसिको दुग्ध पनरा दिनमैं गौको दुग्ध दश दिनमैं छ्यालीको दुग्ध अष्टदिन उपरांति शुद्ध है या पहली शुद्ध नहीं है ॥ १० ॥

बहुरि तैसें ही त्रिवर्णाचारमैं लिखै है;—

जातदंतशिशोर्नाशे पित्रोर्दशाहसूतकम्।
गर्भस्रावे तथा पाते विनष्टे च दिनत्रयम् ॥ १ ॥

अर्थ—उत्पन्न भये हैं दंत जिनके ऐसा पुत्रका नाशनैं होता संता माता पिताकै दश दिनको सूतक है अर गर्भस्रावमैं तथा गर्भपातमैं तथा गर्भविनष्टमैं सूतक तीन दिनको है ॥

ये श्लोक हमारे सुननेमैं आये सो लिखे हैं अर और आधुनिक ग्रंथकार भी या प्रकरणकूं लिखै है परंतु सर्वका मत समान नहीं है यातैं नीका समझि सुनामित्र अनुभवमैं भासै सो अंगीकार करियो।

प्रश्न—केई पुरुष रात्रिविषैं पूजन करै है अर केई पुरुष निषेध करै है, सो कैसें है ?

उत्तर—पूजन करना जहां तहां त्रिकालमैं लिखै है सो पूर्वाह्न

मध्याह्न अपराह्न ऐसें जानना, अर दोऊ संध्यामैं तथा रात्रिमैं करना कहूं लिख्या नाहीं। अर अमितगतिश्रावकाचारमैं रात्रिभोजनका निषेध वरननमैं सर्व शुभकर्मको निषेध तौ लिखै है, श्लोक—

यत्र सर्वशुभकर्मवर्जनं
यत्र नास्ति गमनागमक्रिया।
तत्र दोषनिलये दिनात्यये
धर्मकर्मकुशला न भुंजते ॥ १ ॥

अर्थ—जा समयमैं सर्व शुभ कर्मनिको निषेध है अर जा समयके विर्षे गमनागमनक्रिया नहीं है ऐसो समस्त दोषनिको स्थान जो दिनका अस्तको समय ताके विर्षे धर्म कर्ममैं प्रवीण पुरुष भोजन नहीं करै हैं। भावार्थ—यामैं सर्व शुभ कर्मनिको निषेध लिखनेंतैं देव गुरु पूजन आदि सर्व उत्तम कर्मका निषेध सायंकालमैं ही है तो रात्रिमैं कर्त्तव्य कैसैं मान्या जाय ?

प्रश्न—तुमनें तौ रात्रिपूजनका निषेध या श्लोकतैं किया जामैं सामान्य शुभ कर्मका त्याग लिख्या है तातैं पूजनका निषेध तौ हम नहीं मानेंगे और गृहस्थाश्रमके कार्यनिका निषेध भलो ही कहौ।

उत्तर—ऐसी कुतर्क मति करो क्योंकि धर्मसंग्रहके षष्ठ अधिकारमैं पंडित मेधावी लिखै है;—

न श्राद्धं दैवतं कर्म स्नानं दानं च चाहुतिः।
जायते यत्र किं तत्र नराणां भोक्तुमर्हति ॥ २५ ॥

अर्थ—जा रात्रिका समयमैं पितृकर्म करनेवारेनिकै तौ श्राद्ध नहीं अर दैवकर्म करनेवारेनिकै दैवकर्म नहीं अर स्नान नहीं दान नहीं आहुति नहीं ता रात्रिकै विर्षे मनुष्यनिकै भोजन करना योग्य

है कहा ? कदाचित् ही योग्य नहींहै ॥ २५ ॥

यामैं तो सर्व शुभ कर्मनिका निषेधहै अर गृहस्थनिकै सर्व शुभकर्मनिमैं प्रधान देवपूजन है तातैं पूजनका निषेध है, अर गमनागमनक्रियाका त्याग लिख्या तातैं भी पूजनकी सामग्री जल आदि एकत्र करनेका निषेध स्वयमेव ही भया तदि पूजनका निषेध तौ सहज ही सिद्ध भया। अर तुमनैं कहा कि पूजन विना अन्य गृहस्थाश्रमके कार्यनिका निषेध भलां हो कहौ, सो ऐसा कहना भी योग्य नाहीं क्योंकि गृहस्थनिकूं विवाह आदिमैं रागप्रधान शुभकर्म तौ रात्रिमैं करने [illegible] पड़ैं हैं अर इहां उनके निषेधका प्रयोजन भी नाहीं इहां तौ परम पुण्य उपार्जन करनेका अर पापतैं छुड़ावनेका उपदेश है तातैं जामैं अधिक पाप होय सो कार्य करना योग्य नाहीं।

प्रश्न—पूजन सिवाय अधिक पुण्य गृहस्थकै नहीं है तातैं पूजनजनित पुण्यतैं रात्रिसमयमैं भया आरंभजनित पाप किंचित् होयगा सो भी नाशकूं प्राप्त हो जायगा।

उत्तर—ऐसा जिनागमका हुकम नहीं है कि जहां प्रत्यक्षमैं हिंसा होती होय तहां भी पुण्य मानना। पूजनके प्रकरणमैं यत्नाचाररूप प्रवर्त्तनकरि पुण्यबंध करना ऐसा हुकम है अर तुमनैं कहा कि जिनपूजन सिवाय महान् पुण्यका कारण गृहस्थकै और नहीं है सो ऐसा भी एकांततैं कहना योग्य नाहीं क्योंकि गृहस्थकै योग्य देवपूजादि षट्कर्म कहे हैं ते सर्व समान नहीं कहे हैं उत्तरोत्तर प्रधान हैं, इनिमैं ध्यान भी है सो ध्यान मुनीश्वरनिकै भी सर्वोत्तम कहे है तौ गृहस्थकै तौ सर्वोत्तम है हो, तातैं पूजन तौ त्रिकालमैं कह्या है तातैं दिनमैं ही करबो योग्य है अर रात्रिमैं अपनी शक्तिप्रमाण धर्मध्यान करबो योग्य है।

प्रश्न—ये कहा सो तौ सत्य है परंतु महापुराणमैं

वज्रजंघ विवाहके अंतमें जिनमंदिर रात्रिसमय चिराकांके चांदणे जाय पूजन कीया लिख्या है, सो कैसें है?

उत्तर—ये वचन कथारूप है सो वा समय जैसा भया तैसा लिख्या है परंतु सर्व ही मनुष्य सर्व ही क्रिया आगमके अनुकूल करै ऐसा नियम तो नहीं है, चरणानुयोगरूप उपदेशवचन होय सो सत्य है, ऐसा तो नियम है।

प्रश्न—ये भी तुमनें कहा सो सत्य है परंतु श्रीमती वज्रजंघ निकटभव्य हुते इनका करना अन्यथा नहीं मान्या जाय।

उत्तर—श्रीमती वज्रजंघकूं निकटभव्य कह्या सो तो सत्य है परंतु निकटभव्य होनेतैं ही उनकरि करी क्रिया सर्व ही प्रामाण्य नहीं होयगी क्योंकि वा समय श्रीमती वज्रजंघनें सम्यक्त्व ग्रहण नहीं किया था सो मिथ्यात्वी ही थे तातैं मिथ्यात्वीकी करी क्रिया बताय जामैं प्रत्यक्ष हिंसा प्रवर्तै अर आगमकी आज्ञा भंग होय ऐसा आग्रह करना तुमैं तो योग्य नाहीं है।

प्रश्न—वा समय मिथ्यात्वी ही थे ऐसा निश्चय तुमारे कैसें भया?

उत्तर—श्रीमती वज्रजंघका भव त्यागि उत्कृष्ट भोगभूमिमैं उत्पन्न भये तहां इनका ही पूर्व भवका मंत्री स्वयंबुद्ध जीव था सो दीक्षा धारण करि चारणऋद्धि पाय भोगभूमिमैं जाय इनिकूं उपदेश देय सम्यक्त्व ग्रहण कराया, ऐसा कथन महापुराणका नवम पर्वमें है;—

तद्गृहाणाऽऽद्यसम्यक्त्वं तल्लाभे काल एष ते।
काललब्ध्या विना नाऽऽर्य! तदुत्पत्तिरिहांगिनाम्॥२१५॥

अर्थ—हे आर्य! तिहारै सम्यक्त्व ग्रहण कराने निमित्त हम आये

हैं तातैं या समय सम्यक्त्व ग्रहण करि, यो समय विहारैं सम्यक्त्वलाभको है क्योंकि इहां प्रणीनिकै काललब्धि विना सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं है ॥ २१५ ॥

या वचनतैं हमारैं निश्चय भया कि जा समय रात्रिपूजन किया ता समय मिथ्यात्वी ही थे अर मिथ्यात्वीकी करी क्रियाकै प्रामाण्यता होजे नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वीकूं उन्मत्तसमान कहे हैं:—

सूत्र—सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।

अर्थ—सत्का अर असत्का अविशेषरूप इच्छापूर्वक ग्रहण हावातैं जो ज्ञान होय सो उन्मत्तके समान है, अर उन्मत्तसमान विपर्ययज्ञानको धारक मिथ्यात्वी है तातैं ।

प्रश्न—सम्यक्त्व नहीं था तौ भी चतुर्थकालवर्ती महान् पुरुष तौ थे उनकी करी क्रियाकूं अप्रमाणभूत कैसें कहा हो ?

उत्तर—प्रथम तौ जहां मिथ्यात्वीपणा सिद्ध भया तहां सर्व वाकी क्रिया अप्रमाणभूत ही सिद्ध भई ता सिवाय चतुर्थकालवर्त्तीपणा कह्या तौ और सुनो कि–चतुर्थकालकी आदिमैं ही श्री ऋषभदेवकूं केवलज्ञानसंयुक्त विराजमान होतैं संतैं उनहीका पौत्र मारीचनामा भया तानैं सांख्यशास्त्र तंत्रशास्त्र अर कपिलशास्त्र ये तीनूं स्थापन किये सो अद्यापि विद्यमान हैं । सो ही आदिपुराणका अठारमा पर्वमैं;—

मरीचिश्च गुरोर्नप्ता परिव्राड् भूमौ स्थितः ?
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोदपसिद्धांतभाषितैः ॥ ६० ॥

अर्थ—गुरु जे ऋषभदेव तिनको पौत्र परिव्राजक होय विप्रत भयो अर सिद्धांतविरुद्ध सांख्यशास्त्रादिकरि मिथ्यात्वकी वृद्धि करत भयो ॥ ६० ॥

तदुपज्ञमभूद्योगशास्त्रं तंत्रं च कापिलम् ।
येनाऽयं मोहितो लोकः सम्यग्ज्ञानपरांमुखः ॥६१॥

अर्थ—या मरीचिकरि कह्या योगशास्त्र तंत्रशास्त्र कपिलशास्त्र होत भये तिनिकरि यो सम्यग्ज्ञानपरांमुख लोक मोहित भयो।।६१॥

अर वाही समय तद्भवमोक्षगामी चरमशरीरी क्षायिकसम्यग्दृष्टी भरतनामा चक्रवर्ती भया तानैं भाई बाहुबलिके ऊपरि वाके घात करणेका संकल्पकरि चक्र चलाया अर बाहुबलिनैं भरतका मानभंग कीया, अर रामचंद्रनैं केवल स्त्रीके निमित्त महानिर्लज्ज कायरपणाके वचन जहां तहां उचारण कीये, अर युधिष्ठिर आदि पांचू पांडव द्यूतकर्मकरि अपने राज्यतैं भ्रष्ट भये तेभी स्वर्गमोक्षके गामी थे ऐसैं चतुर्थकालवर्त्ती सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टीनिनैं अनेक क्रिया स्वइच्छापूर्वक करी है तिनका अवलंबनरूप छल ग्रहण करि भोले जीवनिकूं रात्रिविषैं पूजन करनेका झूठा आगम सुणाय रात्रिपूजन स्थापन करना योग्य नाहीं ।

प्रश्न—और तौ सर्व निर्णय भया तथापि केई हठग्राही इहां भी कहैंगे कि तुमनैं जिन पुरुषनिका उदाहरण कह्या सो तौ भरतक्षेत्रमैं हुंडावसर्पिणीकालसंबंधीहैं अर श्रीमती वज्रजंघ विदेहक्षेत्रसंबंधी है तातैं उदाहरणकै समानता नहीं है।

उत्तर—प्रथम तौ विदेहक्षेत्रमैं कर्मभूमि है तातैं वहांके उत्पन्न भये जीव पांचूंही गतिमैं उपजै हैं तातैं वहांके जीवनिकी क्रिया योग्यरूप तथा अयोग्यरूप सर्व ही प्रकारकी सिद्धि होय है। दूसरां जयकुमार सुलोचनाके पूर्वभवमैं भीमनामा चोरके जीवनैं तीन भव तक वाही विदेहक्षेत्रमैं इकतरफयो वैर धारण करि जयकुमार सुलोचनाके जीवकूं मारे अर मुनि अर्जिकानिकूं एक चितामैं धरि भस्म कीये। तीसरां महाबलिके च्यार मंत्री थे तिनिमैं तीन मंत्रीनिनैं

तौ सर्वथा एकांत मिथ्यात्व दृढ़ करनेकूं अनेक कुयुक्तिपूर्वक दृष्टांत कहे अर एक स्वयंबुधनामा सम्यग्दृष्टी मंत्री महाबलिनैं अनेकांतरूप सत्यार्थ उपदेश देय अष्टाह्निकापूजनपूर्वक बाईस दिनका संन्यास ग्रहण कराय स्वर्गकूं प्राप्त कीया, अर उन तीन मंत्रीनिमैं एक मंत्री तौ महामिथ्यात्वके दृढ़पणातैं निगोदकूं प्राप्त भया अर दोय मंत्री नरक गये तातैं कालकी अर क्षेत्रकी अपेक्षातैं अधमक्रियाकूं सुनाय आगानैं याही अधमक्रियाका स्थापन करना अनंतसंसारका कारण है तातैं आगमके अनुकूल चरणानुयोगरूप वचन संप्रदायतैं अविरुद्ध होय सो मानवो योग्य है । यातैं पूजन दिवसमैं ही करना योग्य है ।

प्रश्न—निर्माल्य किसकूं कहते हैं अर वाके ग्रहण करनेका कहा फल है ? सो कहो ।

उत्तर—दशाध्यायी सूत्रमैं;—

विघ्नकरणमन्तरायस्य ।

अर्थ—विघ्नका करना अन्तरायका आस्रव है ।

वार्त्तिक—दानादिविहननं विघ्नम् ।

अर्थ—दानादिक पूर्वं कहे हैं कि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य इनका जो विहनन कहिये विशेषकरि घात करना सो विघ्न कहिये है ।

वार्त्तिक—घञर्थे कविधानम् ।

अर्थ—घञ् अर्थके विषै 'क' प्रत्ययका विधान है ।

धारा—स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थमिति कविधिः विघ्नस्य करणं विघ्नकरणं अन्तरायस्यास्रव इति संक्षेपः । तद्विस्तारस्तु विप्रियते—ज्ञानप्रतिषेध

समय आप पूजन करनेके निमित्त सामग्री तयार करि सन्मुख धरि पूजनको प्रारंभ करे अर वामेंसे अनुक्रमतें अर्पण करे तहां अवशेष भी निर्माल्य हुई चाहिये सो वा अवशेषकूं निर्माल्य मानै तौ फेर वसका चढ़ाना कैसें संभवै तैसें ही मंदिरके निमित्त संकल्प कीया द्रव्य अपणें पासि है ताकूं भी जानना, अर जा द्रव्यका मंदिरनिमित्त संकल्प ही नहीं किया सो द्रव्य मन्दिरमें जानेसे ही निर्माल्य नहीं होय है, अर वा द्रव्यकूं भी निर्माल्य मानिये तौ अपने वस्त्र आभूषण भी निर्माल्य मानि त्यागे चाहिये । या प्रकरणका तात्पर्य ऐसा समझना कि-जो मंत्रपूर्वक अर्पण कीया सो तौ निर्माल्य है अर मंदिरनिमित्त संकल्पित कीया सो मंदिरके खरचके योग्य है, अर जाका संकल्प नहीं किया सो अपने योग्य है ।

प्रश्न—ये कह्या सो तौ सत्य है परंतु जो पुरुष तीर्थयात्रानिमित्त वा प्रतिष्ठानिमित्त अपना द्रव्य संकल्पित कीया वामैंसूं पूजननिमित्त दाननिमित्त संघकी रक्षानिमित्त अपना खानपाननिमित्त अथवा संघका जिमावणा वा सत्कार करना इत्यादिकमें वा द्रव्यमेंसूं लगावे हैं सो योग्य है कि नहीं ?

उत्तर—जो मनुष्य भिन्न भिन्न तौ संकल्प करै नहीं अर अपने योग्य द्रव्य लेय चल्यो जाय ता प्रति तौ तुमारा प्रश्न पहूंचै ही नहीं, इहां सामान्यपणें ऐसा संकल्प करै है कि ये द्रव्य यात्रामें लगाऊंगा अथवा ये द्रव्य प्रतिष्ठामें लगाऊंगा तातें तुमारा प्रश्नके अनुकूल सर्वकार्यमें वा द्रव्यकूं लगावता संता दूषित नहीं है क्योंकि वै सर्व कार्य यात्राका यात्रामें है प्रतिष्ठाका प्रतिष्ठामें है । अर संकल्प कीये पीछैं लोभदृष्टिकरि जौं तौं प्रकार वा संकलित द्रव्यमें सूं बचाय अपने भोगमें लगावै वा पुत्र पौत्रादिकनिकै निमित्त लगावै तौ दूषित है । अर जो मनुष्य द्रव्यमें भिन्न भिन्न

कल्पनाकरि जाय जो इतनो द्रव्य तौ पूजनमैं इतनो दानमैं इतनो खानपानमैं लगाऊंगो सो वा ही माफिक करै अर घाटि वादि करै सो अयोग्य है।

प्रश्न—जो द्रव्य देवके अर्थि अर्पण कीया सो द्रव्य अति उत्तम है याकूं निर्माल्य बताय याका ग्रहणका निषेध करौ हौ, सो कैसे है ?

उत्तर—जैनीमात्र तौ ऐसा प्रश्न करै नहीं क्योंकि आगममैं निषेध है। अर अन्यमती कहै तिनकूं ऐसा कहना कि जा देवकै अर्थि अर्पण कीया सो देव प्रत्यक्ष होय करि देवै तौ ग्रहण भी करै, अर जा देवकै निमित्त अर्पण कीया सो देव तौ देवै नहीं अर आप ही अर्पण करै अर आपही ग्रहण करै सो तौ प्रत्यक्ष विरुद्ध है, जैसैं राजाकी भेट करै अर वै प्रसन्न होय बकसीस करै सो तौ ग्रहण भी करै अर वै तौ बकसीस करै नहीं अर आप ही भेट करै अर आप ही ग्रहण करै सो तौ राजदंड योग्य होय है तातैं निर्माल्यका ग्रहण करना योग्य नाहीं।

अर निर्दोष उपकरणनिका त्याग करना, अर अन्य जीवनिका वीर्य जौ तौ प्रकार बिगड़ै ऐसा उपाय करना, अर धर्मका आच्छादन करनेमैं प्रवीणता धारना, अर सुन्दर आचरणका तपस्वीनिका गुरूनिका जिनप्रतिमाका तथा पूजनका व्याघात करना, अर दीक्षित तथा कृपण तथा दीन तथा अनाथ जे हैं तिनका वस्तु पात्र अर प्रतिश्रय कहिये वस्तिका आदि स्थान इनिके निषेधकी क्रिया करना अर परजीवनिकूं रोकना बांधना गुह्य अंगका छेदन करना अ कान नाक होठका काटना अर प्राणीनिकी हिंसा करना इत्यादि अन्तरायकर्मके आस्रवनै कारण हैं।

इहां प्रतिमाका व्याघात आदि महान पापनिके मध्य निर्माल्य-कूं भी अंतरायका आश्रवनैं कारण कह्या तातैं अपना कल्याणका वांछक पुरुषनिकूं निर्माल्य सर्वथा त्यागवो योग्य है। सो ही अमृतचंद्रजी तत्त्वार्थसारमें लिखे हैः—

"प्रमादाद्देवदत्तनैवेद्यग्रहणं यथा"।

अर्थ—जैसैं देवताके निमित्त अर्पण किया नैवेद्यको प्रमादतैं ग्रहण जो है सो अन्तरायकर्मका आस्रवनैं कारण है ॥

तथाकुंदकुंदस्वामी रयणसारमें लिखे हैं;—

जिणधारणइट्ठाजिणपूजातित्थवंदणविसेसधणं ।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणदिट्ठं णरयगइदुक्खं ॥३२॥
पुत्तकलत्तविदूरो दारिद्दोपंगमूगवहिरंधो ।
चंडालादिसुजादो पूजादाणादिदव्वहरो ॥ ३३ ॥

जिनधारणेष्टजिनपूजातीर्थवन्दनविशेषधनम् ।
यः भुंक्ते सः भुंक्ते जिनदृष्टं नरकगतिदुःखम् ॥३२॥
पुत्रकलत्रविदूरः दरिद्रः पङ्गमूकवाधिरांधः ।
चांडालादिषु जातः पूजादानादिद्रव्यहरः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिनेंद्रकै निमित्त धारण किया पदार्थ अर जिनपूजा तीर्थवंदनादिकनिमित्त संकल्पित किया धन जो है ताहि जो भोगै है सा पुरुष जिनेंद्रका दिखाया नरकका दुःखनैं भोगै है ॥३२॥ अर जो पूजा दान आदिका द्रव्य ग्रहण करै है सो पुत्र स्त्रीका वियोगनैं दरिद्रतानैं पंगुपणानैं गूंगापणानैं बहरापणानैं अंधपणानैं चांडाल आदिकुलमैं उत्पन्न हुवा संतो भोगवै है ॥ ३३ ॥

प्रश्न—धान्यके अंकुरनिकों तथा डाभ दोभ शिरस्यूं आदि द्रव्यनिकूं केई पुरुष तौ भगवतकै अर्पण करै है अर केई पुरुष निषेध करै है, सो योग्यता कैसैं है ?

उत्तर—भगवतका पूजन आर्षग्रंथनिर्मैं तौ अष्टद्रव्यतैं ही लिखै है, सो सारचौवीसीमैं;—

कर्त्तव्या गृहिभिः पूजा जिनेन्द्राणां निरन्तरम् ।
जलाद्यष्टविधैर्द्रव्यैः शक्त्या भक्त्या सुखाकरा ॥६६॥

अर्थ—गृहस्थानिकै नित प्रति सुखको करता जिनेंद्रको पूजन यथाशक्ति भक्तिकरि जल आदि अष्ट प्रकारके द्रव्यनिकरि करबो योग्य है ॥

और जहां तहां ग्रंथनिमैं अष्ट द्रव्यका ही नाम है अर प्रवृत्ति भी अष्टद्रव्यनितैं ही करनेकी है अर और द्रव्य कहते हैं सो अनुभवमैं भी योग्य नहीं भासैहैं अर प्रवृत्तिमैं भी नहीं है तातैं योग्य नहींहै।

प्रश्न—महान् मंडल आदि स्थापनमैं सकलीकरण पुण्याहवाचन शांतिधारा आदि क्रिया केई पुरुष तौ करै है अर केई पुरुष निषेध करै है, सो योग्यता कैसैं है ?

उत्तर—इन क्रियानिका नाम आर्षग्रंथनिमैं तौ कहूं सुन्या नाहीं अर जिनका नाम नाहीं तिनका विधान कैसैं पावै ? अर जिनका विधान नहीं पावै सो उन्मार्ग नाम ही पावै, अर उन्मार्गनाम पावै सो सर्व अयोग्य कहावै हमारे ज्ञानमैं तौ ऐसा भासै है।

प्रश्न—केई पुरुष कहै है कि यज्ञ नाम अग्निमैं होम करनेहीका है, सामान्य पूजनका नहीं है।

उत्तर—ऐसा एकांतरूप श्रद्धान मति करो, यज्ञ नाम तौ सामान्यपणै पूजनको है, अर पूजनका विधान दोऊ ही प्रकारसैं है

क्योंकि उत्तरपुराणसंबंधी अभिनंदनपुराणमें केवल पूजनमें यज्ञ शब्द कह्यो है वहां अग्निकुंड ही नहीं है;—

सिते पौषे चतुर्दश्यां सायाह्ने भेऽस्य सप्तमे ।
केवलागमो यज्ञे विश्वामरसमर्चितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—या अभिनंदन स्वामीके पौषशुक्ल चतुर्दशीके दिन संध्या-समय पुनर्वसुनक्षत्रके विषैं केवलज्ञान होत भयो, वा यज्ञके विषै भगवान समस्त देवनिकरि पूजित होत भयो ॥ ५६ ॥

अब जिनमंदिर बनावनेका तथा जिनबिंब बनानेका तथा गृहस्थीके गृहमें चैत्यालय होनेका तथा जिनप्रतिष्ठा करानेका तथा जिनपूजन करनेका माहात्म्य लिखे है;—

सार चौबीसीका चतुर्थ अधिकारमें;—

कुर्वन्ति ये जिनागारं विश्वजीवोपकारकम् ।
बह्वाश्रयात्फलं तेषां प्रोक्तुं कोऽत्र क्षमो बुधः ॥५७॥

अर्थ—जे पुरुष समस्त जीवनिको उपकार करनेवारो जिन मंदिर बनावै है तिनको फल इहां बहुतनिका आश्रयतैं कौन ज्ञानवान कहनेकों समर्थ है ॥ ५७ ॥

चैत्यगेहं यथा कुर्वन् शिल्पी याति शनैः शनैः ।
सदंतं यावदामोक्षं चैतत्कारापकस्तथा ॥ ५८ ॥

अर्थ—जैसें चैत्यगृहनैं करतो शिल्पी शनैं शनैं वाका अंतनैं प्राप्त होय है तैसें या जिनमंदिरको करावनवारो श्रावक जो है सो मोक्षपर्यंत उच्च स्थाननिनैं प्राप्त होय है ॥ ५८ ॥

वसंति यत्र सागारास्तत्र स्याज्जिनमंदिरम् ।
यत्र सोऽस्ति हि तिष्ठंति संयतास्तत्र धर्मदाः ॥५९॥

अर्थ—जा देशमैं जा ग्राममैं श्रावक बसै हैं ता देशमैं वा ग्राममैं जिनमंदिर होत है, बहुरि जहां जिनमंदिर है तहां सर्व धर्मका दातार संयमी तिष्ठै है ॥ ५९ ॥

तैर्महान् वर्त्तते धर्मो धर्माच्छर्मपरंपरा ।
सतां तस्मात्परं श्रेयश्चैत्यगेहान्महच्च न ॥ ६० ॥

अर्थ—तिन संयमीनिकरि महान् धर्म प्रवर्त्ते है अर धर्मतैं सुखकी परंपरा होय है तातैं जिनमंदिरतैं सिवाय और कल्याण नहीं है ॥ ६० ॥

पूजनैःस्तवनैर्गीतैर्नमस्कारैश्च नर्त्तनैः ।
स्नपनैर्भक्तिभिर्ध्यानैर्दर्शनैर्वाद्यवादनैः ॥६१॥
घंटोल्लोचादिधर्मोपकरणादिसमर्पणैः ।
जिनागारे सदा पुण्यमर्जयंति सुमेधसः ॥६२॥

अर्थ—जिनमंदिरकै विषै सुबुद्धी जीव जे हैं ते भक्तिकरि दर्शन करि नमस्कारकरि अभिषेक पूजनकरि स्तवनकरि बादित्रनिके बजावनेकरि गानकरि नृत्यकरि ध्यानकरि ॥ ६१ ॥ घंटा चंदवा आदि धर्मका उपकरण आदिका समर्पण करि सदाकाल पुण्य उपार्जन करै है ॥ ६२ ॥

कुर्वते जिनबिंबं ये नैकभव्यार्चितं महत् ।
तेषां पुण्यप्रमाणं न वेद्म्यतिकालपूजनात् ॥६३॥

अर्थ—जे पुरुष भव्यजीवनिकरि पूजनीक जिनबिंब करावै है तिनका महान पुण्यका प्रमाणनैं हम नहीं जानैं हैं क्योंकि जिनबिंब-निका अत्यंत दीर्घकालपर्यन्त पूजन होय है तातैं ॥ ६३ ॥

चतुर्विंशतितीर्थेशां ये कुर्युः प्रतिमां वराम् ।
लक्ष्मीं त्रिलोकजां लब्ध्वा ते भवंत्यत्र तत्समाः ॥६४॥

अर्थ—जे चतुर्विंशति तीर्थकरनिकी प्रतिमा करावै है ते पुरुष इहां उत्कृष्ट तीन लोकतैं उत्पन्न भई लक्ष्मीनैं पायकरि तीर्थकरनिकै समान होय है ॥ ६४ ॥

यत्रागारे जिनार्चाहो नास्ति पुण्यकरा नृणाम् ।
तद्गृहं धार्मिकैः प्रोक्तं पापदं पक्षिसन्निभम् ॥६५॥

अर्थ—जा गृहकै विषैं मनुष्यनिकूं पुण्यकी करता जिनप्रतिमा नहीं है ता गृहनैं धार्मिक पुरुष पापको दाता पक्षीनिका गृहकै समान कहै है ॥ ६५ ॥

जिनार्चाणां प्रतिष्ठां ये शक्त्या दध्युर्बुधोत्तमाः ।
प्रमाणं वेत्ति कस्तेषां महापुण्यस्य धर्मिणाम् ॥६६॥

अर्थ—जे ज्ञानवाननिमैं उत्तम पुरुष जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठानैं रचै हैं तिन धर्मात्मानिका महान पुण्यको प्रमाण कौन जानै है ॥६६॥

प्रतिष्ठार्जितपुण्येन तीर्थनाथा भवंत्यहो ।
सद्दृष्टयो जगत्पूज्या विश्वभव्योपकारतः ॥६७॥

अर्थ—अहो कहिये बड़ा आश्चर्य है कि सम्यग्दृष्टी प्रतिष्ठातैं उत्पन्न भया पुण्यकरि समस्त भव्यजीवनिका उपकार करयातैं जगतकै पूज्य तीर्थनाथ होय हैं ॥ ६७ ॥

न प्रतिष्ठा समं पुण्यं विद्यते गृहिणां क्वचित् ।
बह्वंग्युपार्जनाद्धर्मवर्द्धनाच्च महीतले ॥ ६८ ॥

अर्थ—श्रावकनिकै पृथ्वीतलकै विषैं बहुत प्राणीनिकरि धर्मका

उत्पन्न करवावैं अर वधायवावैं प्रतिष्ठासमान और कोऊ पुण्य नहीं विद्यमान है ॥ ६८ ॥

कर्त्तव्या गृहिभिः पूजा जिनेन्द्राणां निरन्तरम्।
जलाद्यष्टविधैर्द्रव्यैःशक्त्या भक्त्या सुखाकरा॥६९॥

अर्थ—गृहस्थनिकरि सुखका कर्त्ता जिनेन्द्रका पूजन जलनैं आदि लेय अष्टप्रकारके द्रव्यनिकरि शक्तिकरि भक्तिकरि निरन्तर करवो योग्य है ॥ ६९ ॥

नश्यंति पूजया सर्वविघ्नजालानि धीमताम्।
क्षुद्रदेवारिभूपादिकृतानि दुःखदानि च ॥७०॥

अर्थ—जिनेन्द्रकी पूजा करिकै बुद्धिवाननिकै क्षुद्रदेवनि करि वैरीनिकरि राजादिकनिकरि कीया दुःखका दाता समस्त विघ्नजाल जे हैं ते नाशनैं प्राप्त होय हैं ॥ ७० ॥

जिनार्चनेन सर्वत्र लक्ष्मीर्लोकत्रयोद्भवा।
धीमतां गृहदासीव वशं यात्यतिशर्मदा ॥ ७१ ॥

अर्थ—जिनेन्द्रका पूजनकरि या लोकके विषैं तीन लोकतैं उपज भई सर्व लक्ष्मी बुद्धिवाननिकै गृहदासीकी नाईं अत्यंत सुखकी दाता वशीभूत होय है ॥ ७१ ॥

इहां केई नास्तिक कहै है कि–केई मनुष्यनिकूं वहौत कालतैं जिनपूजन करते देखने हैं अर परम दरिद्री हैं तातैं तुमने जो फलस्तुति करी सो अन्यथा भासै है। उत्तररूप कल्याण मंदिरमें श्लोकः—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।

जातोऽस्मि तेन जनबांधव दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः ॥१॥

अर्थ—हे जनबांधव ! आपका मैं निरंतर उपदेश भी सुण्या अर आपका पूजन भी कर्या अर आपका दर्शन भी कर्या परंतु निश्चयकरि आपकूं चित्तके विषैं भक्तिपूर्वक धारण नहीं किया ता कारणकरि दुःखको पात्र भयो हूं जातैं ऐसा निश्चय है कि भावशून्य क्रिया फलदाता नहीं होय है ॥

यातैं जितना अंसा परिणाम जुड़ै है तितना अंसा कल्याण होय है।

तथा तृतीयसर्गमैं श्लोक—

दानपूजादिहीनोऽत्र यथागारी यशो वृषम् ।
न चाप्नोति तथाऽमुत्र यतिरावश्यकातिगः ॥७३॥

अर्थ—जैसैं गृहस्थ दान पूजाकरि हीन हुवो संतो इहां यशनैं अर धर्मनैं नहीं प्राप्त होय है तैसैं मुनीश्वर षट् आवश्यकरहित हुवो संतो परलोकमैं यशनैं अर धर्मनैं नहीं प्राप्त होय है ॥ ७३ ॥

ॐनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ प्रतिष्ठादिपूजनविधानेषु अहिंसाधर्मस्थापनं ।

दोहा—अर्हन जिन षटकायकी, रचाहित कहि धर्म ।
पूजन आदि प्रभावना, कहे सर्व शुचि कर्म ॥१॥

प्रश्न—"सव्वजीवाण दयावरं धम्मं" अर्थ—सर्व जीवनिकी दयामैं तत्पर है सो धर्म है ऐसे स्वामी कार्तिकेयके वचन सुननेत

अनृतादिक च्यार पापनिका त्यागकूं धर्म मानना नहीं ठहर्‍या क्योंकि यामैं जीवदयाहीकूं धर्म कह्या यातैं।

उत्तर—इहां संग्रहनयकी अपेक्षा च्यारूं व्रतनिकूं अहिंसामैं अंतर्भूत करि अहिंसाहीकैं धर्म कह्या है सो ऐसैं है—

'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा'।

अर्थ—प्रमत्तयोगतैं प्राणनिका व्यपरोपण कहिये वियोग करना सो हिंसा है।

सर्वार्थसिद्धिटीका—प्रमादकषायत्वं तद्वानात्मपरिणामः प्रमत्तः प्रमत्तस्य योगः प्रमत्तयोगस्तस्मात्प्रमत्तयोगादिन्द्रियादयो दश प्राणाः तेषां यथासंभवं व्यपरोपणं वियोगकरणं हिंसा इत्यभिधीयते। सा प्राणिनो दुःखहेतुत्वादधर्महेतुः। प्रमत्तयोगादिति विशेषणं केवलं प्राणव्यपरोपणं नाधर्मायेति ज्ञापनार्थम्।

अर्थ—इहां कषायसहितपणा है सो तौ प्रमाद है अर तिस प्रमादसहित आत्माका परिणाम है सो प्रमत्त है, अर प्रमत्तका योग सो प्रमत्तयोग कहिये तातैं प्रमत्तयोगतैं इंद्रियादिक दश प्राण जे हैं तिनिका यथासंभव व्यपरोपण कहिये वियोग करणा सो हिंसा है, ऐसैं कहिये है। सो हिंसा प्राणीनिकूं दुःखका कारणपणातैं अधर्मको कारण है। इहां 'प्रमत्तयोगतैं' ऐसा विशेषण है सो केवल व्यपरोपण ही अधर्मके अर्थि नहीं है, या जनावनेके अर्थि है।

यामैं कषायसहित परिणामतैं प्रमाद कह्या अर कषाय नाम राग द्वेषका है अर राग द्वेषतैं प्राणनिको नाश होय है सो हिंसा है

अर प्राण दोय प्रकार है, सो द्रव्यसंग्रहमें कहे हैं गाथा:—

तिक्काले चदु पाणा इंदियबलमाउआणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥

अर्थ—व्यवहारनयतैं जाके भूत भविष्यत वर्त्तमान कालमें इंद्रिय बल आयु श्वासोच्छ्‌वास ये च्यार प्राण हैं सो जीव है अर निश्चयनयतैं जाके चैतन्य प्राण है सो जीव है ॥ ३ ॥

ताहीतैं पुरुषार्थसिद्‌ध्युपायमें कह्या है;—

आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत् ।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय ॥४२॥
यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम् ।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥४३॥

अर्थ—आत्मपरिणामका हिंसनपणातैं सर्वही परभावरूप होना है सो हिंसा है अर ये अनृतवचनादिक भेद केवल शिष्यका समझायवा अर्थि कह्या है ॥ ४२ ॥ तातैं जो कषायका योगतैं द्रव्यभावरूप प्राणांको वियोग करणं सो निश्चयकरि हिंसा है ॥ ४३ ॥

इनि वचननितैं अनृत स्तेय अब्रह्म परिग्रह ये च्यारूं हिंसाका पर्यायशब्द हैं तातैं पांचूं पापनिका त्याग है सो ही अहिंसा धर्म है ।

प्रश्न—यह तो जानी परंतु जिनपूजा प्रतिष्ठादिकमें तथा तीर्थयात्रादिकमें आरंभजनित हिंसा देखिये है तहां धर्म कैसें कह्या है ?

उत्तर—जे आरंभी गृहस्थ हैं तिनका उपयोग आरंभ तथा नाना द्रव्यके अवलंबन बिना ठहरै नाहीं तातैं यत्नाचारपूर्वक पूजादिकमें उपयोग ठहरावना कह्या है क्योंकि गृहके कार्यमें विषयानुरागरूप तथा लोभरूप तथा हिंसारूप प्रवर्त्तै था ताकूं छुड़ाय

शुद्धोपयोगका हेतुभूत शुभोपयोगरूप पूजादिकमैं लगाया तहां जितना अंशा अशुभोपयोगरूप राग घटया तितना अंशा अहिंसा भई अर जितना अंशा अहिंसा भई तितना अंशा धर्म भया ।

सो हीं पुरुषार्थसिद्ध्युपायमैं कह्या है;—

येनांशेन तु दृष्टिस्तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति ।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥२११॥
येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति ।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥२१२॥
येनांशेन चरित्रं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति ।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥२१३॥

अर्थ—या जीवकै जितने अंशनिकरि सम्यग्दर्शन है तितने अंशनिकरि बंध नहीं है अर या जीवकै जितने अंशनिकरि राग है तितने अंशनिकरि बंध है, इहां राग नाम मिथ्याभावका जानना ॥ २११ ॥ अर या जीवकै जितने अंशनिकरि ज्ञान है तितने अंशनिकरि बंध नहीं है, अर या जीवकै जितने अंशनिकरि राग है तितने अंशनिकरि बंध है, इहां राग नाम मिथ्याज्ञानका है ॥२१२॥ अर या जीवकै जितने अंशनिकरि चारित्र है तितने अंशनिकरि बंध नहीं है अर या जीवकै जितने अंशनिकरि राग है तितने अंशनिकरि बंध है, इहां राग नाम मिथ्याचारित्रका जानना ॥२१३॥

अर धर्मका अंशमात्रकूं भी धर्म कहना सो व्यवहार है ।

प्रश्न—ऐसैं मानें तें यज्ञकर्त्ता मीमांसककै भी अहिंसा ठहरी क्योंकि मीमांसक भी तुमारीसी नाईं गृहकार्यत्यागि यज्ञधर्ममैं प्रवर्त्तै है तातैं ।

उत्तर—ऐसैं नहीं है क्योंकि वाका ऐसा आगम है;—

ऋचा—अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः ।

या वचनतैं केवल स्वर्गलोकके विषयभोगनिकी वांछानिमित्त यज्ञ कर्म है तातैं मीमांसकके गृहकार्यतैं यज्ञमैं विषयानुराग अर लोभ दोऊ ही अधिक है यातैं निज स्वभावका घातरूप भावहिंसा अत्यंत अधिक है अर द्रव्यहिंसा भी गृहस्थकार्यतैं अधिक है क्योंकि प्रथम तौ जानैं त्रसका घात किया तानैं कोऊकी भी रक्षा नहीं करी। दूसरा गृहकार्यमैं कदाचित् भी नर गज अश्व गौ आदिका घात नहीं करै था सोही पुरुष यज्ञमैं मनुष्य आदि सब जीवनिका घात करै है तातैं गृहकार्यतैं जितना अंशां भावरूप तथा द्रव्यरूप हिंसा अधिक है तितना अंशां ही पापरूप अधर्म है। अर जीवघाततैं देवकी तृप्तिता मानै है तातैं देवनिमित्त भी हिंसा है। तैसैं जिनपूजामैं भावहिंसा तथा द्रव्यहिंसा तथा देवनिमित्त हिंसा नहीं है क्योंकि विषयानुरागका अर लोभका तौ निदानके अभावतैं अभाव है क्योंकि जैननिकूं निदानका निषेध तौ प्रथम ही लिखै है तातैं अहिंसारूप धर्म है। तथा गृहकार्यकूं त्यागि जितना काल पूजनादिकमैं प्रवर्त्तै है तितना काल गृहसंबंधी रागादिकके घटनेतैं कषायमंद भई सो ही भाव अहिंसा रूप धर्म भया तथा द्रव्यहिंसामैं भी श्रावकमात्र गृहस्थकै संकल्पित त्रसहिंसाका तौ त्याग है ही अर थावरका आगार है तामैं भी वृथा नहीं प्रवर्त्तै है क्योंकि अनर्थदंडका सर्वथा निषेध है अर प्रयोजनतैं भी यत्नाचारतैं प्रवर्त्तै है। ऐसा भी गृहारंभतैं अत्यंत सूक्ष्म यत्नाचारपूर्वक अपना शुद्धोपयोगका हेतुभूत पूजनादि शुभोपयोगनैं मानि पूजननिमित्त आरंभ करता पूजकके जितना अंशां गृहकार्यतैं द्रव्यहिंसा घटत भई तितना अंशां अहिंसारूप धर्म भया।

प्रश्न—ये भी जानी परंतु नृत्यगान आदि प्रभावनामैं तौ राग-भावकी आधिक्यता देखिये हैं अर रागभावकी आधिक्यता है तहां अवश्य हिंसा है तातैं वहां अहिंसा कैसैं होवैगी ?

उत्तर—गृहारंभके छूटनेतैं कषायके मंद होनेतैं अर वीतराग पंचपरमेष्ठीके गुणनिमैं अनुराग होनेतैं आपकै भी वीतरागता ही भई तातैं शुभोपयोग होत संतैं अहिंसारूप धर्म भया तातैं अहिंसा-की कारणभूत आरंभजनित द्रव्य भावरूप सूक्ष्महिंसा जो है सो पापका लेशमात्र उपजावनवारी है अर बहुत पुण्यका बधावनवारी है तातैं ही अष्टमी प्रतिमा तांई गृहस्थ करै है। याका लौकिक दृष्टांत ऐसा है कि—आठ आना सैकड़ाका ब्याजसैं भी रुपया ल्याय दो रुपया सैकड़ा को ब्याज पैदा करै है सो गृहस्थपणाका सुख भोगै है अर ब्याजके भयतैं रुपया नहीं ल्यावै है सो नफो भी नहीं पावै है अर जगत मूर्ख बतावै है अर दोको ब्याज लगाय आठ आनाको ब्याज पैदा करै तानैं भी मूर्ख कहै है तातैं अल्प आरंभकरि बहुत उपयोगकी शुद्धता करना योग्य है। याही प्रयोजनकूं जनावता संता समन्तभद्रस्वामी स्वयंभूस्तोत्रमैं वासुपूज्यस्वामीकी स्तुति करै है कि—श्लोकः—

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य
सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य
न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥ १ ॥

अर्थ—हे प्रभो! जैसैं शीतल कल्याणरूप जलकी राशिकै विषैं विषकी कणिका दोष करनेवारी नहीं है तैसैं पूज्य जिन जो है ताहि पूजता मनुष्यकै बहुत पुण्यकीराशिके विषैं सावद्य को लेश

होय है सो दोपके अर्थि समर्थ नहीं होय है ॥

इहां प्रश्न करै है कि—तुमनैं युक्तिपूर्वक आगम कह्या सो तौ जान्यां परंतु तुमारै भी देव गुरु धर्म निमित्त हिंसा करना पुरुषार्थसिद्धयुपायमैं मनैं किया है;—

धर्मो हि देवताभ्यः प्रभवति ताभ्यः प्रदेयमिह सर्वम्।
इति दुर्विवेककलितां धिषणां न प्राप्य देहिनो हिंस्याः॥

अर्थ—या श्लोकमैं मिथ्यात्वीनिका अभिप्राय दिखाय वाका निषेध करै है कि—निश्चयकरि देवतातैं धर्म उत्पन्न होय है तातैं इस लोकमैं देवताकै अर्थि सर्व ही पदार्थ अतिशयकरि देवा योग्य है, या प्रकार खोटा ज्ञान करि मलिन पुरुष जे हैं तिनिको बुद्धिनैं पाय देहधारी मात्र हिंसा करवा योग्य नहीं है ॥ ७९ ॥

भावार्थ—देहधारीमात्रनिकी हिंसा करवो योग्य नहीं।

पूज्यनिमित्तं घाते छागादीनां न कोऽपि दोषोऽस्ति।
इति संप्रधार्य कार्यं नातिथये सत्त्वसंज्ञपनम् ॥ ८० ॥

अर्थ—अर पूज्यके निमित्त बकरादिकनिका घातसैं कछू भी दोप नहीं है ऐसें धारण करि अतिथिके निमित्त भी जीवघात नहीं करवा योग्य है ॥ ८० ॥

अर तुमारै भी पूजनादिक देव गुरु धर्मका ही करिये है तामैं आरंभजनित हिंसा होय है सो कैसें कर्त्तव्य है ?

उत्तर—निमित्त शब्दका दोय प्रयोजन होजेहै सो दोऊही हमारै पूजनादिकमैं नहींहै, सो ऐसें—प्रथम तौ पूज्यकै काम आवै सो पूज्यकै निमित्त कहिये सो पूज्य तौ वीतराग है उनकै पूजन द्रव्यतैं कुछ प्रयोजन ही नहीं जैसें साधुनिकै सन्मुख जानेमैं तथा

अभ्युत्थानादि वंदना करनेमें तथा धर्मश्रवणकरने निमित्त जानेमें कायर्योगतैं हिंसा होय है तथापि वा हिंसा, साधुकै निमित्त नहीं। कहिये है क्योंकि साधुकै प्रयोजन नाहीं है तातें पूज्यनिमित्त नहीं, जाननी। अर गृहस्थ अपना उपयोग शुद्ध करनें निमित्त जैसें तैसें, अनेक उपकरणनिकै तथा शुद्ध उज्ज्वल सामग्रीकै तथा चढ़ावाकी क्रियाकै तथा स्तवनमंत्रकै आश्रय उपयोग ठहराय पंच परमेष्ठीकै गुण स्मरण करता संता भक्तिपूर्वक पूजन करैहै तितनै काल अन्य वचनालाप नहीं करैहै, अर मनहू पूजनरूप क्रियातैं तथा परमेष्ठीके गुणनितैं बाहिर नहीं प्रवर्त्तै है, अर कायहू एक पूजनक्रिया सिवाय नहीं विचरै है; तातैं जितना अंशां संवर रहै है तितना अंशां निर्जरा करै है। अर जो आहार वस्तिकादिक पूज्यकै काम आवै है सो गृहस्थ उनके निमित्त नहीं करै है अर करै है सो आज्ञा बाहिर है, अर साधु भी अपने निमित्त किया जान लेवै तो नहीं लेवै है अर लेवै है सो आज्ञा बाहिर है, सो मूलाचारका षष्ठम प्रस्तावमें विशेषपणै लिख्या है। अर दूसरां जाका आपकै त्याग है सो पूज्यका निमित्त पाय करै सो भी पूज्यनिमित्त जानिये, जैसैं श्रावककै त्रसघातका त्याग है तातैं जामें त्रसको घात होय सो कदाचित नहीं करै अर करै तो पूज्यकै निमित्त कहिये जैसैं नवमी दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक आरंभ परिग्रहका त्यागीहै सो कदाचित पूजनादिकका आरंभ करै तो पूज्यनिमित्त कहिये सो कदाचित भी नहीं करै है, भावपूजन स्तवन करै है। ऐसें श्रावक गृहस्थ अपने पदस्थ योग्य पूजनादिकमें प्रवर्त्तै है तातैं देव गुरु धर्मनिमित्त हिंसा नहीं जाननी।

प्रश्न—जिनवचन तो निरवद्य है वामें पूजनादिकका उपदेश कैसे संभवै ?

उत्तर—तुमारे ज्ञानमैं जिनपूजनादिक सावद्य दीखै है वै तो निरवद्य होहै जैसे साधकूं विहारका उपदेश है तामैं एकांतीकूं हिंसा दीखे है तथापि विहार करना अहिंसारूप ही है क्योंकि एक स्थान रहनेतैं रागादिककी वृद्धि होतैं भावप्राणनिका घातरूप अधिक हिंसा होती जानि वाकी निवृत्तिनिमित्त ईर्यासमितिरूप विहारका उपदेश है तथा चातुर्मासमैं विहारजनित द्रव्यभावरूप विशेष हिंसा होती जानि विहारका निषेधको उपदेश है सो भी अहिंसाको ही उपदेश है, तथा गृहस्थकूं त्रसका त्याग कराय थावरका आगारका उपदेश है सो भी अहिंसाका ही उपदेश है क्योंकि थावरकी हिंसातैं त्रसकी हिंसाका पाप अधिक है, यातैं ।

प्रश्न—थावरघाततैं त्रसका घातका अधिक पाप काहेतैं कह्या ?

उत्तर—सूत्र,-'प्राणव्यपरोपणं हिंसा' या वचनतैं प्राणघातका नाम हिंसा है तातैं थावरतैं त्रसकै विशेष प्राणकी अपेक्षातैं अधिक पाप कह्या है ।

प्रश्न—यामैं तो त्रसघातका त्यागरूप वचन है कछु थावरकी हिंसाका उपदेशरूप वचन नहीं है ।

उत्तर—मुनीश्वरकूं विहारका तथा सामायिक प्रतिक्रमणमैं कायोत्सर्गविधिमैं आवर्त्त अवनति शिरोनतिको उपदेश है तहां काययोगतैं हिंसा होय है तथापि साम्यभावको सिद्धिनिमित्त तो सामायिक अर दोषकी अवृत्तिनिमित्त प्रतिक्रमण अर परमेष्ठीके गुणनिमैं अनुरागनिमित्त आवर्त्त अवनति शिरोनति करनेका उपदेश है । इनि सबनिमैं अशुभोपयोगरूप हिंसाका त्यागतैं अहिंसाका ही उपदेश है । ऐसैं ही गृहस्थकूं आहार आदि दानका उपदेश है तामैं हू हिंसा होय है तथा लोभकषायरूप भाव हिंसाका त्यागतैं

अहिंसारूप ही उपदेशहै तैसे ही पूजादिकका उपदेश है सो अशुभोपयोगका तथा लोभ कषायका त्यागरूप अहिंसाहीका उपदेश है। तथा हिंसाका अनेक भेद पुरुषार्थसिद्धयुपायमें लिखे हैं तिनकूं टालि अहिंसाधर्मनैं प्रमाण नयनिक्षेपनितैं अच्छी तरह समझि यत्नाचारपूर्वक योग्य प्रवृत्ति करता मनुष्यकै अहिंसाधर्मकी ही सिद्धि है।

चौपई।

सर्वधर्मके मध्य प्रधान,
धर्म अहिंसा कहि भगवान।
पंच महाव्रत आदिक भेद।
कहे भव्यहित सर्व विभेद ॥ १ ॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकाण्डे चमरादिबहुद्रव्यनिर्णय तथा प्रतिष्ठादिविधानेषु अहिंसाधर्मस्थापनवर्णनो नाम दशमोल्लासः॥

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

अथ गुरुउपासना लिख्यते।

दोहा।

भव तन भोग विरक्त हैं, छांड़ि गेह अघखानि।
भये लीन निजरूपमैं प्रणमूं गुरु हितमानि ॥ १ ॥

प्रश्न—देवपूजाको विधान कह्यो सो तौ श्रद्धान कियो अब गुरु उपासनाको विधान भी कहौ।

उत्तर—सामान्यपणैं तौ गुरु निर्ग्रंथ एक भेदरूप है सो गुरु लक्षण पूर्वैं वरनन किये हो हैं, अर गुणविशेषतैं अथवा पदस्थविशेषतैं ऐसैं है कि—आचार्य उपाध्याय साधु ऐसैं तौ तीन भेदरूप है तथा आचार्य उपाध्याय प्रवर्त्तक स्थविर गणधर ऐसैं पांच भेदरूप है तथा पुलाक बकुश कुशील निर्ग्रन्थ स्नातक ऐसैं पांच भेदरूप है तथा आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ऐसैं दश प्रकार है। तिनके लक्षण अनुक्रमतैं कहै है। आचार्य लक्षण द्रव्यसंग्रहमैं; गाथा—

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जंजइ सो आइरिओ मुणी भेओ ॥५३॥
दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपआचारे।
आत्मानं परं च योजयति स आचार्यः मुनिः ध्येयः॥

अर्थ—जो दर्शनाचार ज्ञानाचार वीर्याचार चारित्राचार तपाचार इन पंच प्रकारके आचारके विषैं आपनैं अर परनैं युक्त करै सो आचार्य मुनि भव्यजीवनिकै ध्यान करवा योग्य है ॥ ५३ ॥

तथा माघनंदिमुनिकृत जयमालमैं—

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया
बारसंगाइसुयजलहिअवगाहया।
मोक्खलच्छीमहंते महं ते सया
सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासंगया ॥
-पंचधाऽऽचारपंचाग्निसंसाधकाः
द्वादशांगादिश्रुतजलध्यवगाहकाः।

मोक्षलक्ष्मीमहान्तः मह्यं ते सदा
सूरिणः ददतु मोक्षं गतासंगताः ॥

अर्थ—पंच प्रकार आचाररूप अग्निका भलै प्रकार साधन करनवारा अर द्वादशांगरूप सुन्दर जलका अवगाहन करनवारा अर मोक्षलक्ष्मीकूं महान माननेवारे ऐसे आचार्य परमेष्ठी, जे हैं ते महान कृपादृष्टि करि महान सर्वोत्तम मोक्ष द्यो ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामें;—

ये स्वाचारमपारसौख्यसुतरोर्बीजं परे पंचधा
सद्बोधाः स्वयमाचरंति च परानाचारयंत्येव च ।
ग्रंथग्रंथिविमुक्तमुक्तिपदवीं प्राप्ताश्च यैः प्रापिता—
स्ते रत्नत्रयधारिणः शिवसुखं कुर्वन्तु नः सूरयः ॥५९॥

अर्थ—जे समीचीन ज्ञानके धारक अपारसुखमई सुन्दर वृक्षका उत्तम बीजरूप पंच प्रकारका निर्दोष आचारनैं आप आचरण करै है अर अन्य पुरुषनिनैं आचरण करावै है, अर परिग्रहकी गांठि करि रहित ऐसी मुक्तिपदवीनैं प्राप्त भये अर अन्य पुरुषनिनैं प्राप्त किये ऐसे रत्नत्रयके धारक आचार्य जे हैं ते हमारै मोक्षसुखनैं करो ॥ ५९ ॥

तथा काव्य—

भ्रांतिप्रदेषु बहुवर्त्मसु जन्मकक्षे
पंथानमेकममृतस्य परं नयंति ।
ये लोकमुन्नतधियः प्रणमामि तेभ्य—
स्तेनाप्यहं जिगमिषुर्गुरुनायकेभ्यः ॥ ६० ॥

अर्थ—जे उत्तम निर्मलबुद्धिके धारक आचार्य परमेष्ठी इस संसाररूप वनके विषै भ्रमके देनेवाले अनेक मार्ग जे हैं तिनमें भ्रमण करते लोकनिनैं एक उत्कृष्ट मोक्षमार्गमैं प्राप्त करै है, अर वाही मार्गकरि मोक्षमैं प्राप्त होवाको इच्छक मैं जो हूं सो ते गुरुनायक आचार्य परमेष्ठी जे हैं तिनके अर्थि नमस्कार करूं हूं ॥६०॥

तथा आचारसार वीरनंदिकृतका दूसरा अधिकारमैं;—

संग्रहानुग्रहप्रौढो रूढः श्रुतचरित्रयोः ।
यः पंचविधमाचारमाचारयति योगिनः ॥३२॥

अर्थ—जो शिष्यनिका संग्रह अनुग्रह करनेमैं प्रौढ कहिये चतुर समर्थ, बहुरि श्रुत अर चारित्रके विषैं रूढ कहियें आरूढ, बहुरि अन्य योगनिनैं पंच प्रकारका आचारनै आचरण करावै हैं ॥३२॥

पहिःक्षिप्तमलः सत्त्वगांभीर्यातिप्रसादवान् ।
गुणरत्नाकरःसोऽयमाचार्योऽवार्यधैर्यवान् ॥३३॥

अर्थ—दूरि किये हैं समस्त मलदोष जानैं बहुरि पराक्रम अर गंभीरता अर अतिप्रसन्नताकरि संयुक्त अर गुणांकी खानि अर अनिवार्य धीर्यतावान जो है सो यो आचार्य है ॥ ३३ ॥

तथा चारित्रसारमैं भारा;—

यस्मात्सम्यग्ज्ञानादिपंचाचाराधारादाहृत्य व्रतानि स्वर्गापवर्गसुखकल्पकुजबीजानि भव्या आत्महितार्थमाचरंति स आचार्यः ।

अर्थ—भव्य जीव जे हैं ते आपना हितकै अर्थि सम्यग्ज्ञानादि पंच आचारका आधार जो है तातैं स्वर्ग मोक्षका सुखरूप कल्पवृक्षका बीजस्वरूप व्रत जे हैं तिननैं ग्रहण करि आचरण करै है, सो आचार्य है ।

तथा गाथा;—

आयारादी अट्ठगुणा दहविहधम्मो तहा ठिदिकप्पो।
वारहतव छव्वासो छत्तीसा होंति आयरिया ॥

आचाराद्यष्टगुणाः दशविधधर्मस्तथा स्थितिकल्पः।
द्वादशतपः षडावश्यकाःषट्त्रिंशद्भवंत्याचार्यस्य ॥

अर्थ—आचारांगनें आदि लेय अष्ट गुण अर दशविध धर्म अथवा दशविध स्थितिकल्प अर द्वादश तप अर षट् आवश्यक ऐसें षट्त्रिंशत् गुण आचार्यनिके होय हैं॥

भावार्थ—आचारांग१ व्यवहारांग२ एकादशांग३ उपासकाध्ययनांग४ निर्यापकांग५ परगुणवैयावृत्यांग६ परगुणचर्यांग७ साधुत्व ८ ऐसें तौ आचारादि आठ गुण, बहुरि उत्तमक्षमा१ उत्तममार्दव२ उत्तमआर्जव३ उत्तमसत्य४ उत्तमशौच५ उत्तमसंयम६ उत्तमतप७ उत्तमत्याग८ उत्तमआकिंचन्य९ उत्तमब्रह्मचर्य१० ऐसें उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्म, अथवा स्थितिगुण१ अचेलत्वगुण२ उद्दिष्टपिंडग्रहणत्याग३ राजपिंडत्याग४ सम्यग्दृष्टि५ सर्वजीवनिकी दयामें तत्परत्व६ बहुप्रतिक्रमण७ मासनिषेधक८ कृतिकर्मतप९ दानमें-तत्परता१० ऐसें दशलक्षण स्थितिकल्प, बहुरि अनशन१ अवमौदर्य-२ व्रतपरिसंख्यान३ रसपरित्याग४ विविक्तशैय्यासन५ कायक्लेश ६ प्रायश्चित्त७ विनय८ वैयावृत्य९ स्वाध्याय१० व्युत्सर्ग११ ध्यान१२ ऐसें द्वादशप्रकार तप, बहुरि सामायिक१ स्तवन२ वंदना३ प्रतिक्रमण४ प्रत्याख्यान५ कायोत्सर्ग६ ऐसें षट आवश्यक। इनि सबनिकूं एकत्र कीये छत्तीस गुण आचार्यनिके होते हैं॥

अथवा द्वादशप्रकार तप अर दशलक्षणधर्म अर पंच वीर्याचार

अर तीन गुप्ति अर षट् आवश्यक ऐसें छत्तीस गुण आचार्यनिके हैं ॥

तथा मूलाचारका सप्तम प्रस्तावमैं—

आवेसणी सरीरे इंदियभंडो मणो व आगरिओ ।
धमिदव्व जीवलोहे वावीसपरीसहग्गीहिं ॥ ७ ॥

आवेशनी शरीरं इन्द्रियभांडः मनश्च आकरिकः ।
धमितव्यः जीवलोहः द्वाविंशतिपरीषहाग्निभिः ॥७॥

अर्थ—चुल्हीयंत्रसमान शरीरकै विषैं इंद्रिय और मन भांडसदृश है अर जीवरूप लोह द्वाविंशतिपरीषहरूप अग्निकरि तपायवायोग्य लोह धातु है, ताहि आचार्यरूप लोहकार तपावै है । भावार्थ—भारणकै समान यो शरीर है ताकै विषै इंद्रिय अर मन मूषिकै समान हैं, ताकै विषै प्रवर्त्ततो जीव लोहरूप है, ताहि शुद्ध करवाका इच्छक जो मुनि बाईस परीषहरूप अग्निकरि तपावै है सो आचार्य है । ऐसा रूपक अलंकाररूप अर्थसबंध है ॥ ७ ॥

सदआयारविदण्हू सदा आयारियं चरे ।
आयारमायारवंतो आयरिओ तेण वुच्चदि ॥८॥

सदाचारवित् सदा आचारितं चरेत् ।
आचारमाचारयन् आचार्यस्तेन उच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—सदाचारको जाननवारो अर सदाकाल गणधरप्रणीत आचारका आचरण करनेंवारा अर आचारनें आचरण करावनवारा है ता कारणकरि आचार्य कहिये है ॥ ८ ॥

जम्हा पंचविहायारं आचरंतो पभासदि।
आयारियाणि देसंतो आयरिओ तेण वुच्चदे ॥६॥
यस्मात्पंचविधाचारं आचारयन् प्रभासते।
आचरितानि दर्शयन् आचार्यस्तेन उच्यते ॥६॥

अर्थ—जातैं पञ्च प्रकार आचार चेष्टा करतो संतो अतिशयकरि शोभायमान होय है अर आचरण किये पुरुषनिनैं दिखावै कि प्रगट करै ता कारणकरि आचार्य कहिये है ॥ ९॥

अथ उपाध्याय लक्षणकी द्रव्यसंग्रहमैं, गाथा;—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स॥५४॥
यः रत्नत्रययुक्तः नित्यं धर्मोपदेशने निरतः।
सः उपाध्यायः आत्मा यतिवरवृषभः नमस्तस्मै ॥५४॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि युक्त है अर निरन्तर धर्मोपदेशके देनैं विषै अतिशयकरि लीन है ऐसा उपाध्यायरूप मुनिवरनिमैं प्रधान आत्मा जो है ताकै अर्थि मेरो नमस्कार होहु ॥५४॥

माघनंदिकृत जयमालमैं, छंद—

घोरसंसारभीमाडवीकाणणे
तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया
वंदिमो ते उवज्झाय हम्मे सया ॥४॥
घोरसंसारभीमाटवीकानने
तीक्ष्णविकरालनखपादपंचानने।

नष्टमार्गाणां जीवानां पथदेशकान्
वन्दामहे तान् उपाध्यायान् वयं सदा ॥ ४॥

अर्थ—घोर संसाररूप भयंकर अटवी काननकै विषैं तीक्ष्ण विकराल हैं नख जिनके ऐसे पंचाननके समूहके विषैं नष्ट भयो है मार्ग जिनको ऐसे जीवनिनैं मार्गके दिखावनवारे उपाध्याय जे हैं ते वंदवे योग्य हैं ॥ ४ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिका मैं;—

शिष्याणामपहाय मोहपटलं कालेन दीर्घेण य-
ज्जातं स्यात्पदलाञ्छितोज्ज्वलवचो दिव्यांजनेन स्फुटम्
ये कुर्वन्ति दृशं परामतितरां सर्वावलोकक्षमां
लोके कारणमंतरेण भिषजस्ते पान्तु नोऽध्यापकाः॥६१॥

अर्थ—जे उपाध्याय परमेष्ठी शिष्यनिकै अनादिकाल करि उत्पन्न भयो जो मोहको पटल ताहि स्यात्पदकरि चिह्नित जो उज्जल वचनरूप दिव्य अंजन ताकरि दूरि करि सर्व वस्तुके देखनें विषैं अतिशय करिकैं समर्थ ऐसी परमदृष्टि जो है ताहि करहै अर लोकमैं बिना कारण वैद्य है ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी जे हैं ते हमारी रक्षा करो ॥ ६१ ॥

तथा आचारसारमैं;—

संसारज्वरसंतापच्छेदि यद्वचनामृतम् ।
पीयते भव्यलोकेन प्रीत्या नित्यं स देशकः ॥३४॥

र्थ—संसाररूप ज्वरको छेदनवारो जाको वचनरूप अमृत भव्यजीवनिकरि प्रीतिकरि निरंतर पान करिये है सो दाता उपाध्याय है ॥ ३४ ॥

तथा चारित्रसारमैं, धारा:—

विनयेनोपेत्य यस्माद्व्रतशीलभावनाधिष्ठानादागमं श्रुताभिधानमभिधीयते स उपाध्यायः ।

अर्थ—विनयवाननिनैं प्राप्त होयकरि व्रत शील भावनाको आधार जो है तातैं श्रुत है नाम जाको ऐसो आगम जो है ताहि अध्ययन करिये सो उपाध्याय है। भावार्थ—व्रत शील भावनाका धारक श्रुताध्ययन करावनवारे जे हैं ते उपाध्याय हैं ॥

तथा, गाथा;—

ग्यारह अंग वियाणइ चउदह पुव्वाणि णिखसेसाणि ।
पणवीसं गुणजुत्ता णाणए तस्स उवझाओ ॥
एकादशांगानि विजानाति चतुर्दश पूर्वाणि निखशेषाणि
पंचविंशतिगुणयुक्ताः ज्ञायंते तस्य उपाध्यायः ॥

अर्थ—ग्यारह अंगनिनैं अर निर्विशेष चौदह पूर्वनिनैं जानै है ऐसे पचीस गुणयुक्त उपाध्याय हैं। भावार्थ—ग्यारह अंग अर चौदह पूर्वरूप पचीस गुणके धरक हैं। तिनके नाम ऐसैं जाननें आचारांग१ सूत्रकृतांग२ स्थानांग३ समवायांग४ व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग५ ज्ञातृधर्मकथांग६ उपासकाध्ययनांग७ अंतकृद्दशांग८ अनुत्तरोपपादकदशांग९ प्रश्नव्याकरणांग१० विपाकसूत्रांग११ अर दृष्टिवादनाम ध्येयनामा बारमा अंग जो है ताका पांच भेद है, तिनमैं चौदह पूर्वके नाम ऐसैं जानें—उत्पादपूर्व१ अग्रायणीपूर्व२ वीर्यानुवादपूर्व३ अस्तिनास्तिप्रवादरूप४ ज्ञानप्रवादपूर्व५ सत्यप्रवादपूर्व६ आत्मप्रवादपूर्व७ कर्मप्रवादपूर्व८ प्रत्याख्यानपूर्व९ विद्यानुवादपूर्व१० कल्याणवादपूर्व११ प्राणवादपूर्व१२ क्रियाविशालपूर्व१३ त्रिलोकबिंदुसारपूर्व१४ ऐसैं पचीस गुण उपाध्याय परमेष्ठीके हैं ॥

तथा मूलाचारका सातमां प्रस्तावमें;—

वारसंगं जिणक्खादं सज्झायं कथिदं बुधे ।
उवदेसइ सज्झायं तेणोवज्झाउ वुचदे ॥ १० ॥
द्वादशांगानि जिनख्यातानि स्वाध्यायः कथितः बुधैः ।
उपदिशति स्वाध्यायं तेनोपाध्याय उच्यते ॥ १० ॥

अर्थ—भगवान् भाषित द्वादश अँग जे हैं तिनैं ज्ञानवानिकरि स्वाध्याय कही है यातैं स्वाध्याय उपदेश करै है ता कारण करि उपाध्याय कहिये है ॥ १० ॥

अथ साधु लक्षणकी द्रव्यसंग्रहमें; गाथा—

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिचसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५५॥
दर्शनज्ञानसमग्रं मार्गं मोक्षस्य यः स्फुटं चारित्रम् ।
साधयति नित्यंशुद्धं साधुः सः मुनिर्नमस्तस्मै ॥ ५५ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप परिपूर्ण शुद्ध मोक्षमार्ग जो है ताहि जो मुनिनिरन्तर साधै है सो साधु है ताकै अर्थि नमस्कार होहु ॥ ५५ ॥

तथा प्रवचनसारका चारित्राधिकारमें; गाथा—

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सकमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतधयणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥७॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता ।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवठ्ठावगो होदि ॥ युग्मम ॥

व्रतसमितीन्द्रियरोधो लोचावश्यकमचेलमस्नानम् ।
क्षितिशयनमदंतधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तं च ॥७॥
एते खलु मूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः ।
तेषु प्रमत्तः श्रमणः छेदोपस्थापको भवति ॥ ८ ॥

अर्थ—पंच महाव्रत—अहिंसा१ सत्य२ अचौर्य३ ब्रह्मचर्य४ निःपरिग्रह५, अर पंच समिति—ईर्यासमिति१ भाषासमिति२ एषणासमिति३ आदाननिक्षेपणा समिति४ प्रतिष्ठापना समिति५, अर पंच इंद्रयनिका निरोध—स्पर्शनिरोध१ रसननिरोध२ घ्राणनिरोध३ चक्षुनिरोध४ श्रोत्रनिरोध५, अर केशलोच, आवश्यक छह—सामायिक१ स्तवन२ वंदना३ प्रतिक्रमण४ प्रत्याख्यान५ व्युत्सर्ग आचेलक्य कहिये वस्त्ररहित नग्न दिगम्बरपणौं१, यावतजीव स्नानत्याग१ भूमिशयन१ दंतधवन त्याग१ खड़ा भोजन१ एकवार लघु भोजन१, ऐसें अट्ठाईस मूलगुण साधुपरमेष्ठीके जिनवरदेवनै कहे हैं तिनके विषैं प्रमत्त श्रमण जो है सो छेदोपस्थापक होय है ॥ ८ ॥

तथा माघनंदिमुनिकृत जयमालमैं—

उग्गतवचरणकरणेहिं खीणंगया
धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणं गया ।
णिब्भरं तवसिरीए समालिंगिया
साहवो ते महं मोक्खपहमग्गया ॥ ५ ॥
उग्रतपश्चरणकरणैः क्षीणंगताः
धर्मवरध्यानशुक्लैकध्यानं गताः ।

निर्भरं तपः श्रिया समालिंगिताः
साधवस्ते मह्यं मोक्षपथमार्गगाः ॥ ५ ॥

अर्थ—उग्रतपका आचरणकरि क्षीण भया अर उत्कृष्ट धर्मध्यान शुक्लध्याननैं प्राप्त भया अर अतिशय जैसें होय तैसें तपःश्रीकरि आलिंगित भया ते साधु हमारै तांई मोक्षमार्गनैं प्राप्त करो ॥ ५ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं;—

उन्मुच्यालयबंधनादपि दृढात्कायेऽपि वीतस्पृहा-
चित्ते मोहविकल्पजालमपि यद्दुर्भेद्यमन्तस्तमः ।
भेदायास्य हि साधयंति तदहो ज्योतिर्जिताऽर्कप्रभं
ये सद्बोधमयं भवंतु भवतां ते साधवः श्रेयसे ॥६२॥

अर्थ—जे संसार देह भोगनि विषैं हूं वांछारहित हुवा संता अत्यंत दृढ गृहबंधनतैं छूटिकरि चित्तकै विषैं मोहके विकल्पनिको है समूह जामैं ऐसो जो दुर्भेद्य अंतरंगको अंधकार ताका नाशकै अर्थि जीती है सूर्यकी प्रभा जानैं ऐसी सम्यग्ज्ञानमय ज्योतिको साधन करै है ते साधु परमेष्ठी तुम भव्यजीवनिकै कल्याणकै अर्थि होहु ॥ ६२ ॥

तथा मूलाचारका सप्तम प्रस्तावमैं प्राकृतश्लोक;—

णिव्वाणसाधए जोगे सदा जुंजंति साधवो ।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो ॥ ११ ॥
निर्वाणसाधकान् योगान् सदा योजयंति साधवः ।
समाः सर्वेषु भूतेषु तस्मात्ते सर्वसाधवः ॥ ११ ॥

अर्थ—जे साधु आपकै तथा परजीवनिकै विषैं निर्वाणका

साधनभूत योग जे हैं तिनकौं सदाकाल जोडै है, अर सर्व प्राणीनिकै विषैं साम्यभावरूप है तातैं ते सर्वसाधु हैं ॥

ऐसैं तौ तीन भेद जाननें अर पांच भेद कहे तिनमैं आचार्य उपाध्यायका लक्षण तौ पूर्वै कह्या ही अर प्रवर्त्तकका लक्षण, आचारसारमैं—

प्रभावनाधिकोऽबाधमन्नाद्यैः संघवर्त्तकः।
जगदादेयवाङ्मूर्त्तिर्वर्त्तकः कालदेशवित् ॥ ३५॥

अर्थ—प्रभावनाकरि अधिक अर जगतकै ग्रहण योग्य है वचनकी मूर्त्ति जाकी अर कालका अर देशका जाननवारा अर अबाधित जैसैं होय तैसैं अन्नादिककरि संघका प्रवर्त्तक होय सो मुनि प्रवर्त्तक है। भावार्थ—देश कालको ज्ञाता होय तातैं आचार्य प्रवर्त्तकपदमैं स्थापन करै है अर वै समस्त संघनैं इसे मार्ग लगावै कि जा देशमैं आहार पान उपकरण सुलभ होय ऐसा अभिप्रायतैं "अन्नाद्यैः संघवर्त्तकः" ऐसो विशेषण दियो है ॥ ३५ ॥

अबैं स्थविरका तथा गणधरका लक्षणरूप आचारसारमैं, श्लोक—

समयस्थितिसद्गीतिः स्थविरः स्याद्गुणस्थिरः।
गणरक्षाक्षमः सूरिर्गुणी गणधरः स्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सिद्धांतकी मर्यादाका अनुक्रमका कहनवारा अर निश्चल हैं गुण जिनके ते स्थविर हैं, अर गणकी रक्षा करवामैं समर्थ अर अनेक गुणनिके धारण करनवारे आचार्य जे हैं ते गणधर कहे हैं ॥ ३६ ॥

ऐसैं पांच भेद जाननें। अर पुलाक आदि पांच भेद जे हैं तिनका लक्षण देव गुरु शास्त्रका लक्षण पूर्वै वरनन किया तहां

निर्भरं तपः श्रिया समालिंगिताः
साधवस्ते मह्यं मोक्षपथमार्गगाः ॥ ५ ॥

अर्थ—उग्रतपका आचरणकरि क्षीण भया अर उत्कृष्ट धर्मध्यान शुक्लध्यानमैं प्राप्त भया अर अतिशय जैसें होय तैसें तपःश्रीकरि आलिंगित भया ते साधु हमारै तांई मोक्षमार्गनैं प्राप्त करो ॥ ५ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं;—

उन्मुच्यालयबंधनादपि दृढात्कायेऽपि वीतस्पृहा-
चित्ते मोहविकल्पजालमपि यद्दुर्भेद्यमन्तस्तमः ।
भेदायास्य हि साधयंति तदहो ज्योतिर्जितार्कप्रभं
ये सद्बोधमयं भवंतु भवतां ते साधवः श्रेयसे ॥६२॥

अर्थ—जे संसार देह भोगनि विषैं हूं वांछारहित हुवा संता अत्यंत दृढ गृहबंधनतैं छूटिकरि चित्तकै विषैं मोहके विकल्पनिको है समूह जामैं ऐसो जो दुर्भेद्य अंतरंगको अंधकार ताका नाशकै अर्थि जीतो है सूर्यकी प्रभा जानैं ऐसी सम्यग्ज्ञानमय ज्योतिको साधन करै है ते साधु परमेष्ठी तुम भव्यजीवनिकै कल्याणकै अर्थि होहु ॥ ६२ ॥

तथा मूलाचारका सप्तम प्रस्तावमैं प्राकृतश्लोक;—

णिव्वाणसाधए जोगे सदा जुंजंति साधवो ।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो ॥ ११ ॥
निर्वाणसाधकान् योगान् सदा योजयंति साधवः ।
समाः सर्वेषु भूतेषु तस्मात्ते सर्वसाधवः ॥ ११ ॥

अर्थ—जे साधु आपकै तथा परजीवनिकै विषैं निर्वाणका

साधनभूत योग जे हैं तिननें सदाकाल जोडै है, अर सर्व प्राणीनिकै विषैं साम्यभावरूप है तातैं ते सर्वसाधु हैं ॥

ऐसैं तौ तीन भेद जाननें अर पांच भेद कहे तिनमैं आचार्य उपाध्यायका लक्षण तौ पूर्वैं कह्या ही अर प्रवर्त्तकका लक्षण, आचारसारमैं—

प्रभावनाधिकोऽबाधमन्नाद्यैः संघवर्त्तकः।
जगदादेयवाङ्मूर्त्तिर्वर्त्तकः कालदेशवित् ॥ ३५॥

अर्थ—प्रभावनाकरि अधिक अर जगतकै ग्रहण योग्य है वचनकी मूर्त्ति जाकी अर कालका अर देशका जाननवारा अर अबाधित जैसैं होय तैसैं अन्नादिककरि संघका प्रवर्त्तक होय सो मुनि प्रवर्त्तक है। भावार्थ—देश कालका ज्ञाता होय तानैं आचार्य प्रवर्त्तकपदमैं स्थापन करै है अर वै समस्त संघनैं इसे मार्ग लगावै कि जा देशमैं आहार पान उपकरण सुलभ होय ऐसा अभिप्रायतैं "अन्नाद्यैः संघवर्त्तकः" ऐसो विशेषण दियो है ॥ ३५॥

अबैं स्थविरका तथा गणधरका लक्षणरूप आचारसारमैं, श्लोक—

समयस्थितिसद्गीतिः स्थविरः स्याद्गुणस्थिरः।
गणरक्षाक्षमः सूरिर्गुणी गणधरः स्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सिद्धांतकी मर्यादाका अनुक्रमका कहनवारा अर निश्चल हैं गुण जिनके ते स्थविर हैं, अर गणकी रक्षा करवामैं समर्थ अर अनेक गुणनिके धारण करनवारे आचार्य जे हैं ते गणधर कहे हैं ॥ ३६ ॥

ऐसैं पांच भेद जाननें। अर पुलाक आदि पांच भेद जे हैं तिनका लक्षण देव गुरु शास्त्रका लक्षण पूर्वैं वरनन किया तहां

लिख्या ही है। अर आचार्य आदि दश भेद जे हैं तिनका लक्षण विनयका वरननमैं कह्या ही है, ते सर्व उपासना करनें योग्य है। अर पार्श्वस्थ आदि भी मुनि नाम कहावैं ते उपासना करनें योग्य नहीं है।

प्रश्न—ऐसैं है तौ इनिके भी नाम तथा लक्षण कहो।

उत्तर—प्रथम तो इनके नाम आदि वरनन मूलाचारका सप्तम प्रस्तावमैं;—

णो वंदेज्ज अविरदं मादा पिदु गुरु णरिंद अण्णतित्थं वा
देशविरद देवं अण्णं पासत्थपणगं वा ॥ ९२ ॥
नो वंदेत अविरतं मातृपितृगुरुनरेन्द्रान्य तीर्थं वा।
देशविरतं देवं अन्यं पार्श्वस्थपंचकं वा ॥ ९२ ॥

अर्थ—अविरत कहिये दिगंबरदीक्षारहित माता पिता अर गुरु कहियें लिपिसंख्या आदि व्यवहार विद्या तथा अश्व गज चढण शास्त्र अस्त्र शिल्पविद्या आदिकी शिक्षाका देनेंवारा अर नरेन्द्र अर अन्यतीर्थ कहिये जिनेंद्रभाषित देव गुरु शास्त्र सिवाय और देव गुरु शास्त्र अर देशविरत कहिये गृहस्थ अर देव कहिये चतुरनिकायके देव अथवा और नदी वृक्ष पशु भूमि आदि अचेतन तथा गौ अश्व गज आदि चेतनद्रव्य तथा पार्श्वस्थ आदि पांच भ्रष्ट मुनि नहीं वंदबे योग्य है॥ भावार्थ—अपनें पदस्थतैं नीचे पदमैं तिष्ठनेंवारे सर्व ही आपकै वंदिवे योग्य नहीं हैं अर्थात् आप सम्यग्दृष्टी है तौ मिथ्यादृष्टी माता पिता गुरू नरेंद्र अन्यभेषी नहीं वन्दिबे योग्य हैं तैसैं ही आप संयमी है तौ असंयमी वन्दिबेयोग्य नहीं है॥ ९२॥

अब पंच भ्रष्ट मुनि जे हैं तिनके नाम कहे है;—

पासत्थो य कुसीलो संसत्तोसण्ण मिगचरित्तो य।
दंसणणाणचरित्ते अणिउत्ता मंदसंवेगा ॥ ६३ ॥
पार्श्वस्थश्च कुशीलः संसक्तोऽवसन्नः मृगचरित्रश्च।
दर्शनज्ञानचारित्रे अनियुक्ताः मंदसंवेगाः ॥ ६३ ॥

अर्थ—पार्श्वस्थ१ कुशील२ संसक्त३ अवसन्न४ मृगचरित्र५ ए पांच जातिके मुनि दर्शन ज्ञान चारित्रके विषैं उपयुक्त नहीं है अर मंद संवेग है ॥ ९३ ॥

अथ, इनि पंचनिका लक्षण चारित्रसारमैं कहे है;—धारा—

तत्र यो वसतिषु प्रतिबद्ध उपकरणोपजीवी च श्रमणानां पार्श्वे तिष्ठति स पार्श्वस्थः ॥ १ ॥

अर्थ—तिन पंचनिमैं जो वसतिकाके विषैं प्रतिबद्ध कहिये अपणायकरि रहै अर उपकरणनिके संग्रहकरि तथा सुधारनेंकरि जीविका करनेवारा अर महा मुनीश्वरनिके पार्श्वके विषैं तिष्ठै सो पार्श्वस्थ है॥

धारा—क्रोधादिकषायकलुषितात्मा व्रतगुणशीलैः परिहीनः संघस्याविनयकारी कुशीलः ॥ १ ॥

अर्थ—क्रोध आदि कषायकरि मलिन है आत्मा जाको अर मूलगुण तथा उत्तरगुण अर शीलके समस्त भेदनिकरि रहित अर संघका अविनय करनेंवारो जो है सो कुशील है॥

धारा—वैद्यमंत्रज्योतिष्कोपजीवी राजादिसेवकः संसक्तः ॥ ३ ॥

अर्थ—वैद्यविद्या मंत्रविद्या ज्योतिषविद्याकरि जीविका करनें-

वारो अर राजादिकको सेवक जो है सो संसक्त है ॥ ३॥

धारा—जिनवचनानभिज्ञो मुक्तचारित्रभारो ज्ञानाचरणभ्रष्टः करणालसोऽवसन्नः ॥ ४ ॥

अर्थ—जिनवचनको नहीं जाननेंवारो अर छोड्यो है चारित्रको भार जानें अर ज्ञान और आचरणतें भ्रष्ट अर ध्यान आदि शुभोपयोगका करवाके विषै आलसी जो है सो अवसन्न है ॥४॥

धारा—त्यक्तगुरुकुल एकाकित्वेन स्वच्छंदविहारी जिनवचनदूषको मृगचारित्रः स्वच्छंद इति वा ॥ ५ ॥

अर्थ—त्याग्यो है गुरुकुल जानें अर एकाकीपणां करि स्वच्छंद विहार करणेंवारो अर जिनवचनको निंदक ऐसो मृगसमान चारित्रको धारक जो है सो स्वच्छंद है ॥ ५ ॥

धारा—एते पंच श्रमणा जिनधर्मबाह्याः ।

अर्थ—ये पांच भेद संयुक्त मुनि जे हैं ते जिनधर्मतें बाह्य हैं तातें ये पाचूं भेद जे हैं तिनमें अन्तर्गत अनेक उन्मार्गी हैं ते सर्व नमस्कार आदि उपासना करने योग्य नहीं हैं। अर पूर्वे कहे जे भेद ते ही उपासना करने योग्य है।

प्रश्न—गुरुलक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान कीया अब इनकी उपासनाको विधान भी कहो।

उत्तर—दान वैयावृत्यादिक करिकें उपासना करिये है, तहां दानमें दाता देय पात्र फल इनि च्यारनिका स्वरूप प्रथम विचार्या चाहिये, तातें प्रथम दातारका स्वरूप वर्णन, आदिपुराणका बीसवां पर्वमें—

श्रद्धा भक्तिश्च शक्तिश्च विज्ञानं चाप्यलुब्धतां ।
क्षमा त्यागश्च सप्तैते प्रोक्ता दानपतेर्गुणाः ॥ ८३ ॥

अर्थ--श्रद्धा भक्ति शक्ति विज्ञान अलोभता क्षमा त्याग ये दानपतिका सात गुण है ॥ ८३ ॥

प्रश्न--इनके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहो।

उत्तर--श्लोकः--

श्रद्धाऽऽस्तिक्यमनास्तिक्ये प्रदाने स्यादनादरः ।
भवेच्छक्तिरनालस्यं भक्तिः स्यात्तद्गुणादरः ॥ ८४ ॥
विज्ञानं स्यात् क्रमज्ञत्वं देयशक्तिरलुब्धता ।
क्षमा तितिक्षा ददतस्त्यागः सद्व्ययशीलता ॥८५॥
इति सप्तगुणोपेतो दाता स्यात्पात्रसंपदि ।
व्यपेतश्च निदानादेर्दोषान्निः श्रेयसोद्यतः ॥ ८६ ॥

अर्थ--पात्रके विषै आस्तिक्यता कहिये दान योग्य ये ही पात्र है ऐसा दृढ परिणामको नाम श्रद्धा है क्योंकि 'अनास्तिक्ये सति' कहिये दातारकै आस्तिक्यता नहीं होय तौ दानकै विषै अनादर होय है यातें दातारको प्रथम श्रद्धा गुण है। अर प्रमादरहितपणों जो है सो शक्तिगुण है। अर पात्रके गुणनिकै विषै जो आदर सो भक्ति गुण है। अर दानका क्रमको जाणवो सो विज्ञान गुण है। अर दान देवेकी सामर्थ्य सो अलुब्धता गुण है। अर तितिक्षा कहिये सहनशीलता जो है सो क्षमागुण है। अर भलै प्रकार देवाको स्वभाव जो है सो त्याग गुण है। अर उत्तमपात्रकी प्राप्ति होतें संतें इनि सात गुणनिकरि युक्त होय सो दातार

है अर निदानादि कहिये निदान मायाचार मिथ्यात्व इनि तीन दूषणनिकरि रहित होय अर कल्याणके अर्थि उद्यमी होय सो उत्तम दातार है ॥ ८४-८५-८६॥

तथा आधुनिक पद्मनंदिश्रावकाचारमें—

भागद्वयं कुटुम्बार्थे संचयार्थे तृतीयकः ।
स्वरायो यस्य धर्मार्थे तुर्यस्त्यागी स सत्तमः ॥ १ ॥

अर्थ—आप जो द्रव्य उपार्जन करै ताके दोय भाग तौ कुटुम्बकै अर्थि खरच करै, अर तीसरो भाग संचयकै अर्थि राखै, अर चतुर्थ भाग धर्मके अर्थि लगावै सो उत्तम दातार है ॥

भागद्वयं तु पुत्रार्थे कोशार्थे तु त्रयं सदा ।
षष्ठं दानाय यो युंक्ते स त्यागी मध्यमो मतः ॥२॥

अर्थ—जो अपनें उपार्जनके छह भाग करै तिनमें दोय भाग तौ पुत्र आदि कुटुम्बके अर्थि खरच करै अर तीन भाग भंडारमें राखै अर छठो भाग दानकै अर्थि खरच करै सो मध्य दातार कह्यो है ॥ २ ॥

स्वस्वस्य यस्तु षड् भागान् परिवाराय योजयेत् ।
त्रीन् संचयेद्दशांशं तु धर्मे त्यागी लघुश्च सः॥ ३॥

अर्थ—जो अपनें धनके दश भागनिमें छह भाग तौ परिवारकै अर्थि युक्त करै अर तीन भाग संचयमें राखै अर दशम भाग धर्मकार्यमें युक्त करै सो दातार जघन्य है ॥ ३ ॥

अथ नवधाभक्तिलक्षण—

प्रतिग्रहणमित्युच्चैः स्थानेऽस्य विनिवेशनम्।
पादप्रधावनं चर्चा नतिशुद्धिश्च सा त्रयी ॥ ८६ ॥
विशुद्धिश्चासनस्येति नव पुण्यानि दानिनाम्।

अर्थ—इहां तिष्ठो तिष्ठो ऐसैं आदररूप तीन बार कहनां सो प्रतिग्रहण है, अर पात्रकूं उचस्थानमैं स्थापन करै, अर पात्रके चरणारविन्दकूं शुद्ध प्रासुक जलतैं प्रक्षालन करै, अर पात्रको प्रासुक अष्ट द्रव्यनितैं पूजन करै, अर पात्रकूं नमस्कार करै, अर दातारका मन वचन कायकी शुद्धता अर भोजन योग्य द्रव्यकी शुद्धता, ए दातारकै पात्रकै अर्थि दान देनेंमैं पुण्यरूप नवविधि है याहीकूं नवधाभक्ति कहै है॥

प्रश्न—या श्लोकमैं सामान्यपणैं पूजन कह्यो ताका अर्थमैं प्रासुक विशेषण विशेष कैसैं लिख्यो ?

उत्तर—मूलाचारकी टीकामैं प्रासुक विशेषण द्रव्यका लिख्या है।

प्रश्न—दातारको स्वरूप कह्यो सो तो श्रद्धान कियो अब देय द्रव्यको भी स्वरूप कहो।

उत्तर—दान च्यार प्रकार है तिनके नामका रत्नकरण्डमैं, श्लोक—

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११४॥

अर्थ—"चतुरस्राः" कहिये पण्डित ज्ञानीजन जे हैं ते उत्तम पात्रनिको वैयावृत्य आहार देनें करि औषधके देनें करि अर उपकरण कहिये ज्ञानोपकरण जो शास्त्रको दान अर दयोपकरण जो पिच्छिकाको दान अर शौचोपकरण जो कमंडलुको दान तिनिकरि अर वस्तिकादान इन च्यार प्रकारके दान करि वैयावृत्य च्यार

प्रकार कहे हैं ॥ ११४ ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें, श्लोक—

आहारं चौषधं शास्त्रं दानं वसतिका जिनैः ।
चतुर्धा गृहीणां दानं प्रणीतंपुण्यहेतवे ॥ ३ ॥

अर्थ—जिनेंद्र भगवान जे हैं तिनिनें गृहस्थोनिके पुण्यबंधके निमित्त आहारदान औषधदान शास्त्रदान बस्तिकादान, ऐसें च्यार दान कह्यो है सो गृहस्थ पात्रनिकूं देवै ॥

प्रश्न—इनि च्यार दाननिमें प्रथम आहारदान कह्या ताका स्वरूप कहो ।

उत्तर—सो आहार छियालीस दोष रहित उत्तम पात्रकै योग्य है । तिनके नाम मूलाचारके पिंडशुद्धि अधिकारमें, गाथा;—

उग्गमउप्पादणएसणं च संजोयणं पमाणं च ।
इंगालधूमकारण अट्ठविहा पिंडसुद्धी दु ॥
उद्गम उत्पादनं एषणं च संयोजनं प्रमाणं च ।
अंगारं धूमः कारणं अष्टविधा पिंडशुद्धिस्तु ॥

अर्थ—दातार अर पात्र इनि दोऊनिके अभिप्रायनिकरि आहारादि उपजै ते अभिप्रायरूप उद्गमदोष सोला प्रकार है । अर केवल पात्रसंबंधी अभिप्रायनिकरि ही आहारादि उत्पन्न होय ते उत्पादन दोष सोला प्रकार हैं । अर आहारसंबंधी दोष दश प्रकारहै अर संयोजन करिये वा संयोजनमात्र सो सयोजनदोष एक प्रकारहै अर प्रमाणतें अधिक सो प्रमाण दोष एक प्रकार है । अर अंगारा की नाईं अंगार दोष एक प्रकार है । अर धूमसमान धूम दोष एक

प्रकार है, ऐसैं तौ छियालीस दोष हैं। अर षट् कारण निमित्त तौ आहार करै है अर षट् कारण होतसंतैं आहारको त्याग करै है। अर उद्गम१, उत्पादन२, मदोषआहार३, संयोजन४, प्रमाणविलंघन५, अंगार६, धूम७, कारण ऐसैं तो अष्टप्रकार आहारशुद्धि है।

अब उद्गम नामा षोडश दोषनिके नामः—

आधाकम्मुद्देसिय अज्झोवज्झेय पूदिमिस्से य।
ठविदे बलि पाहुडिदे पादुकारे य कीदे य ॥ १ ॥
पामिच्छे परियट्टे अभिहडमुब्भिण्ण मालआरोहे।
आच्छिज्जे अणिसट्टे उग्गमदोसा दु सोलसिमे ॥ २॥
अधःकर्म औद्देशिक अध्यधि पूतिमिश्रश्च।
स्थापितं बलिः प्रावर्त्तितं प्राविष्करणं च क्रीतं च ॥
प्रामृष्यं परिवर्त्तकं अभिघटं उद्भिन्नं मालारोहं।
अच्छेद्यं अनिसृष्टं उद्गमदोषास्तु षोडश इमे ॥

अर्थ—षट्कायके जीवनिको वध करनेवारो अर निकृष्ट व्यापाररूप है सो अधःकर्म दोष छियालीसकी गणनातैं न्यारो है क्योंकि यो महान दोष है यातैं। अर साधुका नाम लेकरि किया सो औद्देशिक है, अर संयमीनैं देखिकरि जो भोजनको आरंभ करिये सो अध्यधि दोष है, अर प्रासुकमैं अप्रासुक मिलायो वा असंयमीकै योग्य भोजनको मिलायो सो पूति दोष है, अर रसोईके स्थानतैं अन्य स्थान आपकामैं वा परकामैं धर्यो हूवो गृहस्थ देवै वा पात्र लेवै सो स्थापित दोष है, अर यक्ष नागादिकके पूजनकै अर्थि कीया जो नैवेद्य सो देवै सो बलिदोष है, अर पात्रकूं

पडगाहे पीछें कालकी हानि वृद्धि करै कि नवधाभक्तिमें शाघ्रता करै अथवा विलम्ब करै सो प्रावर्तितदोष है, अर मंडपादिकको प्रकाश करै कि अंधेरो जाणि उजालो करै सो प्राविष्करणदोष है ※। अर आपकै तौ वस्तु मौजूद नहीं परकैसें वस्तु उधारी ल्याकरि देवै सो प्रामृष्यदोष है। अर अपणी वस्तुके बदले अन्य गृहस्थनितैं वस्तु ल्याय देवै सो परिवर्त्तकदोष है। अर तत्काल देशांतरतैं आई वस्तुकौं देवै सो अभिघटदोष है। अर बंधी हुई वस्तु होय अथवा छांदो लगी वस्तु होय ताको बंधन वा छांदो खोलकरि देवै सो उद्भिन्नदोष है। अर रसोईके मकानतैं उपरके मकानमें वस्तु धरी हुईकूं निसीरणी चढकरि वा नालि चढकरि ल्याई वस्तु देवै सो मालारोहणदोष है। अर उद्वेग त्रास भयको कारण जो भोजन सो अच्छेद्य दोष है। अर असमर्थ दातार सो अनीशार्थ दोष है। ये षोडश उद्गमनामा दोष हैं॥

अथ उत्पादननामा षोडश दोषनिके नाम:—

धादी दूदणिमित्ते आजीवे वणिवगे य तिगिंछे।
कोही माणी मायी लोही य हवंति दस एदे॥२६॥

धात्रीदूतनिमित्तानि आजीवः वनीपकश्च चिकित्सा।
क्रोधी मानी मायी लोभी च भवंति दश एते॥२६॥

अर्थ—मज्जन१ मंडन२ क्रीडन३ स्तनपान४ अम्ब५ ऐसैं पंचविध धात्रीकर्मको दातारकूं उपदेश देय जो आहार ग्रहण करै ताकै धात्रीनामा दोष होय है। अर जो परदेशाके समाचार दातारकूं कहि करि आहार ग्रहण करै ताकै दूतनामा दोष होय है। अर

※—प्राविष्करण दोषके आगे क्रीतदोषका स्वरूप नहीं है जो चाहिये था।

अष्टांगनिमित्तको दातारकूं उपदेश देयकरि भोजन ग्रहण करै ताकै निमित्तदोष होय है। बहुरि अपना जाति कुल तपश्चरणादिकको स्वरूप दातारकूं सुनाय आहार ग्रहण करै ताकै अजीवकदोष होय है। बहुरि दातारकै अनुकूल वचन कहिकरि भोजन ग्रहण करै ताकै वनीपक दोष होय है। बहुरि दातारकूं रोगके नाशकै निमित्त औषधि आदि बताय भोजन ग्रहण करै ताकै चिकित्सानामा दोष होय। बहुरि क्रोधकरि तथा मानकरि तथा मायाचारकरि तथा लोभकरि भोजन ग्रहण करै ताकै क्रोध मान माया लोभ जनित च्यार दोष होय है। ये उत्पादनामा दश दोष पात्रकै आश्रय होय हैं।

पुव्वी पच्छा संथुदि विज्जा मंते य चुण्णजोगे य।
उप्पादणाय दोसो सोलसमो मूलकम्मे य॥ २७॥
पूर्वं पश्चात्संस्तुतिः विद्या मंत्रश्च चूर्णयोगश्च।
उत्पादना च दोषः पोडश मूलकर्म च॥ २७॥

अर्थ—जो पूर्वं दातारकी प्रशंसाकरि आहार ग्रहण करै सो पूर्वस्तुति दोष है अर आहार ग्रहण किये पीछें दातारकी स्तुति करै सो पश्चात्स्तुति दोष है अर आकाशगामिनी आदि विद्या बताय आहार ग्रहण करै सो विद्यादोष है अर सर्प बीछू आदिके विष दूर करनेवारा मंत्र बताय आहार ग्रहण करै सो मंत्रदोष है अर शरीरकी शोभा निमित्त चूर्ण आदि बताय आहार ग्रहण करै सो चूर्ण दोष है अर अवशकूं वशि करनेका उपाय बताय आहार ग्रहण करै सो मूलकर्म दोष है। ऐसैं पोडश उत्पादन दोष हैं॥ २७॥

अबैं आहार संबंधी दश दोषनिके नाम कहै हैं;—

संकिदमक्खिदपिहिदं संववहरणदायगुम्मिस्से।
अपारणतलित्तछोडिद एसणदोसाइं दस एदे॥

शंकितम्रक्षितनिक्षिप्तपिहितसंव्यवहरणदायकोन्मिश्राः
अपरिणतलिप्तत्यक्ता एषणदोषाः दश एते ॥

अर्थ—यह भोजन योग्य है कि अयोग्य है? अथवा खाद्य है कि अखाद्य है? ऐसो शंकावान भोजन ग्रहण करै ताकै शंकितनामा दोष होय है, बहुरि सचिक्कण हस्ततैं वा सचिक्कण वर्त्तनमैं धर्‍यो भोजन ग्रहण करै ताकै म्रक्षित दोष होय है, बहुरि सचित्त पत्रादिकपरि धर्‍यो भोजन ग्रहण करै सो निक्षिप्त दोष है, बहुरि सचित्त पत्रादिककरि ढक्यो भोजन ग्रहण करै सो पिहितदोष है, बहुरि दान देनेकी शीघ्रता करि अपने वस्त्रकूं नहीं सवारि करि तथा भाजनकूं नहीं देखिकरि जो भोजन देवै सो संव्यवहरणदोष है, बहुरि सूतकादि करि युक्त अशुद्ध दातार को दियो आहार ग्रहण करै ताकै दायकनामा अशन दोष होय है, बहुरि सचित्तकरि मिल्यो आहार होय सो उन्मिश्र दोष है, बहुरि अग्निकरि परिपूरण पक्यो नहीं अथवा बलि गयो ऐसो आहार अथवा तिल तंदुल हरीतक्यादिकरि अपणा रस गंध वर्णनैं नहीं छोड्‌यो ऐसो जल ग्रहण करै, सो अपरिणत दोष है, बहुरि गेरू हरताल खड़ी आदि अर अप्रासुक द्रव्य करि लिप्त जो पात्र ता करिकै आहार देवै सो लिप्तदोष है, बहुरि दातारकरि पात्रके हस्तमैं स्थापन कीयो जो आहार सो अस्थिर पाणिपात्रतैं गिरतां आहार करै अथवा पहली करपात्रमैं आया आहारनैं छोडि और आहार लेय ग्रहण करै सो परित्यजनदोष है। ये दश दोष भोजनके हैं।

अब संयोजन अर अप्रमाणदोष लक्षणकी गाथा;—

संजोयणाय दोसो जो संजोएदि भत्तपाणं तु।

अदिमत्तो आहारो पमाणदोसो हवदि एसो ॥५२॥
संयोजना च दोषः यः संयोजयति भक्तं पानं तु।
अतिमात्रः आहारः अप्रमाणदोषः भवत्येषः ॥५२॥

अर्थ—जो शीतल भोजनमैं उष्ण भोजन मिलाणा वा उष्णमैं शीतल भोजन मिलाणा अथवा उष्णजलमैं शीतल जल मिलाणा वा शीतल जलमैं उष्ण जल मिलाणा सो संयोजननामा दोष है। बहुरि जो गृद्धिताकरि प्रमाणतैं अधिक भोजन ग्रहण करै सो अप्रमाणदोष है ॥ ५२ ॥

अब अंगार तथा धूमदोषकी गाथाः—

तं होदि स इंगालं जं आहारेदि मुच्छिदो संतो।
तं पुण होदि सधूमं जं आहारेदि णिंदंतो ॥ ५३ ॥
तद्भवति सांगारं यत् आहरति मूर्च्छितः सन्।
तत्पुनर्भवति सधूमं यत् आहरति निंदितः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो गृद्धिता आदिकरि सहित आहार ग्रहण करै सो अंगारदोष है, बहुरि यो भोजन मेरी प्रकृतितैं विरुद्ध है ऐसैं ग्लानि करतो संतो भोजन करै सो धूम दोष है ॥

अबै षट् कारणनिकी गाथाः—

छहिं कारणेहिं असणं आहारंतो वि आचरदि धम्मं।
छहिं चेव कारणेहिं दु णिज्जूहंतो वि आचरदि ॥
षड्भिः कारणैरशनं आहारन्नपि आचरति धर्मम्।
षड्भिः चैव कारणैः तु उज्झन्नपि आचरति ॥५४॥

अर्थ—पट् कारणनिकरि भोजन करतो हू धर्मनैं आचरण करै है बहुरि पट् कारणनिकरि भोजनको त्याग करतो भी धर्मनैं आचरण करै है ॥ ५४ ॥

वहां पट् कारणनिकरि भोजन करतो हू धर्मनैं आचरण करै तिनिके नाम:—

वेयणवेज्जावच्चे किरियाठाणे य संयमट्टाए ।
तव पाणधम्मचिंता कुज्जा एदेहिं आहारं ॥ ५५ ॥
वेदनावैयावृत्त्ययोः क्रियार्थं च संयमार्थम् ।
तथा प्राणधर्मचिंता कुर्यात् एतैः आहारम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—क्षुधा वेदनीयका उपशमके अर्थि भोजन करै है, बहुरि निज परका वैयावृत्यके अर्थि भोजन करै है, बहुरि पट् आवश्यक क्रिया पालनेके निमित्त भोजन करै है, बहुरि तेरह प्रकार संयमके पालने निमित्त भोजन करै है, बहुरि दश प्राणनिके धारण निमित्त भोजन करै है, बहुरि दश लक्षण धर्म पालनेके निमित्त भोजन करै है । ऐसैं पट् कारण निमित्त भोजन करतेहू धर्मको ही साधन करै है ॥ ५५ ॥

अब पट् कारणनिकरि भोजनको त्याग करतो हू धर्मनैं आचरण करै तिनिके नाम:—

आदंके उवसग्गे तितिक्खणे बंभचेर गुत्तीओ ।
पाणिदया तवहेऊ सरीरपरिहार वेच्छेदो ॥ ५६ ॥
आतंके उपसर्गे तितिक्षायां ब्रह्मचर्यगुप्तेः
प्राणिदयातपोहेतो शरीरपरिहारे व्युच्छेदः ॥५६॥

अर्थ—अकस्मात् असाध्य व्याधि उत्पन्न होतैं भोजनको त्याग करै, बहुरि देव मनुष्य तिर्यंचकृत उपसर्ग होतैं भोजनको त्याग करै, बहुरि ब्रह्मचर्य अर गुप्ति इनिकी हानि होतैं भोजनको त्याग करै, बहुरि जा भोजनके ग्रहण करनेतैं षट् कायके जीवनिको वध होतो होय ता भोजनको जीवदयाके निमित्त त्याग करै, बहुरि बारह प्रकार तपके अर्थि भोजनको त्याग करै, बहुरि जरा अवस्था होतैं दीक्षाकी हानि होती जाणि संन्यासनिमित्त भोजनको त्याग करै ॥ ५६ ॥

अबैं चतुर्दश मलदोष कहै हैं;—

णहरोमजंतुअट्ठीकणकुंडयपूयचम्मरुहिरमंसाणि ।
बीयफलकंदमूला छिण्णाणि मला चउद्दसा होंति ॥
नखरोमजंत्वस्थिकणकुंडयपूतिचर्मरुधिरमांसानि ।
बीजफलकंदमूलानि छिन्नानि मालानि चतुर्दश भवंति॥

अर्थ—नख, केश, जंतु कहिये मृतक त्रस जीवनिको कलेवर, हाड, कण, कहिये जो गेहूं आदिका बारला तुष, कुंडय कहिये शालि आदिका सूक्ष्म तुष, पूय कहिये राधि, चर्म, रुधिर, मांस, बीज कहिये जौ गेहूं आदि उगवा योग्य, फल कहिये आम आंवूणि नारंगी आदि हरचा फल, कंद कहिये केलि आदिका अधोभाग जो ऊगनेकूं कारण, मूल कहिये बड़पीपल आदिका अधोभाग जो ऊगनेकूं कारण। ये चौदह मलदोष छियालीस दोषनितैं भिन्न हैं। इनिमैं कितनेक तो महामल हैं कितनेक अल्पमल हैं, अर कितनेक महादोष हैं, कितनेक अल्पदोष हैं। तिनिमैं रुधिर मांस हाड चर्म राधि ये महादोष हैं, जातैं सर्व आहारको परित्याग होय संतैं भी बहुल प्रायश्चित्तके कारण हैं।

भावार्थ—इनके देखनेतैं भोजनको तौ त्याग करै है अर प्रायश्चित्त लेवै है। बहुरि विकलत्रयके सूखे कलेवरका तथा रोमका आहारमैं देखना आहारका परित्यागमैं कारण है। बहुरि भोजनमैं नखका देखबाकरि आहार तजिये है अर किंचित् प्रायश्चित्त अंगीकार करै है। बहुरि कण कुंड बीज फल मूल त्याग करने योग्य हैं अर जो त्याग करनेकूं नहीं समर्थ हूजिये तौ भोजनको त्याग करिये, भावार्थ—ये द्रव्य ऐसे नहीं हैं कि रसोईमैं ही आयें तथा भोजनके थालमैं आयें ही भोजनका त्याग करिये, ये द्रव्य भोजनके योग्य नहीं हैं तातैं यावत् पात्रके पाणिपात्रमैं नहीं प्राप्त होय तावत् अन्य शुद्ध द्रव्य भक्षण करै अर जो वै द्रव्य पाणिपात्रमैं प्राप्त होय तौ भोजन का त्याग करै। बहुरि जो सिद्धभक्ति कीये पीछैं जो अपने शरीरतैं रुधिर वा राधि श्रवै अथवा निकटवर्त्ती अन्यके शरीरतैं श्रवै तौ भोजनको परित्याग करै अथवा मांसको देखबो होय तौ भोजनको परित्याग करै। ऐसैं चतुर्दश मलदोष जानने ॥ ६० ॥

अब द्वात्रिंशत् अंतराय भोजनके नामकी गाथाः—

कागा मेज्झा छद्दी रोहण रुहिरं च अंसुवादं च्य।
जण्हूहिट्ठामरिसं जण्हुवरि वदिक्कमो चेव ॥ ७० ॥

काकोऽमेध्यं छर्दिः रोधनं रुधिरं च अश्रुपातश्च।
जान्वध आमर्शः जानूपरि व्यतिक्रमः चैव ॥७०॥

अर्थ—भोजनके निमित्त गमन करते वा तिष्ठते मुनीश्वरनिकै ऊपरि काक बक बाज आदि कोऊ पंछी बींट कर देवै तौ काकनामा भोजनको अंतराय है १ बहुरि भोजननिमित्त गमन करते मुनीश्वरनिको पग विष्टा आदि मलतैं लिप्त हो जाय तौ अमेध्यनामा अन्तराय है२ बहुरि भोजनके समय साधुकै वमन हो जाय तौ छर्दि-

नामा अन्तराय है३ बहुरि साधुकूं भोजननिमित्त गमन करतैं कोऊ मनैं कर देवे तौ रोधननामा अन्तराय है४ बहुरि भोजनके समय साधुकै दुःख शोकादिकतैं अश्रुपात पड़ै अथवा अन्यकै पड़ते देखै अथवा रुदन विलाप सुणै तौ अश्रुपातनामा अंतराय है६ बहुरि भोजन-निमित्त गमन करते साधुका हाथ अपणे गोडेनितैं नीचैं स्पर्श हो जाय तौ जान्वधःपरामर्शनामा अन्तराय है७ बहुरि भोजननिमित्त गोडेनितैं ऊँची डोली आदिकूं उलंघन करै तौ जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय है ८ ॥

णाभिअधोणिग्गमणं पचक्खियसेवणा य जंतुवहो ।
कागादिपिंडहरणं पाणीदो पिंडपडणं च ॥
नाभ्यधोनिर्गमनं प्रत्याख्यातसेवना च जंतुवधः ।
काकादिपिंडहरणं पाणितः पिंडपतनं च ॥

अर्थ--भोजननिमित्त नाभितैं नीचा द्वारमैं नीचो मस्तक करि गमन करै तौ नाभ्यधोनिर्गमननामा अंतराय है ९ बहुरि जा वस्तुका अपणे त्याग था सो वस्तु भोजनमैं आजाय तौ स्वप्रत्याख्यातसेवननामा अंतराय है१० बहुरि भोजनसमय अपने अग्रभागमैं कोऊ प्राणीका वध होय तौ जीववधनामा अंतराय है११ बहुरि भोजन करतां काकादिक पक्षी ग्रास ले जाय तौ काकादिपिंडहरणनामा अंतराय है१२ बहुरि भोजन करता साधुका हस्ततैं ग्रासको पतन हो जाय तौ पिंडपतननामा अंतराय है १३ ॥

पाणीए जंतुवहो मंसादीदंसणे य उवसग्गो ।
पादंतरंमि जीवो संपादो भायणाणं च ॥

पाणौ जंतुवधः मांसादिदर्शनं च उपसर्गः ।
पादांतरे जीवः संपातः भाजनानां च ॥

भावार्थ—द्वींद्रियादिक विकलत्रय जीव साधुके हस्तमें आयकरि मरि जाय तौ जंतुवध नामा अंतराय है१४ बहुरि भोजनके समय मृतक पंचेंद्रियजीवको कलेवर दीखै तौ मांसदर्शननामा अंतराय है१५ बहुरि भोजनके समय मनुष्य देव तिर्यचनिकरि कीया उपसर्ग आजाय तौ साधुकै उपसर्गनामा अंतराय है१६ बहुरि भोजन करतां साधुके चरणनिकै बीचि होय मूसा मींडका आदि पंचेंद्रिय जीव नीसरि जाय तौ पंचेंद्रियनामा अंतराय है१७ बहुरि दातारके हाथतें भोजनको पात्र गिरि पड़ै तौ भाजनसंपातनामा अंतराय है१८॥

उच्चारं पस्सवणं अभोजगिहपवेसणं तहा पडणं ।
उववेसणं सदंसं भूमीसंफास निट्ठुवणं ॥
उच्चारः प्रस्रवणं अभोज्यगृहप्रवेशनं तथा पतनम् ।
उपवेशनं सदंशः भूमिसंस्पर्शः निष्ठीवनम् ॥

अर्थ—भोजन करतां साधुके शरीरतें रोगादिककरि मल निकरयावै तौ उच्चारनामा अंतराय है१९ बहुरि भोजन करतां साधुकै मूत्रका स्राव होवै तौ प्रस्रवणनामा अंतराय है २० बहुरि साधु भिक्षानिमित्त भ्रमण करता शूद्रका गृहमें प्रवेश करै तौ अभोज्यगृहप्रवेशननामा अंतराय है२१ बहुरि भोजननिमित्त जावता साधु मूर्छादिककरि भूमिमें गिर पड़ै तौ पतननामा अंतराय है२२ बहुरि भोजन करता साधु मौंछि आदि रोगके निमित्ततें बैठि जाय तौ उपवेशननामा अंतराय है२३ बहुरि भोजननिमित्त जावता

साधुकूं श्वान आदि पंचेंद्री जीव काटि खाय तौ दष्ट अंतराय है२४ बहुरि भोजनके समय साधु सिद्धभक्ति कीयें पीछें अपने हाथकरि भूमिका स्पर्श करै तौ भूमिस्पर्शनामा अंतराय है२५ बहुरि भोजनके समय साधु कफ थूंक आदि पटकै तौ निष्ठीवननामा अंतराय है २६॥

उदरक्किमिणिग्गमणं अदत्तगहणं पहार गामडाहो य।
पादेण किंचि गहणं करेण वा जं च भूमीए ॥७५॥
उदरकृमिनिर्गमनं अदत्तग्रहणं प्रहारो ग्रामदाहश्च।
पादेन किंचिद्ग्रहणं करेण वा यच्च भूमौ ॥

अर्थ—बहुरि भोजनके समय साधुका उदरतैं कृमि निकसै तौ कृमिनिर्गमननामा अंतराय है२७ बहुरि भोजनसमय पराई वस्तुकूं हस्तकरि स्पर्शै तौ अदत्तग्रहणनामा अंतराय है२८ बहुरि भोजन करतां कोऊ दंड खड्ग आदि करि साधुकै देव अथवा अन्यकै देवै तौ प्रहारनामा अंतराय है२९ बहुरि ग्राममैं भोजननिमित्त आवतां अग्नि लागि जाय तौ ग्रामदाहनामा अंतराय है३० बहुरि भोजन करतां साधुकै चरणकरि कोऊ वस्तुका स्पर्श होय तौ पादग्रहणनामा अंतराय है३१ बहुरि भोजनसमय साधु भूमिमैं पड़ी कोऊ वस्तुकूं छीवै तौ करग्रहणनामा अंतराय है ३२ ॥

एदे अण्णे बहुगा कारणभूदा अभोयणस्सेह।
बीहणलोगदुगुंछणसंयमणिव्वेदणट्ठं च ॥ ७६ ॥
एते अन्ये बहुकाः कारणभूता अभोजनस्येह।
भयलोकजुगुप्सासंयमनिर्वेदनार्थं च ॥ ७६ ॥

अर्थ—ये भोजनत्यागके कारणभूत बत्तीस अंतराय कहे तैसैं ही और हू भोजन त्यागके कारण बहुत हैं;—ते ऐसैं कि—भय शोकनिंदा ग्लानि आदि होतसंतैं भोजनका त्याग संयमके पालनेकै अर्थि वा वैराग्यके अर्थि करै है ॥ भावार्थ—चांडालादि अस्पृश्यको स्पर्शन कलह इष्ट गुरु शिष्य आदिको मरण साधर्मीको संन्यासतैं पतन तथा राजा आदि प्रधान पुरुषनिको मरण होत संतैं वा दिन भोजनको त्याग करै । इत्यादि द्रव्य क्षेत्र कालकी योग्यता अयोग्यता आदि विशेष मूलाचारतैं अथवा सकलकीर्तिकृत यत्याचारतैं अथवा चामुंडरायकृत चारित्रसारतैं वीरनंदिकृत आचारसार आदि ऋषिप्रणीत ग्रंथनितैं जानना ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें;—

शुद्धं सत्प्रासुकं स्निग्धं क्रीतादिदोषवर्जितम् ।
तपोवृद्धिकरं सारं त्यक्तमिश्रासचित्तकम् ॥ १ ॥
कुटुंबकारणोत्पन्नमन्नदानं सुखप्रदम् ।
स्वयमागतपात्राय दातव्यं गृहिनायकैः ॥ २ ॥

अर्थ—मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनादि करि रहित शुद्ध होय अर स्निग्ध कहिये जा करि साधुकै कोऊ प्रकारको विकार नहीं होय, अर तत्काल मोलि ल्यायकरि देवै सो क्रीत है सो क्रीतादिदोषनिकरि रहित होय बहुरि तपकी वृद्धिको करनेवालो होय अर सारभूत होय अर सचित्त अचित्तको मिलापरूप मिश्रदोषकरि तथा सचित्तकरि रहित होय ॥ १ ॥ बहुरि अपना कुटुम्बके पोषणें निमित्त उत्पन्न कीयो होय अर सुखको देनेवालो होय ऐसो अन्नदान विना न्यौत्यौ विना बुलायो स्वयमेव आहारकै

निमित्त आयौ जो पात्र ताकै अर्थि गृहस्थनिनैं देवो योग्य है ॥२॥

बहुरि नव कोटिकरि शुद्ध प्रासुक जोग्य उत्तम औषध हू उत्तम पात्रनिकूं देयबो योग्य है, सो हीं प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं:—

व्याधिग्रस्तमुनीन्द्राय चौषधं श्रावकोत्तमैः ।
ज्ञात्वा रोगं प्रदातव्यं तद् व्याध्याद्युपशांतये ॥ १ ॥

अर्थ—उत्तम श्रावकनिनैं पात्रके रोग जाणिकरि तिस व्याधिकी शांति होने निमित्त रोगग्रस्त उत्तमपात्र महामुनिकै अर्थि औषधदान देबो योग्य है ॥ १ ॥

तथा शास्त्रदान हू उत्तमपात्रनिकूं देबो योग्य है, ऐसैं सारचौबीसीमैं कहे है:—

ददते ये मुनीन्द्रेभ्यो ज्ञानदानं च पुस्तकम् ।
प्राप्य नाकं श्रुतं सर्वं स्युस्ते केवलिनोऽचिरात् ॥१७॥

अर्थ—जे पुरुष मुनींद्रनिकै अर्थि ज्ञानदान अर पुस्तकदान देवैं ते पुरुष स्वर्गनैं तथा सकल श्रुतनैं प्राप्त होय शीघ्रकालतैं ही केवलज्ञानसंयुक्त होय हैं ॥ १७ ॥

यामैं ज्ञानदान अर पुस्तकदान दोऊ लिखे हैं ताका अभिप्राय ऐसा है कि मुनीश्वरकूं मुनीश्वर तो पढ़ाय ज्ञानदान देवै अर गृहस्थ पढ़ावै भी अर पुस्तक भी देवैं ॥

तथा वस्तिकादान हू उत्तम पात्रनिकूं देबो योग्यहै;—

संयताय मठं दत्ते प्रासुकं योऽघवर्जितम् ।
स्थितये स भजत्येव नाके मन्दिरमुत्तमम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जो पुरुष संयमीनिकै अर्थि पापवर्जित नवकोटिशुद्ध मठ देवै है सो पुरुष स्वर्गकै विषैं उत्तम मंदिर रहनेकूं पावै है ॥१९॥

यामैं अघवर्जित पद है तातैं उनके निमित्त बनाय करि नहीं देवै।

तथा पद्मनन्दिपंचविंशतिकामैं आहारदान वर्णनः—

सर्वो वांछति सौख्यमेव तनुभृत्तन्मोक्ष एव स्फुटं
दृष्ट्यादित्रय एव सिध्यति स तन्निर्ग्रंथ एव स्थितम्।
तद्वृत्तिर्वपुषोऽस्य वृत्तिरशनात्तद्दीयते श्रावकैः
काले क्लिष्टतरेऽपि मोक्षपदवी प्रायस्ततो वर्त्तते ॥८॥

अर्थ—संपूर्ण देहधारी जे हैं ते सुखनैं ही वांछै हैं, सो सुख मोक्षकै विषैं ही प्रकट है, अर सो मोक्ष रत्नत्रयतैं ही सिद्ध होय है, अर सो रत्नत्रय निर्ग्रंथके विषैं ही हैं, अर वा निर्ग्रंथपणाकी वृत्ति शरीरतैं है, अर वा शरीरकी वृत्ति भोजनतैं है, सो भोजन श्रावकनिकरि दीजिये है; तातैं महान् क्लेशरूप कलिकालकै विषैं भी मोक्षपदवी श्रावकतैं ही प्रवर्त्तै है ॥ ८ ॥

औषधदान श्लोकः—

स्वेच्छाऽऽहारविहारजल्पनतया नीरुग्वपुर्जायते
साधूनां तु न सा ततस्तदपटुप्रायेण संभाव्यते।
कुर्यादौषधपथ्यवारिभिरिदं चारित्रभारक्षमं
यत्तस्मादिह वर्त्तते प्रशमिनां धर्मो गृहस्थोत्तमात् ॥९॥

अर्थ—इच्छापूर्वक आहार विहार जल्पनपणाकरि नीरोग शरीर होय है सो साधुनिके नहीं है तातैं वाहुल्यता करि मुनीश्वरनिको शरीर क्षीण संभावना करिये है, अर जो औषधकरि पथ्यकरि जलकरि यां शरीरनैं चारित्रका भार सहनेकूं समर्थ करै है तातैं या वर्त्तमानकालमैं मुनीश्वरनिकै उत्तम गृहस्थनितैं धर्म प्रवर्त्तै है ॥ ९ ॥

ज्ञानदानलक्षणश्लोकः—

व्याख्यापुस्तकदानमुन्नतधियां पाठाय भव्यात्मनां
भक्त्या यत्क्रियते श्रुताश्रयमिदं दानं तदाहुर्बुधाः।
सिद्धेऽस्मिन् जननान्तरेषु कतिषु त्रैलोक्यलोकोत्सव-
श्रीकारिप्रकटीकृताखिलजगत्कैवल्यभाजो जनाः॥१०॥

अर्थ—जे पुरुष सर्वोत्तम बुद्धिके धारी भव्यजीव जे हैं तिनकूं भक्तिकरि उपदेश अर पुस्तकदान पठनकै अर्थि करिये सो यो दान श्रुतकै आश्रय ज्ञानवान कहैं हैं, अर याकूं सिद्ध होतां संतां मनुष्य जे हैं ते कितनेक जन्मांतरकै विषैं तीन लोकमैं लोकनिकूं उत्सव अर लक्ष्मीको कर्त्ता अर प्रकट कीयो है समस्त जगत जानैं ऐसा केवलज्ञानका भजनवाला होय हैं ॥ १० ॥

अभयदानलक्षणश्लोकः—

सर्वेषामभयं प्रवृद्धकरुणैर्यद्दीयते प्राणिनां
दानं स्यादभयादि तेन रहितं दानत्रयं निष्फलम्।

आहारौषधशास्त्रदानविधिभिः क्षुद्रोगजाड्याद्भयं
यत्तत्पात्रजने विनश्यति ततो दानं तदेकं परम् ॥११॥

अर्थ—जो अत्यन्त करुणाभावकरि सर्व प्राणीनिकूं अभय दीजिये सो अभयदान है अर याकरि रहित दानत्रय जो है सो निष्फल है, अर आहार औषध शास्त्रदान विधिकरि पात्रजनकै विषैं क्षुधातैं रोगतैं अज्ञानतैं उत्पन्न भयो भय नाशनैं प्राप्त होय है, तातैं सो एक अभयदान ही उत्कृष्ट है ॥ ११ ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

प्रश्न—देय द्रव्यका स्वरूप कह्या सो तौ श्रद्धान कीया अब दानयोग्य पात्रका लक्षण कहौ।

उत्तर—प्रश्नोत्तरश्रावकाचारका बीसवां परिच्छेदमें उत्तम-पात्र श्लोकः—

सर्वसंगपरित्यक्ता युक्ताः सद्व्रतगुप्तिभिः।
घोरवीरतपस्तप्ता मुखसंस्कारवर्जिताः॥ ६ ॥

मलेन लिप्तसर्वांगास्त्यक्तदेहाः सुदुर्बलाः।
तपसा क्षामसर्वांगाः परीषहसहा वराः॥ ७ ॥

मूलोत्तरगुणाढ्याश्च विसंख्यगुणसागराः।
लाभालाभे समा धीराः निंदास्तुतिपराङ्मुखाः ॥८॥

तृणहेमादिसंतुल्याः संसारादुःखवारिधेः।
स्वयं तरन्ति भव्यानां क्षमास्तारयितुं बुधाः ॥ ९ ॥

क्रीतादिभिर्महादोषैस्त्यक्ताऽऽहारावलोकिनः।
उच्चनीचगृहेष्वेव प्रविशंतोऽतिनिःस्पृहाः ॥ १० ॥
इन्द्रियादिजये शूराः सर्वजीवहितप्रदाः।
रत्नत्रयसमायुक्ता ज्ञानध्यानपरायणाः ॥ ११ ॥
सदेर्यापथसन्नेत्रा ये मुनीन्द्राः शुभाशयाः।
रागद्वेषमदोन्मादभयमोहादिवर्जिताः ॥ १२ ॥
तानेवोत्तमसत्पात्रान्विद्धि त्वं मुनिनायकान्।
दानयोग्यान्महापूज्यान् दातृसंतारकान्भुवि ॥१३॥

अर्थ—जे बाह्य अभ्यन्तर समस्त परिग्रहकरि रहित हैं अर पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्तिकरि युक्त हैं अर घोर वीर तपकरि तप्तायमान हैं अर मुखप्रक्षालनकरि रहित हैं ॥ ६ ॥

अर जिनका सर्वांग मलकरि लिप्त है, बहुरि देहमैं ममत्वकरि रहित हैं, अर अत्यंत दुर्बल जिनका देह है, अर तपकरि कृश भये हैं सर्व अंग जिनके अर क्षुधातृषादि परीषहके सहनेमैं तत्पर हैं ॥ ७ ॥

अर अठाईस मूलगुण चौरासीलाख उत्तरगुणनिमैं कितने ही गुणनिकरि सहित हैं। प्रश्न—मूलमैं उत्तरगुण सामान्यपद है, तुमने कितनेक कैसैं लिखे ? उत्तर— इहां दानका प्रकरण है अर परिपूर्ण उत्तरगुण स्नातक जो केवली तिनकै होय है ते कोई दानयोग्य नहीं हैं उनकै तौ नवलब्धिमैं अनंतो दान है तातैं कितनेक विशेषण लिख्यो है। अर अनन्त गुणनिके समुद्र हैं, अर जिनकै लाभ अलाभ समान है, अर महावीर हैं, अर निंदास्तुतिर्तै परांमुख हैं ॥८॥

अर जिनकै तृण कंचन समान है, अर दुःखको समुद्र जो संसार तातैं आप तरै हैं अर भव्यजीवनिके तारवेकूं महासामर्थ्यवान परमप्रवीण हैं ॥ ९ ॥

अर क्रीतादिक दोषनिकरि रहित शुद्ध आहारकूं अव-लोकन करै हैं, अर धनाढ्य के अथवा निर्धनके गृहमैं आहारकै निमित्त प्रवेश करै हैं, अर अत्यंत निस्पृह हैं ॥ १० ॥

अर इंद्रियादिकके जीतनेमैं शूरवीर हैं, अर सर्व जीवनिकूं हितके दाता हैं, अर रत्नत्रयकरि सहित हैं, अर ज्ञान ध्यानमैं तत्पर हैं ॥ ११ ॥

अर सदा ईर्यापथमैं स्थापन किये हैं नेत्र जिननैं, अर जिनके परिणाम अत्यंत निर्मल हैं, अर राग द्वेष मद उन्माद भय मोह आदिकरि रहित हैं ॥ १२ ॥

अर दातारकूं संसारतैं तारनेवारे हैं ऐसे परमपूज्य महामुनि-राजनिकूं हे भव्य ! तू दानयोग्य उत्तमपात्र जानि ॥ १३ ॥

मध्यमपात्रलक्षण;—

सम्यक्त्वादिगुणोपेतान् श्रावकव्रततत्परान् ।
धर्मसंवेगसंयुक्तान् सत्प्रोषधविधायिनः ॥ १४ ॥
देवगुर्वादिसंभक्तान् दानपूजादिकारकान् ।
विद्धि त्वं श्रावकानेव पात्रमध्यमसंज्ञकान् ॥ १५ ॥

अर्थ—जे सम्यक्त्वादि गुणनिकरि सहित अर श्रावकके व्रत पालनेमैं तत्पर हैं, अर धर्मविषैं प्रीति अर संसारसे उदासीनताकरि सहित हैं, अर च्यारूं पर्वानिमैं प्रोषध उपवासके करनेवारे हैं, अर अर्हन्तदेव निर्ग्रंथगुरु आदिके परमभक्त हैं अर दानपूजादिकके

करनेवारे हैं, ऐसे अणुव्रती श्रावकनिकूं हे भव्य ! मध्यमपात्र जाणि ॥ १४-१५ ॥

जघन्यपात्रलक्षण;—

सम्यग्दर्शनसंशुद्धा भक्ताः श्रीजिनशासने ।
पूजादितत्परा लोके संवेगादिविभूषिताः ॥११६॥
तत्त्वज्ञानादिसद्ध्यानयुक्ताः श्रेष्ठगुणान्विताः ।
त एव पात्रतां प्राप्ता जघन्याख्याः सुदृष्टयः ॥११७॥

अर्थ—जे सम्यग्दर्शनकरि भलै प्रकार शुद्ध हैं, अर श्रीजिनशासनके भक्त हैं अर पूजादिक षट् कर्मनिविषैं तत्पर हैं, अर संवेग आदि गुणनिकरि विभूषित हैं ॥ ११६ ॥

अर तत्त्वज्ञानआदि समीचीन ध्यानयुक्त हैं अर श्रेष्ठगुणनिकरि संयुक्त हैं; ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टी श्रावक जे हैं ते ही जघन्यपात्र संज्ञाकूं प्राप्त होय हैं ॥ ११७ ॥

तथा पद्मनंदिपचविंशतिकाका दानपंचाशताधिकारमैं;—

उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं
मध्यं व्रतेन रहितं सुदृशं जघन्यम् ।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं
युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं च विद्धि ॥ ४३ ॥

अर्थ—अनगार महाव्रती जो है ताहि उत्कृष्टपात्र जानि, अर अणुव्रतयुक्त जो है ताहि मध्यमपात्र जानि, अर व्रतरहित सम्यग्दृष्टी जो है ताहि जघन्यपात्र जानि, अर सम्यग्दर्शनरहित व्रतयुक्त जो है ताहि कुपात्र जानि, अर सम्यग्दर्शन अर व्रत इनि

दोऊनिकरि रहित मनुष्य जो है ताहि अपात्र जानि ॥ ४३ ॥

प्रश्न—पात्रनिके लक्षण कहे सो तौ श्रद्धान किये अब दानका फल भी कहौ।

उत्तर—उत्तमपात्रदानफल प्रश्नोत्तरश्रावकाचारके विंशतिमा पर्वमें;—

पात्रदानं जिनाः प्राहुः पोतं संसारसागरे।
गृहस्थानां महाघोरे दुःखमीनाकुलेऽवरे ॥१॥

अर्थ—महान घोर दुःखरूप मगरमच्छनिकरि व्याकुल ऐसा अनंतसंसाररूप सागरके विर्षे गृहस्थनिके पात्रदानकैं जिनेंद्र झाजि (जहाज) कहे हैं ॥ १ ॥

पात्रदानानुमोदेन तिर्यंचोऽपि दिवं गताः।
भोगभूमौ सुखं भुक्त्वा परमाह्लादकारणम् ॥५१॥

अर्थ—पात्रदानका अनुमोदनकरि तिर्यंच भी भोगभूमिकै विर्षे परम आह्लादका कारण सुख भोगि स्वर्गनैं प्राप्त हुये हैं ॥५१॥

वारैकदानयोगेन दृष्टिहीना नरा गताः।
देवालयं सुभुक्त्वापि भोगभूम्यादिजं सुखम ।५२।

अर्थ—मिथ्यादृष्टी मनुष्य भी एकवार पात्रदानके योगकरि भोगभूमि आदिर्तें उत्पन्न भया सुखनैं भोगि देवनिका स्थान स्वर्ग जो है ताहि प्राप्त भये हैं ॥ ५२ ॥

किमत्र बहुनोक्तेन पात्रदानप्रभावतः।
भुक्त्वा नृदेवजं सौख्यं याति मुक्तिं क्रमाद्ध धाः।५७

अर्थ—इहां बहुत कहनेकरि कहा प्रयोजन है, पात्रदानका प्रभावतैं मनुष्यनितैं तथा देवनितैं उत्पन्न भया सुखनैं भोगि अनु-

क्रमतैं ज्ञानवान पुरुष मुक्तिनैं प्राप्त होय हैं ॥ ५७ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामें श्लोक;—

ते चाणुव्रतधारिणोऽपि नियतं यांत्येव देवालयं
तिष्ठंत्येव महर्धिकामरपदं तत्रैव लब्ध्वा चिरम्।
अत्रागत्य पुनः कुलेऽतिमहति प्राप्य प्रकृष्टं शुभा-
न्मानुष्यं च विरागतां च सकलत्यागं च मुक्तास्ततः॥

अर्थ—जे अणुव्रतके धारक हैं ते नियमतैं सौधर्मादि देवलोकनैं प्राप्त होय हैं अर तहां इन्द्र सामानिक आदि महाधिकपदनैं पाय चिरकाल तिष्ठै हैं, बहुरि तहांतैं चयकरि पुण्यके प्रभावतैं उत्तमकुलविषैं उत्तम मनुष्यजन्म पाय संसार देह भोगतैं विरक्तता पाय सकल संगको त्यागकरि ता पीछैं शुक्लध्यानके प्रभावतैं कर्म काटि मुक्त होय है ॥ २३ ॥

अब कुपात्रदानका फल प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

यः कुपात्राय नादत्ते सद्दानं पुण्यहेतवे ।
भोगभूमिषु तिर्यक्त्वं कुनृत्वं वालमेत सः ॥ १ ॥

अर्थ—जो मनुष्य पुण्यकै अर्थि समीचीन दान कुपात्रकै अर्थि देवै है सो भोगभूमिमैं तिर्यंचपणानैं प्राप्त होय है अथवा कुभोगभूमिमैं कुमनुष्यपणानैं प्राप्त होय है ॥ १ ॥

कलोदधौ नृणां यत्स्यात्कुनृत्वं लवणार्णवे ।
लंबकर्णादिसंयुक्तः कौलविद्युन्मुखादिजम् ॥२॥

अर्थ—लवणसमुद्रकै विषैं तथा कालोदधिसमुद्रकै विषैं दोऊ तटनिके समीप छिनवै द्वीप हैं तिनिमैं लंबे कर्णनिकरि युक्त

तथा सूरसमान मुखवाले तथा बीजलीकैसे मुखवाले कुमनुष्य होय हैं ॥

भोगभूमिषु तिर्यक्त्वं सदीर्घायुः सुखान्वितम् ।
तत्सर्वं विबुधैर्ज्ञेयं कुपात्रदानजं फलम् ॥३॥

अर्थ—जो भोगभूमिमैं तिर्यंचपणू सुखसहित दीर्घ आयु पाइए है सो सर्व ज्ञानवाननिनैं कुपात्रदानतैं उत्पन्न भयो फल जानन् ॥ ३ ॥

लक्ष्मीः कुपात्रदानेन लभ्यते प्राणिभिः स्फुटम् ।
कुमार्गजाऽतिपापाढ्या श्वभ्रतिर्यग्गतिप्रदा ॥४॥

अर्थ—जो प्राणीनिकरि कुपात्रदानकरि कुमार्गतैं उपजी लक्ष्मी प्रकट पाइये है सो लक्ष्मी अति पापकरि सहित नरक तिर्यंचगतिसंबंधी घोर दुःखकी दाता है ॥ ४ ॥

अथ अपात्रदानको फल कहै हैं;—

शिलोपरि यथा उप्तं बीजं भवति निष्फलम् ।
तथाऽपात्राय यद्दत्तं तद्दानं निष्फलं भवेत् ॥५८॥

अर्थ—जैसैं शिला ऊपरि बोयो बीज निष्फल होय है तैसैं अपात्रकै अर्थि दीयो जो दान सो निष्फल होय है ॥५८॥

येन दत्तमपात्राय दानं तत्तेन नाशितम् ।
कुमार्गे हि यथाऽरण्ये गृहीतं तस्करैर्धनम् ॥५९॥

अर्थ—जो जानैं अपात्रकै अर्थि दान दियो सो दान तानैं नष्ट कियो जैसैं कुमार्गकै विषैं अथवा गहनवनकै विषैं चोर धाड़ैतीनिकरि हरयो धन नष्ट होय ॥ ५९ ॥

पोषितोऽपि यथा शत्रुरहिर्वा दुःखमंजसा।
ददाति प्राणिनां तद्वदपात्रो दुरितं परम्॥ ९०॥

अर्थ—जैसें पुष्ट कियो शत्रु वा सर्प तत्काल दुःखनें देवै है तैसें अपात्र जो है सो प्राणीनिकूं प्रचुर पापनें देवै है॥ ९०॥

प्रश्न—गुरु उपासनाका विधान कह्या सो तौ श्रद्धान किया अब स्वाध्यायका लक्षण विधान भी कहो।

उत्तर—स्वाध्याय शब्दकी निरुक्ति ऐसें है "सुष्टु सम्यक्प्रकारेण अधीते इति स्वाध्यायः" याका अर्थ ऐसा है—सुष्ठु कहिये भलैप्रकार मनवचनकायकी शुद्धतातैं योग्य जे प्रकालमैं यथावत् वर्णोंचारणके अष्ट स्थाननितैं शब्दकी शुद्धतापूर्वक अर्थका चिन्तवनसहित जो जिनागमको अध्ययन करिये सो स्वाध्याय है। याके पंच भेदरूप विशेष वर्णन तपकाव र्णनमैं लिखेंगे।

प्रश्न—स्वाध्यायको लक्षण कह्यो सो तौ श्रद्धान किया अब संयमको भी लक्षण कहो।

उत्तर—राजवार्त्तिकका नवम अध्यायमैं;—वार्त्तिक—

समितिषु प्रवर्त्तमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहारः संयमः।

अर्थ—पंचसमितिकै विषैं प्रवर्त्तमान साधुकै पंच समितिका परिपालनकै अर्थि जो प्राणीको अर इन्द्रियको परिहार सो संयम कहिये है।

भावार्थ—छहूँ कायका जीवोंकी रक्षा करना अर पांचूं इन्द्री छठा मनकूं विषयनि प्रति गमन करतानें रोकना जो है सो संयम है। ताके भेद दोय हैं—एक प्राणीसंयम दूसरा इंद्रियसंयम। तहां एकेंद्रियादि प्राणीनिकै पीड़ाको जो परिहार सो प्राणीसंयम है

अर शब्द रस गंध वर्ण स्पर्शरूप पंच इंद्रियनिके विषयनिमेंरा गको अभाव है सो इंद्रियसंयम है।

वार्तिक—अतोऽपहृतसंयमभेदसिद्धेः॥१५॥

अर्थ—या प्रकारकरि अपहृतसंयमके भेदनिकी सिद्धि होय है।

अर पूर्वोक्त संयम दोय प्रकार है, एक उपेक्षा संयम दूसरा अपहृत संयम। देश कालका विधानको ज्ञाता अर कायतैं ममत्व-रहित अर मन वचन कायकी गुप्तिकरि सहित ऐसा साधुकै अन्य-का उपरोधकरि रागद्वेषका अभावरूप है लक्षण जाको सो उपेक्षा-संयम है। अर अपहृतसंयम तीन प्रकार है, एक उत्कृष्ट, दूसरा मध्यम, तीसरा जघन्य ऐसैं। तहां प्रासुक वस्तिका आहारमात्र है बाह्यसाधन जाकै अर स्वाधीन है इनर कहिये अंतरंग ज्ञान चारित्र-रूप साधन जाकै ऐसा बाह्य प्राणीनिका उपनिपात होतसंतैं आत्मा-नैं संकोचि जीवनकी पालना करता साधुकै उत्कृष्ट अपहृतसंयम है; अर कोमल पिच्छिकातैं मार्जनकरि जीवनिकी विराधनाका परि-हार करताकै मध्यम अपहृतसंयम है; अर अन्य उपकरणकी इच्छा-करि जीवनिकी विराधनाका परिहार करताकै जघन्य अपहृत-संयम है।

वार्तिक—तत्प्रतिपादनार्थः शुद्ध्यष्टकोपदेशः।

अर्थ—तिस अपहृतसंयमका प्रतिपादनको है प्रयोजन जामैं ऐसो अष्ट शुद्धिको उपदेश देखवो योग्य है।

सो ही कहिये है—

वार्तिक—अष्टौ शुद्धयः—भावशुद्धिः कायशुद्धि-र्विनयशुद्धिरीर्यापथशुद्धिर्भिक्षाशुद्धिःप्र तिष्ठापनशुद्धिः

शयनासनशुद्धिर्वाक्यशुद्धिश्चेति ।

अर्थ—तहां कर्मका क्षयोपशमतैं उत्पन्न भई अर मोक्षमार्गमैं रुचिकरि अंगीकृत है प्रसन्नता जामैं अर रागद्वेपादि उपद्रवनिकरि रहित ऐसी भावशुद्धि है, तिस भावशुद्धिकूं होतसंतैं अतिशुद्ध भींतिके विषैं प्राप्त किया चित्रकर्मसमान आचार प्रकाशमान होत है ॥ १ ॥ बहुरि वस्त्राभरणरहित अर मज्जन आदि संस्काररहित अर यथाजात नग्नरूप अर रज प्रस्वेद आदि मलकी धारणेवाली अर अंगविकाररहित अर सर्वत्र यत्नाचारसहित है प्रवृत्ति जामैं ऐसी मानूं 'मूर्त्तिमान प्रशमसुखकौं ही अतिशयकरि दिखावती है ऐसी कायशुद्धि है, तिस कायशुद्धिकूं होतसंतैं या साधुकै आपतैं भय नहीं उपजत है अर वाकै अन्यतैं हू भय नहीं उपजत है ॥ २ ॥ बहुरि अरहंतादिक पंच परमगुरुनिकै विषैं यथायोग्य पूजन स्तवन वंदनामैं प्रवीणता अर ज्ञानादिकविषैं यथाविधि भक्तिसहित प्रवीणता अर सर्वत्र गुरुकै अनुकूल प्रवृत्ति अर प्रश्न स्वाध्याय वाचना कथा विज्ञप्ति आदिकै विषैं जो प्रतिपत्ति कहिये यथावत् अवबोध ताकरि कुशल अर देशकाल भावके ज्ञानकरि निपुण अर आचार्यनिकी आज्ञाप्रमाण चर्याकरि सहित ऐसी विनयशुद्धि है, सो है मूल जिनको ऐसी सर्वसंपदा है सो या विनयशुद्धि पुरुषनिकै आभूषण है अर विनयशुद्धि ही संसारसमुद्रतैं तिरनेविषैं नाव है ॥३॥ बहुरि नानाप्रकार जीवस्थान अर नानाप्रकार योनिस्थान इनका आश्रयको जो ज्ञान ताकरि उत्पन्न भया यत्नाचारतैं दूरि भई है प्राणीनिकी पीड़ा जामैं अर ज्ञानरूपसूर्यके प्रभावतैं अपनी इंद्रियनिके प्रकाशकरि देख्या हुआ प्रदेशमैं है गमन जामैं बहुरि शीघ्रगमन विलम्बनकरि गमन संभ्रमकरि आश्चर्य लीला विकार दिशांतराव

ल्लोकन आदि दोषनिकरि रहित है गमन जामैं ऐसी ईर्यापथशुद्धि है, याकूं होतसंतैं जैसैं सुनीतिविषैं विभवसंपदा होय तैसैं संयम प्रतिष्ठावान होय है ॥ ४ ॥ बहुरि सर्वतरफतैं देख्यो है अथवा परीक्षा कीयो है अंतरंग बहिरंग प्रचार जहां अर शुद्ध किये जे पूर्वापर अपने अंगके प्रदेश तिनको है विधान जामैं अर आचार-सूत्रोक्त देशकालसंबन्धी प्रवृत्तिके जाननेमैं प्रवीण अर लाभ अलाभ मान अपमान विषैं समान है मनकी वृत्ति जहां अर लोकनिंदित कलके त्यागमैं तत्पर बहुरि चंद्रमाकी गतिकी नाईं हीन अधिक गृहको अविशेष है उपस्थान जामैं बहुरि दीनअनाथदानशाला विवाह पूजन स्थान आदिका त्यागकरि उपलक्षित बहुरि दीनवृत्ति-करि रहित अर प्रासुक आहारके हेरने विषैं है उपयोग जहां अर आगमोक्त निर्दोष आहारकरि परिपूर्ण प्राप्त भयो है प्राणनिकी रक्षारूप फल जामैं ऐसी भिक्षाशुद्धि कहिये है, जैसैं साधुजनकी सेवा है कारण जहां ऐसी गुणसंपदाकी नांई चारित्रसंपदा इस भिक्षा-शुद्धिके निमित्ततैं होय है, सो भिक्षाशुद्धि लाभ अलाभविषैं सुरस विरसविषैं समान संतोषतैं अन्तरंगकी शुद्धितानैं कारण है, जैसैं गौ कहिये वृषभ जो है सो लीलावान अलंकारसहित सुन्दर यौव-नवती रूपवान स्त्रीनिकरि प्राप्त कीयो है घास जाकै आगैं ऐसो तिन स्त्रीनिके अंगसंबंधी सौन्दर्य ताके देखनेमैं उपयोगरहित केवल घासहीकूं खाय है, अथवा जैसैं समीप वा दूर तिष्ठतो जैसैं प्राप्त होय तैसैं तृणकूं भखै है अर तृणके इकट्ठे करणेपर निगाह नहीं है तैसैं भिक्षाको अर्थी मुनि जो है सो सुन्दर भिक्षा मनोहरवस्त्रा-भरणके धारक लोगनिके कोमल मनोहररूप भेष विलासके देखनेमैं नहीं है उत्साह जाकै अर सूखो वा नरम आहार ताके देखनेकरि

रहित जैसैं विधिपूर्वक निर्दोष आहार प्राप्त होय ताहि गौकी नाई भक्षण करै है सो गोचारभिक्षा कही है अथवा याकूं गवेषणा कहै है; बहुरि जैसैं रत्ननिके भारकरि परिपूर्ण भर्या गाड़ाकं यत्किंचित् तैलघृततैं आंगिकरि मनोवांछित स्थानकूं वणिकजन प्राप्त करै हैं तैसैं साधुजन गुणरूप रत्ननिकरि भर्यो जो शरीररूप-गाड़ो ताहि निरवद्य भिक्षाकरि आंगि मनोवांछित समाधिरूप पत्तनकूं प्राप्त करै है सो अक्षम्रक्षण है, बहुरि जैसैं गृहस्थ भंडारविषैं लागी लायकूं शुद्ध अशुद्ध जलकूं डारि बुझावै तैसैं यतीश्वर उदराग्निकूं सरस नीरस रूक्ष सचिक्कण शुद्ध भोजनकरि शांत करै है सो उदराग्निप्रशमन कहिये है, बहुरि जैसैं भ्रमर पुष्पकं बाधा नहीं करतो सुगंधकूं ग्रहण करै तैसैं महामुनि दातारकै बाधारहित भोजनकूं ग्रहण करनेमैं प्रवीण होय सो भ्रमराहार कहिये है, बहुरि जैसैं गृहविषैं पड़े खाड़ेकूं पाषाण कांकरे धूल किजोड़ा आदिकरि जैसैं तसैं भरिकरि गृहमैं प्रवर्त्तै तैसैं महामुनि उदररूप गर्त्तकूं स्वादिष्ट अथवा स्वादरहित रूक्ष सचिक्कण नरम कठोर शुद्धभोजनकरि भरिकरि प्रवर्त्तै सो गर्त्तपूरण कहिये है, ऐसैं भिक्षाशुद्धिके पांच भेद हैं ॥ ५ ॥ अब प्रतिष्ठापनशुद्धि कहिये है— प्रतिष्ठापनाशुद्धिविषैं तत्पर संयमी नख रोम नासिका मल कफ शुक्र मल मूत्र इनके सोधनमैं अर देहके परित्यागमैं जाण्यो है देशकाल जिनूनैं ऐसे प्राणीनिकी बाधारहित यत्नाचारसूं प्रवर्त्त सो प्रतिष्ठापनाशुद्धि है ॥ ६ ॥ अब शयनासनशुद्धि कहिये है— शयनासनकी शुद्धिविषैं तत्पर संयमी जो है तानैं जिन स्थानकनिमैं स्त्रियां नीचजन चोर जुवारी मद्यपानी शाकुनिक आदि पापीजन आदि बसैं ते स्थान दूरहीतैं त्यागिये हैं अर जिनि स्थान-

कनिमैं शृङ्गारकरिसहित अनेक अंगविकारको करनेवारी उज्ज्वल वस्त्राभरणकी धारक वेश्यानिकी क्रीडा मनोहर गीत नृत्य वादित्र आदिके शब्द होंय ते स्थानक दूरिहीतैं छांडिये हैं, अकृत्रिम पर्वतनिकी गुफा वृक्षनिके कोटरादिक अर कृत्रिम शून्य गृहादिकमैं वसिये है, अर जिनि स्थानकनिकूं अपनी इच्छातैं छोड़ गए वा परकृत उपद्रवतैं छूटि गये ऐसे स्थानकनिमैं है आवास जिनका, बहुरि इनि स्थानकनिमैं संयमी बसैंगे ऐसा उद्देशकरि रहित होय आरंभरहित होय, ऐसे स्थानकनिमैं संयमी शयनासन करै सो शयनासनशुद्धि है ॥ ७ ॥ अबैं वाक्यशुद्धि कहिये है—पृथ्वीकायिके आरंभ आदिकी प्रेरणाकरि रहित, अर कठोर कड़वी आदि परजीवनिकै पीड़ा करनेके प्रयोगमैं उत्साहरहित, अर व्रतशीलादिकको उपदेश आदि प्रधान है फल जामैं बहुरि हितकारी प्रमाणीक मिष्ट मनोहर संयमीनिकै योग्य जो शब्दका उचारण करना सो वाक्यशुद्धि है; इस वाक्यशुद्धिके आधार ही सर्व संयमसंपदा है ॥ ८ ॥

ऐसैं संयमका प्रकरणमैं अष्ट शुद्धि वर्णन करी ते एकदेश गृहस्थनिकूं हमेसा पालनेयोग्य हैं। अर द्वादशभेदरूप पूर्वोक्त संयमहू एकदेश गृहस्थनिकूं पालनेयोग्य है।

चौपई।

शुद्ध उपासन गुरुकी एम। शास्त्रपठन अरु पाठन प्रेम।
संयम द्वैविध करन विधान। उचित कह्यो आगमपरमान।

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकाण्डे गुरूपासनस्वाध्याय-संयमनिर्णयो नाम एकादशोल्लासः।

श्रीरस्तु

ॐनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ द्वादशप्रकार तप तथा चतुर्विधदानस्वरूप लिख्यते;—

दोहा ।

अर्हंत सिद्ध मुनीन्द्रके, चरणयुगल उर धारि ।
द्वादश तप अर दानको, लिखूं विधान विचारि ॥

प्रश्न—संयमका स्वरूप कह्या सो श्रद्धान कीया अब तपका भी स्वरूप कहो।

उत्तर—सो तप दोय प्रकार है एक बाह्य एक अभ्यंतर । तिनिके हू प्रत्येक छह छह भेद हैं । तहां प्रथम बाह्यतपका षट् भेदनिके जनावनेनिमित्त तत्त्वार्थसूत्रमें;—

सूत्र—अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ।

अर्थ—अनशन१ अवमौदर्य२ वृत्तिपरिसंख्यान३ रसपरित्याग४ विविक्तशय्यासन५ कायक्लेश६ ऐसें षट्भेदरूप बाह्यतप है ।

वार्त्तिक—दृष्टफलानपेक्षं संयमप्रसिद्धिरागोच्छेदकर्मविनाशध्यानाऽऽगमावाप्त्यर्थमनशनवचनम् ।

अर्थ—जो कछुप्रत्यक्ष है फल जाको ऐसा मंत्रसाधनादिकका उद्देशकरि रहित उपवास करिये सो अनशनतप कहिये है ।

प्रश्न—मंत्रसाधनादिकनिमित्त नहीं करिये तौ कहा निमित्त करिये ?

उत्तर—संयमकी अतिशयकरि सिद्धि अर रागका अभाव

अर कर्मनिका मारा अर ध्यान अर आगमकी प्राप्तिके अर्थि निश्चय जाणिये है।

वार्तिक—तत् द्विविधमवधृतानवधृतकालभेदात्।

अर्थ—सो अनशन दोय प्रकारव्यवस्थारूप है।

प्रश्न—काहेतैं?

उत्तर—अवधृतकाल अनवधृतकालके भेदतैं है। तहाँ अवधृतकाल अनशन तौ एकभक्तभोजन उपवास बेलो तेलो पक्ष मासोपवासादिकालकी मर्यादरूप है, अर देहके परित्यागपर्यंत चतुर्विध आहारका परित्यागकरि जो उपवासादि करिये है सो अनवधृतकाल अनशन है।

अबैं अवमौदर्य तप कहिये है;—

वार्तिक—संयमप्रजागरदोषप्रशमसन्तोषस्वाध्यायसुखसिद्ध्याद्यर्थमवमौदर्यम्।

अर्थ—इहां अवमौदर्यपदकी निरुक्ति ऐसी है कि—"अवमं ऊनं उदरं अस्यासौ अवमोदरः, अवमोदरस्य भावः कर्म वा अवमौदर्यं" याका अर्थ ऐसा है कि—अवम कहिये ऊन है उदर जाकी सो अवमोदर है अर अवमोदरको जो भाव अथवा कर्म सो अवमौदर्य है। भावार्थ—एक ग्रास ग्रहणकरि अवशेषभोजनका त्याग करै सो तौ उत्तम अवमौदर्य है अर एकग्रासका तौ त्याग करै अर अवशेष सर्व भोजन करै सो जघन्य अवमौदर्य है, अर मध्यके नाना भेद हैं।

प्रश्न—सो अवमौदर्य काहेकै अर्थि करिये है?

उत्तर—संयमकी सिद्धिकै अर्थि निद्राके अभावकै अर्थि

वातपित्तकफका प्रकोपकी प्रशान्तिकै अर्थि संतोषकै अर्थि सुखत स्वाध्यायकी सिद्धिकै अर्थि इत्यादिककी सिद्धिकै अर्थि करियेहै।

अब वृत्तिपरिसंख्यानतप कहिये है;—

वार्त्तिक—एकागारसप्तवेश्मैकरथ्यार्द्धग्रामादिविषयः संकल्पो वृत्तिपरिसंख्यानम्।

अर्थ—भिक्षाका अर्थी मुनिकै एकघर आदि सप्तघरपर्यंत अर एक रस्ता आदि सात रस्तापर्यन्त अर ग्रामका पलसातै लेय अर्द्धग्रामपर्यन्त आदि गोचर जो संकल्प कहिये चित्तका रोकना सो वृत्तिपरिसंख्यानतप आशाकी निवृत्तिकै अर्थि जानवेयोग्य है।

अब रसपरित्यागव्रत तप कहियेहै;—

वार्त्तिक—दान्तेन्द्रियत्वं तेजोहानिसंयमोपरोधव्यावृत्त्यायर्थं घृतादिरसत्यजनं रसपरित्यागः।

अर्थ—इन्द्रियनिका दमनपणा, तेजकी हानि, संयमका उपरोधको अभाव इत्यादिककै अर्थि घृत दही गुड तैल आदि रसनिको जो त्यजन सो रसपरित्यागतप है।

अब विविक्तशय्यासनतप कहैहै;—

वार्त्तिक—आबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादिप्रसिद्ध्यर्थं विविक्तशय्यासनम्।

अर्थ—आबाधाका अभावकै अर्थि ब्रह्मचर्यकै अर्थि स्वाध्यायकै अर्थि ध्यानकै अर्थि इत्यादिक सद्गुणनिकी सिद्धिकै अर्थि प्राणीनिकी पीडाकरिरहित शून्यगृह गिरिगुहा आदि एकान्तस्थानकनिविषै संयमीको शय्यासन जानवो योग्य है।

अब कायक्लेश तप कहिये है;—

वार्त्तिक—कायक्लेशः स्थानमौनातापनाद्यनेकधा।

अर्थ—प्रतिमायोग धारि खड़ा रहना अर मौनधारण करना अर ग्रीष्मकालमैं पर्वतके शिखरपरि आतापन योग धारना अर वर्षाऋतुमैं वृक्षमूलमैं योग धरना इत्यादिककरि शरीरकै जो सर्व तरफतैं खेद होय सो कायक्लेश तप कहिये है।

वार्त्तिक—देहदुःखतितिक्षासुखानभिष्वंगप्रवचनप्रभावनाद्यर्थम्।

अर्थ—दुःखनिकूं निकट आवतैं संतैं देहतैं सहनेकै अर्थि अर विषयसुखनिमैं वांछाका अभावकै अर्थि अर प्रवचनकी प्रभावनाकै अर्थि कायक्लेशतपको अनुष्ठान करिये है। अर जो कायक्लेशका अनुष्ठान नहीं करिये तौ ध्यानविषैं प्रवेशका अवसरमैं भलैप्रकार प्रेरण किया चित्तकै उपसर्गपरीषहादिक दुःखनै आवतां संता समाधानता नहीं होय है।

प्रश्न—परीषहके सहनेमें अर कायक्लेशतपके करनेमैं कहा अंतर है?

उत्तर—स्वकृतक्लेशापेक्षत्वात् बुद्धिपूर्वो हि कायक्लेश इत्युच्यते, यदृच्छयोपनिपाते परीषहः।

अर्थ—आपकरि किया क्लेशकी अपेक्षापणातैं बुद्धिपूर्वक कायक्लेश कहिये है अर स्वइच्छाबिना दुःखनिका सहना है सो परीषह है, तातैं भेद है॥

ऐसैं तौ षट्भेदरूप बाह्यतप जानना अब अभ्यंतरतपके षट्भेद कहिये है,—

सूत्र—प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ।

अर्थ—प्रायश्चित्त १ विनय २ वैयावृत्त्य ३ स्वाध्याय ४ व्युत्सर्ग ५ ध्यान ६ ये उत्तर कहिये बाह्यतैं उत्तर अंतरंगतपके षट् भेद हैं।

अब प्रायश्चित्तादिकनिके भेद जनावनेकूं सूत्र कहै है;—

सूत्र—नवचतुर्दशपंचद्विभेदाः यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।

अर्थ—प्रायश्चित्तके नव भेद हैं, विनयके च्यार भेद हैं, वैयावृत्त्यके दश भेद हैं, स्वाध्यायके पांच भेद हैं, व्युत्सर्गके दोय भेद हैं, ऐसैं अनुक्रमतैं ध्यानकै पूर्व पंचविध अंतरंगतपके अवांतरभेद हैं, अर ध्यानके भेद जुदे कहेंगे।

अब प्रथम कह्या जो प्रायश्चित्त ताके नव भेद जनावनेकूं कहै है;—

सूत्र—आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ।

अर्थ—आलोचना १ प्रतिक्रमण २ तदुभय कहिये आलोचना प्रतिक्रमण ३ विवेक ४ व्युत्सर्ग ५ तप ६ छेद ७ परिहार ८ उपस्थापना ९ ये प्रायश्चित्तके नव भेद हैं।

अब प्रायश्चित्तका प्रयोजन कहै है;—

वार्त्तिक—प्रमाददोषव्युदासभावप्रसादनैःशल्यान-

वस्थाव्यावृत्तिर्मर्यादाऽत्यागसंयमदार्ढ्याराधनादि-सिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तम् ।

अर्थ—प्रमादतैं उत्पन्न भये जे दोष तिनिको अभाव, भावांकी निर्मलता, माया मिथ्या निदान तीन शल्यको रहितपणौं, अनवस्थाको अभाव, मर्यादाकूं नहीं छोडना, संयममैं दृढपणौं, आराधना इत्यादिकनिकी सिद्धिकै अर्थि नव प्रकार प्रायश्चित्त करिये है।

वार्तिक—तत्र गुरवे प्रमादनिवेदनं दशदोषविवर्जितमालोचनम् ।

अर्थ—तिनि नव प्रायश्चित्तके भेदनिविषैं आलोचनाको स्वरूप ऐसो है—एकांतकै विषैं तिष्ठते अर प्रसन्नचित्तकरिसहित ऐसा गुरुकै अर्थि विनयसहित देशकालका ज्ञाता शिष्यकै दशदोषरहित अपना प्रमादको जो निवेदन कहिये जनावनूं सो आलोचना कहिये है।

प्रश्न—ते दश दोष कौनसे हैं ?

उत्तर—उपकरणनिकूं भेट करनेतैं मोकूं लघु प्रायश्चित्तका उपदेश करैंगे ऐसैं विचारि उपकरणकौं भेटकरि जो आलोचना करना सो प्रथमदोष है १ बहुरि मैं स्वभावकरि दुर्बल रोगग्रस्त उपवासादि करनेकूं समर्थ नहीं हूं जो लघु प्रायश्चित्त देवै तौ दोषको निवेदन करूंगो ऐसैं वचन कहनो सो द्वितीयदोष है २ बहुरि अन्य पुरुषनिनैं नहीं देख्या दोषकूं छिपायकरि प्रकटदोषको निवेदन करै सो मायाचारनामा तृतीय दोष है ३ बहुरि आलस्यतैं तथा प्रमादतैं अल्पदोषके जनावनेमैं उत्साहरहित साधुकै स्थूलदोषका कहना सो बादरनामा चतुर्थदोष है ४ बहुरि महान दुःखकरि आचरण किया जाय ऐसा प्रायश्चित्तका भयतैं महान दोषनैं छिपायकरि

याके अनुकूल दोषका जनावना सो पंचम दोष है ५ बहुरि ऐसो व्रतमें दोष होतसंतें प्रायश्चित्त कहा नहीं होय ऐसें उपायकरि गुरुनिकी सेवा उपासना करना सो षष्ठदोष है ६ बहुरि पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिक कर्मनिविषैं बहुत मुनीश्वरनिका समागम होतसंतें आलोचनाका शब्दकरि आकुल समयके विषै पूर्वदोषका कहना सो सप्तमदोष है ७ बहुरि गुरुनिनैं प्रतिपादन कीयो सो या प्रायश्चित्त आगमके विषैं योग्य है कि नहीं है ऐसो शंकावान भयो संतो साधु अन्य साधुनिकूं पूछै ताके अष्टमदोष है ८ बहुरि यत्किंचित् प्रयोजनको उद्देशकरि अपनेंसमान साधुके अर्थि दोषनिवेदनकरि ग्रहणकियो महानहू प्रायश्चित्त फलकारी नहीं है सो नवम दोष है ९ बहुरि याके अपराधके समान मेरा अपराध है ताकूं योही साधु जानें है यातें गुरुनिनें जो याकूं प्रायश्चित्त दिया सो ही मोकूं योग्य है यातैं लघु नहीं करणूं या बरांबर ही करणूं ऐसें अपना दोषका छिपावना सो दशमदोष है १०॥

तथा धारा—आत्मन्यपराधं चिरमनवस्थाप्य कुतिभावमन्तरेण बालवदृजुबुद्ध्या दोषं निवेदयतो न ते दोषा भवन्ति।

अर्थ—आपके विषैं अपराधकूं बहुतकाल नहीं स्थापनकरि कपटरहित बालकसमान सरल बुद्धिकरि दोषनैं निवेदन करता साधुकै ते दश दोष नहीं होय हैं।

तथा धारा—अन्ये च, संयतालोचनं द्विविषयमिष्टमेकान्ते संयतिकालोचनं आश्रयं प्रकाशते लज्जापरिभवादिगणनया निवेद्यातिचारं यदि न

शोधयेदपरीक्षिताऽऽयव्ययाधमर्णवदवसीदति, महदपि तपः कर्मानालोचनपूर्वकं नाभिप्रेतफलप्रदं अतितिक्तकायगतौषधवत् कृतालोचनस्यापि गुरुदत्तप्रायश्चित्तमकुर्वतः अपरिकर्मशस्यवन्महाफलं न स्यात् कृतालोचनचित्तगतं प्रायश्चित्तं परिमृष्टदर्पणतलरूपवत् परिभ्राजते ।

अर्थ—और कहिये है, संयमी आलोचना करै सो एकांतविषैं गुरुनिकै निकट करै, अर संयतिका कहिये आर्यिका आलोचन करै सो एक दोय गणिनीको आश्रयकरि प्रकाशरूप चौगानमैं करै; ऐसैं आलोचना दोय प्रकार इष्ट है। बहुरि लोकलाजकरि तथा परतैं तिरस्कार आदि अवज्ञाकरि जो अतीचारनैं गुरांके पासि निवेदनकरि नहीं सोधै सो नहीं विचारयो है आमदनी अर खरच जानैं ऐसा अधमर्ण पुरुषकी नाईं महान पुरुष भी ऋणकरि खेदखिन्न होय है। बहुरि जैसैं तीक्ष्ण औषध हू कायमैं नहीं प्राप्त भयो रोगकौं नहीं हणै है तैसैं आलोचना कीये विना महान तपश्चरण हू मनोवांछित फलको दाता नहीं होय है। बहुरि जैसैं खेतविषैं ऊग्याहू धान सींचना रक्षाकरना निनाणीं करना आदि परिकर्म कीये बिना किसाणकै महानफलरूप नहीं होय तैसैं कीई है आलोचना जानैं अर गुरुका दिया प्रायश्चित्तनैं नहीं ग्रहण करतो साधु जो है ताकै आलोचना महाफलदाई नहीं होयहै, बहुरि कीईहै आलोचना जाकी ऐसो चित्तविषैं प्राप्त भयो प्रायश्चित्त जो है सो मंजन किया दर्पणतलकैविषैं प्राप्तभया रूपकी नाईं सोहै है।

अब प्रतिक्रमण कहैहै;—

वार्तिक--मिथ्यादुष्कृताविधानाद्यभिव्यक्तिप्रतिक्रिया प्रतिक्रमणम्।

अर्थ—कर्मके वशतैं प्रमादका उदयजनित अपराध मेरै मिथ्या होहू इत्यादि प्रकट प्रतिक्रिया कहिये इलाज करिये सो प्रतिक्रमण कहिये है।

अब तदुभय कहिये है,—

वार्तिक—तदुभयसंसर्गे सति शोधनात्तदुभयम्।

अर्थ—कोऊ अपराध तौ आलोचनामात्रतैं ही शुद्ध होय है अर कोऊ अपराध प्रतिक्रमणकरि शुद्ध होय है अर कोऊ अपराध आलोचना प्रतिक्रमण दोऊका संसर्ग होतसंतैं शुद्धिनैं प्राप्त होय है सो तदुभय कहिये है।

प्रश्न—ये अयुक्त वर्त्तै है।

उत्तर—इहाँ अयुक्त कहा है ?

प्रश्न—प्रथम तौ आलोचना नहीं करता साधुकै प्रायश्चित्त कछू भी कार्यकारी नहीं है, आलोचना कियें ही प्रायश्चित्त कार्यकारी है, ऐसैं कह्या। बहुरि यह उपदेश दिया कि आलोचना किये बिना प्रतिक्रमणमात्र ही शुद्ध करै है ऐसैं यह पूर्वोक्त उपदेश अयुक्त है, अर प्रतिक्रमणविषैं भी आलोचनापूर्वकपणं ही अंगीकार करिये है तौ तदुभयको उपदेश वृथा है।

इनि दोऊ प्रश्ननिका उत्तर ग्रंथकार कहै है कि—दोऊ ही ये दोष नहीं हैं क्योंकि आलोचनापूर्वक ही सर्व प्रतिक्रमण हैं। परन्तु इहां इतना विशेष है;—

धारा--पूर्व गुरुणाऽभ्यनुज्ञातं शिष्येणैव कर्तव्यं, इदं पुनर्गुरुणैवानुष्ठेयम्।

अर्थ—जो पहली गुरुनिकी आज्ञातैं शिष्य जानि रहे हैं जो प्रतिक्रमणमात्रतैं फलाणा दोष निवर्त्तन होय है सो ऐसा दोषका प्रतिक्रमण तौ शिष्य ही करि लेवै है सो तौ आलोचनपूर्वक भया ही, बहुरि जो पहली जा दोषका प्रतिक्रमणकी गुरुनिकी आज्ञा नाहीं सो आलोचनपूर्वक ही शिष्य करैहै अर गुरु करै सो आप ही करले है तिनिके आलोचना नाहीं है। भावार्थ—जा शिष्यनें पूर्व कालमें जा अपराधका आलोचना कीया था अर गुरुनें उपदेश कीया था कि ऐसा दोषका केवल प्रतिक्रमण ही करिये है सा दोषका शिष्य केवल प्रतिक्रमण ही करै है ऐसा अभिप्रायतैं केवल प्रतिक्रमणतैं ही शुद्ध होना कह्या है, अर इतना और समझो कि यामें आलोचना भी है क्योंकि पूर्वें आलोचना करी थी सो अभिप्रायमें विद्यमान है तातैं सर्व प्रायश्चित्त आलोचनापूर्वक होय है, ऐसा उपदेशभी निरर्थक नहीं है, ऐसें तौ शिष्यकै केवल प्रतिक्रमणका उपदेश सफल है अर गुरु आप अपना अपराधका केवल प्रतिक्रमण ही करै है क्योंकि अपने गुरुके अभावमें आप सर्वके ज्ञाता होवसंतैं आलोचना कौनके पासि करै, यातैं गुरुनिकै भी केवल प्रतिक्रमणका उपदेश सफल है अर इनकै भी पूर्वकालमें गुरांके निकट आलोचना करी थी सो अभिप्रायमें विद्यमान है यातैं आलोचनापूर्वक ही है।

अबैं विवेक कहिये है;—

वार्तिक—**संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः।**

अर्थ—संसक्तानां अन्नपानोपकरणादीनां कहिये सदोष निर्दोष मिले हुये अन्न उपकरणआदिकै मध्य सदोषमें निर्दोषका ज्ञान भयाहोय तथा निर्दोषमें सदोषका ज्ञान भया होय ताका भेद करना कि यथावत्

जानना सो विवेक है । अथवा त्यागी वस्तुका ग्रहण हो जाय तो ताका फेरि त्याग करना सो विवेक है ।

अबैं व्युत्सर्ग कहिये है;—

वार्तिक—व्युत्सर्गः कायोत्सर्गादिकरणम् ।

अर्थ—कालका नियमकरि कायोत्सर्गआदिका करना सो व्युत्सर्ग कहिये है ।

अबैं तप कहिये है;—

वार्तिक—तपोऽनशनादिः ।

अर्थ—अनशन अवमौदर्य वृत्तिपरिसंख्यान आदि तप जाननें ।

अबैं छेद कहिये है;—

वार्तिक—दिवसपक्षमासादिना प्रव्रज्याहापनं छेदः ।

अर्थ—चिरकालका दीक्षितकै दिवस पक्ष मास आदिका विभागकरि दीक्षाका न्यून करना सो छेद है ।

अबैं परिहार कहिये है,—

वार्तिक—पक्षमासादिविभागेन संसर्गमन्तरेण दूरतः परिवर्जनं परिहार इत्यवध्रियते ।

अर्थ—पक्ष मास आदिका विभागकरि संसर्ग विना दूरतैं परिवर्जन करना कि संघ बाहिर करना सो परिहार है, ऐसा निश्चय करिये है ।

अबैं उपस्थापन कहियेहै;—

वार्तिक—पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना ।

अर्थ—महाव्रतनिको मूलतैं छेदकरिकै बहुरि दीक्षाकूं प्राप्त करना सो उपस्थापना कहिये है।

अर्थ ये नवभेद प्रायश्चित्तके कहे सो कहां कहां लेने ताका संक्षेप कहिये है;—

धारा—विद्यायोगोपकरणग्रहणादिषु प्रश्नविनयमन्तरेण प्रवृत्तिरेव दोष इति तस्य प्रायश्चित्तमालोचनमात्रम्।

अर्थ—विद्याका पढ़ना, आतापनआदि योग धारना, उपकरणादि ग्रहण करना इत्यादिविषैं विनयसहित पूछें विना प्रवृत्ति होय सो दोष है ताका प्रायश्चित्त आलोचना मात्र है। बहुरि परोक्षप्रमादसेवना आचार्यका वचन विना कि पूछें विना करना, अर आचार्यके प्रयोजननिमित्त विना पूछें जाना, तथा परसंगमैंसूं विना पूछें आवना इत्यादि विषैं भी आलोचना ही है। ये अर्थविशेष सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकातैं लिख्या है।

धारा—देशकालनियमेनावश्यं कर्त्तव्यमित्याख्यातानां धर्मकथादिव्याक्षेपहेतुसंनिधानेन विस्मरणे सति पुनरनुष्ठाने प्रतिक्रमणं तस्य प्रायश्चित्तम्।

अर्थ—देशकालका नियमकरि अवश्य करनेयोग्य कर्मनिकैविषैं धर्मकथादिक चित्तकूं व्याक्षेपके कारण जे हैं तिनिकी निकटता होनेकरि विस्मरण होतसंतै बहुरि अनुष्ठान होतासंतां भया जो दोष ताका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण ही है तथा सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकातैं—बहुरि इंद्रियनिका तथा वचनका दुःपरिणाम होय जाय, आचार्यआदिकै पग लागि जाय, व्रतसमितिगुप्तिविषैं स्वल्प अतीचार

लागै, परके विगाड़ होनेका वचन निकलै, कलह हो जाय, वैयावृत्य स्वाध्यायादिविषैं प्रमाद करै इत्यादिविषैं भी प्रतिक्रमण है। बहुरि अकालमैं भोजनकै अर्थि गमन करै, लोच नखछेद करै, स्वप्नादि विषैं रात्रिभोजनादिका अतीचार लागै, उदरमैंसूं कृमि नीसरै, मांछर पवनादिके निमित्ततैं रोमांच होय, हरिततृणादिकयुक्त भूमि परि तथा पंकपरि गमन करै, गोड़ातांई जलमैं प्रवेश करै, नावतैं नदी तिरै, अन्यका उपकरणादि अंपणावै, पुस्तकप्रतिमादिकका अविनय होय जाय, पंचस्थावरका घात हो जाय, अदृष्टदेशविषैं मलमूत्र क्षेपै, प्रतिक्रमणक्रिया व्याख्यानकै अंत नहीं करै इत्यादि दोषनिविषैं आलोचन प्रतिक्रमण दोऊ है।

धारा—भयत्वरणविस्मरणानवबोधाशक्तिव्यसनादिभिर्महाव्रतातिचारे सति प्राक्छेदात् षड्विधं प्रायश्चित्तं विधेयम्।

अर्थ—भयकी आतुरताकरि तथा विस्मरणकरि तथा अजाणपणाकरि तथा कोई कार्यकी अशक्तताकरि तथा व्यसन कहिये कष्टकरि इत्यादि कारणकरि महाव्रतमैं अतीचार होतसंतैं छेदकै पहलीके आलोचना १ प्रतिक्रमण २ तदुभय ३ विवेक ४ व्युत्सर्ग ५ तप ६ ये षट् प्रकार प्रायश्चित्त यथासंभव करवो योग्य है।

धारा—शक्त्यनिगूहनेन प्रयत्नेन परिहरतः कुतश्चित्कारणादप्रासुकग्रहणग्राहणयोः प्रासुकस्यापि प्रत्याख्यातस्य विस्मरणात् प्रतिग्रहे च स्मृत्वा पुनस्तदुज्झनं प्रायश्चित्तम्।

अर्थ—शक्तिकूं नहीं छिपायकरि यत्नाचारतैं परिहार करता साधुकै कोई कारणतैं अप्रासुकका ग्रहण आप करै तथा अन्य कोऊ ग्रहण करावै तहां, अथवा त्याग्या हुवा प्रासुकका भी विस्मरणतैं ग्रहण होत संतैं बहुरि स्मरणकरि वाका त्याग करना ही प्रायश्चित्त है।

धारा—दुःस्वप्नदुश्चिन्तनमलोत्सर्जनमूत्रातिचारमहानदीमहाटवीतरणादिषु व्युत्सर्गः प्रायश्चित्तम्।

अर्थ—खोटा स्वप्न खोटा चिंतवन मलोत्सर्जन मूत्रोत्सर्जन महानदी महाटवीतरण आदि विषैं व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है।

धारा—बहुकृत्वः प्रमादबहुदृष्टापराधप्रत्यनीकवृत्तिविरुद्धदृष्टीनां यथाक्रमं छेदमूलभूम्यनुपस्थापनपारंचिकविधानं क्रियते, अपकृष्याचार्यमूले प्रायश्चित्तग्रहणमनुपस्थापनं आचार्यादाचार्यान्तरमापणमातृतीयं पारंचिकम्।

अर्थ—जाकै बहुतबार प्रमादतैं भये बहुत अपराध दीखैं अर जो प्रतिकूल प्रवर्त्तै अर जो विरुद्ध श्रद्धान करै तिनकै अनुक्रमतैं मलच्छेद अनुपस्थापन पारञ्चिक विधान करिये है। इनि तीननिका लक्षण ऐसैं जानौं—जो मूलच्छेदका लक्षण तौ जाका मूलतैं छेद करिये ऐसा अक्षरार्थतैं ही स्पष्ट भया, अर आचार्यनिका चरणनिकै समीप सर्वसंघतैं नीचो पाडि प्रायश्चित्त ग्रहण करावै सो अनुपस्थापन है, अर जाकूं संघका आचार्यतैं अन्य तीन आचार्यपर्यन्त प्रायश्चित्त लेनेकूं आज्ञा करै सो पारंचिक है।

भावार्थ—बहु अपराधीकूं मूलच्छेद प्रायश्चित्त है, विरुद्धवृत्तिके अनुपस्थापन प्रायश्चित्त है, विरुद्धश्रद्धानीके पारंचिक प्रायश्चित्त है।

धारा—तदेवं नवविधं प्रायश्चित्तं देशकालशक्तिसंयमाद्यविरोधेनापराधानुरूपं दोषप्रशमनं चिकित्सितवद्विधेयं जीवस्यासंख्येयलोकपरिमाणाः परिणामविकल्पा अपराधाश्च तावन्त एव न तेषां तावद्विकल्पं प्रायश्चित्तमस्ति व्यवहारनयापेक्षया पिंडीकृत्य प्रायश्चित्तविधानमुक्तम्।

अर्थ—सो यह ऐसैं नवप्रकार प्रायश्चित्त देश काल शक्ति संयमादिकका अविरोधकरि अपराधकै अनुकूल वैद्यकी नाईं दोषनिको प्रशमन करवो योग्य है, बहुरि निश्चयकरि जीवके असंख्यातलोकप्रमाण परिणामनिके विकल्प हैं अर तितने ही अपराध हैं तथापि असंख्यातलोकप्रमाण ही तिनि अपराधनिके तितने ही प्रमाण प्रायश्चित्तनिका आगममैं उपदेश नहीं है क्योंकि आगमके अक्षर तौ एक घाटि एकट्ठीप्रमाण संख्याते हैं अर विकल्प असंख्याते हैं तातैं व्यवहारनयकी अपेक्षाकरि प्रायश्चित्तनिकूं मध्यवृत्तितैं इकट्ठेकरि नवप्रकार कहिये है।

प्रश्न—अकलंककृत दोय ग्रंथ प्रायश्चित्तके बतावै हैं तिनिमैं सुवर्ण रौप्य पुष्प चन्दन तीर्थयात्राआदि बाह्यसाधन अनेक प्रायश्चित्तके होत संतैं शुद्धताके निमित्त बतावे हैं, सो कैसैं है?

उत्तर—द्वादशतपमैं षट्प्रकार अभ्यन्तर तप हैं तिनिमैं प्रथमभेद प्रायश्चित्त है ताके निरूपणमैं [illegible] लिख्या है:—

धारा—अन्तःकरणव्यापाराऽऽलम्बनं ततोऽस्याभ्यन्तरत्वं बाह्यद्रव्यानपेक्षत्वाच्च न हि बाह्यं द्रव्यमपेक्ष्य वर्त्तमानं प्रायश्चित्तादि ततश्चाभ्यन्तरत्वमवसेयम् ।

अर्थ—अन्तःकरणका व्यापारको है अवलम्बन जा विषैं तातैं प्रायश्चित्तादिकनिकै अभ्यन्तरपणूं है जातैं प्रायश्चित्तादिक तपनिके अंगीकार करनेमैं बाह्यद्रव्यकी अपेक्षाको अभाव है, अर्थात् प्रायश्चित्तादिक बाह्यद्रव्यकी अपेक्षा करिकै नहीं वर्त्तै है तातैं प्रायश्चित्तादिकनिकै अंतरंगपणूं निश्चय करणूं । भावार्थ—प्रायश्चित्त शब्दकी निरुक्ति ऐसैं है कि—"प्रायः साधुलोकः प्रायस्य साधुलोकस्य यस्मिन् कर्मणि चित्तं तत्प्रायश्चित्तम्" अर्थ—प्राय नाम साधुजनको है अर साधु जनका चित्त जिस कर्म विषैं वर्त्तै सो प्रायश्चित्त है तातैं ये निश्चय करना जो प्रायश्चित्तक्रिया प्रधानपणैं साधुजननिकै है अर साधुजनकै किंचित् भी बाह्यद्रव्य है नाहीं तब उनकै द्रव्यका अभाव होतसंतैं प्रायश्चित्तका अभाव भया चाहिये, सो है नांही; दोषकी निवृत्तिनिमित्त साधुजन सदाकाल प्रायश्चित्त अंगीकार करै है । इहां इतना और समझो कि जो दोष उपजता है सो अंतरंगके विकारतैं उपजता है सो दोष अन्तरंगकी शुद्धता भयें ही अभावकूं प्राप्त होय, तातैं ऐसा निश्चय करो कि प्रायश्चित्त रूपकर्ममैं बाह्यद्रव्य कछु प्रयोजनकारी नाहीं है ।

तथा निरुक्ति ऐसैं है:—

धारा—प्रायस्य चित्तं प्रायश्चित्तमपराधशुद्धिरित्यर्थः ।

अर्थ—प्राय जो अपराध ताका जो चित्त कहिये शुद्ध करना सो प्रायश्चित्त है अर्थात् अपराधकी शुद्धि है सो प्रायश्चित्त है।

प्रश्न—मुनीश्वरनिकै तौ प्रायश्चित्त अंतरंगतैं ही होना मानैंगे परंतु गृहस्थनिकै तौ बाह्यद्रव्यतैं होना योग्य है कि नाहीं?

उत्तर—प्रथम तौ याका भी उत्तर तुमैं कह्या ताहीमें है कि—अंतरंगके विकारतैं भया दोषकी निवृत्ति अंतरंगकी शुद्धता भयें ही होयगी बाह्यद्रव्यतैं कदाचित् नहीं होयगी ताका दृष्टान्त ऐसा है कि—मदिराका भर्या घटकूं बाहिरतैं अनेक सुगंध द्रव्यनितैं धोवते संते भी वाकी दुर्गंध कदाचित् हू नहीं जावै है अर जा समय वा घटमैंतैं मदिराकूं दूरिकरि अग्नितैं तपावै ता समय वा घटका दुर्गंध सहज ही दूरि होयगा तैसें ही अंतरंगका विकार दूरिकरि प्रायश्चित्तरूप तपमयी अग्निकरि तपावै वाही समय शुद्धता होय है तथा और सुनों कि—सूत्रकारनैं प्रायश्चित्तके आलोचनाआदि नव भेद कहे हैं तिनिमैं एक हू भेदमैं बाह्यद्रव्य कह्या नाहीं तथा दशाध्यायसूत्रकी व्याख्या सर्वार्थसिद्धि राजवार्त्तिक श्लोकवार्त्तिक आदि-विषै कहूं नहीं कह्या तातैं जानिये है कि वार्त्तिककारअकलंकदेव हैं तिनिकृत तौ वै प्रायश्चित्तके ग्रंथ नहीं हैं वै अकलंक नाम कोऊ और कवि है तातैं श्रद्धानकरनेयोग्य नहीं है।

अब विनयतप कहिये है;—

सूत्र—ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः।

अर्थ—विनयतप च्यारि प्रकार है; दर्शनविनय१ ज्ञानविनय२ चारित्रविनय ३ उपचारविनय ४॥

वार्त्तिक—तत्र सबहुमानज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादिर्ज्ञानविनयः।

अर्थ—आलस्यरहित निर्मलचित्तको धारक देशकालादिकी विशुद्धिका विधानमें प्रवीण पुरुष जो है तानें मोक्षके अर्थि बहुत आदरसहित यथाशक्ति सेवन कीयो जो ज्ञान ताको ग्रहण अभ्यास अर वारंवार चिंतवन आदि है सो ज्ञानविनय जाणवोयोग्य है।

वार्तिक—पदार्थश्रद्धाने निःशंकितत्वादिलक्षणोपेतता दर्शनविनयः।

अर्थ—सामायिक आदि चतुर्दश प्रकीर्णक अर लोकबिन्दुसारपर्यंत चतुर्दश पूर्व ऐसा समस्त श्रुतसमुद्रके विषैं भगवत्सर्वज्ञदेवनिनें जैसें उपदेश किया है तैसें ही पदार्थका श्रद्धानके विषैं निःशंकितत्वादिलक्षणनिकरि सहितता जो है सो दर्शनविनय है।

वार्तिक—तद्वतश्चारित्रे समाहितचित्तता चारित्रविनयः।

अर्थ—सम्यग्ज्ञान श्रद्धानवानके पंचप्रकार दुर्धर चारित्रका सुननेके अनंतर प्रकट भया रोमांचकरि प्रकट है अंतरंगभक्ति जाकै ऐसा पुरुषके परमप्रसन्नता जो है सो अर मस्तकपरि अंजुलीस्थापनकरि नमस्कार करना आदिकरि भावतें जो अनुष्ठान करना सो चारित्रविनय प्रतीति करबोयोग्य है।

वार्तिक—प्रत्यक्षेष्वाचार्यादिषु पूजनीयेष्वभ्युत्थानाभिगमनांजलिकरणादिरुपचारविनयः।

अर्थ—पूजनीक आचार्यादिकनिकूं प्रत्यक्ष होतसंतें उठि खड़ाहोना सन्मुख जावना अंजुली करना वंदना करना अर उनकै पीछैं गमन करना आदि आपके योग्य विनय करना है सो उपचारविनय है।

वार्तिक—**परोक्षेष्वपि कायवाङ्मनोभिरंजलिक्रियागुणानुसंकीर्त्तनानुस्मरणादिः।**

अर्थ—आचार्यादिकनिकूं परोक्ष होतसंतें मनवचन कायकरि अंजुली करना उनके गुणनिकी प्रशंसा करना वारंवार स्मरण करना ज्ञानका अनुष्ठान करना आदि विनय करना है सो परोक्ष विनय जानना।

प्रश्न—**किमर्थमिदं विनयभावनम्।** अर्थ—ये विनयभावना काहेकै अर्थि करिये है?

उत्तर—**ज्ञानलाभाऽऽचारविशुद्धिसंवेगाराधनाद्यर्थं विनयभावनम्।**

अर्थ—विनयभावनाकरि ज्ञानको लाभ होय आचार्यकी विशुद्धिता होय संवेग होय आराधना होय इत्यादिकनिकी सिद्धि होय है बहुरि मोक्षका सुख होय है, तातैं विनयभावना करियें है।

तथा मूलाचारमें विनयकर्मकी प्रयोजनसहित निरुक्ति कहैं हैं;—

जम्हा विणयदि कम्मं अट्ठविहं चाउरंगमोक्खो य।
तम्हा वदंति विदुसो विणओत्ति विलीणसंसारा।७९।
यस्मात् विनयति कर्म अष्टविधं चातुरंगमोक्षश्च।
तस्माद्वदंति विद्वांसो विनय इति विलीनसंसाराः॥

अर्थ—जातैं अष्टविध कर्म जे हैं ते नाशकूं प्राप्त होय हैं अर द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप चतुर्विध संसारतैं मोक्ष होय है तातैं विलीन भयो है संसार जिनकै ऐसे विद्वान जे हैं ते विनय कहैं हैं॥

पुव्वं चेव य विणओ परूविदो जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
सव्वासु कम्मभूमिसु णिच्चं सो मोक्खमग्गंति ॥
पूर्वं चैव विनयः प्ररूपितः जिनवरैः सर्वैः ।
सर्वासु कर्मभूमिषु नित्यं सः मोक्षमार्गे इति ॥

अर्थ—जातैं पूर्वकालकै विषैं सर्व जिनेश्वर जे हैं तिनिनैं सर्व कर्मभूमिसंबंधी एकसौसत्तरि क्षेत्रनिके विषैं मोक्षमार्गमैं निरन्तर सो विनयधर्मनैं प्ररूपण कियो ।

प्रश्न—यो विनयधर्म कितना प्रकारको है ?

उत्तर—गाथा—

लोगाणुवित्तिविणओ अत्थणिमित्ते य कामतंते य ।
भयविणओ य चउत्थो पंचमओ मोक्खविणओ य ॥
लोकानुवृत्तिविनयः अर्थनिमित्तं च कामतंत्रे च ।
भयविनयश्च चतुर्थः पंचमकः मोक्षविनयश्च ॥

अर्थ—लोकके अनुकूल प्रवर्त्तन करना सो लोकानुवृत्ति नामा प्रथम विनय है, अर अर्थके निमित्त विनय करै सो अर्थविनय है, अर कामसेवनका अनुष्ठानके निमित्त विनय करै सो कामविनय है, अर भयनिवारणनिमित्त विनय करै सो चतुर्थ भयविनय है, अर मोक्षके-निमित्त विनय करै सो पंचमौं मोक्षविनय है, या प्रकार कारणद्वारकरि पंचप्रकार विनय है ।

इहां प्रथम लोकानुवृत्तिविनयका स्वरूप कहैं हैं,—

अब्भुट्ठाणं अंजलि आसणदाणं च अतिहिपूजा य ।
लोगाणुवित्तिविणओ देवपूया सविभवेण ॥ ८१ ॥

भासाणुवित्तिछन्दाणुवत्तणं देसकालदाणं च ।
लोगाणुवित्तिविणओ अंजलिकरणं च अत्थकदे ॥८२॥
अभ्युत्थानं अंजलिः आसनदानं च अतिथिपूजा च ।
लोकानुवृत्तिविनयः देवपूजा सविभवेन ॥ ८१ ॥
भाषानुवृत्तिः छंदानुवर्त्तनं देशकालदानं च ।
लोकानुवृत्तिविनयः अंजलिकरणं चार्थकृते ॥८२॥

अर्थ—अभ्युत्थानं कहिये अपने घर आवते पुरुषनिकूं देखते प्रमाण आसनतैं उठि खड़ा होना, अर अंजलिकरणं कहिये दोऊ हाथनिका जोड़ना, अर आसनदानं कहिये आसनका देना, अर अतिथिपूजा कहिये मध्याह्नकालमें आया साधुका तथा और साधर्मीनिका यथोत सत्कार करना, अर देवपूजा कहिये अपना विभवकै अनुसारकरि अरहंतदेवका पूजन करना ॥ ८१ ॥ अर भाषानुवृत्ति कहिये उत्तम आर्यपुरुषनिकै वचनकै अनुकूल वचनका बोलना अर छंदानुवर्तनं कहिये उत्तम आर्यपुरुषनिके अभिप्रायकै अनुकूल आचरण करना, अर देशकालदानं कहिये देशकै योग्य कालकै योग्य अपना द्रव्यका देना, यो सर्व लोकानुवृत्तिविनय लोककूं अपने करनेकै अर्थि है, अर जैसैं यामैं अंजुली अभ्युत्थानआदि करिये है तैसैं अंजुली अभ्युत्थान आदि अर्थकै निमित्त करिये सो अर्थ-निमित्तविनय है ॥ ८२ ॥

एमेव कामतंते भयविणओ चेव आणुपुव्वीय ।
पंचमओ खलु विणओ परूवणा तस्सिमा होदि ॥
एवमेव कामतंत्रे भयविनयश्चैव आनुपूर्व्या च ।
पंचमकः खलु विनयः प्ररूपणा तस्येयं भवति ॥

अर्थ—जैसें लोकानुवृत्तिविनय अर अर्थनिमित्त विनय कह्या तैसैं ही कामतंत्रविनय भी जाननों क्योंकि मूलगाथामें आनुपूर्वीकै विषैं विशेष जनावनेंको अभाव है यातैं, अर जो पंचमों मोक्षविनय है ताकी यह प्ररूपणा है। भावार्थ—जो पुरुष अपने घर आवै ताका विनय सर्वका यथायोग्य करना कि देखतप्रमाण ताजीम देना सन्मुख जावना अंजुलिकरि यथायोग्यस्थान बैठावना, वाके चित्तकूं प्रसन्नता रहै ऐसे वचन कहना अर वाके मर्मच्छेदके वचन नहीं कहना, हितकारी मिष्ट प्रमाणीक वचन कहना, अर वाके तिष्ठतें वाके अभिप्रायकै अनुकूल प्रवर्तना, अर देशकालके योग्य अपना द्रव्य देना अथवा अपनी शक्तिप्रमाण वाका मनोरथ सिद्ध करना इत्यादि लोकका अभिप्रायकै अनुकूल करना है सो लोकानुवृत्तिविनय है। अर ऐसैं ही आपकूं जापुरुषसें प्रयोजनसिद्धि करना है तापुरुषका भी विनय पूर्वोक्त प्रकार करै सो अर्थविनय है अर ऐसैं ही कामविनय है अर ऐसैं ही भयविनय है। इहां इतना विशेष जानना कि ये विनय लौकिकजन जे हैं तिनकूं अपने समान जे हैं तिनिका करना योग्य है। कुदेव कुगुरु कुआगमका अर इनिके सेवनेवारोंका विनय करनेका निषेध षडायतनके प्रकरणमैं निषेधरूप स्पष्टतर लिख्या है तातैं करना योग्य नाहीं॥

अब मोक्षविनयका स्वरूप कहिये है,—

दंसणणाणचरित्ते तवविणओ ओवचारिओ चेव।
मोक्खम्हि एस विणओ पंचविहो होदिणायव्वो॥८५॥

दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनयः औपचारिकश्चैव।
मोक्षे एष विनयः पंचविधः भवति ज्ञातव्यः॥८५॥

अर्थ—दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय, औपचारिकविनय ये पंचप्रकार विनय मोक्षमार्गके विषै हैं, सो जानवो योग्य है ॥ ८५ ॥

अब इनि पंचभेदनिके भिन्न भिन्न लक्षण कहै हैं तिनमैं प्रथम दर्शनविनयस्वरूपकी; गाथा—

जे दव्वपज्जया खलु उवदिट्ठा जिणवरेहिं सुदणाणे।
ते तह सद्दहदि णरो दंसणविणओत्ति णादव्वो ॥
ये द्रव्यपर्यायाः खलु उपदिष्टाः जिनवरैः श्रुतज्ञाने।
तान् तथा श्रद्दधाति नरः दर्शनविनय इति ज्ञातव्यः॥८६॥

अर्थ—जे जिनेंद्रदेवनैं श्रुतज्ञानकैविषैं द्रव्यनैं अर पर्यायनैं उपदेश किये हैं ते निश्चयकरि तैसैं ही जो मनुष्य श्रद्धान करै सो मनुष्य दर्शनविनयवान है, ऐसैं जानवो योग्य है ॥

अब ज्ञानविनयका प्रयोजन कहै हैं:—

णाणी गच्छदि णाणी वंचदि णाणी ण वंचणा दियदि।
णाणेण कुणदि चरणं तम्हा णाणे भवे विणओ ॥
ज्ञानी गच्छति ज्ञानी वंचति ज्ञानी न वंचनां ददाति।
ज्ञानेन करोति चरणं तस्मात् ज्ञाने भवेद्विनयः ॥८७॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष मोक्षनैं प्राप्त होय है तथा मोक्षनैं जाने है अर ज्ञानी पापनैं वंचति कहिये त्यागै है अर ज्ञानी नवीन कर्मनिनैं नहीं ग्रहण करै है अर ज्ञानकरि आचरण करै है, तातैं ज्ञानकै विषैं विनय करवो योग्य है ॥

अब चारित्रविनयका प्रयोजन कहै है:—

पोराणयकम्मरयं चरिया रित्तं करेदि जदमाणो।
णवकम्मं च ण बंधदि चरित्तविणओत्ति णादव्वो॥
पौराणिककर्मरजः चर्यया रिक्तं करोति यतमानः।
नवकर्म च न बध्नाति चरित्रविनय इति ज्ञातव्यः॥

अर्थ—चारित्रकरि यत्न करतो पुरुष चिरकालतैं संचय किया कर्मरजनैं तुच्छ करै है अर नवीनकर्मनैं नहीं बांधै है या कारणतैं चारित्रकै विषैं विनय करबो योग्य है॥ ८८॥

अब तपविनयका प्रयोजन कहै है;—

अवणयदि तवेण तमं उवणयदे मोक्खमग्गमप्पाणं।
तवविणयणियमिदमदी सो तवविणओत्ति णादव्वो॥
अपनयति तपसा तमः उपनयते मोक्षमार्गे आत्मानम्।
तपोविनयनियमितमतिः सः तपोविनय इति ज्ञातव्यः॥

अर्थ—तपकरि अज्ञानरूप तमनैं दूर करै है अर आत्मानैं मोक्षमार्गकै विषैं प्राप्त करै है सो प्रमाणीक बुद्धिको धारक तपविनयवान है या प्रकार तपविनय जाणबो योग्य है॥ ८९॥

अब वैयावृत्य कहिये है;—

सूत्र—आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगण-कुलसंघसाधुमनोज्ञानाम्।

अर्थ—आचार्य १ उपाध्याय २ तपस्वी ३ शैक्ष्य ४ ग्लान ५ गण ६ कुल ७ संघ ८ साधु ९ मनोज्ञ १० ये दशप्रकारके मुनि जे हैं तिनिकौ वैयावृत्य करणौं सो दशप्रकार वैयावृत्य है।

वार्तिक—वैयावृत्त्यमित्यनुवृत्तेः प्रत्येकमभिसम्बन्धः।

अर्थ—मूलसूत्रमें वैयावृत्य नहीं कह्या तौहू पूर्व सूत्रतें वैयावृत्यका अनुवर्तन है सो वैयावृत्यपद सूत्रनिकै प्रत्येक लगावना सो ऐसें—आचार्यनिको वैयावृत्य १ उपाध्यायनिको वैयावृत्य २ तपस्वीनिको वैयावृत्य ३ शैक्ष्यनिको वैयावृत्य ४ ग्लानिको वैयावृत्य ५ गणकौ वैयावृत्य ६ कुलको वैयावृत्य ७ संघको वैयावृत्य ८ साधुको वैयावृत्य ९ मनोज्ञको वैयावृत्य १० ऐसें वैयावृत्य दशप्रकार है।

वार्तिक—व्यावृतस्य भावः कर्म वा वैयावृत्त्यम्।

अर्थ—कायकी चेष्टाकरि अथवा अन्यद्रव्यनिकरि व्यापारयुक्त जो पुरुष ताको जो भाव अथवा कर्म सो वैयावृत्य कहिये है।

प्रश्न—दशभेदरूप मुनीश्वर कहे तिनके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहौ।

उत्तर—अनुक्रमतें कहै हैं, सो सुनौ;—

वार्तिक—आचरन्ति यस्माद्व्रतानीत्याचार्यः।

अर्थ—भव्यजीव जा सम्यग्ज्ञानादिगुणनिका आधारभूत मुनीश्वरतें स्वर्गमोक्षसंबंधी सुखरूप अमृतके बीजभूत व्रत जे हैं तिनिनैं ग्रहणकरि हितकै अर्थि आचरण करै सो आचार्य है।

वार्तिक—उपेत्य तस्मादधीत इत्युपाध्यायः ॥४॥

अर्थ—विनयवान भव्य जोहै तानैं निकट प्राप्त होय जा व्रतशीलभावनाका आधारभूतसाधुतें श्रुतज्ञानरूप आगम पढ़िये सो उपाध्याय है।

तपस्वी ॥ ५ ॥

अर्थ—महान बेला तेला पंचोपवास पक्ष मास ऋतु अयनके उपवास आदि हैं लक्षण जाको ऐसा तपकूं जो आचरण करै सो तपस्वी कहिये है ॥ ५ ॥

वार्तिक—शिक्षाशीलः शैक्ष्यः ॥ ६ ॥

अर्थ—श्रुतज्ञानके सीखनेविषैं तत्पर अर निरन्तर व्रतनिकी भावनामैं निपुण है सो शैक्ष्य कहिये है ॥

वार्तिक—रुजादिक्लिष्टशरीरो ग्लानः ॥ ७ ॥

अर्थ—रोग आदिकरि क्लेशित है शरीर जाको सो ग्लान कहिये है।

वार्तिक—गणः स्थविरसन्ततिः ॥ ८ ॥

अर्थ—साधुपुरुषनिको जो समूह सो गण कहिये है ॥ ८ ॥

वार्तिक—दीक्षकाचार्यशिष्यसंस्त्यायः कुलम् ॥९॥

अर्थ—दीक्षाको दाता जो आचार्य ताके शिष्यनिको जो प्रवाय सो कुल नाम होवेकै योग्य है ॥ ९ ॥

वार्तिक—चतुर्वर्णश्रमणनिवहः संघः ॥ १० ॥

अर्थ—च्यारूं वर्णका साधुनिको समूह जो है सो संघ है ॥ १० ॥

प्रश्न—च्यारूं वर्ण साधुनिके कौनसे हैं तिनका नामपूर्वक लक्षण भी कहो।

उत्तर चारित्रसारमैं;—

धारा—अनगारा यतयो मुनय ऋषयश्चेति।

अर्थ—अनगारी, यति, मुनि, ऋषि ये नाम हैं।

धारा—तत्र अनगाराः सामान्यसाधका उच्यन्ते।

अर्थ—तिनमें सामान्यपणे निजगुणके साधक हैं ते अनगार कहिये हैं।

धारा—यतयो भण्यन्ते उपशमक्षपकश्रेण्यारूढाः।

अर्थ—उपशमश्रेणीके विषें तथा क्षपकश्रेणीके विषें जो आरूढ है सो यति कहिये है।

धारा—मुनयोऽवधिमनःपर्ययज्ञानिनः केवलज्ञानिनश्च कथ्यन्ते।

अर्थ—अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी तथा केवलज्ञानी जे हैं ते मुनि कहिये हैं।

धारा—ऋषय ऋद्धिप्राप्तास्ते चतुर्विधा राजब्रह्मदेवपरमभेदात्।

अर्थ—जो ऋद्धिकूं प्राप्त भये ते ऋषि हैं, ते राजऋषि ब्रह्मऋषि देवऋषि परमऋषि भेदतैं च्यार प्रकार हैं।

धारा—तत्र राजर्षयो विक्रियाक्षीणर्द्धिप्राप्ता भवंति।

अर्थ—तिनमें विक्रियाऋद्धि तथा अक्षीणमहानसी ऋद्धिकूं प्राप्त भये ते राजऋषि हैं।

धारा—ब्रह्मर्षयो बुद्धियौषधिर्युक्ताः कीर्त्यन्ते।

अर्थ—अर बुद्धिऋद्धि तथा औषधिऋद्धिसंयुक्त हैं ते ब्रह्मऋषि कहिये हैं।

धारा—देवर्षयो गगनगमनर्द्धिसंपन्नाः पठ्यन्ते।

अर्थ—अर आकाशगमनऋद्धिसंयुक्त हैं ते देव ऋषि कहिये हैं।

यथा—परमर्षयः केवलज्ञानिनो निगद्यन्ते।

अर्थ—केवलज्ञानी जे हैं ते परमऋषि कहिये हैं।

तथा ऐसें कहिये है; स्नग्धरा छंद;—

देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिह मुनिः स्यादृषिः प्रोद्गतर्द्धि-
रारूढश्रेणियुग्मोऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुरुक्तः॥
राजा ब्रह्मा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्ति-
प्राप्तो बुद्ध्यौषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण।

अर्थ—इहां देशप्रत्यक्ष जो अवधि मनःपर्यय ताके जाननेवारे जे हैं ते मुनि हैं अर प्रकट भई है ऋद्धि जिनकै ते ऋषि हैं अर उपशम तथा क्षपकश्रेणीविषैं आरूढ भयेहैं ते यती हैं अर इनितैं अन्य साधु जे हैं ते अनगार कहिये है, बहुरि विक्रियाऋद्धिके तथा अक्षीणमहानसीऋद्धिके धारक जे हैं ते राजऋषि हैं अर बुद्धिऋद्धिके तथा औषधऋद्धिके स्वामी जे हैं ते ब्रह्मऋषि हैं अर आकाशगमन करनेमैं चतुर हैं ते देवऋषि हैं अर समस्त लोकालोकका ज्ञाता जे हैं ते परमऋषि हैं, या प्रकार अनुक्रमतैं जानबोयोग्य है॥

वार्तिक—चिरप्रव्रजितः साधुः॥ ११॥

अर्थ—चिरकालतैं भावनारूप कियो है धर्मताको गुण जानैं सो साधु मानिये हैं॥ ११॥

वार्तिक—मनोज्ञोऽभिरूपः॥ १२॥

अर्थ—सर्वोत्तम रूपवान होय सो मनोज्ञ है।

वार्तिक—सम्मतो वा लोकस्य विद्वत्तावक्तृत्व-महाकुलत्वादिभिः।

अर्थ—अथवा पण्डितपणाकरि तथा वक्तापणाकरि तथा महाकुलवानपणाकरि जो लोकके भलेप्रकार मान्य होय सो मनोज्ञ है और लोकके विषै वा मनोज्ञको ग्रहण सिद्धान्तकै गौरव ताका उपजावनेको कारणपणू है यातैं॥

वार्तिक—**असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा।**

अर्थ—अथवा असंयत सम्यग्दृष्टी जो है सो भी मनोज्ञ है।

धारा—**तेषां व्याधिपरीषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते प्रासुकौषधभक्तपानप्रतिश्रयपीठफलकसंस्तरणादिभिर्द्धर्मोपकरणैस्तत्प्रतीकारः सम्यक्त्वप्रत्यवस्थापनमित्येवमादि वैयावृत्त्यम्।**

अर्थ—तिन आचार्यादिकनिकै व्याधि परीषह मिथ्यात्वादिकको उपनिपात कहिये संयोग होत संतैं प्रासुक औषध भोजन पान प्रतिश्रय कहिये विनय सिंहासन पाटो संस्तरणादिककै अथवा धर्मोपकरणनिकरिकैं उन उपद्रवनिको प्रतीकार कहिये इलाज करनौं सम्यक्त्वकै विषैं प्रत्यवस्थापन करनौं इत्यादिक करना है सो वैयावृत्त्य है।

वार्तिक—**बाह्यद्रव्यासंभवे स्वकायेन तदानुकूल्यानुष्ठानं च।**

अर्थ—औषधि भक्त पानादि बाह्य सामग्रीको असंभव होत संतैं भी अपनी कायकरि कफ नासिका मल आदि अन्तर्मलका दूरिकरना अंगमर्दन आदि उनकै अनुकूल अनुष्ठान करना सो वैयावृत्त्य कहिये है।

प्रश्न—सो वैयावृत्त्य काहेकै अर्थि करिये है?

अर्थ—अर आकाशगमनऋद्धिसंयुक्त हैं ते देव ऋषि कहिये हैं।

धारा—परमर्षयः केवलज्ञानिनो निगद्यन्ते।

अर्थ—केवलज्ञानी जे हैं ते परमऋषि कहिये हैं।

तथा ऐसैं हू कहिये है; स्रग्धरा छंद;—

देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिह मुनिः स्यादृषिः प्रोद्गतर्द्धि-
रारूढश्रेणियुग्मोऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुरुक्तः॥
राजा ब्रह्मा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्ति-
प्राप्तो बुद्ध्यौषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण।

अर्थ—इहां देशप्रत्यक्ष जो अवधि मनःपर्यय ताके जाननेवारे जे हैं ते मुनि हैं अर प्रकट भई है ऋद्धि जिनकै ते ऋषि हैं अर उपशम तथा क्षपकश्रेणीविषैं आरूढ भये हैं ते यती हैं अर इनितैं अन्य साधु जे हैं ते अनगार कहिये है, बहुरि विक्रियाऋद्धिके तथा अक्षीणमहानसीऋद्धिके धारक जे हैं ते राजऋषि हैं अर बुद्धिऋद्धिके तथा औषधऋद्धिके स्वामी जे हैं ते ब्रह्मऋषि हैं अर आकाशगमन करनेमैं चतुर हैं ते देवऋषि हैं अर समस्त लोकालोकका ज्ञाता जे हैं ते परमऋषि हैं, या प्रकार अनुक्रमतैं जानबोयोग्य है॥

वार्तिक—चिरप्रव्रजितः साधुः॥ ११॥

अर्थ—चिरकालतैं भावनारूप कियो है दीक्षाको गुण जानैं सो साधु मानिये है॥ ११॥

वार्तिक—मनोज्ञोऽभिरूपः॥ १२॥

अर्थ—सर्वोत्तम रूपवान होय सो मनोज्ञ है।

वार्तिक—सम्मतो वा लोकस्य विद्वत्तावक्तृत्व-
महाकुलत्वादिभिः।

वार्तिक—संशयच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा परानुयोगः प्रच्छना ॥ २ ॥

अर्थ—अपनी उन्नतता अर परका उपहास्य अर उच्चस्वरतैं बोलना अर अट्टहास करना आदि श्रोतापनाका दोषनिकरि रहित प्रश्नका कर्ता शिष्य जो है सो संशयच्छेदके अर्थि अर निश्चित बलका उपयोगके अर्थि ग्रंथको अथवा अर्थको अथवा ग्रंथअर्थ दोऊनिको अन्य बहुज्ञानीनिप्रति प्रश्न करै सो प्रच्छना है ॥ २ ॥

वार्तिक—अधिगतार्थस्य मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा ॥३॥

अर्थ—निश्चित भई है पदार्थकी प्रक्रिया जाकै अर तप्त लोहका पिंडकै समान अर्पण कियो है चित्त जानैं ऐसा पुरुषकै मनकरि कियो जो अभ्यास सो अनुप्रेक्षा कहिये है।

वार्तिक—घोषविशुद्धं परिवर्त्तनमाम्नायः ॥४॥

अर्थ—जान्यूं है अक्षरनिको समाहार कहिये समास जानैं अर या लोकसंबंधी फलको निर्वांछकपणो जो है ताकै शीघ्र उच्चारण करना अर विलंबकरि उच्चारण करना इत्यादिक दोषनिकरि रहित शुद्ध अक्षरनिका उच्चारणपूर्वक जो परिवर्त्तन करना सो आम्नाय है, ऐसें उपदेश करिये है ॥ ४ ॥

वार्तिक—धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः ॥ ५ ॥

अर्थ—या लोकसंबंधी दृष्टप्रयोजनका परित्यागतैं उन्मार्गका निवर्त्तनकै अर्थि संदेहकूं दूरकरनेपूर्वक अपूर्वपदार्थका प्रकाशनकै-अर्थि धर्मकथादिकका जो अनुष्ठान सो धर्मोपदेश है, ऐसें कहिये है।

प्रश्न—सो स्वाध्याय कहानिमित्त करिये है ?

उत्तररूप वार्तिक—**समाध्याधानविचिकित्साऽभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिव्यक्त्यर्थम् ।**

अर्थ—समाधिविषैं एकाग्रता, अर ग्लानिको अभाव, प्रवचनवत्सलपणौं इत्यादिककी प्रगटताकै अर्थि वैयावृत्य करना इष्ट है।

प्रश्न—आचार्य आदि बहुत दशभेदको उपदेश काहेकै अर्थि करिये है ? संघका वैयावृत्य करना ऐसैं ही कहना योग्य था ?

उत्तररूप वार्तिक—**बहूपदेशात् क्वचिन्नियमेन प्रवृत्तिज्ञापनाय भूयसामुपन्यासः ।**

अर्थ—वैयावृत्यके योग्य बहुतको उपदेश करत संतैं कोईकै विषैं यथायोग्य वैयावृत्यकी प्रवृत्ति होय इत्यादि प्रयोजनकै निमित्त बहुतको ग्रहण करिये है। भावार्थ—बहुतका उपदेश या प्रयोजन निमित्त है कि कदाचित् कोऊ देशकालमैं आचार्य उपाध्याय आदि जिनका सम्बन्ध मिलै तिनका ही वैयावृत्य करै इस वास्तै बहुतको ग्रहण करिये है।

अब स्वाध्यायका लक्षण कहिये है;—

सूत्र—**वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशाः ।**

अर्थ—वाचना १ प्रच्छना २ अनुप्रेक्षा ३ आम्नाय ४ धर्मोपदेश ५ ये स्वाध्यायके पांच भेद हैं।

वार्तिक—**निरवद्यग्रंथार्थोभयप्रदानं वाचना ॥१॥**

अर्थ—पूर्वापरविरोधरहित अर संशय विमोह विभ्रम आदि दोषनिकरि रहित निर्दोष ग्रंथका अर निर्दोष अर्थका अर उभय कहिये ग्रंथ अर अर्थ दोऊनिका पात्रविषैं प्रतिपादन करना सो वाचना कहिये है।

वार्तिक—क्रोधादिभावनिवृत्तिरभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्गः।

अर्थ—क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा आदि दोषनिका त्याग सो अभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग है ॥ ३ ॥

वार्तिक—कायत्यागश्च नियतकालो यावज्जीवं वा ॥ ४ ॥

अर्थ—बहुरि कायका त्याग हू अभ्यन्तरव्युत्सर्ग कहिये है, ताके दोय भेद हैं—एक नियतकाल दूसरा यावज्जीव। तहाँ मुहूर्त्त प्रहर दिवस आदि संवत्सरपर्यंत देहतैं ममत्वका त्यागकरि तिष्ठना सो नियतकाल व्युत्सर्ग है, अर अंतसमय संन्यास धारणकरि देहतैं ममत्वका त्याग करना सो यावज्जीव अभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्ग है ॥ ४ ॥

वार्तिक—परिग्रहनिवृत्तेरवचन इति चेत्। न, तस्य हिरण्यविषयत्वात्॥ ५ ॥

अर्थ प्रश्न—महाव्रतनिके उपदेशका अवसरमैं परिग्रहको त्याग कह्यो ही है तातैं बहुरि यह उपधित्यागवचन अनर्थक है। उत्तर—सो नहीं है। प्रश्न—काहेतैं? उत्तर—जो महाव्रतनिका उपदेशमैं तौ परिग्रहका त्याग कह्या है ताके धन हिरण्य वस्त्र आदिकै गोचरपणा है यातैं, अर इहां बाह्य अभ्यंतर दोऊका त्याग उपदेशा है तातैं यहां उपधित्यागवचन अनर्थक नहीं है ॥ ५ ॥

वार्तिक—धर्मोभ्यन्तरे भावादिति चेत्। न, प्रासुकनिरवद्याऽऽहारादिनिवृत्तितंत्रत्वात्॥ ६ ॥

उत्तररूप वार्तिक—प्रज्ञातिशयप्रशस्ताध्यवसायाद्यर्थः स्वाध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ—भूत भविष्यत वर्त्तमानसंबंधी पदार्थनिकूं जाननवारी जो प्रज्ञानामा बुद्धिविशेष ताको अतिशय प्रकट होय है, अर धर्मध्यानरूप प्रशस्त उपयोग होय है, अर जिनागमकै विर्षे परिणामनिकी स्थिरता होय है, अर संशयको अभाव होय है, अर परवादीनिकरि स्थापित किया पदार्थका अन्यथास्वरूपजनित शंकाका अभाव होय है, अर संसारदेहभोगनितैं परम उदासीनता होय है अथवा धर्मर्मैं अर धर्मके फलर्मैं प्रीति होय है, अर तपकी वृद्धि होय है, अर अतीचारनिकी शुद्धता होय है, इत्यादिक प्रयोजननिमित्त स्वाध्यायका आचरण करिये है।

अब व्युत्सर्ग कहिये है;—

सूत्र—बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

अर्थ—बाह्यउपधि अर अभ्यन्तरउपधिको जो त्याग सो व्युत्सर्ग है ॥ २६ ॥

वार्तिक—उपधीयते बलाधानार्थमित्युपधिः।

अर्थ—जो पदार्थ अन्यकै बलका धारणकै अर्थि अंगीकार करिये सो उपधि कहिये है।

वार्तिक—अनुपात्तवस्तुत्यागो बाह्योपधिव्युत्सर्गः।

अर्थ—आत्मानैं नहीं ग्रहण किया अर आत्माकरि एकपणानैं नहीं प्राप्त भया ऐसा धनधान्य आदि बाह्य उपधिका त्याग जो है सो बाह्योपधिव्युत्सर्ग है ॥ २ ॥

प्रश्न—व्युत्सर्ग तप काहेकै अर्थि है ?

उत्तररूप—वार्तिक—निःसंगनिर्भयत्वजीविताशाव्युदासाद्यर्थो व्युत्सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—निःसंगपणू निर्भयपणू जीवितकी आशाको त्याग दोषनिको अभाव मोक्षमार्गकी भावनामैं तत्परपणू इत्यादिककै- अर्थि व्युत्सर्ग कहिये है ॥

अब ध्यान कहिये है;—

सूत्र—उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्त्तात् ।

अर्थ—उत्तमसंहननके धारक जीवको अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यंत एकाग्रचिंतानिरोध जो है सो ध्यान है । भावार्थ—या सूत्रमैं ध्याता ध्यान ध्येय इन तीननिका लक्षण अर काळकी मर्यादा च्यारूं कहे है, सो ऐसैं है-ध्याता तौ उत्तमसंहननको धारक होय है अर ध्येय एक द्रव्य अथवा एक पर्याय अथवा एक गुण अथवा श्रुतका एकपद तथा एक बीज है सो एक ध्येय है, अर एककै ऊपरि चिंताको रुकवो सो ध्यान है अर काल उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है ।

वार्तिक—आद्यं संहननत्रयमुत्तमम् ।

अर्थ—वज्रऋषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन ये तीन संहनन उत्तम हैं ।

प्रश्न—इनकै उत्तमपणौं काहेतैं है ?

उत्तररूप-धारा—ध्यानादिवृत्तिविशेषहेतुत्वात् ।

अर्थ—प्रश्न—दशलक्षणधर्मके विषै अन्तर्भूत त्याग है तातैं बहुरि इहां व्युत्सर्ग कहना अनर्थक है। उत्तर—अनर्थक नहीं है क्योंकि वहां तो अयोग्य आहारआदिका त्यागरूप उपदेश या प्रासुक निरवद्यआहारआदि योग्यका ग्रहण था अर इहां प्रासुक निरवद्य-आहारआदिका भी त्याग है तातैं बहुरि व्युत्सर्ग कहना निरर्थक नहीं है ॥ ६ ॥

वार्तिक—तस्य प्रायश्चित्ताभ्यन्तरत्वादिति चेत्। न, प्रतिद्वन्द्विभावात्।

अर्थ—प्रश्न—यो व्युत्सर्ग जो है सो प्रायश्चित्तमैं गर्भित है तातैं बहुरि ताका कहना अनर्थक है। उत्तर—अनर्थक नहीं है। प्रश्न—कहा कारण? उत्तर—प्रायश्चित्तमैं अंतर्भूत व्युत्सर्ग जो है ताकैं तौ प्रतिपक्षी अतीचार विद्यमान हैं अर इहां व्युत्सर्ग जो है सो अपेक्षारहित करिये है, इतना विशेष है, यातैं बहुरि कहना निरर्थक नहीं है ॥ ७ ॥

वार्तिक—अनेकत्रावचनमनेनैव गतत्वादिति चेत्। न, शक्त्यपेक्षत्वात् ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रश्न—अनेक स्थलमैं व्युत्सर्गका कहना अनर्थक ही है यातैं वारंवार कहनेतैं पूरणता होय है। उत्तर—अनर्थक नहीं है क्योंकि शक्तिकी अपेक्षापणा है यातैं, सो ऐसैं—कहूं तौ सावद्यनैं त्यागिये है कहूं निरवद्यनैं हू त्यागिये है कहूं नियतकाल व्युत्सर्ग करिये है कहूं अनियतकाल व्युत्सर्ग करिये है। पुरुषशक्तिकी अपेक्षापणातैं या व्युत्सर्गरूप निवृत्तिधर्मकै उत्तरोत्तर प्रकर्ष उत्साहका उत्पादना-र्थपणातैं इहां पुनरुक्तपणों सदोष नहीं है ॥ ८ ॥

प्रश्न—व्युत्सर्ग तप काहेके अर्थि है ?

उत्तररूप—वार्तिक—**निःसंगनिर्भयत्वजीविताशाव्युदासाद्यर्थो व्युत्सर्गः ॥ ६ ॥**

अर्थ—निःसंगपणू निर्भयपणू जीवितकी आशाको त्याग दोषनिको अभाव मोक्षमार्गकी भावनामें तत्परपणू इत्यादिकके-अर्थि व्युत्सर्ग कहिये है ॥

अब ध्यान कहिये है;—

सूत्र—**उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्त्तात् ।**

अर्थ—उत्तमसंहननके धारक जीवको अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यंत एकाग्रचिंतानिरोध जो है सो ध्यान है। भावार्थ—या सूत्रमें ध्याता ध्यान ध्येय इन तीननिका लक्षण अर कालकी मर्यादा च्यारूं कहे है, सो ऐसें है-ध्याता तौ उत्तमसंहननको धारक होय है अर ध्येय एक द्रव्य अथवा एक पर्याय अथवा एक गुण अथवा श्रुतका एकपद तथा एक बीज है सो एक ध्येय है, अर एकके ऊपरि चिंताको रुकवो सो ध्यान है अर काल उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है।

वार्तिक—**आद्यं संहननत्रयमुत्तमम् ।**

अर्थ—वज्रऋषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन ये तीन संहनन उत्तम हैं।

प्रश्न—इनके उत्तमपणों काहेतें है ?

उत्तररूप-धारा—**ध्यानादिवृत्तिविशेषहेतुत्वात् ।**

अर्थ—ध्यानका करना उपसर्गका सहना परीषहका जीतना आसनकी दृढ़ता दुर्धरतपका आचरणना आदि प्रवृत्तिविशेषका कारणपणातें तीनूं आदिके संहनन उत्तम हैं ।

धारा—तत्र मोक्षस्य कारणमाद्यमेकमेव ध्यानस्य त्रितयमपि उत्तमसंहननम् ।

अर्थ—तीनूं संहननिकै मध्य मोक्षको कारण तौ आदिको एक वज्रऋषभनाराचसंहनन ही है अर ध्यानके कारण तीनूं ही उत्तमसंहनन हैं । भावार्थ—इन आदिके तीन संहननको धारक है सो ध्यानको ध्याता है तथा मोक्ष तौ एक प्रथमसंहननतैं ही है ।

वार्त्तिक—चिंता अन्तःकरणवृत्तिः ।

अर्थ—जो पदार्थके विषैं अन्तःकरणकी प्रवृत्ति है सो चिंता कहिये है ।

वार्त्तिक—अनियतक्रियार्थस्य नियतक्रियाकर्तृत्वेनावस्थानं निरोधः ।

अर्थ—गमन भोजन शयन अध्ययन आदि क्रियाविशेषनिकैविषैं नियमरहित प्रवर्तता अन्तःकरणकैं एकक्रियाका कर्त्तापणाकरि जो अवस्थान कहिये स्थिरता है सो निरोध जाननों ।

धारा—एकमग्रं मुखं यस्य सोऽयमेकाग्रः ।

अर्थ—एक है अग्र कहिये सन्मुख जाकै सो एकाग्र है ।

धारा—चिंताया निरोधश्चिन्तानिरोधः ।

अर्थ—चिंताको जो निरोध कहिये रुकवो सो चिंतानिरोध है ।

धारा—एकाग्रचिन्ताया निरोध एकाग्रचिन्तानिरोधः।

अर्थ—एकद्रव्यकै सन्मुख जो चित्तका रुकना सो एकाग्रचिन्तानिरोध है।

प्रश्न—एकद्रव्यकै सन्मुखपणाकरि यो चित्तको निरोध काहेतै होय है?

उत्तररूप—वार्तिक—वीर्यविशेषात्प्रदीपशिखावत्।

अर्थ—जैसैं पवनआदिकी बाधारहित स्थानककैविषै प्रज्वलित भई दीपककी शिखा इत उत नहीं गमन करै है स्थिरीभूत रहै है तैसैं दंशमशक शीत उष्ण वर्षा आदिकी बाधारहित निराकुल-स्थानकै विषै वीर्यविशेषतैं रोकी जो चिन्ता सो व्याक्षेप विना एक द्रव्यकै सन्मुखपणाकरि तिष्ठै है॥

वार्तिक—उत्तमसंहननाभिधानमन्यस्येयत्कालाध्यवसायधारणासामर्थ्यात्।

अर्थ—अबै वार्तिककार अकलंकदेव सूत्रकारनिके अभिप्रायकूं पदविशेषकरि स्पष्ट दिखावै हैं-अर्द्ध नाराचसंहनन कीलितसंहननं स्फाटिकसंहनन ये अंतके तीन संहनन अन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्त चिन्तानिरोधका धारणविषैं साधनमात्र प्रति असमर्थ है, याही कारणतैं सूत्रकारनैं उत्तमसंहनन ग्रहण किये हैं।

वार्तिक—एकाग्रवचनं वैयग्र्यनिवृत्त्यर्थम्।

अर्थ—अर व्यग्रपणाकी निवृत्तिकै अर्थि एकाग्रवचन ग्रहण करिये है क्योंकि व्यग्रता कहिये नानापदार्थंका ग्रहण करना जो है सो ज्ञान है, ध्यान नहीं है।

वार्तिक—चिंतानिरोधग्रहणं तत्स्वाभाव्यप्रदर्शनार्थम् ।

अर्थ—जैसैं घट शब्द पृथ्वीका कोई पर्यायविशेषविषैं वर्त्तै है तैसैं ध्यानशब्द भी ज्ञानस्वरूप चिंताकी वृत्तिविशेषविषैं वर्त्तै है, ऐसैं दिखावनेंकै अर्थि चिंतानिरोध कह्यो है ।

वार्तिक—ध्यानमित्यधिकृतस्वरूपनिर्देशार्थम् ।

अर्थ—जो अधिकार कियो उत्तमतप ताका स्वरूपके निर्देशकै अर्थि ध्यानशब्द करिये है ।

वार्तिक—मुहूर्त्तवचनादहरादिव्यावृत्तिः ।

अर्थ—दिवस रात्रि पक्ष मास आदि कालांतरकी व्यावृत्तिकै अर्थि अन्तर्मुहूर्तवचन ग्रहण करिये है अर्थात् अन्तर्मुहूर्तकै उपरांति चितानिरोधरूप ध्यानको दुःरपणो है यातैं ।

वार्तिक—दिवसमासाद्यवस्थानमुपयुक्तस्येति चेत् । न, इन्द्रियोपघातप्रसंगात् ।

अर्थ—इहां कोऊ प्रश्न करै है कि—ध्यानरूप उपयोगकरि युक्त पुरुषको दिवस मासादिकको अवस्थान है, अंतमुहूर्ततैं ध्यान नहीं होय है । उत्तर—सो दिवस मासादिकाल ध्यानको नहीं है क्योंकि दिवस मास आदि काल ध्यानको ग्रहण करिये तौ इन्द्रियनिका उपघातको प्रसंग आवै है यातैं अंतर्मुहूर्त ही ध्यानको काल कह्यो है ।

वार्त्तिक—प्राणापानविनिग्रहो ध्यानमिति चेत् । न, शरीरपातप्रसङ्गात् ।

अर्थ—इहां फेर प्रश्न करै है कि श्वासोच्छ्वासका निग्रह कहिये रोकना जो है सो ध्यान है। उत्तर—श्वासोच्छ्वासका रोकना ध्यान नहीं है क्योंकि शरीरका पतनको प्रसंग आवै है यातैं, क्योंकि श्वासोच्छ्वासका निग्रह होत संतैं श्वासोच्छ्वासके रोकने जनित तीव्रवेदना होवसंतें शीघ्र ही शरीरको पतन होय है तातैं मंदमंद श्वासोच्छ्वासका प्रचार मानकै ध्यान जुडै है।

प्रश्न—ध्यानका सामान्य लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान किया अब ध्यानके विशेष भेद भी कहो।

उत्तररूप सूत्र—**आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि।**

अर्थ—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान ऐसे ध्यानके च्यार भेद हैं।

वार्त्तिक—**ऋतमर्दनमर्त्तिर्वा तत्र भवमार्त्तम्।**

अर्थ—ऋत नाम दुःखका है अथवा ऋतनाम अर्दनका है कि मर्दनका है अथवा ऋतनाम आर्त्तिका है तातैं तिन विर्षे भयो जो अंतःकरणको व्यापार सो आर्त्तध्यान है।

भावार्थ—दुःखमैं अर्दनमैं आर्त्तिमैं जो अन्तःकरणको व्यापार सो आर्त्तध्यान है।

वार्त्तिक—**रुद्रःक्रूरस्तत्कर्म रौद्रम्।**

अर्थ—रुद्र जो क्रूरपुरुष ताको जो कर्म अथवा भाव ता विर्षे भयो जो चिंतवनरूप कर्म सो रौद्रध्यान कहिये है।

वार्त्तिक—**धर्मादनपेतं धर्म्यम्।**

अर्थ—धर्मकरि सहित जो ध्यान सो धर्मध्यान कहिये है।

वार्त्तिक—**शुचिगुणयोगाच्छुक्लम्।**

सूत्र—आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥

अर्थ—अमनोज्ञको संयोग होवसंतैं ताका वियोगकै अर्थि जो स्मृतिको जोड़नो सो अनिष्टसंयोगजनामा आर्त्तध्यान है ॥ ३० ॥

वार्तिक—अप्रियममनोज्ञं बाधाकारणत्वात्।

अर्थ—विष कंटक शत्रु शस्त्र आदि जो अप्रिय वस्तु है सो बाधाका कारणपणातैं अमनोज्ञ कहिये है।

वार्तिक—भृशमर्थान्तरचिन्तनादाहरणं समन्वाहारः।

अर्थ—अर्थान्तरनिकै चिंतवनतैं अधिकपणाकरि आहरण कहिये एक वस्तुकै विषैं अन्तःकरणको अवरोध होय सो समन्वाहार है ॥ २ ॥

याका समास ऐसा है कि—

"स्मृतेः समन्वाहारः स्मृतिसमन्वाहारः" अर्थ—स्मृतिको जो समन्वाहार कहिये एक वस्तुमैं रुकनो सो स्मृतिसमन्वाहार है।

धारा—अमनोज्ञस्योपनिपाते स कथं नाम मे न स्यादिति संकल्पश्चिन्ताप्रबन्ध आर्त्तमित्याख्यायते।

अर्थ—अमनोज्ञको संबंध होवसंतैं ऐसा चिन्ताका प्रबंध होय जो या अमनोज्ञका संबंध मेरै कौन विधिकरि नहीं होय ऐसो जो निरन्तर विचार है सो आर्त्त कहिये है।

अब इष्ट वियोगजनामा आर्त्तध्यानकूं कहै हैं;—

अर्थ—जैसें मलके दूर होनेतें प्रकट भयो जो शुचिगुण ताका योगतें वस्तुकूं शुक्ल कहिये है तैसें शुक्लगुणका साधर्म्यपणातें शुक्लनाम है। शुक्लपरिणतियुक्त आत्मस्वरूपकूं शुक्लध्यान कहिये है।

अर ये च्यार प्रकारके ध्यान द्विविधपणानें अंगीकार करे है।

प्रश्न—काहेतें ?

उत्तररूप वार्तिक—प्रशस्ताप्रशस्तभेदात्।

अर्थ—पापास्रवका कारणनें आर्त्त रौद्र दोऊ ध्यान तौ अप्रशस्त हैं, अर कर्मनिके नाश करनेके सामर्थ्यतें धर्म शुक्ल दोऊ ध्यान प्रशस्त हैं।

सो ही सूत्रकार कहैं हैं;—

सूत्र—परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थ—परे कहिये धर्म शुक्ल दोऊ ध्यान मोक्षके कारण हैं ॥ २९ ॥

वार्तिक—परयोर्मोक्षहेतुत्वात्पूर्वयोः संसारहेतुत्वसिद्धिः।

अर्थ—धर्म शुक्ल मोक्षके कारण हैं या कहनेतें बाकी पूर्वके आर्त्त रौद्र ये दोऊ ध्यान संसारके कारण हैं, ऐसें जानिये है। अर सूत्रकारके बिना कहे ही संसार मोक्षरूप दोऊ साध्यविना तीसरा साध्यको अभाव है याही तें आर्त्त रौद्रध्यानकै संसारको साधनपणं सिद्ध होय है।

ऐसा आर्त्तध्यानका च्यार भेद हैं, तिनिमें प्रथम अनिष्टसंयोग नामा आर्त्तध्यानकौं कहे है;—

है—शरीरकी शिथिलतातैं अंगनिका इत उत पटकना अर शोक करना स्वरस्वरकरि पुकारना रुदनकरि अश्रुपात पटकना आदि प्रकट चिह्न होय हैं।

अब निदानजनित आर्त्तध्यान कहै है;—

सूत्र—**निदानं च ॥ ३३ ॥**

अर्थ—आगामीकालमैं सुखनिकी वांछा सो निदान है ॥

वार्त्तिक—**विपरीतं मनोज्ञस्येत्येव सिद्धमिति चेत्। न, अप्राप्तपूर्वविषयत्वान्निदानस्य।**

अर्थ—प्रश्न—'मनोज्ञको वियोग होतैं वाके संयोगकी वांछा'-ऐसैं पूर्वैं इष्टवियोगज आर्त्तध्यान कह्या था ताहीमैं निदान सिद्ध भया फेरि निदानका भिन्न कहना निरर्थक है। उत्तर—सो नहीं है, क्योंकि निदानके अप्राप्तपूर्व विषयपणूं है यातैं। भावार्थ—इष्टवियोग आर्त्तध्यानमैं तौ मनोज्ञवस्तुका वियोग होतैं वाकी पुनः प्राप्ति होनेका उपायरूप चिंतवन है अर या निदान आर्त्तध्यानमैं अपनैं पूर्वकालमैं जो सुखकारी सामग्री कदाचित् हू नहीं भई ताका आगामी कालमैं उपायरूप चिंतवन करना है सो निदान है, यातैं इष्टवियोगज आर्त्तध्यानमैं निदान अन्तर्भूत नहीं है। तातैं भिन्न कहना निरर्थक नाहीं है।

प्रश्न—सो यह च्यारप्रकार आर्त्तध्यान कृष्ण, नील, कापोत लेश्याका बलकै आश्रय है अर अज्ञानभावसूं उपजै है, अर बुद्धिपूर्वक पुरुषके परिणामनितैं उत्पन्न होय है, बहुरि पापके प्रयोगनिको आधार है, अर भोगोपभोगसामग्रीको यामैं प्रसंग है, बहुरि नाना संकल्प विकल्पनिकरि संयुक्त है, अर धर्मका आश्रयकूं छांड़े है, अर



सूत्र—विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ—मनोज्ञको वियोग होवसंतैं ताका संयोगकै अर्थि स्मृतिको जोड़यो सो इष्टवियोगजनामा आर्त्तध्यान है॥

वार्तिक—प्रागुक्तनिमित्तविपर्ययाद्विपरीतम् ॥

अर्थ—पूर्वें कह्यो जो अनिष्टको संयोग ताकूं होवसंतैं ताका वियोगकै निमित्त जो चिंतवन तातैं विपरीत जो इष्ट ताको वियोग होवसंतैं ताका संयोगकै अर्थि चिन्तवन सो इष्टवियोगज आर्त्तध्यान है ॥

अब पीडाचिन्तवननामा आर्त्तध्यान कहै है,—

सूत्र—वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

अर्थ—ज्वर आदि रोगनिकी वेदनातैं उत्पन्नभया दुःखका प्रतीकारकै अर्थि जो चिंतवन सो पीडाचिंतवननामा आर्त्तध्यान है ॥

वार्तिक—प्रकरणात् दुःखवेदनासंप्रत्ययः ।

अर्थ—यद्यपि वेदनाशब्द सुख दुःखका अनुभवकै गोचर सामान्य है तथापि आर्त्तध्यानका प्रकरणतैं इहां रोगकी पीडाजनित दुःखकी वेदनाका निश्चय होय है ।

धारा—तत्प्रतिचिकीर्षां प्रत्यागूर्णस्यानवस्थितमनसो धैर्योपरमात्स्मृतिसमन्वाहारः आर्त्तध्यानमवगन्तव्यम् ।

अर्थ—उस वेदनाजनित दुःखका इलाजकी वांछाप्रति उद्यमवान अर धीरताका अभावतैं चलाचल है मन जाको ऐसा पुरुषकै जो स्मृतिको एकत्र जुड़बो सो पीडाचिंतवननामा आर्त्तध्यान जाणबोयोग्य है । या आर्त्तध्यानके बाह्यलक्षण ऐसे प्रकट होय

अनृतके उपकरणनिकी तथा चोरीके उपकरणनिकी तथा परिग्रहकी रक्षा करनेतैं उत्पन्न होय है।

चतुर्विध रौद्रध्यान अविरत (पर्यन्त) च्यार गुणस्थानवर्त्ती जीवनिकै तौ होहु परन्तु देशव्रतीनिकै रौद्रध्यान कैसैं संभवै?

उत्तररूप—वार्त्तिक—**देशविरतस्यापि हिंसाद्यावेशाद्वित्तादिसंरक्षणतंत्रत्वाच्च।**

अर्थ—धन धान्य आदिकी रक्षाका आधीनपणातैं कदाचित् हिंसादिकका आवेशतैं देशविरतीनकै रौद्रध्यान होनेकी योग्यता बणै है परन्तु सम्यग्दर्शनका सामर्थ्यतैं नरकादि कुगतिका गमनकूं कारण नहीं होय है। भावार्थ—सम्यग्दर्शन विद्यमान है तातैं ऐसो प्रबल रौद्रध्यान नहीं होय है जातैं नरक आदि कुगतिमैं पहुंचै।

वार्त्तिक—**अथकथमिदं रौद्रध्यानं संयतस्य न भवति, तदयुक्तं; संयते तदावेशे संयमप्रच्युतेः।**

अर्थ—प्रश्न—जो देशसंयमीकै कदाचित् रौद्रध्यानका होना संभवता कह्या तौ संयमीकै विषैं रौद्रध्यान काहेतैं नहीं युक्त करिये है? उत्तर—रौद्रध्यानका आवेशतैं संयमकी प्रच्युति है यातैं संयमीकै रौद्रध्यान नहीं होत है। जा समय आत्माके परिणाम रौद्रध्यानरूप होय है ता समय संयम नहीं तिष्ठै है। अर चतुर्विध रौद्रध्यान तीव्र कृष्ण नील कापोत लेश्याका बलकै आधार है, अर याकी भूमिका प्रमाद है, अर याको मुख्य फल नरकगति है। ऐसैं कहे जे अप्रशस्तरूप आर्त्तरौद्र दोऊ ध्यान तिनिस्वरूप परणम्यो आत्मा जैसैं तसायमान लोहको पिंड जलनैं ग्रहण करै तैसैं कर्मनिकूं ग्रहण करै है।

कषायका आश्रयकूं अंगीकार करै है, बहुरि कषायनिकूं प्रज्वलित करै है, अर याका मूल प्रमाद है, अर पापकर्मकूं ग्रहण करै है, अर कटुक है फल जाका ऐसी असातावेदनीयका बंधकूं कारण है, अर तिर्यंचगतिमें गमनको कारण है; ऐसो यो आर्त्तध्यान कौन कौनसे गुणस्थानवर्त्ती जीवनिके होय है?

उत्तररूप—सूत्र—तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—सो यो आर्त्तध्यान मिथ्यात्वादि अविरतपर्यंत च्यार गुणस्थान अर देशविरत पंचम गुणस्थान तथा प्रमत्तसंयत छठा गुणस्थानवर्त्ती पंचदशप्रमादनिकरि सहित आहार विहार उपदेश आदि क्रियाके आचरण करनेवारे जीवनिकै होय है ॥

वार्त्तिक—कदाचित्प्राच्यमार्त्तध्यानत्रयं प्रमत्तानाम्।

अर्थ—प्रमादका उदयकी उत्कटतातैं कोई कालकै विषै निदानरहित और तीन आर्त्तध्यान जे हैं ते प्रमत्तसंयमीनिकै भी होय है।

अथ च्यारभेदयुक्त रौद्रध्यानकूं कहै हैः—

सूत्र—हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥

अर्थ—हिंसानंद, मृषानंद, चौर्यानंद, परिग्रहानंदरूप चतुर्विध रौद्रध्यान मिथ्यात्वादि च्यार अविरत गुणस्थान अर देशविरत पंचमगुणस्थानवर्त्ती जीवनिकै हिंसाके उपकरणनिकी तथा

तर्क नय प्रमाणकूं युक्त करनेमें तत्पर ऐसो जो स्मृतिको समन्वाहार कहिये एकवस्तु प्रति जुड़वो सो सर्वज्ञकी आज्ञाके प्रकाश करनेका प्रयोजनपणातें आज्ञाविचय धर्मध्यान कहिये है ॥

अब अपायविचय धर्मध्यानकूं कहै हैं;—

वार्तिक—**सन्मार्गापायचिंतनमपायविचयः ॥६॥**

अर्थ—मिथ्यादर्शनकरि आच्छादित हैं सम्यक्‌श्रद्धारूप नेत्र जिनके ऐसे मिथ्यादृष्टीनिके आचार विनय प्रतिविधान आदि समस्तक्रिया अज्ञानका बाहुल्यपणातें जन्मका आंधाकी ज्यांई संसारकी वृद्धिकै अर्थि होय है। जैसें जन्मके आंधे बलवान हू सन्मार्गतें चिगे अर मार्गके जाननेमें प्रवीण ऐसा पुरुषनें मार्ग नहीं बताया ते नीचे ऊंचे पर्वत विषम पाषाण कठिन ठूंठ अर कठिन कंटकनिकरि व्याप्त गहन अटवी आदि दुर्ग स्थाननिमें पड़े संते हलन चलनादि क्रिया करते हू सन्मार्गनें प्राप्त होनेकूं उपदेशदाताके अभावतें समर्थ नहीं होय है तैसें सर्वज्ञप्रणीतमार्गतें विमुख अर मोक्षके अर्थी ऐसें पुरुषहू सम्यक्‌मार्गके नहीं जाननेतें सम्यक्‌मार्गतें दूरही रहै है, ऐसें सन्मार्गतें जो अपाय कहिये विगनो ताका चिंतवन करना सो अपायविचयनामा धर्मध्यान है।

वार्तिक—**असन्मार्गापायचिंतनमपायविचयः, असन्मार्गापायसमाधानं वा।**

अर्थ—अथवा मिथ्यादर्शनकरि आकुल है चित्त जिनको ऐसें कुवादीनिकरि उपदेश्यो जो उन्मार्ग तातैं ये प्राणी कैसें दूरि होय अथवा अनायतनका सेवनका अभाव कैसें होय, ऐसें आपयका अर्पणकरि चिंतवन करना सो अपाय विचय है।

अब विपाकविचय धर्मध्यानकूं कहै हैं;—

अब चतुर्विध धर्मध्यान कहिये है;—

सूत्र—आज्ञाऽपायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, ऐसैं धर्मध्यान च्यार प्रकार है। अर इहां विचयशब्दकूं विवेक-विचार-अर्थवाची जानना ॥

अब आज्ञाविचय धर्मध्यानकूं कहै है;—

वार्तिक—तत्राऽऽगमप्रामाण्यादर्थावधारणमाज्ञाविचयः ॥ ४ ॥

अर्थ—तहां उपदेशदाताके अभावतैं बुद्धिकी मंदतातैं कर्मका उदयतैं अर पदार्थनिका सूक्ष्मपणातैं अर हेतु दृष्टांतका अभाव होतैं सर्वज्ञप्रणीत आगमकूं प्रमाण करिकै यह ऐसैं ही है जिनेन्द्रदेव अन्यथावादी नाहीं है ऐसैं गहनपदार्थका श्रद्धानतैं अर्थका अवधारण करना जो है सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है ॥ ४ ॥

वार्तिक—आज्ञाप्रकाशनार्थो वा ॥ ५ ॥

अर्थ—अथवा सम्यग्दर्शनकरि विशुद्ध हैं परिणाम जाके अर जाणूं है स्वमतपरमतसंबंधी पदार्थनिको निर्णय जानै अर सर्वज्ञ देवकरि कहे जे अतिसूक्ष्म पदार्थ तिनकूं अवधारण करिकै "यह ऐसैं ही है" या प्रकार अन्य जीवनि प्रति उपदेश करबाको इच्छुक, अर कथामार्गके विषैं श्रुतज्ञानका सामर्थ्यतैं निजसिद्धांतका अविरोधकरि हेतु नय प्रमाणका वारंवार कथनकरि पदार्थनिके स्वरूपकूं ग्रहण करनेमैं श्रोतानिकूं समर्थ करिकै पदार्थनिका स्वरूपकूं यथावत् व्याख्यान करै ताकै पदार्थनिका समर्थनकै अर्थि

आहारक रिद्धिके धारक मुनीश्वर विना और प्रमत्तसंयमी मुनीश्वर-निविषैं है ऊपरि नाहीं है, बहुरि आहारक शरीर आहारक अंगोपांग इनि दोऊनिका उदय प्रमत्तसंयमी कै ही है ऊपरि नीचें नाहीं है, बहुरि सम्यक्त्वमोहनीयका उदय चौथा गुणस्थान आदि सप्तम गुणस्थानपर्यंत च्यारि गुणस्थाननिमैं है ऊपरि नीचै नाहीं है, बहुरि अर्द्धनाराचसंहनन कीलकसंहनन असंप्राप्तासृपाटिकसंहनन इनि तीनि संहननका उदय छट्ठा गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है, बहुरि हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा इन छह प्रकृतिनिका उदय अपूर्वकरणनामा अष्टमगुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं है, बहुरि स्त्रीपुरुष नपुंसक इनि तीनि वेदनिका अर संज्वलन क्रोध मान माया इनि तीन कषायनिका उदय अनिवृत्तिबादरसांपरायनामा नवम गुणस्थानसंबंधी कालका शेष संख्यात भागनिकूं व्यतीतकरि उदयको अभाव होय है, बहुरि संज्वलनलोभको उदय सूक्ष्मसांपरायनाम दशम गुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं है, बहुरि वज्रनाराचसंहनन नाराचसंहनन इनि दोऊनिका उदय प्रशांतकषायनामा ग्यारमा गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है, बहुरि निद्राप्रचला इनि दोय प्रकृतिनिका उदय क्षीणकषायनामा बारमा गुणस्थानको उपांतसमय जो अंतका समयको पहलो समय ता पर्यंत है ऊपरि नाहीं है, अर पांच ज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण अर पांच अंतराय ऐसैं चौदह प्रकृतिनिको उदय क्षीणकषायनामा बारमा गुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं है, बहुरि साता असातावेदनीयमैंसूतौ कोई एक अर औदारिक तैजस कार्माण ये तीनशरीर समचतुरस्रसंस्थान न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान कुब्जकसंस्थान स्वातिकसंस्थान हुंडकसंस्थान ये षटसंस्थान अर औदारिक अंगोपांग वज्रवृषभनाराचसंहनन पंच वर्ण दोय गंध पांच रस आठ स्पर्श इनि वीसनिके सामान्याच्यर

वार्तिक—कर्मफलानुभवविवेकं प्रतिप्रणिधानं विपाकविचयः ।

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल भाव जे हैं तिनिका निश्चयपूर्वक ज्ञानावरणादि कर्मनिके फलका अनुभवप्रति जो उपयोगका एकत्र ठहरना सो विपाकविचय है; सो ही कर्मका उदय राजवार्तिककी नवम अध्यायमैं दिखाइये हैं—मिथ्यादर्शनका अर एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिंद्रिय ये च्यार जाति अर आतप स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण इनि दश प्रकृतिनिका उदय प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानविर्षे है, सासादनादि ऊपरले गुणस्थाननिमैं उदय नाहीं है, बहुरि अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इनि च्यार कषायनिका उदय मिथ्यात्व सासादन इनि दोय गुणस्थाननिविर्षे है ऊपरि नाहीं है, बहुरि सम्यक्मिथ्यात्व जो मिश्रमोहिनीप्रकृति ताको उदय सम्यक्मिथ्यादृष्टीनामा तीसरा गुणस्थानविर्षे ही है ऊपरि भी नाहीं है अर नीचें भी नाहीं है याहीमैं है बहुरि अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ नरकायु देवायु नरकगति देवगति वैक्रियिकशरीर वैक्रियिकअंगोपांग नरकगत्यानुपूर्वी तिर्यंचगत्यानुपूर्वी मनुष्यगत्यानुपूर्वी देवगत्यानुपूर्वी दुर्भग अनादेय अयशकीर्ति इनि सतरह प्रकृतिनिका उदय मिथ्यादृष्ट्यादि असंयतपर्यंत च्यार गुणस्थाननिविर्षे है ऊपरि नाहीं है अर च्यारूं आनुपूर्वीनिका तीसरा मिश्र गुणस्थानविर्षे उदय नाहीं है अवशेष तेरह प्रकृतिनिका उदय है; बहुरि प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ तिर्यंच आयु तिर्यंचगति उद्योत नीचगोत्र इनि आठ प्रकृतिनिका उदय देशसंयतनाम पंचमगुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है; बहुरि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिनाम तीन प्रकृतिनिका उदय

ये च्यारि कषाय अर नरकगति देवगति वैक्रियिक शरीर वैक्रियिक अंगोपांग दुर्भग अनादेय अयशकीर्त्ति इनि ग्यारह प्रकृतिनिको उदीरणोदय असंयत सम्यग्दृष्टीनामा चतुर्थगुणस्थानपर्यन्त होय है ऊपरि नाहीं है, अर नरक आयु देव आयु इनिको उदीरणोदय मरणकालविषै अंतका आवलीपर्यंत कालकूं छोड़िकरि असंयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानविषैं होय है ऊपरि नीचैं नाहीं होय है। बहुरि च्यारूं आनुपूर्वीनिको विग्रहगतिविषैं मिथ्यादृष्टी सासादनसम्यग्दृष्टी असंयतसम्यग्दृष्टी इन तीन गुणस्थाननिविषैं उदीरणोदय है अन्यत्र नाहीं है। बहुरि प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ तिर्यंचगति उद्योत नीच गोत्र इनि सात प्रकृतिनिको उदीरणोदय संयतासंयतनाम पंचमगुणस्थानपर्यंत होय है ऊपरि नाहीं होय है अर तिर्यंच आयुको उदीरणोदय मरणकालविषैं चरमावलीकालकूं छोड़िकरि संयतासंयतनामा पंचमगुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है। बहुरि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धि सातावेदनीय असातावेदनीय इनि पांच प्रकृतिनिका उदीरणोदय प्रमत्तसंयतनामा छट्ठा गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है अर आहारकऋद्धिके धारक मुनीश्वरनिकै आहारकशरीरका समुद्घातके विषै पूर्व चरमावलीकालसहित उदीरणोय नाहीं है अर आहारक शरीर आहारक अंगोपांग इनि दोय प्रकृतिनिको उदीरणोदय प्रमत्त संयतनामा छठा गुणस्थानपर्यंत होय है ऊपरि नाहीं होय है। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीयको उदीरणोदय असंयत सम्यग्दृष्टीनामा चतुर्थ गुणस्थानकूं आदि देय अप्रमत्तसंयतनामा सप्तम गुणस्थानपर्यंत च्यार गुणस्थाननिविषैं है ऊपरि नीचैं नाहीं है। अर अर्द्ध नाराच कीलक असंप्राप्तासृपाटिक इनि तीन संहननिको उदीरणोदय अप्रमत्तसंयतनामा सप्तम गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है। बहुरि हास्य रति अरति शोक भय जु-

अर अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास प्रशस्तविहायोगति अप्रशस्तविहायोगति प्रत्येक शरीर स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुस्वर दुःस्वर इनि तीस प्रकृतिनिको उदय सयोगकेवलीनामा तेरमा गुणस्थानका चरमसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं, बहुरि वेदनीय दोयमैं तौ एक मनुष्य आयु मनुष्यगति पंचेंद्रियजाति त्रस बादर पर्याप्तक सुभग आदेय यशःकीर्त्ति उच्चगोत्र इनि ग्यारह प्रकृतिनिको उदय अयोगकेवलीनामा चौदमागुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं, बहुरि तीर्थंकरनामा कर्मको उदय सयोगकेवली अयोगकेवली इनि दोय गुणस्थाननिविषै ही है नीचले मिथ्यात्वादि क्षीणकषायपर्यंत बारह गुणस्थाननिविषै नाहीं है।

वार्त्तिक—अयथाकालविपाकः उदीरणोदयः।

अर्थ—अयथाकालविषै जो उदय होय सो उदीरणोदय है। भावार्थ—अपने उदयके अवसरमैं उदय आवै सो तौ उदय है अर उदयका अवसर विना उदय आवै सो उदीरणोदय है, सो ही दिखाइये है;—तहां मिथ्यादर्शनको उदीरणोदय मिथ्यात्वगुणस्थानविषै उपशमसम्यक्त्वकै सन्मुख भया जो भव्यजीव ताकै अन्तका आवलीप्रमाण कालकूं छोड़िकरि और अन्यकालकै विषै होय है। अर एकेंद्रिय द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय ये च्यार जाति अर आतप स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इनि नव प्रकृतिनिको उदीरणोदय मिथ्यात्वगुणस्थानविषै है ऊपरि नाहीं है। बहुरि अनंतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इनि च्यारनिका उदीरणोदय मिथ्यादृष्टी सासादनसम्यग्दृष्टी इनि दोय गुणस्थाननिविषै है ऊपरि नाहीं है। बहुरि मिश्रमोहनीयको उदीरणोदय तीसरा गुणस्थानविषै ही है ऊपरि नीचै नाहीं है। बहुरि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधमान माया लोभ

ये च्यारि कषाय अर नरकगति देवगति वैक्रियिक शरीर वैक्रियिक अंगोपांग दुर्भग अनादेय अयशकीर्त्ति इनि ग्यारह प्रकृतिनिको उदीरणोदय असंयत सम्यग्दृष्टीनामा चतुर्थगुणस्थानपर्यन्त होय है ऊपरि नाहीं है, अर नरक आयु देव आयु इनिको उदीरणोदय मरणकालविषैं अंतका आवलीपर्यंत कालकूं छोड़िकरि असंयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानविषैं होय है ऊपरि नीचैं नाहीं होय है। बहुरि च्यारूं आनुपूर्वीनिको विग्रहगतिविषैं मिथ्यादृष्टी सासादनसम्यग्दृष्टी असंयतसम्यग्दृष्टी इन तीन गुणस्थाननिविषैं उदीरणोदय है अन्यत्र नाहीं है। बहुरि प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ तिर्यंचगति उद्योत नीच गोत्र इनि सात प्रकृतिनिको उदीरणोदय संयतासंयतनाम पंचमगुणस्थानपर्यंत होय है ऊपरि नाहीं होय है अर तिर्यंच आयुको उदीरणोदय मरणकालविषैं चरमावलीकालकूं छोड़िकरि संयतासंयतनामा पंचमगुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है। बहुरि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धि सातावेदनीय असातावेदनीय इनि पांच प्रकृतिनिका उदीरणोदय प्रमत्तसंयतनामा छट्ठा गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है अर आहारकऋद्धिके धारक मुनीश्वरनिकै आहारकशरीरका समुद्घातकै विषैं पूर्व चरमावलीकालसहित उदीरणोय नाहीं है अर आहारक शरीर आहारक अंगोपांग इनि दोय प्रकृतिनिको उदीरणोदय प्रमत्त संयतनामा छठा गुणस्थानपर्यंत होय है ऊपरि नाहीं होय है। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीयको उदीरणोदय असंयत सम्यग्दृष्टीनामा चतुर्थ गुणस्थानकूं आदि देय अप्रमत्तसंयतनामा सप्तम गुणस्थानपर्यंत च्यार गुणस्थाननिविषैं है ऊपरि नीचैं नाहीं है। अर अर्द्ध नाराच कीलक असंप्राप्तासृपाटिक इनि तीन संहननिको उदीरणोदय अप्रमत्तसंयतनामा सप्तम गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाहीं है। बहुरि हास्य रति अरति शोक भय जु-

गुप्सा इनि षट् प्रकृतिनिको उदीरणोदय अपूर्वकरणनामा अष्टम गुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं है। बहुरि तीनूं वेद अर संज्वलन क्रोध मान माया इनि षट् प्रकृतिनिको उदीरणोदय अनिवृत्तिकरण वादरसांपराय नवम गुणस्थानका उपान्त समय पर्यन्त है, ऊपरि नाहीं है अर तिस अनिवृत्तिकरणका कालका शेष शेष ऊपरिले संख्यात भागनिकूं प्राप्त होयकरि उदीरणोदयकी व्युच्छित्ति होय है। बहुरि संज्वलनलोभको उदीरणोदय सूक्ष्मसांपराय दशमगुणस्थानका अंतसमयसम्बन्धी चरमावलीकालकूं छांड़िकरि पूर्वके गुणस्थाननिविषें है ऊपरि नाहीं है। बहुरि वज्रनाराचसंहनन नाराच संहनन इनि दोऊनिको उदीरणोदय उपशांतकषायनामा ग्यारमा गुणस्थानका अंतपर्यंत है ऊपरि नाहीं है। बहुरि निद्रा प्रचला इन दोय प्रकृतिनिको उदीरणोदय क्षीणकषायनामा बारमा गुणस्थानका अंतसम्बन्धी एकसमय अधिक आवली प्रमाणकालकूं छांड़िकरि है ऊपरि नाहीं है। अर पांच ज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण पांच अंतराय इनि चौदह प्रकृतिनिको उदीरणोदय अंतसंबंधी आवली प्रमाण कालकूं छांड़िकरि क्षीणकषायपर्यंत है ऊपरि नाहीं है। बहुरि मनुष्यगति पंचेंद्रियजाति औदारिक तैजस कार्माण ये तीन शरीर षट् संस्थान अर औदारिक शरीर अंगोपांग वज्रवृषभनाराचसंहनन वर्ण गन्ध रस स्पर्श अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास प्रशस्तविहायोगति अप्रशस्तविहायोगति त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येकशरीर स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुभग सुस्वर दुःस्वर आदेय यशःकीर्ति निर्माण उच्चगोत्र इनि अट्ठवीस प्रकृतिनिको उदीरणोदय सयोगकेवलीनामा तेरम गुणस्थानका अंतसमय पर्यंत है ऊपरि नाहीं है अर तीर्थंकरनाम कर्मको उदीरणोदय सयोगकेवली गुणस्थानविषें ही है ऊपरि नीचे नाहीं है।

अब संस्थानविचयनामा धर्मध्यानकूं कहै हैं;—

वार्तिक—**लोकसंस्थानस्वभावावधानं संस्थानविचयः ।**

अर्थ—लोकको जो संस्थान कहिये आकार अर ताके अवयव जे द्वीप समुद्रादिक तिनिका स्वभावका जो चिन्तवन सो संस्थानविचय धर्मध्यान है ।

वार्तिक—**धर्मादनपेतं धर्म्यम् ।**

अर्थ—उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्मतैं जो सन्मग सो धर्म ध्यान है जातैं जाकै उत्तमक्षमादिककी भावना है ताहीकी धर्मध्यानमैं प्रवृत्ति होय है ।

वार्तिक—**अनुप्रेक्षाणां धर्मध्यानजातीयत्वात् पृथगनुपदेश इति चेत् । न, ज्ञानप्रवृत्तिविकल्पत्वात् ।**

अर्थ—प्रश्न—अनुप्रेक्षा भी धर्मध्यानविषैं अन्तर्भूत है क्यौंकि अनुप्रेक्षा भी धर्मध्यानकी ही जाति है यातैं अनुप्रेक्षाका उपदेश न्यारा करना अनर्थक है । उत्तर—अनुप्रेक्षानिकै ज्ञानकी प्रवृत्तिको विकल्पपणूं है यातैं न्यारा उपदेश करना अनर्थक नाहीं है । जा समय ज्ञान अनित्यादिक भावनाकै गोचर होय ता समय तौ अनुप्रेक्षा कहिये है, अर जा समय अनित्यादिस्वरूपमैं एकाग्रचिंतानिरोध होय वा समय धर्मध्यान है । ऐसैं अनुप्रेक्षामैं अर धर्मध्यानमैं भेद है, तातैं भिन्न उपदेश योग्य है ।

वार्तिक—**धर्म्यमप्रमत्तस्येति चेत् । न, पूर्वेषां विनिवृत्तिप्रसंगात् ।**

अर्थ—प्रश्न—धर्मध्यान अप्रमत्तगुणस्थानवर्त्ती मुनीश्वरनिकै ही होय है। उत्तर—ऐसैं नाहीं है, क्योंकि अप्रमत्त गुणस्थानीनिकै ही कहिये तौ पूर्वके तीन गुणस्थानीनिकै धर्मध्यानका अभावको प्रसंग आवै, तातैं अप्रमत्तकै ही कहना योग्य नाहीं क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टीकै अर संयतासंयतकै अर प्रमत्तसंयतीकै सम्यक्त्वका प्रभावतैं आगममैं धर्मध्यान कह्या है तिनकै अभावको प्रसंग आवै तातैं असंयतादि अप्रमत्तसंयतपर्यंत च्यार गुणथाननिमैं ही धर्मध्यान जाननौं।

वार्तिक—उपशांतक्षीणकषाययोश्चेति तन्न, शुक्लाभावप्रसंगात्।

अर्थ—असंयतादि च्यार गुणस्थानीनिकै ही नहीं होय है, उपशान्तकषाय क्षीणकषायवर्त्तीनिकै भी होय है। उत्तर—सो नहीं है, क्योंकि जो उपशांतकषाय क्षीणकषायवालेनिकै भी धर्मध्यान होय तौ शुक्लध्यानका अभावको प्रसंग आवै है, सो है नाहीं, उपशांतकषाय क्षीणकषायवालेनिकै शुक्लध्यान इष्ट करिये है अर धर्मध्यान नाहीं है।

वार्तिक—तदुभयं तत्रेति चेन्न, पूर्वस्यानिष्टत्वात्।

अर्थ—उपशांतकषाय क्षीणकषायवर्त्तीनिकै धर्मध्यान अर शुक्लध्यान दोऊ ही है ऐसैं कहौ। उत्तर—सो नहीं है क्योंकि उपशांतकषाय क्षीणकषायवालेनिकै धर्मध्यानको अनिष्टपणुं है तातैं, उपशमश्रेणी अर क्षपकश्रेणीनिकै विषैं धर्मध्यान अनिष्ट है तातैं अपूर्वकरणादि अयोगकेवलीपर्यंत शुक्लध्यान ही इष्ट है अर असंयतादि अप्रमत्तपर्यंत धर्मध्यान इष्ट है ऐसे आर्षग्रंथनिविषैं कह्या है॥

इहां शुक्लध्यान कहिये हैं;—

३

सूत्र—शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥

अर्थ—आदिके दोय शुक्लध्यान पूर्वके वेत्तानिकै होय है।

वार्तिक—पूर्वविद्विशेषणं केवलिनस्तदुभयप्रणिधानसामर्थ्यात्।

अर्थ—सकल श्रुतके धारक श्रुतकेवलीनिकै आदिके दोय शुक्लध्यानविषै एकाग्रचिंतवनकी सामर्थ्य है श्रुतकेवलीनिकै विना औरनिकै नाहीं है ऐसैं जनावनेके अर्थि 'पूर्वविद' विशेषण ग्रहण कियो है।

वार्तिक—चशब्दः धर्म्यध्यानसमुच्चयार्थः।

अर्थ—जो सूत्रविषैं 'च' शब्द कह्यो है सो धर्मध्यानका समुच्चयकै अर्थि है। भावार्थ—श्रुतकेवलीनिकै धर्मध्यान शुक्लध्यान दोऊ ही होय है।

वार्तिक—विषयविवेकापरिज्ञानमिति चेन्न, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः।

अर्थ—'च' शब्दकरि धर्मध्यानको समुच्चय करनेमें विषयको भेदविज्ञान नहीं जाणिये है कि चकारतैं धर्मध्यान ही ग्रहण करना और अर्थ नहीं ग्रहण करना, ऐसा नियमरूप विषयका निर्णय नहीं होय है। उत्तर—सो नहीं है, क्योंकि व्याख्यानतैं विशेषको ज्ञान होय है। श्रेणीमें आरोहणतैं पूर्व धर्मध्यान होय है अर दोऊ श्रेणीनिविषैं शुक्लध्यान होय है ऐसैं आगानैं व्याख्यान करेंगे।

प्रश्न—आदिके दोऊ शुक्लध्यान उपशांतमोह क्षीणमोह गुणस्थानकै विषैं नियमकरि प्रतिज्ञा करिये है तो अवशेष अंतके दोय शुक्लध्यान कौनकै होय है?

उत्तररूप—सूत्र—परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—उत्तरके दोऊ शुक्लध्यान क्रमतैं सयोगकेवली अयोगकेवलीनिकै होय है छद्मस्थके नहीं होय है।

ऐसैं शुक्लध्यानके स्वामी कहे अर अब च्यारूं भेदनिके नाम लक्षण कहै है;—

सूत्र—पृथक्त्वैकत्ववितर्कवीचारसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्त्तीनि ॥३९॥

अर्थ—पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्कवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवर्ती ये शुक्लध्यानके च्यार भेद हैं॥३९॥

प्रश्न—इनि च्यारूं ध्याननिका अवलंबन कहा है ?

उत्तररूप-सूत्र—त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥४०॥

अर्थ—पृथक्त्ववितर्कवीचारनामा प्रथम शुक्लध्यान तीनूं योगनिके अवलंबनकरि होय है। अर एकत्ववितर्कअवीचारनामा दूसरो शुक्लध्यान तीनूं योगनिमैंसूं कोऊ एक योगके अवलंबनकरि होय है। अर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामा तीसरो शुक्लध्यान काययोगके अवलंबनकरि होय है। अर व्युपरतक्रियानिवर्त्तीनामा चतुर्थ शुक्लध्यान अयोगकेवलीकै होय है ॥४०॥

अब आदिके दोऊ शुक्लध्यान जे हैं तिनका विशेष जनावनेके निमित्त सूत्र कहै है।—

सूत्र—एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥

अर्थ—वितर्क अर वीचार इनि दोऊनिकरि सहित आदिके दोऊ ध्यान एक श्रुतकेवलीके ही आश्रय होय हैं श्रुतकेवलीबिना अन्यकै नहीं होय है ॥४१॥

वार्तिक—पूर्वविदारम्भत्वादेकाश्रयसिद्धिः।

अर्थ—आदिके दोऊ ही शुक्लध्यान परिपूर्णश्रुतके धारक जो श्रुतकेवली ताकरि आरंभ करिये है यातैं ये दोऊ एकाश्रय ही हैं ऐसैं कहिये है।

वार्तिक—पूर्वत्वमेकस्यैवेति चेन्नोक्तत्वात्।

अर्थ—सूत्रकारनैं पूर्वपणं दोऊनिकै कह्यो सो अयोग्य भासै है क्योंकि पूर्वपणं एकहीकै होय है। सो नहीं है, क्योंकि याका उत्तर पहली कह्या ही है यातैं।

प्रश्न—कहा कह्या है?

उत्तर—आदिकाके समीपवर्त्ती द्वितीयकै भी पूर्वपणाको उपदेश है तथा द्विवचन कहनके सामर्थ्यतैं दोऊनिको ग्रहण है।

अब या सूत्रके विषैं वितर्क वीचार दोऊ कहे तिनिका आदिके दोऊ ध्यानिकै यथाक्रमसंबंधका दोषकी निवृत्तिकै अर्थि सूत्र कहिये है;—

सूत्र—अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥

अर्थ—दूसरो शुक्लध्यान वीचाररहित है ॥४२॥

वार्त्तिक—पूर्वयोर्द्वितीयं तदवीचारं प्रत्येतव्यम्।

अर्थ—पूर्वके दोऊ ध्याननिविषैं जो दूसरो ध्यान है सो वीचाररहित है। भावार्थ—आदिको ध्यान तौ वितर्कवीचारसहित हैं ताको पृथक्त्ववीचार नाम है अर दूसरो ध्यान वितर्कसहित वीचाररहित है ताको एकत्ववितर्कअवीचार नाम है।

प्रश्न—वितर्कके विषैं अर वीचारके विषैं कहा विशेष है?

याका उत्तररूप-सूत्र—वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥

अर्थ—विशेषकरितर्क करना है सो वितर्क है अर वितर्क है सा श्रुत है। भावार्थ—वितर्कशब्दश्रुतज्ञानको पर्यायवाची शब्द है ॥४३॥

प्रश्न—जोवितर्क शब्द श्रुतज्ञानवाची है तौ वीचारशब्द कहा वाची है?

याका उत्तररूप-सूत्र—**वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः॥४४॥**

अर्थ—अर्थ अर व्यंजन अर योग इनकी जो संक्रांति कहिये पलटनौ सो वीचार कहिये है ॥४४॥

वार्तिक—अर्थो ध्येयः द्रव्यं पर्यायो वा, व्यंजनं वचनं, योगः कायवाङ्मनःकर्मलक्षणः, संक्रांतिः परिवर्त्तनम्।

अर्थ—अर्थनाम ध्येय करने योग्य पदार्थका है सो द्रव्य है अथवा पर्याय है, अर व्यंजननाम श्रुतके वचनका है, अर योगनाम काय वचन मनकी क्रियाका है, अर संक्रांतिनाम पलटनेका है।

तहां द्रव्यकूं छांडि पर्यायकूं प्राप्त होय अर पर्यायकूं छांडि द्रव्यकूं प्राप्त होय सो तौ अर्थसंक्रांति है। अर एक श्रुतका वचनकूं अंगीकारकरि अन्यवचनको अवलंबन करै बहुरि वाहूकूं छांडि अन्यको अवलंबन करै सो व्यंजन संक्रांति है। अर काययोगकूं छांडि अन्ययोगको ग्रहण करै अर वाहूकूं छांडि अन्ययोगको ग्रहण करै सो योगसंक्रांति है, ऐसैं जो परिवर्त्तन सो वीचार है।

सो यो सामान्य विशेषकरि कह्यो जो च्यार प्रकार शुक्लध्यान अर पूर्वं कह्यो है गुप्ति आदि बहुत प्रकार उपाय जाको ऐसो धर्मध्यान जो है ताहि संसारका अभावके अर्थि ध्यानकरवेकं

महामुनि समर्थ होय है, अर तिसके आरंभके विषैं परिकर्म होय है सो जा समय उत्तम शरीरका संहननपणाकरि परीषहनकी बाधाकूं सहनेकूं समर्थ आत्माकूं जानैं ता समय ध्यानके योग्य परिचयके अर्थि प्रारंभ करै है।

प्रश्न—सो कैसैं करै है ? या प्रकार तर्क होत संतैं उत्तर कहै हैं;—

भाष्य—पर्वतगुहाकंदरदरीद्रुमकोटरनदीपुलिनपितृवनजीर्णोद्यानशून्यागारादीनामन्यतमस्मिन्नवकाशे व्यालमृगपशुपक्षिमनुष्याणामगोचरे तत्रस्थैरागंतुकैश्च जंतुभिः परिवर्जिते नात्युष्णे नातिशीते नातिवाते वर्षातपवर्जिते समंताद्बाह्यांतःकरणविक्षेपकारणविरहिते भूमितले शुचावनुकूलस्पर्शयथासुखमुपविष्टो बद्धपल्यंकासनः समृजुं प्रणिधाय शरीरयष्टिमस्तब्धां स्वांके वामपाणितलस्योपरि दक्षिणपाणितलमुत्तानंसमुपादाय नात्युन्मीलन्नातिमीलन् दंतैर्दन्ताग्राणि संदधानः ईषदुन्नतमुखः प्रगुणमध्योऽस्तब्धमूर्त्तिः प्रणिधानगंभीरशिरोधरः प्रसन्नवक्त्रवर्णः अनिमिषस्थिरसौम्यदृष्टिः विनिहतनिद्राऽऽलस्यकामरागरत्यरतिशोकहास्यभयद्वेषविचिकित्सः मंदमंदप्राणापानप्रचार इत्येवमादिकृतपरिकर्मा साधुः नाभेरूर्ध्वं हृदये मस्तकेऽन्यत्र वा म-

नोवृत्तिं यथापरिचयं प्रणिधाय मुमुक्षुः प्रशस्तध्यानं ध्यायेत् । तत्रैकाग्रमना उपशांतरागद्वेषमोहो नैपुण्यान्निगृहीतशरीरक्रियो मंदोच्छ्वासनिःश्वासः सुनिश्चिताभिनिवेशः क्षमावान् बाह्याभ्यंतरान् द्रव्यपर्यायान् ध्यायन्नाहितवितर्कसामर्थ्यः अर्थव्यंजने कायवचसी च पृथक्त्वेन संक्रामता मनसा अपर्याप्तबलोत्साहवदव्यवस्थितेनाशितेनापि शस्त्रेण चिरात्तरुं छिंदन्निव मोहप्रकृतीरुपशमयन् क्षपयँश्च पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यानभाग् भवति पुनर्वीर्यविशेषहानेर्योगाद्योगांतरं व्यंजनाद्व्यंजनांतरमर्थादर्थान्तरमाश्रयन् ध्यानविधूतमोहरजाः ध्यानयोगान्निवर्त्तते, इत्युक्तं पृथक्त्ववितर्कवीचारम् ।

अर्थ—पर्वतनिकी गुफा कंदरा दरडे जीर्ण वृक्षनिके कोटर नदीनिके पुलिन श्मशानभूमि जीर्ण उद्यान शून्यगृह इत्यादिकनिके मध्य कोऊ एक स्थानविषैं अवकाशमें सर्प सिंह व्याघ्र मृग पशु पक्षी मनुष्य आदिकै अगोचर कहिये गम्य नाहीं अर तहां तिष्ठते जीवनिकरि अथवा आगंतुक जीवनिकरि रहित, बहुरि यहूं ओरतैं बाह्य अभ्यंतर विक्षेपके कारणनिकरि रहित अर पवित्र अनुकूल है स्पर्श जाको ऐसा भूमितलकै विषैं पल्यंकासनयुक्त सुखरूप तिष्ठतौ अर क्षोभरहित सम तथा सरल शरीरयष्टिकूं करि अपना अंककै विषैं वाम हस्ततल ऊपरि दक्षिण हस्ततलकूं उत्तलरूप कहिये सौंधा स्थापनकरि नेत्रनिकूं नहीं अति उन्मीलन तथा नहीं अति निमी-

लन करतो अर दंतनकरि दंतनिके अग्रभागकूं जोड़रूप करतो अर किंचित् नम्र है मुख जाको अर अति सरल है मध्यभाग जाको अर क्षोभरहित शांतरूप है मुद्रा जाकी अर प्रणिधान जो परिधि ताकी गंभीरतासहित मस्तककूं धारण करनेवारो भावार्थ—मस्तककूं चलाचल नहीं करनेवारो; अर प्रसन्न है मुखको वर्ण जाको अर टिमकारनेकरि रहित स्थिरीभूत सौम्य है दृष्टि जाकी अर विशेषपणें हणेहैं निद्रा आलस्य काम राग रति अरति शोक हास्य भय द्वेष विचिकित्सा जानें, अर मंद मंद है सासोस्वासको प्रचार जाके इत्यादि कियो है परिकर्म जानें; ऐसो साधु नाभिके ऊपरि हृदयविषैं मस्तकविषैं अथवा नासिका ललाट आदि अन्य उत्तम अंगविषैं मनकी वृत्तिकूं जैसें ध्यानको परिचय होय तैसें उपयुक्तकरि मोक्षको वांछक प्रशस्त ध्यानकूं ध्यावै तहां एकाग्र है मन जाको अर उपशांत हुये हैं राग द्वेष मोह जाके अर भले प्रकार निश्चयरूप है उपयोग जाको, अर क्षमावान अर बाह्य अभ्यंतर द्रव्यकी पर्यायनिकूं ध्यावतो, अर अंगीकार कियो है श्रुतको सामर्थ्य जानें, ऐसो साधु जो है सो नहीं परिपूर्ण भयो है बलको उत्साह जाके ताके समान अव्यवस्थित अर तीक्ष्णतारहित ऐसा शस्त्रकरि चिरकालतैं वृक्षनैं छेदताके समान अर्थ व्यंजन जे हैं तिननें तथा काय वच जेहैं तिननें जुदा जुदा पणाकरि पलटता मनकरि मोहकी प्रकृतिनिनें उपशम करतो तथा क्षय करतो संतो पृथक्त्ववितर्कवीचारनामा प्रथम शुक्लध्यानको ध्याता होय है अर वीर्यविशेषकी हानितैं योगतैं योगान्तरकूं व्यंजनतैं व्यंजनांतरकूं अर्थतैं अर्थान्तरकूं आश्रय करतो प्रथम शुक्लध्यानकरि उपशम कियो है विशेषपणें मोहरज जानें ऐसोहू साधु ध्यानका योगतें पाछो बाहुड़े है। ऐसें पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा

प्रथम शुक्लध्यानको स्वरूप कह्यो ।

अब एकत्ववितर्कअवीचारनामा दूसरा शुक्लध्यानको स्वरूप कहे हैं;—

धारा—अनेनैव विधिना समूलमूलः (?) मोहनीयं निर्दहन्ननंतगुणविशुद्धं योगविशेषमाश्रित्य बहुतराणां ज्ञानावरणसहायिभूतानां प्रकृतीनां बंधं निरुंधन् स्थितेः ह्रासक्षयौ च कुर्वन् श्रुतज्ञानोपयोगवान्निवृत्तार्थव्यंजनयोगसंक्रांतिरविचलमनाः क्षीणकषायो वैडूर्यमणिनिरुपलेपो ध्यात्वा पुनर्न वर्त्तते इत्युक्तमेकत्ववितर्कम् । एवमेकत्ववितर्कशुक्लध्यानवैश्वानरनिर्दग्धघातिकर्मेन्धनः प्रज्वलितकेवलज्ञानगभस्तिमंडलः मेघपंजरनिरोधनिर्गत इव घर्मरश्मिर्भासमानो भगवाँस्तीर्थंकर इतरो वा केवली लोकेश्वराणामभिगमनीयोऽर्चनीयश्चायुःपूर्वकोटिं देशोनां विहरति ।

अर्थ—याही विधिकरि मूलसहित मोहनीयकूं भस्म करवाको इच्छुक अनंतगुणा विशुद्ध योगविशेषकूं आश्रयकरि ज्ञानावरणीकी सहायीभूत बहुत प्रकृतिनिका बंधकूं रोकतो अर तिनकी स्थितिकूं घटावतो अथवा क्षय करतो श्रुतज्ञानका उपयोगको धारक अर निवृत्त भई है अर्थ व्यंजन योगनिकी पलटिन जाकै अर अविचल है मन जाको ऐसा क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती साधु वैडूर्यमणिसमान अन्यलेपरहित एकत्ववितर्कअवीचार

ध्यानकूं ध्यायकरि बहुरि पाछो नहीं पलटै है। ऐसैं एकत्ववितर्क अवीचारनामा दूसरो शुक्लध्यान कह्यो। या प्रकार एकत्ववितर्क-अवीचारनामा ध्यानकरि भस्म किया है घतियाकर्मरूप इंधन जानैं अर अतिशयकरि प्रकाशमान भयो है केवलज्ञानरूप किरणनिको मंडल जाकै ऐसो मेघपंजरके निरोधतैं निकस्या अतिशय-करि कांतिमान सूर्यके समान भगवान तीर्थकरदेव अथवा सामान्य-केवली जो है सो इन्द्र नरेन्द्र चमरेंद्रनिकै प्राप्त होवाके योग्य पूजनके योग्य हुवा संता उत्कर्षपणाकरि अन्तर्मुहूर्तकरि अधिक आठ वर्ष घाटि कोटिपूर्व वर्ष प्रमाण विहार करै है॥ २॥

अब सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामा तीसरा शुक्लध्यानको स्वरूप कहै हैं;—

धारा—स यदाऽन्तर्मुहूर्त्तशेषायुष्कः ततोऽधिकस्थितिविशेषकर्मत्रयो भवति योगी तदात्मोपयोगातिशयस्य सामायिकसहायस्य विशिष्टकरणस्य महासंवरस्य लघुकर्मपरिपाचनस्य शेषकर्मरेणुपरिसातनशक्तिस्वाभाव्याद्दंडकपाटप्रतरलोकपूरणानि स्वात्मप्रदेशविसर्प्पणतः चतुर्भिः समयैः कृत्वा पुनरपि तावद्भिरेव समयैः समुपहृतप्रदेशविसरणः समीकृतस्थितिविशेषकर्मचतुष्टयः पूर्वशरीरपरिमाणो भूत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानं ध्यायति।

अर्थ—सो केवली भगवान जा समय अंतर्मुहूर्त्त अवशेष आयुके धारक होय अर वेदनी नाम गोत्र इनि तीन कर्मनिकी स्थिति

कर्मनिकी निर्जरा होय है तहां ये नहीं जानिये है कि सर्व सम्यग्दृष्टीनिकै निर्जरा समान होय है कि कछु विशेष है।

याका उत्तररूप सूत्र—

सूत्र—सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी कहिये सप्त तत्त्व नव पदार्थनैं आदि लेय देव गुरु धर्मके श्रद्धानी चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती अविरतसम्यग्दृष्टी, अर श्रावक कहिये पंचम गुणस्थानवर्त्ती पंच अणुव्रत तीन गुणव्रत च्यार शिक्षाव्रतके धारक १दशभेदरूप अणुव्रती श्रावक, अर विरत कहिये षष्ठ गुणस्थानवर्त्ती महाव्रती मुनि, अर अनंतवियोजक कहिये अनंतानुबंधी पूर्वसंचित कर्म जे हैं तिननैं प्रत्याख्यानरूप तथा संज्वलनरूप विसंयोजन करनेवारा कि परिणमावनेवारा, अर दर्शनमोहक्षपक कहिये सम्यग्दर्शनकूं रोकनेवारी दर्शनमोहनीय प्रकृति जे है तिनकूं क्षपण करनेवारा, अर उपशामक कहिये चारित्रकूं रोकनेवारी चारित्रमोहनीय प्रकृति जे हैं तिनकूं उपशम करनेवारा, अर उपशांतमोह कहिये उपशांतकषायनामा ग्यारमा गुणस्थानी समस्त मोहनीयकूं उपशांत करनेवारा, अर क्षपक कहिये अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपरायनामा आठमा नवमा दशमा इनि तीन गुणस्थानवर्त्ती क्षपकश्रेणीवारा, अर 'जिनाः' कहिये तेरमा गुणस्थानवर्त्ती केवली जिन स्वस्थानमैं प्रवर्त्तनेवारा,

१—'दशभेदरूप' के स्थानमें 'एकादशभेदरूप' ऐसा पाठ होना चाहिये।

अर तैसैं ही केवलीजिन समुद्घात करनेवारा ऐसैं एकादशभेदरूप जीवकै अनुक्रमतैं असंख्यात असंख्यातगुणी निर्जरा जाननीं ।

भावार्थ—ध्यानकर्त्ता सम्यग्दृष्टीतैं अणुव्रतीकै असंख्यात-गुणी निर्जरा होय है, अर अणुव्रतीतैं महाव्रतीकै असंख्यातगुणी निर्जरा होय है, तैसैं ही महाव्रतीतैं अनंतानुबंधीका विसंयोजककै, अर विसंयोजकतैं दर्शनमोहके क्षपककै, अर क्षपकतैं चारित्रमोहके उपशमककै, अर उपशमकतैं उपशांतमोहकै, अर उपशांतमोहतैं क्षपकश्रेणी चढ़ताकै, अर क्षपकश्रेणीवारेतैं क्षीणमोहकै, अर क्षीणमोहतैं स्वस्थानगत जिनकै, अर स्वस्थानगत जिनतैं समुद्घात करता जिनकै असंख्यात असंख्यातगुणी निर्जरा जाननी ॥ ४५ ॥

तथा ध्यानका स्वरूप स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षाकी चूलिका-मैं गाथा;—

अंतोमुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्हि माणसं णाणं ।
झाणं भण्णइ समए असुहं च सुहं च तं दुविहं ॥४७४॥
अन्तर्मुहूर्त्तमात्रं लीनं वस्तुनि मानसं ज्ञानं ।
ध्यानं भण्यते समये अशुभं च शुभं च तत् द्विविधं ॥

अर्थ—एकवस्तुविषैं अन्तर्मुहूर्त्तमात्र मनसंबंधी ज्ञानका लीन होना जो है सो जिनागमकै विषैं सामान्यपणैं ध्यान कहिये है, सो ध्यान शुभ अशुभ भेदकरि दोय प्रकार है ॥

असुहं अट्ट रउद्दं धम्मं सुक्कं च सुहयरं होदि ।
अट्टं तिव्वकसायं तिव्वत्तमकसायदो रुद्दं ॥४७५॥
मंदकसायं धम्मं मंदतमकसायदो हवे सुक्कं ।

अकसाए वि सुयड्ढे केवलणाणे वि तं होदि ॥४७६॥
अशुभमार्त्तं रौद्रं धर्म्यं शुक्लं च सुखकरं भवति ।
आर्त्तं तीव्रकषायं तीव्रतमकषायतः रौद्रम् ॥४७५॥
मंदकषायं धर्म्यं मंदतमकषायतः भवेच्छुक्लम् ।
अकषायेऽपि श्रुताढ्ये केवलज्ञानेऽपि तत् भवति ॥
युग्मम् ।

अर्थ—आर्त्तध्यान अर रौद्रध्यान ये दोय ध्यान तो अशुभ हैं अर धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ये दोऊ सुखके कर्त्ता शुभध्यान हैं, तीव्रकषायरूप आर्तध्यान है अर अति तीव्र कषायतैं रौद्रध्यान होय है ॥ ४७५ ॥

मंदकषायरूप धर्मध्यान है बहुरि अतिमंद कषायतैं शुक्लध्यान होय हैं, बहुरि पूर्वके वेत्ता महामुनि उपशांतकषाय क्षीणकषाय अकषायनिकैहू शुक्लध्यान होय है अर सयोगकेवली अयोगकेवलीकै हू शुक्लध्यान होय है ॥

दुक्खयरविसयजोए केण इमं चयदि इति विचिंतितो ।
चेट्ठदि जो विक्खित्तो अट्टज्झाणं हवे तस्स ॥४७७॥
दुःखकरविषययोगे केन इदं त्यज्यते इति विचिंतयन् ।
चेष्टते यः विक्षिप्तः आर्तध्यानं भवेत् तस्य ॥४७७॥

अर्थ—दुःखका कर्त्ता विषय जे हैं तिनका संयोगमैं होवा संता जो या प्रकार चिंतवन करै कि "यो अनिष्टसंयोग कौन उपायकरि छूटै" ऐसैं विक्षिप्त हुवो संतो चेष्टा करै ताकै अनिष्टसंयोगनामा आर्तध्यान होय है ॥४७७॥

मणहरविसयवियोगे कह ते पावेमि इदि वियप्पो जो।
संतावेण पयट्टो सो वि य अट्टं हवे झाणं ॥४७८॥
मनोहरविषयवियोगे कथं तान् प्राप्नोमि इति विकल्पः यः।
संतापेन प्रवृत्तः तत् एव च आर्त्तं भवेत् ध्यानम् ॥

अर्थ—मनोहर विषयका वियोगमैं होता संता जो या प्रकार विकल्प करै कि "तिन मनोहर विषयनिनैं कैसैं प्राप्त हूं" ऐसैं संतापकरि प्रवर्तैं सो ही इष्टवियोगनामा आर्त्तध्यान होय है ॥ ४७८ ॥

हिंसाणंदेण जुदो असच्चवयणेण परिणदो जो दु।
तत्थेव अथिरचित्तो रुद्दं झाणं हवे तस्स ॥ ४७९ ॥
हिंसानंदेन युतः असत्यवचनेन परिणतः यस्तु।
तत्रैव अस्थिरचित्तः रौद्रं ध्यानं भवेत् तस्य ॥४७९॥

अर्थ—जो हिंसानंदकरि संयुक्त होय वाकै अर असत्यवचनकरि परिणमै ताकै अर वाही हिंसानंदमैं तथा असत्यवचनमैं ही उद्वेगवान अस्थिरचित्त रहै ताकै हिंसानंदनामा अर मृषानंदनामा रौद्रध्यान होय है ॥

परविसयहरणसीलो सगीयविसयेसु रक्खणे दक्खो।
तग्गयचिंताविट्ठो णिरंतरं तं पि रुद्दं वि ॥ ४८० ॥
परविषयहरणशीलः स्वकीयविषयेषु रक्षणे दक्षः।
तद्गतचिंताविष्टः निरंतरं तदपि रौद्रमपि ॥ ४८० ॥

अर्थ—अर पराये विषयनिकूं हरणेंका है स्वभाव जाका अर अपने विषयनिकै विषैं भलेप्रकार रक्षा करणेकूं चतुर अर निरंतर याही विषै है चित्त जो आसक्त। जाको ऐसा पुरुषकै हो.

स्तेयानंदनामा अर स्वविषयरक्षणानंदनामा रौद्रध्यानहोय है ॥४८०॥
विरिए वि असुहे झाणे पावणिहाणे य दुक्खसंताणे।
णच्चा दूरे वज्जह धम्मे पुण आयरं कुणह ॥ ४८१ ॥
द्वे अपि अशुभे ध्याने पापनिधाने च दुःखसंताने ।
ज्ञात्वा दूरे वर्जयत धर्मे पुनः आदरं कुरुत ॥४८१॥

अर्थ—पूर्वोक्त आर्त्तध्यान अर रौद्रध्यान दोऊही अशुभरूप पापका निधान दुःखका संतान जाणि दूरिसैं ही वर्जो अर धर्मध्यानके विर्षे आदर करो ॥ ४९१ ॥

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥४८२॥
धर्मः वस्तुस्वभावः क्षमादिभावश्च दशविधः धर्मः ।
रत्नत्रयं च धर्मः जीवानां रक्षणं धर्मः ॥ ४८२ ॥

अर्थ—वस्तुका स्वभाव है सो धर्म है अर दशप्रकार क्षमादिभाव है सो धर्म है अर रत्नत्रय है सो धर्म है अर जीवनिकी रक्षा है सो धर्म है ॥

धम्मे एयग्गमणो जो ण वेदेइ इंदियं विसयं ।
वेरग्गमओ णाणी धम्मज्झाणं हवे तस्स ॥४८३॥
धर्मे एकाग्रमनाः यः न वेदयति इंद्रियं विषयम् ।
वैराग्यमयः ज्ञानी धर्मध्यानं भवेत्तस्य ॥ ४८३ ॥

अर्थ--जो ज्ञानी पूर्वोक्त धर्मके विर्षे एकाग्रमन हुवो संतो तथा वैराग्यमय हुवो संतो इन्द्रियनिर्तें तथा इन्द्रियनिके विषयनिनं नहीं अनुभव करै ताकै धर्मध्यान होय है ॥

सुविसुद्धरायदोसो बाहिरसंकप्पवज्जिओ धीरो ।

एयग्गमणो संतो जं चिंतइ तं पि सुहझाणं ॥४८४॥
सुविशुद्धरागद्वेषः बाह्यसंकल्पवर्जितः धीरः ।
एकाग्रमनाः सन् यच्चिंतयति तदपि शुभध्यानम् ॥

अर्थ—भलैप्रकार विशेषपणैं शुद्ध भयो है रागद्वेष जाकै अर बाह्यसंकल्पकरि वर्जित अर धीर ऐसो पुरुष एकाग्रमन हुवो संतो जो चिंतवन करै सो ही शुभध्यान है ॥ ४८४ ॥

ससरूवसमुब्भासो णट्ठममत्तो जिदिंदिओ संतो ।
अप्पाणं चिंतंतो सुहझाणरओ हवे साहू ॥४८५॥
स्वस्वरूपसमुद्भासः नष्टममत्वः जितेंद्रियः सन् ।
आत्मानं चिंतयन् शुभध्यानरतः भवेत्साधुः ॥४८५॥

अर्थ—निजस्वरूपको है प्रकाश जाकै अर नष्ट भयो है ममत्व जाकै (इहां नष्टशब्दतैं उपशम भयो ही जाननूं) अर जीती है इन्द्रियां जानैं ऐसो हुवो संतो साधु आत्मानैं चिंतवन करत संतो शुभध्यानरत होय है। इहां 'नष्टममत्व' शब्दका भावार्थ उपशमभया ममत्व ही कहना क्योंकि शुभध्यानरत कह्या है तातैं, अर नष्टममत्व ही भावार्थ होता तौ शुक्लध्यान कहता ॥ ४८५ ॥

वज्जियसयलवियप्पो अप्पसरूवे मणं णिरुंभित्ता ।
जं चिंतदि साणंदं तं धम्मं उत्तमं झाणं ॥४८६॥
वर्जितसकलविकल्पः आत्मस्वरूपे मनः निरुध्य ।
यत् चिंतयति सानंदं तत् धर्म्यं उत्तमं ध्यानम् ॥

अर्थ—दूरि भये हैं समस्त विकल्प जाके ऐसो हुवो संतो आत्मस्वरूपकै विर्षे मननैं रोकि आनंदसहित जो चिंतवन करै सो उत्तम धर्मध्यान है ॥ ४८६ ॥

जत्थगुणा सुविसुद्धा उवसमखवणं च जत्थ कम्माणं।
लेसा वि जत्थ सुक्का तं सुक्कं भण्णदे झाणं ॥४८७॥
यत्र गुणाः सुविशुद्धाः उपशमक्षपणे च यत्र कर्मणाम्
लेश्याऽपि यत्र शुक्ला तत् शुक्लं भण्यते ध्यानम् ॥

अर्थ—जहां सुन्दर विशेषपणें शुद्ध गुण है अर जहां कर्मनिको उपशम है तथा क्षय है अर जहां लेश्या भी शुक्ल है सो ध्यान शुक्ल कहिये है ॥ ४८७ ॥

पडिसमयं सुज्झंतो अणंतगुणिदाए उभयसुद्धीए।
पढमं सुक्कं झायदि आरूढो उभयसेणीसु ॥४८८॥
प्रतिसमयंशुद्ध्यन् अनंतगुणितया उभयशुद्धया ।
प्रथमं शुक्लं ध्यायति आरूढः उभयश्रेणीषु ॥४८८॥

अर्थ—समय समय प्रति अनंतगुणा शुद्ध होता संता दोऊ श्रेणीके विषैं आरूढ अंतरंग बाह्यशुद्धिकरि शुक्लध्यानने ध्यावै है ॥४८८॥

णिस्सेसमोहविलये खीणकसाओ य अंतिमे काले ।
ससरूवम्हि णिलीणो सुक्कं झायेदि एयत्तं ॥४८९॥
निःशेषमोहविलये क्षीणकषायश्च अंतिमे काले ।
स्वस्वरूपे निलीनः शुक्लं ध्यायति एकत्वम् ॥

अर्थ—निःशेष मोहनैं विलीन होत संतें क्षीणकषाय गुणस्थानी जो है सो अंतका समयकै विषैं निजस्वरूपमें लीन होतसंतैं एकत्वनामा शुक्लध्यानन ध्यावै है ॥

केवलणाणसहावो सुहुमे जोगम्हि संठिओ काए।
जं झायदि सजोगिजिणो तं तदियं सुहुमकिरियं च४९०

केवलज्ञानस्वभावः सूक्ष्मे योगे संस्थितः काये।
यत् ध्यायति सयोगिजिनः तत् तृतीयं सूक्ष्मक्रियं च॥

अर्थ—केवलज्ञानस्वभाव सयोगी जिन जो है सो सूक्ष्मकाययोगकै विषैं भलैप्रकार तिष्ठतो संतो जो ध्यान करै है सो सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामा तृतीय शुकलध्यान है॥ ४९०॥

जोगविणासं किच्चा कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्टं।
जं झायदि अजोगिजिणो णिक्किरियं तं चउत्थं च॥
योगविनाशं कृत्वा कर्मचतुष्कस्य क्षपणकरणार्थम्।
यत्ध्यायति अयोगिजिनः निष्क्रियं तत् चतुर्थं च॥

अर्थ—जो योगी योगका विनाशकरि अयोगीजिन हुवा संतो कर्मचतुष्टयका खिपावाका अर्थि ध्यावै है सो निष्क्रियनामा चतुर्थ शुक्लध्यान है॥ ४९१॥

एसो बारसभेओ उग्गतवो जो चरेदि उवजुत्तो।
सो खविय कम्मपुंजं मुत्तिसुहं उत्तमं लहइ॥४९२॥
एतत् द्वादशभेदं उग्रतपः यः चरति उपयुक्तः।
सः क्षपित्वा कर्मपुंजं मुक्तिसुखं उत्तमं लभते॥४९२॥

अर्थ—जो पुरुष उपयुक्त हुवो संतो यो पूर्वोक्त द्वादशभेदरूप उग्रतप जो है ताहि आचरण करै है सो पुरुष कर्मसमूहनैं खपाय उत्तम मुक्तिसुखनैं प्राप्त होय है॥ ४९२॥

या प्रकार द्वादशभेदरूप तपका संक्षेप स्वरूप दिखाया है ताहि समझि विशेष जाननेकी इच्छा होय तौ अन्यग्रंथनितैं देखि यथाशक्ति धारण करियो॥

अब दानका स्वरूप भी संक्षेपमात्र आगमतैं कहिये है, सो आदिपुराणका अड़तीसमा पर्वमें श्लोक;—

चतुर्द्धा वर्णिता दत्तिर्दयापात्रसमान्वये ॥ ३५ ॥

अर्थ—दत्ति कहिये दान देवो च्यार प्रकार है, सो ऐसें एक तौ दयादत्ति१ दूसरां पात्रदत्ति२ तीसरां समदत्ति३ चौथी अन्वयदत्ति ॥३५॥

प्रश्न—इनके भिन्न भिन्न लक्षण कहो।

उत्तर—दयादत्तिलक्षण—

सानुकंपमनुग्राह्ये प्राणिवृंदेऽभयप्रदा ।
त्रिशुद्ध्यनुगता सेयं दयादत्तिर्मता बुधैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—अनुग्रह करनेयोग्य प्राणीनिका समूहकै विषैं अभयकी दाता अनुकंपासहित जैसें होय तैसें मन वचन कायकी शुद्धतानैं प्राप्त भई सो या दयादत्ति ज्ञानवाननिनैं कही है ॥

भावार्थ—दुःखित सुखित जीवनिनैं दयाकरि दीजिये सो दयादत्ति है ॥ ३६ ॥ पात्रदत्तिलक्षण।

महातपोधनायार्चाप्रतिग्रहपुरःसरम् ।
प्रदानमशनादीनां पात्रदानं तदिष्यते ॥ ३७ ॥

अर्थ—महान तपोधन जे हैं तिनकै अर्थि पूजनप्रतिग्रहपूर्वक आहार आदिका देना है सो पात्रदान इष्ट करिये है ॥ ३७ ॥

समदत्तिलक्षण।

समानायाऽऽत्मनाऽन्यस्मै क्रियामंत्रव्रतादिभिः ।
निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम् ॥३८॥
समानदत्तिरेषा स्यात्पात्रे मध्यमतामिते ।
समानप्रतिपत्त्यैव प्रवृत्त्या श्रद्धयाऽन्विता ।३९।युग्मं।

अर्थ—या प्रकरणकै विषैं क्रियाकरि मंत्रकरि व्रतादिककरि अपने समान अन्य निस्तारक उत्तम जो है ताकै अर्थि पृथ्वी सुवर्ण आदिका देना

है सो समानदत्ति है, अर या समानदत्ति है सो मध्यमपणानैं प्राप्तभया पात्रके विषैं श्रद्धानसंयुक्त प्रवृत्ति करि समान प्रतिपत्तिकै अर्थिही है ॥

भावार्थ— मध्यमपात्र सम्यग्दृष्टी व्रती है सोही सम्यग्दृष्टी व्रती-कै समान है ताकै अर्थि समानताकी प्राप्तिकै निमित्त पृथ्वी सुवर्ण वस्त्र वाहन धन धान्य आदिका श्रद्धाभक्तिसंयुक्त प्रवृत्तिकरि देनाहै सो समानदत्ति है ॥३८-३९॥ अन्वयदत्तिलक्षण।

आत्मान्वयप्रतिष्ठार्थं सूनवे यदशेषतः।
समं समयवित्ताभ्यां स्ववर्गस्यातिसर्जनम् ॥४०॥

अर्थ—जो अपना वंशकी प्रतिष्ठाकै अर्थि समीचीन धर्म अर धनकरि सहित समस्तपणानैं पुत्रकै अर्थि अपना परिवारको समर्पण है सो या सकलदत्ति है ॥४०॥

भावार्थ—अपने पदतें उत्तमपदनैं धारण करै तब अपना सर्वस्व अर समस्त परिवारका रक्षण पुत्रकै अर्थि समर्पणकरि आप अपना आत्माको कल्याण करै सो सकलदत्ति कहिये है ॥४०॥

प्रश्न—दानका लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान किया अब कुदान-का भी नाम कहो।

उत्तर—प्रश्नोत्तरश्रावकाचारका वीसमा पर्वमैं—

गोकन्याहेमहस्त्यश्वगेहक्ष्मातिलस्यन्दनाः।
दासी चेति कुदानानि प्रणीतानि शठैर्भुवि ॥

अर्थ—संसारसमुद्रमैं निज परकै डबोवनेवाले अर कुंज्ञानके अंशकरि उद्धत ऐसे शठ जे हैं तिननैं अपने विषय कषाय पोषनेनि-मित्त पृथ्वीकै विषैं गौ १ कन्या २ सुवर्ण ३ हस्ती ४ अश्व ५ गृह ६ पृथ्वी ७ तिल ८ रथ ९ दासी १० ए दश दान भोले जीवनिकूं उप-देश किये हैं सो ये दान कुदान हैं क्योंकि ये आरंभ हिंसा कषायके बधावनवारे हैं, तातैं जिनमतमैं इनिका निषेध है ॥१॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकाका दानपंचाशताधिकारमें; —

चत्वारि यान्यभयभेषजभुक्तिशास्त्र-
दानानि तानि कथितानि महाफलानि ।
नान्यानि गोकनकभूमिरथांगनादि-
दानानि निश्चितमवद्यकराणि यस्मात् ॥३८॥

अर्थ—जे अभय, औषधि, आहार, शास्त्र ये च्यार दान कहे हैं ते तो स्वर्गादिक महाफलके कारण हैं अर इनितैं अन्य गौ सुवर्ण भूमि रथ स्त्री आदि दान जे हैं ते निश्चयतैं पापके कारण हैं, याहीतैं दान नहीं हैं, कुदान हैं ॥३८॥

यद्दीयते जिनगृहाय धरादि किंचि-
त्तत्र संस्कृतिनिमित्तमिह प्ररूढम् ।
आस्ते ततस्तदतिदीर्घतरं हि कालं
जैनं च शासनमतः कृतमस्ति दातुः ॥३९॥

अर्थ—जो जिनमंदिर बनावने निमित्त किंचित् पृथ्वी अर धन दीजिये है अथवा प्राचीन जीर्णमंदिरनिके संस्कारनिमित्त धन दीजिये है तातैं तहां सो जिनमंदिर अति दीर्घतरकाल तिष्ठै है यातैं दातानें अतिदीर्घतर काल जिनशासन प्ररूढ कियो क्योंकि धर्म है सो आयतनकै आधार है यातैं ॥ चौपई ।

द्वादशविध तप कहे सुजान, कहे चतुर्विध दान प्रधान।
करहु भव्य निज करन कल्यान, लिखे जिनागमके परमान

इति श्रीगजितनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीत विद्वज्जन-
बोधके प्रथमकाण्डे द्वादशतपःस्वरूप तथा चतुर्विध-
दानस्वरूपनिर्णयो नाम द्वादश उल्लासः ॥
